भिषग्वर शार्ङ्गधरविरचिता

शार्ङ्गधरसंहिता

(चिकित्साग्रंथ)

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.

भिषग्वर शार्ङ्गधरविरचिता

शार्ङ्गधरसंहिता

(चिकित्साग्रंथ)

आयुर्वेदोद्धारकवैद्यपञ्चाननवैद्यरत्नराजवैद्यपण्डित
रामप्रसादवैद्योपाध्यायकृत

हिन्दीटीकासहिता

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन बम्बई

संस्करण : मार्च २०१९, संवत् २०७५

मूल्य : ३५० रुपये मात्र ।

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

भूमिका

आयुर्वेद ऋक् यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों का सारभूत प्रधान उपवेद है। कोई इसको ऋग्वेद का प्रधान अङ्ग मानते हैं। ब्रह्मवैवर्त्त पुराणोंमें लिखा है-"**ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः। विचिन्त्य तेषामर्थं चैवायुर्वेदं चकार सः ॥" इति।** अर्थात् ब्रह्माने ऋग, यजुः साम और अथर्व इन चारों वेदों के अर्थों को विचारकर आयुर्वेद का प्रचार किया। चरण व्यूह तो आयुर्वेद को ऋग्वेद का अङ्ग मानते हैं और धन्वतरिजी अथर्ववेद का। आत्रेय भगवान् लिखते हैं-"**चतुर्णां ऋक्सामयजुरथर्ववेदानाम् आत्मनोऽस्यायुर्वेदस्याथर्ववेदे विशेषेणोक्तिः ।**" अर्थात् चारों वेदों के आत्मभूत आयुर्वेद का अथर्ववेद में विशेषरूप से कथन किया है। परन्तु औषध विज्ञान, क्रम से चिकित्सा ऋग्वेद में विशेष है और यंत्र शस्त्र विधान अथर्व में विशेषरूप से पाया जाता है। इसीलिये आत्रेयजी ने कहा है कि-"**नहि आयुर्वेदस्याभूतोत्पत्तिरुपलभ्यते, अन्यत्रावबोधोपदेशाभ्याम्**" अर्थात् यह कहीं पता नहीं लगता कि आयुर्वेद कब और किसने बनाया। केवल इतना ही मिलता है कि ब्रह्मा को स्मरण हुआ, तब चारों वेदों के सारभूत आयुर्वेद को ब्रह्मा ने उपदेश किया।

इस अनादि आयुर्वेद के आधार पर महान् विज्ञान से भरी हुई ब्रह्मा आदि देवताओं ने, धवन्तरि आदि अवतारों ने और आत्रेय आदि महर्षियों ने उत्तम आयुर्वेद की संहितायें बनाईं। इनके सुश्रुत आदि और अग्निवेशादि शिष्यों की बनाई हुई सुश्रुत चरक आदि अब भी आयुर्वेद की प्रधान संहिताएं उत्तम टीका टिप्पणियों सहित छपी हुई मिलती हैं। इन्हीं आर्षग्रंथों के आधार पर श्रीशार्ङ्गधर आचार्य ने आर्षयोगों को इकट्ठे करके यह शार्ङ्गधरसंहिता नामक चिकित्सा ग्रन्थ बनाया जो इस समय दो संस्कृत टीका सहित छपा हुआ मिलता है। परन्तु संस्कृत टीका से केवल संस्कृत के विद्वानों को ही लाभ हो सकता है। जो आयुर्वेद के प्रेमी संस्कृत के विद्वान् नहीं हैं उनके लिये हिन्दी में उत्तम ग्रन्थ का अनुवाद होना आवश्यक था। इस कारण ग्रंथ के स्पष्ट भाव बतलानेवाली यह हिन्दी भाषा में भाव प्रकाशिका टीका लिखी गई है। इससे ग्रन्थ का मर्म सर्व साधारण की समझ में आ सकता है। इस ग्रन्थ के तीन खण्ड हैं। पहले परिभाषा आदि सात अध्याय हैं। दूसरे खण्ड में स्वरस और क्वाथ आदि औषधियों में योग, उनके गुण, गुटिका, स्नेह, धातु, रसादि बारह अध्यायों में वर्णन किये हैं। तीसरे खण्ड में स्नेहपानादि पञ्चकर्म की व्यवस्थाएँ, रक्तस्रावर्ण और नेत्र निर्माण प्रकारादि व्यवस्थाएं १३ अध्यायों में कथन की हैं। इस प्रकार इस संहिता के ३२ अध्याय हैं।

इस संहिता का लघुत्रयी में जितना बड़ा मान है सो किसी से छिपा नहीं है। अब यह मुद्रित होकर सर्वधारण के सम्मुख आ रहा है। यदि इसके भाषानुवाद में मेरी मानुषी या तुच्छ बुद्धि के कारण कोई त्रुटि रह गई हो तो भद्रपुरुष उसका सुधार करने के लिये अपनी अनुमतिसहित मुझे सूचना देंगे। जिससे दूसरी बार के मुद्रण में सुधार दिया जावेगा।

विनीत–

पटियाला, २० मार्च १९२८ **रामप्रसाद**

श्रीः

शार्ङ्गधरसंहिता की विषयानुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठांकाः

इति प्रथमः खण्डः

विशेष सूचना : पाद टिप्पणियां पुस्तक के अंत में दी गई हैं। कृपया प्रत्येक पेज की टिप्पणियों के लिये पुस्तक के अंत में लगे टिप्पणियों के पृष्ठ देखें।

श्रीसाम्बशिवाय नमः

शार्ङ्गधरसंहिता

भावप्रकाशिका–हिन्दीटीकासमेता

**

प्रणम्य देवदेवेशं दुःखत्रयविनाशकम् ।
शार्ङ्गधरसंहिताया नाम्ना भावप्रकाशिका ।।१।।
टिप्पणीसहिता व्याख्या बालानां हितमिच्छता ।
वैद्यरामप्रसादेन क्रियते विशदा शुभा ।।२।।

अर्थ–सनातन काल से ऋषि महर्षि आचार्य आदिकों का यह नियम चला आया है कि जब वे किसी ग्रन्थ को निर्माण करने लगते हैं तब आदि में ग्रन्थ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये मङ्गलाचरण अवश्य करते हैं। उनके शिष्य भी ऐसा ही करें इसलिये ग्रन्थ के आदि मे वह मङ्गल लिखे देते हैं। और ऐसा ही शिष्टाचार भी है। वह मङ्गलाचरण–आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक भेद से तीन प्रकार का होता है। यहां पर श्रीशार्ङ्गधरजी आचार्य आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण करते हैं, जैसे–

श्रियं स दद्याद् भवतां पुरारिर्यदङ्गतेजः प्रसरे भवानी ।
विराजते निर्मलचंद्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ।।१।।

अर्थ–हिमालय पर्वत में अत्यन्त देदीप्यमान संजीवनी आदि दिव्य महोषधि जैसे निर्मल चन्द्रमा की चांदनी में शोभा को प्राप्त होती है उसी प्रकार जिनके तेज समूह में श्रीपार्वतीजी विराजमान हैं ऐसे श्रीशिवजी आपको कल्याण अथवा लक्ष्मी देनेवाले हों।।१।।

अब कहते हैं कि यह ग्रन्थ सम्पूर्ण प्राणिजनों के उपकारार्थ हो इस प्रकार विचारकर इस ग्रन्थ का सम्बन्ध कहना चाहिये, क्योंकि सम्बन्ध के कहने से श्रोता और वक्ता की प्रवृत्ति होती है, इसी कारण शार्ङ्गधर आचार्य भी प्रथम सम्बन्ध को कहते हैं–

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरञ्जनाय ।।२।।

अर्थ–चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरों के कहे हुए और प्राचीन सद्वैद्यों के वारंवार नाम रूप योजनादिक करके अनुभव किये हुये जो विख्यात योग उनका संग्रह सज्जनों के मनोरञ्जनार्थ शार्ङ्गधर नामक मैं करता हूँ। तात्पर्य यह है कि चरक सुश्रुतादि मुनीश्वरों के प्रयोग जहां तहां से

लेकर प्रकारान्तर से उन्हीं को शुद्ध करके मैं लिखता हूँ, इसके कहने से ग्रन्थ की उत्तमता दिखाई और त्रिकालदर्शी को मुनि कहते हैं उनके कहे प्रयोग मेरे इस ग्रन्थ में हैं इस वाक्य के कहने से ग्रन्थ की प्रामाणिकता दिखाई। एवं वैद्यों के अनुभव किये हुए योग इसमें कहे हैं, इससे ग्रन्थ की अन्य सर्व ग्रन्थों से उत्कृष्टता दिखाई है अर्थात् सर्व आयुर्वेद के ग्रन्थों में यह सर्वोत्तम है।।२।।

अब प्रथम रोग की परीक्षा करे इत्यादि शार्ङ्गधर भी कहते हैं—

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ।
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत् सुयोगैः।।३।।

अर्थ–प्रथम वैद्य हेतु आदिरूप आकृति सात्म्य जाति इन भेदों से रोगी के संपूर्ण रोगों को जान फिर यथाशास्त्र उत्तम प्रकार के प्रयोगों से कर्षण और बृंहणरूप विविध चिकित्सा यथाक्रम करे। अन्यथा दोष लगता है जैसे वाग्भट लिखते हैं–(कि जो बिना दोषों के जाने वैद्य चिकित्सा कर्म को करता है वह उस कर्म की सिद्धि को तथा सुख और सद्गति को नहीं प्राप्त होता)

अथवा हेतु आदिमें जिनके ऐसे जो रूपादिक तिन्हों से प्रथम रोग-परीक्षा करके फिर चिकित्सा करे। जैसे वाग्भट में लिखा है कि दर्शन स्पर्शन प्रश्न और निदान पूर्वरूप रूप उपशय तथा संप्राप्ति इनसे रोगियों के रोग की परीक्षा करे। तहां हेत्वादिक पांच तो कहे; अब रूपादित्रय को कहते हैं, तहां रूप के कहने से देह की स्थूलता, कृशता, बल, वर्ण और विकार आदि की परीक्षा देखने से करे तथा "आसमंतात् कृतिः करणम्"। जिससे सर्वत्र कर्म किया जाय ऐसी त्वगिन्द्रिय से शीत, उष्ण, मृदु, कठोर आदि की परीक्षा करे। और सात्म्य के कहने से हितकारी पदार्थ जानना अर्थात् आपको कौनसी वस्तु हित है इस वाक्य के प्रश्न करने को कहा अथवा सात्म्य करके कोई अभिलाष का ग्रहण करते हैं अर्थात् जिस रोगि को खाने पीने आदि आहार, विहार की इच्छा हो उस इच्छा द्वारा ही वैद्य रोगी के देह स्थित दोषों के क्षीण-वृद्धि का ज्ञान करे।

इस प्रकार दर्शनादित्रय परीक्षा कही और जाति के कहने से शेष इन्द्रियों की परीक्षा जाननी, क्योंकि सुश्रुत में रोग की परीक्षा छः प्रकार की कही है, जैसे पांच श्रोत्रादि इन्द्रियों से और छठी प्रश्न से। तहां दर्शनादि तीन परीक्षा कह आये हैं; अब शेष श्रोत्रादिकों की परीक्षा कहते हैं। तहां कर्णेन्द्रिय द्वार प्रनष्टशल्य स्थानीय रुधिर निकलने के शब्द की परीक्षा करे। जिह्वा इन्द्रिय द्वारा प्रमेहादि रोगों में रस की परीक्षा करे और घ्राणेन्द्रिय करके अरिष्ट लिङ्गादि व्रणों के गन्ध की परीक्षा करे इस प्रकार हेत्वादिकों की व्याख्या कही तहां प्रथम अर्थ ठीक है दूसरा अर्थ जो त्रिविध और षड्विधपरीक्षापरत्व कहा है सो कल्पित है तथापि उत्तम है। "समीक्ष्य" इस पद के धरने से अज्ञान की निवृत्ति कही (अर्थात् बहुत से रोग यथार्थ देखे नहीं गये तथा ठीक २ कहने में नहीं आये और ठीक २ विचार में नहीं आये, अथवा जो ठीक पूछने में नहीं आये ऐसे रोग वैद्य को मोहित करते हैं) अतएव वारंवार परीक्षा द्वारा रोग निश्चय करना चाहिये। रोगनाशक कर्म, व्याधिप्रतीकार, धातुसात्म्यार्थक्रिया ये चिकित्सा के पर्यायवाचन शब्द हैं, जैसे लिखा है (उत्तम भिषगादिचतुष्टयों का विकृतधातु के समान करने के अर्थ जो प्रवृत्ति है उसको चिकित्सा कहते हैं) इस कर्षण बृंहण चिकित्सा करके दोषों को घटावे और बढ़ावे जैसे लिखा है कि (दोषों की विषमता को रोग कहते हैं और दोषों की समानता को आरोग्य कहते हैं) "सुयोगैः" इस पद से यह सूचना करी कि सुन्दर द्रव्यों के प्रयोगों से अर्थात् शीघ्र आरोग्यकर्त्ता औषधों करके वैद्य रोगी की चिकित्सा करे।।३।।

औषधियों के प्रभाव

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति ।
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः ।।४।।

अर्थ–जैसे देवताओं के अपरिमित भेद और उत्कृष्ट प्रभाव प्रगट हैं उसी प्रकार दिव्यौषधियों के अनेक भेद और अपरिमित शक्ति प्रगट होती है। इस प्रकार जान गम्भीर बुद्धिवाले वैद्य अपने चित्त से सन्देह को दूर कर आदरपूर्वक औषधों को विविध प्रभाववती मानें। इस कहने का यह तात्पर्य है कि मणि, मन्त्र और औषधियों के प्रभाव अचिन्त्य हैं। जो बाहर के और आत्मा के भावों को हिताहित करता है उसका नाम धीर है, धीर शब्द का ग्रहण इस जगह निश्चयार्थ ज्ञान के वास्ते है।।४।।

अथ प्रयोजन कहते हैं, क्योंकि[१८]X सर्वशास्त्रों का और कर्म का जब तक प्रयोजन नहीं हो तब तक कोई ग्रहण नहीं करे अतएव उस प्रयोजन को कहते हैं–

स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरारोगाभवेयुःकिल कर्मदोषजाः ।
तच्छेदनार्थंदुरितापहारिणः श्रेयोमयान् योगवरात्रियोजयेत् ।।५।।

अर्थ–स्वाभाविक[१९], आगन्तुक[२०], कायिक[२१] और आन्तरिक[२२] ऐसे चार प्रकार के कर्मज और दोषज रोग उत्पन्न होते हैं, उनके शांति के अर्थ दुःख से छुड़ाने वाले और पुण्यरूप ऐसे जो उत्तम योग हैं उनकी योजना करनी चाहिये।।५।।

योगवरान् इस पद के धरने से यह दिखाया कि समस्त आर्ष ग्रन्थों के उत्तम २ प्रयोगशार्ङ्गधर नें संग्रह करके इस अपने ग्रन्थ में रखे हैं। अब कहते हैं रोग तीन[२३] प्रकार के हैं जैसे ग्रन्थांतर में लिखा है कि (एकतो कर्म के कोप से, दूसरे दोषों के कोप से, तीसरे कर्म और दोषों के कोप से कायिक और मानसिक रोग प्राणियों के देह में होते हैं) अब इन तीनों के पृथक् २ लक्षण कहते हैं तहां परद्रव्य[२४] (धरोहर आदि) और ऋण इनके न देने से, गुरुजी के गमन से, ब्राह्मण आदि के मारने से जो प्रगट होते हैं उनको कर्मज रोग कहते हैं; ये ओषधि करके वैद्य से अच्छे नहीं होते किन्तु दान[२५] दया आदि करके, ब्राह्मण गौ की सेवा करने से, पूर्वजन्म के सञ्चित कर्म से उत्पन्न व्याधि का शमन होता है। अब दोषज[२६] व्याधि के लक्षण कहते हैं (कि वातादि दोष अपने कारण से कुपित हो आपस में मिलकर इतस्ततश्चलायमान हो जो विकारों को प्रकट करते हैं उनको दोषज रोग कहते हैं ये औषध करने से दूर होते हैं) अब कर्मदोषोद्भव विकारों को कहते हैं (कि दानादिक[२७] कर्म और ओषधि इन दोनों के करने से जो रोग कथंचित् कर्म और दोषों के क्षीण होने से कुछ २ शांत हो उनको कर्म दोषज विकार कहते हैं) अब प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्ध प्रयोगों के कहने से और संक्षेप करने से इस ग्रन्थ का माहात्म्य कहते हैं–

प्रयोगानागमात्सिद्धान्प्रत्यक्षादनुमानतः ।
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ।।६।।

अर्थ–समस्त लोक के हितार्थ इस ग्रन्थ में प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम (शास्त्र) से सिद्ध प्रयोगों को संक्षेप से वर्णन करते हैं। आगमादिकों के लक्षण जेज्जटादि आचार्यों ने कहे हैं उनको सबके जानने के अर्थ मैं इस जगह लिखता हूं (तहां आगम कहिये वेद अथवा आप्तपुरुषों का वाक्य है जैसे लिखा है कि जो सिद्ध[२८] प्रमाणों करके सिद्ध हो और इस लोक तथा परलोक में हितकारी हो वह आप्तों का आगम शास्त्र है और जो सत्य अर्थ के जाननेवाले हैं उनको आप्त कहते हैं) अब

आगमसिद्ध जो सुनने में आता है उसको कहते हैं (जैसे लिखा है कि इस[१] प्रयोग के प्रभाव से हजार वर्ष जीवे और वृद्धा स्त्री भी इसके सेवन करने से सोलह वर्ष की अवस्थावालीसी होय) यह आगमसिद्धि कही। अब कहते हैं कि जो कुछ अर्थ का साक्षात्कारी ज्ञान है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं जैसे लिखा है कि (मन इंद्रियगत भ्रांतिरहित जो वस्तु है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं और जिसमें इन्द्रियों का यथार्थ ज्ञान न हो उसको भ्रम कहते हैं) जैसे वमन विरेचनादि योग प्रत्यक्षफल दिखलानेवाले हैं तथा जिस वस्तु का अव्यभिचारी लक्षणों करके पीछे से ज्ञान हो उसको अनुमान कहते हैं। जैसे पांडुरोग मिट्टी खाने से होता है और वमन मक्खी के खाने से होती है ऐसा अनुमान किया जाता है उसी प्रकार त्वचा के और राध (रुधिर) निकलने से व्रण पक गया ऐसा अनुमान किया जाता है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगमन ये तीन प्रमाण आयुर्वेद में माने जाते हैं। अब कदाचित् कोई प्रश्न करे कि यह ग्रन्थ तुम किस हेतु से करते हो? तहां कहते हैं कि "सर्वलोकहितार्थाय" अर्थात् सर्वलोक के हित के अर्थ कहता हूं। तहां लोक दो प्रकार का है एक स्थावर (वृक्षादि) और दूसरा जङ्गम (पशुपक्षी मनुष्यादि)। इन दोनों प्रकार के लोकों में यहां पर इस मनुष्य देह का लोक शब्द करके ग्रहण है।।

कदाचित् कोई कहे कि आप शार्ङ्गधर ग्रन्थ में लिखते हो उसका अन्य प्राचीन ग्रन्थ द्वारा ही ज्ञान हो सकता है फिर इस पिष्टपेषण ग्रन्थ से क्या फलसिद्धि होगी? तहां कहते हैं कि "अनतिविस्तरात्" अर्थात् विस्ताररहित इस ग्रन्थ को मैं कहता हूं, अन्य आर्ष ग्रन्थ बहुत प्रपञ्चयुक्त हैं पूर्वपक्ष समाधानादि करके चित्त को उद्विग्न करते हैं इस कारण मैंने यह उक्तदोषरहित संक्षेप से कहा है अतएव यह ग्रन्थ उत्तम है।।६।।

अथ अनुक्रमणिका

प्रथमं परिभाषा स्याद् भैषज्याख्यानकं तथा ।
नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ।।७।।
ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ।
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ।।८।।

अर्थ—अब तीनों खण्डों की अनुक्रमणिका कहते हैं—तहां परिभाषा से आदि ले रोगगणना पर्यंत सात अध्यायों करके यह पूर्वखण्ड आचार्य ने कहा है। जैसे प्रथमाध्याय में परिभाषाकथन, दूसरे अध्याय में औषधाख्यान अर्थात् औषधभक्षणादि विधि और तथा के कहने से द्रव्य, रस, गुण, वीर्य, विपाकादिकों का कथन, चतुर्थ अध्याय में दीपनपाचनादि लक्षण और अनुलोमन विरेचन वमन लेखन स्तम्भनादि का कथन है, पञ्चमाध्याय में कलादिकों का कथन तथा सृष्टिक्रम शारीरादिकों का कथन है, छठे अध्याय में आहारादिकों की गति और गर्भोत्पत्ति कुमार पोषणोक्ति प्रकृतिलक्षण का कथन है, सप्तमाध्याय में रोग (ज्वरादिकों की) गणना कथन इस प्रकार अध्यायोंकरके प्रथम खण्ड कहा है।

मध्यखण्ड की अनुक्रमणिका

स्वरसः क्वाथफाण्टौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ।
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः सन्धानमेव च ।
धातुशुद्धी रसाश्चैव खण्डोऽयं मध्यमः स्मृतः ।।९।।

१ ले अध्याय में स्वरस और पुटपाकविधि कही है। २ रे अध्याय में काढ़े और प्रमथ्यादि

तथा उष्णोदक, क्षीरपाक, अन्नक्रिया इनकी विधि कही है। ३ रे अध्याय में फाण्ट और मन्थ इनकी विधि कही है। ४ थे अध्याय में हिमविधि का कथन। ५ वें अध्याय में कल्ककथन। ६ वें अध्याय में चूर्णों का कथन। ७वें अध्याय में गुटिकाओं का कथन। ८वें अध्याय में अवलेहों का कथन। ९वें अध्याय में घृत और तैल का कथन। १०वें अध्याय में मद्यभेदकथन। ११वें अध्याय में स्वर्णादिक धातु और उपधातु इनका शोधन मारण कथन। १२वें अध्याय में रस उपरस इनका शोधन मारण और सिद्धरस इनका कथन किया है। इस प्रकार बारह अध्यायों करके मध्यम खण्ड कहा जाता है॥९॥

उत्तरखण्ड की अनुक्रमणिका

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् । ततस्तु स्नेहवस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम् ॥१०॥ ततश्चाप्युत्तरो वस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः । धूमपानविधिश्चैव गण्डूषादिविधिस्तथा ॥११॥ लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविश्रुतिः । नेत्रकर्मप्रकारश्च खण्डः स्यादुत्तरस्त्वयम् ॥१२॥

अर्थ–१ले अध्याय में स्नेह[31]पानविधि। २रे अध्याय में स्वेद[32]विधि। ३रे अध्याय में वमनविधि। ४थे अध्याय में विरचनाविधि। ५वें अध्याय में स्नेह[33]वस्तिकथन। ६वें अध्याय में निरू[34]हणविधि। ७वें अध्याय में उत्त[35]रवस्तिकथन। ८वें अध्याय में न[36]स्यविधि। ९वें अध्याय में धू[37]मपानविधि। तथा व्रणधूपन और ग्रहधूपन जानना। १०वें अध्याय में ग[38]ण्डूषादिविधि और कवलप्रतिसारण कथन। ११वें अध्याय में लेपादिकों[39] की और मस्तक में तैल डालना तथा कर्णपूरण की विधि जाननी। १२वें अध्याय में रुधिर निकालने की विधि। १३वें अध्याय में नेत्र कर्मप्रकार इस प्रकार तेरह अध्यायों करके उत्तरखंड कहा है॥१०–१२॥

अब संहिता की निरुक्ति पूर्वक श्लोकसंख्या कहते हैं–

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ।
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च ॥१३॥

अर्थ–शार्ङ्गधरसंहिता ३२ अध्याय करके युक्त है और इसमें २६०० छब्बीससौ श्लोकों की संख्या कही है। पदों के समूह से वाक्य, वाक्यों के समूह से प्रकरण और प्रकरण के समूह से अध्याय होता है॥१३॥

औषधों के मानकी परिभाषा

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां जायते क्वचित् ।
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया ॥१४॥

अर्थ–मान (परि[40]माण) के बिना औषधों की युक्ति (कर्तव्यविधि) कही नहीं होती है, अतएव औषध बनाने की लिये मान (तोल) विधि इस संहिता में कहता हूं। यह तोलने का प्रमाण है और भक्षण की मात्रा का प्रमाण आगे प्रत्येक प्रयोग में कहेंगे॥१४॥

त्रसरेणु का परिमाण

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ।
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ॥१५॥

अर्थ–तीस परमाणु का १ त्रसरेणु होता है और वंशी शब्द उसी त्रसरेणु का पर्यायवाचक शब्द

है, परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं वह स्वभाव से अथवा अणुभाव करके जाने जाते हैं, नेत्रों करके नहीं प्रतीत होते।।१५।।

परमाणु के लक्षण

जालान्तरगते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः ।
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ।।१६।।

अर्थ–जाली झरोखा में सूर्य की किरण पड़ने से उन किरणों में जो धूल के बहुत बारीक कण उड़ते दीखते हैं उस एक एक कण (रज), का जो तीसवां भाग है उसको परमाणु कहते हैं। कोई इसको आगे वंशी के लक्षण को कहता है, जैसे–"जालान्तरगतैः सूर्यकरैर्वंशी विलोक्यते" अर्थात् जाली झरोखों में जो सूर्य की किरणों में रज उड़ती है उसको वंशी कहते हैं।।१६।।

मरीचि आदिका परिमाण

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात् ताभिः षड्भिस्तु राजिका ।
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ।
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुञ्जा स्यात् तच्चतुष्टयम् ।।१७।।

अर्थ–६ वंशी की १ मरीचि होती है, छः मरीचियों की १ राई, ३ राई की १ सफेद सरसों होती है, ८ सफेद सरसों का १ यव होता है और ४ यव (जौ) की १ गुञ्जा (रत्ती गूंघची) होती है।।१७।।

मासे का परिमाण

षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ।

अर्थ–६ रत्ती का १ मासा होता है, उसको हेम और धान्यक भी कहते हैं, (कोई सात रत्ती का, कोई पांच रत्ती का और कोई दश रत्तीका मासा होता है ऐसा कहते हैं)।।

शाण और कोल का परिमाण

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ।।१८।।
टङ्कः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ।
क्षुद्रको वटकश्चैव द्रङ्क्षणः स निगद्यते ।।१९।।

अर्थ–४ मासे का शाण होता है उसको धरण और टंक भी कहते हैं। (जहां जहां मासा आवे वहां २ छः रत्ती का मासा जानना) २ शाण का कोल होता है, उसको क्षुद्रक, वटक और द्रंक्षण भी कहते हैं, (कोल नाम बेर का है, उसके बराबर होने से इस तोल की कोलसंज्ञा रखी है)।।१८।।१९।।

कर्ष का परिमाण

कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका । अक्षः पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ।।२०।। बिडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता । करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् । उदुम्बरं च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ।।२१।।

अर्थ–दो कोल का १ कर्ष होता है उसको पाणिमानिका, अक्ष; पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंन्दुक, बिडालपदक, षोडषि का, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह और उदुंबर भी कहते हैं,

अर्थात् ये १३ नाम भी उसी कर्ष के हैं। (अक्ष नाम बहेडे का है उसके बराबर होने से इस कर्ष को अक्ष भी कहते हैं, तेंदू के फल समान होने से तिन्दुक संज्ञा है, हथेली भर की पाणिंतल संज्ञा है, तीन उंगली करके ग्राह्य है अतएव इसकी षोडशिका संज्ञा है और बिडालपदक संज्ञा है, सोलह मासे का होता है, इस कारण इसकी षोडशिको संज्ञा है और गूलर के समान होने से इस कर्ष की उदुम्बर संज्ञा आचार्यों ने की है, इसी प्रकार, जितनी संज्ञाएं इस परिभाषा में हैं वे सब सार्थक हैं) व्यवहार में १ कर्ष का १ तोला होता है।।२१।।२१।।

अर्द्धपल और पल का परिमाण

स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा। शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।। प्रकुञ्चः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ।।२२।।

अर्थ–२ कर्ष का एक अर्धपल, उसीको शुक्ति (शीप) और अष्टमिका कहते हैं २ शक्ति का १ पल होता है, उस (पल) के मुष्टि, आम्र, चतुर्थि का, प्रकुंच, षोडशी और बिल्व ये भी पर्यायवाचक नाम हैं।।२२।।

प्रसृतिसे आदि ले मानिकापर्यंत की संज्ञा

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते । प्रसृतिभ्यामञ्जलिः स्यात् कुडवोऽर्धशरावकः ।।२३।। अष्टमानं च संज्ञेयः कुडवाभ्यां च मानिका । शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः।।२४।।

अर्थ–दो पल की प्रसृति होती है, फैली हुई उंगलियोंवाली हथेली को प्रसृति और उसको प्रसृत भी कहते हैं। दो प्रसृति की १ अंगुली (पस्सा) होता है, उसको कुडव (पावशेर) अर्द्धशरावक और अष्टमान भी कहते हैं। दो कुडव की १ मानिका होती है, उसको शराव, अष्टपल भी कहते हैं। एक शराव के १२८ टंक होते हैं।।२३।।२४।।

प्रस्थ और आढक का परिमाण

शरावाभ्यां भवेत् प्रस्थश्चतुष्प्रस्थैस्तथाऽऽढकम् । भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ।।२५।।

अर्थ–दो शराव का १ प्रस्थ (सेर) होता है, चार प्रस्थ का १ आढक होता है उसको भाजन और कंसपात्र भी कहते हैं, यह ६४ पल का होता है।।२५।।

द्रोण से लेकर द्रोणी पर्यंत का परिमाण

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणोऽर्मणः । उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ।।२६।। द्रोणाभ्यां शूर्पकुम्भौ च चतुःषष्टिःशरावकाः । शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृतिः ।।२७।।

अर्थ–चार आढ़कका १ द्रोण होता है, उसको कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट और राशि भी कहते हैं। दो द्रोण का शूर्प होता है, उसको कुम्भ भी कहते हैं। उस शूर्प के ६४ शराव होते हैं। एवं सूर्य की १ द्रोणी होती है, उसको वाह और गोणी कहते हैं।

खारी का परिमाण

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
चतुः सहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥२८॥

अर्थ-चार द्रोणी की १ खारी होती है, उसके ४०९६ पल होते हैं॥२८॥

भार और तुला का परिमाण

पलानां द्विसहस्रं च भारः एकः प्रकीर्तितः ।
तुला[41] पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥२९॥

अर्थ-२००० पल का १ भार होता है और १०० पल की १ तुला होती है, यह केवल मगध देश में ही नहीं, किन्तु सर्व देश में यही तोल का निश्चय जानना॥२९॥

अब सवमानों के ज्ञापनार्थ एक श्लोक करके मान कहते हैं-

माषटंकाक्षबिल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा ॥३०॥

अर्थ-मास से लेकर खारी पर्यंत एक से दूसरी तोल चौगुनी जाननी, जैसे ४ मासे का १ शाण, ४ शाण का एक कर्ष, ४ कर्ष का एक बिल्व, चार बिल्व की एक अंजली, ४ अञ्जली का एक प्रस्थ, ४ प्रस्थ का एक आढ़क, ४ जाढकी एक राशि, ४ राशि की एक गोणी, ४ गोणी की एक खारी इस प्रकार एक से दूसरी चौगुनी जाननी॥३०॥

अब गीली सूखी और दूध आदि पतली वस्तुओं का तोल कहते हैं-

गुञ्जादिमानमारभ्य यावत् स्यात् कुडव[42]स्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥३१॥
प्रस्थादिमानमारभ्यं[43] द्विगुणं तद् द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित् स्मृतम् ॥३२॥

अर्थ-जल आदि पतले पदार्थ और गीली औषध तथा सूखी औषध ये रत्ती से लेकर कुडव पर्यंत समान लेवे और जल आदि पतले पदार्थ तथा गीली औषध ये लेनी हों तो प्रस्थ से लेकर तुलापर्यंत इनका तोल सूखी औषध की अपेक्षा दुगुना लेवे तथा तुला से ऊपर द्वैगुण्य कहीं नहीं कहा, अतएव इनका मान सूखी औषधी के समान लेवे इस अभिप्राय को स्नेहपाक में प्रायः मानते हैं। तत्काल की लाई हुई औषध[44] को गीली कहते हैं। जो धूप में सुखाय लीनी हो अथवा बहुत दिन की धरी हुई औषध को शुष्क कहते हैं॥३१॥३२॥

कुडवपात्र बनाने की रीति

मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भाण्डं यच्चतुरङ्गुलम् ।
विस्तीर्णं च तथोक्तं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥३३॥

अर्थ-चार अंगुल लम्बा चार अंगुल चौड़ा तथा चार अंगुल ऊँचा ऐसे माटी के अथवा बांस के अथवा लोक (सोना-चांदी-ताँबा-जस्त-राँग-काँसा-शीसा और लोह) के आदिशब्द से चामके, अथवा सींग और दाँत के पात्र बनावे उसकी कुडव संज्ञा है। इसके द्वारा दूध-जल-तेल-घृत नापा जाता है॥३३॥

प्रथम औषधों के नाम से प्रयोगों का नामनिर्देश

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ।।३४।।

अर्थ–जिस प्रयोग में जो प्रथम औषध है उसी औषध के नाम करके इस प्रयोग को जानना। उदाहरण–जैसे क्षुद्रादि, रास्नादि, गुडूच्यादि क्वाथ इनमें प्रथम कटेरी, रास्ना और गिलोय है इसी कारण क्षुद्रादि काढा, रास्नादि काढा और गूडूच्यादि काढ़ा कहा जाता है, इसी प्रकार चन्दनादि तैल, कूष्माण्डपाक, हिंग्वष्टकचूर्ण आदि में भी जानना चाहिये।।३४।। इति मागधपरिभाषा।

अथ कलिंगपरिभाषा

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम् ।।
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत् ।।३५।।

अर्थ–अब मात्रा की स्थिति नहीं है यह कहते हैं, जैसे कि औषधों के सेवन का प्रमाण निश्चय करके करने में नहीं आता, इसी कारण काल, जठराग्नि, अवस्था, बल, प्रकृति, दोष और देश इनको वैद्य विचार करके अपनी बुद्धि के अनुसार मात्रा की कल्पना करें। तहां काल करके शीत, गरमी, वर्षा जानना, जठराग्नि के रोगी की मन्द, तीक्ष्ण, विषम, सम चतुर्विध अग्नि जानना। अवस्था तीन हैं आदि, मध्य और अन्त। बल तीन प्रकार का है हीन, मध्य और उत्तम। प्रकृति तीन प्रकार की है हीन, मध्यम और उत्तम। अथवा देश जाति शरीर आदि के भेद से प्रकृति के बहुत भेद हैं। दोष तीन प्रकार का है वात पित्त और कफ। देश भी दो प्रकार का है एक भूमिदेश और एक देहदेश, तहां भूदेश तीन प्रकार का है जैसे जांगल, अनूप और साधारण उसी प्रकार देह भी जांगलादि भेदों करके तीन ही प्रकार का है।।३५।।

भक्षणार्थ प्रथम कही हुई कलिंग परिभाषा को भी दिखलाते हैं–

यतो मन्दाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ ।
अतस्तु मात्रा तद्योग्या प्रोच्यते सुज्ञसंमता ।।३६।।

अर्थ–कलियुग के मनुष्य मन्दाग्नि, छोटी देहवाले और तुच्छ बल के होते हैं अतएव उनके उपयोगी तथा वैद्यों को मान्य ऐसी औषध का प्रमाण कहते हैं।।३६।।

कलिंगपरिभाषा का तोल

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः । यवद्वयेन गुञ्जा स्यात् त्रिगुञ्जो वल्ल उच्यते ।।३७।। माषो गुञ्जाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत् क्वचित् । स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टंक एव च । गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः ।।३८।। चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः । चतुः पलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः ।।३९।।

अर्थ–बारह सफेद सरसों का १ यव (जौ) दो यवकी १ गुञ्जा (रत्ती) तीन रत्ती का एक वल्ल, (कहीं दो रत्ती का भी वल्ल होता है) आठ रत्तीक, १ मासा, कहीं कहीं सात रत्ती का मासा होता है (यह तन्त्रान्तर का मत है। इसको विषकल्प में लेना चाहिये क्योंकि सर्वत्र अप्रसिद्ध

है) चार मासे का १ शाण होता है उसको निष्क और टंक भी कहते हैं, मासे का एक गद्याणक, दश मासे का एक कर्ष होता है, चार कर्ष का एक पल, उस पल के दश शाण होते हैं। चार पल का १ कुडव होता है और प्रस्थादिकों का तोल मागध परिभाषा के समान ही जानना परन्तु यह तोल इसीके अनुक्रम से लेना, मागधपरिभाषा का कर्ष और पल करके नहीं लेना चाहिये।।३७-३९।।

यद्यपि देशान्तरों में अनेक मान हैं तथापि मागध और कलिंगमान ये दो प्रसिद्ध हैं यह कहते हैं-

कालिङ्गं मागधं चेति द्विविधं मानमुच्यते ।
कालिङ्गान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो विदुः ।।४०।।

अर्थ-मान दो प्रकार का है एक कलिंग (अर्थात् उडिया देश में प्रसिद्ध होने से) और दूसरा मागध (मागध देश में प्रसिद्ध होने से) तहां कालिंग मान से मागधमान श्रेष है ऐसे मान के ज्ञाता वैद्य कहते हैं। मागधमान चरक का और कलिंगमान सुश्रुत का है।।४०।।

औषधों का युक्तायुक्तविचार

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ।
विना विडङ्गकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ।।४१।।

अर्थ-दशधा द्रव्यकल्पनादि सम्पूर्ण विषय में नवीन औषधि की योजना करनी चाहिये परन्तु वायविडंग, पीपर, गुड़, अन्न, घृत और शहद ये छः पदार्थ पुराने गुणकारी होते हैं, अतएव ये पुराने लेने चाहिये। घृत भोजन में तृप्ति के लिये सदा नवीन (ताजा) लेना और तिमिरादि की औषधों में पुराना लेना भावप्रकाश ग्रन्थ में लिखा है-''योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे'' इत्यादि, इसी प्रकार शहद भी बृहण कार्य में नया लेना और कर्षण में पुराना लेना। सुश्रुत में कहा है-''बृंहणाय मधुवनं नातिश्लेष्महरं परम् । मेदः श्लेष्मापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ।।'' विडंगादिकों का पुराणत्व १ वर्ष के बाद होता है।।४१।।

जो औषध सदैव गीली लेनी उनको कहते हैं-

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ।
अश्वगन्धा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी ।।
प्रयोक्तव्याः सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ।।४२।।

अर्थ-गिलोय, कूड़ा (कुरैया), अडूसा, पेठा, शतावर, असगन्ध, पीयावांसा सौंफ और प्रसारणी ये नौ औषध सर्वकाल में गीली लेनी चाहिये, परन्तु गीली जानके द्विगुणित न लेवे।।४२।।

शुष्कं नवीनं यद् द्रव्यं योज्यं सकलकर्मसु ।
आर्द्रं च द्विगुणं युञ्ज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ।।४३।।

साधारण औषध की योजना

अर्थ-पूर्वोक्त श्लोक की नौ औषधियों के बिना इतर औषध सम्पूर्ण कार्य में सूखी हुई नवीन लेनी चाहिये और गीली हो तो दूनी लेनी यह निश्चय सर्वत्र जानना।।४३।।

अनुक्तकालादिकों की योजना

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ।

भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात् पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम् ।।
द्रवेऽनुक्ते जलं ग्राह्यं तैलेऽनुक्ते तिलोद्भवम् ।।४४।।

अर्थ–जिस प्रयोग में काल नहीं कहा हो वहां पर प्रातःकाल लेना, जहां औषध का अङ्ग नहीं कहा हो वहाँ औषध की जड़ लेनी, जिस प्रयोग में औषध के भाग न कहे हों उस जगह सब समान भाग लेवे और जिस जगह पात्र न कहा हो, वहाँ मिट्टी का पात्र लेना चाहिये, जहाँ द्रव नहीं हो वहाँ जल लेना चाहिये, जहां तैल नहीं हो वहां तिली का तेल लेना।।४४।।

योग में पुनरुक्त द्रव्य का मान कहते हैं–

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन् यत् पुनरुच्यते ।
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ।।४५।।

अर्थ–जिस प्रयोग में एक औषध का नाम पर्याय करके दो बार कहा हो उसे आयुर्वेद रहस्यज्ञाता वैद्य दूना लेवे।।४५।।

चूर्णादिकों में कौनसा चन्दन लेवे

चूर्णस्नेहासवालेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ।
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ।।४६।।

अर्थ–चूर्ण (लवंगादि) घृत तेल (लाक्षादि) आसव (कुमार्यासवादि) लेह (च्यवनप्राशावलेहादि) इनमें प्रायः सफेद चन्दन लेना और काढ़े तथा लेप आदि में प्रायः लाल चन्दन लेना चाहिये, प्रायः शब्द से यह दिखाया कि कहीं (एलादिचूर्ण में भी) लाल चन्दन लेवे, क्योंकि व्याधिविदित है और काढे आदिमें सफेद चन्दन लेवे।।४६।।

अब सिद्ध की हुई औषधों के काल व्यतीत होने से गुणहीनत्व कहते हैं–

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ।
मासद्वयात् तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ।।४७।।
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात् परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकात् तथा ।।४८।।
ओषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात् परम् ।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ।।४९।।

अर्थ–वन से लायी हुई औषध एक वर्ष के पश्चात् तेज और गुण से रहित हो जाती है, तालीसादि चूर्ण दो महीने के पश्चात् हीनवीर्य हो जाते हैं अर्थात् कुछ २ गुणों से न्यून हो जाते हैं सर्वथा वीर्यरहित नहीं होते, क्योंकि लवणभास्करादि चूर्णो का प्रमाण अधिक कहा है वह अधिक काल तक सेवन के लिये ही कहा है, अन्यथा यह व्यर्थ हो जायगा और विजयादि गुटिका तथा खंडकादि अवलेह आदि बहुत काल रखने से भी अपने गुण को नहीं त्यागते परन्तु कुछ २ गुणरहित हो जाते हैं। और घृत तेल आदि १६ महीनों के उपरान्त गुणहीन होते हैं। कोई (चतुर्मासादिकास्तथा) ऐसा पाठ कहकर अर्थ करते हैं कि वर्षाकाल के चार महीने व्यतीत होने पर घृत तैल आदि हीनवीर्य होते हैं। लघुपाक हुई यह गेहूँ चना आदि औषधी १ वर्ष के अनन्तर निवीर्य होती है बहुत काल तक रहने से गुड़ अधिक गुणवान् होता है। एवम् आसव

(कुमार्यासवादि) सुवर्ण आदि धातु की भस्म और चन्द्रोदयादि रस वा रसायन ये जितने पुराने हो उतने ही अधिक गुणवाले होते हैं।।४७-४९।।

रोगों के उक्तानुक्त द्रव्यकथन

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत् त्यजेत् ।
अनुक्तमपि युक्तं यद्युज्यते तत्र तद्बुधैः ।।५०।।

अर्थ-व्याधि में चूर्ण कषायादिकों की योजना करने में जो औषधि दी जावे उस चूर्ण कषाय आदि में यदि एक दो ऐसी औषध जो व्याधि के विरुद्ध होय तो गणोक्त भी हो तथापि उस विरुद्ध औषध को वैद्य निकाल डाले और यदि कोई ऐसी औषध हो कि जो उस व्याधि को हितकारी है परन्तु चूर्ण काढे आदि में नहीं कही होय तो उसको वैद्य अपनी बुद्धि से मिलाय देवे।।५०।।

द्रव्यों के कालादि से गुणभेदकथन

आग्नेया विन्ध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ।।५१।।
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः ।
अन्येष्वपि प्ररोहंति बनेषूपवनेषु च ।।५२।।

अर्थ-विन्ध्याचल (आदिशब्द से मलयाचल, सह्याद्रि, पारियात्र) आदिकों की उत्पन्न होनेवाली औषधि अग्निगुणभूयिष्ठ अर्थात् उष्णवीर्य होती है और हिमालय पर्वत आदि की औषधी शीतवीर्य होती हैं। ये केवल पर्वत में ही नहीं, किंतु वन और उपवन (बगीचा) आदिमें होती हैं अतएव जैसी २ पृथ्वी में जैसी २ ऋतु (शरदी, गरमी, चातुर्मास्य) होती हैं उसीके अनुसार वीर्यवान् औषधी होती है।।५१।।५२।।

औषध लाने की विधि

गृह्लीयात् तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे ।
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ।
साधारणं धराद्रव्यं गृह्लीयादुत्तराश्रितम् ।।५३।।

अर्थ-औषधी लाने के निमित्त प्रातः काल स्वस्थ चित्त करके पवित्र होवे और उत्तम दिन (अर्थात् उत्तम तिथि, नक्षत्र, योग और लग्न में) सूर्य के सन्मुख मुख करके तथा सूर्य को प्रणाम कर और हृदय में श्रीशिव परमात्मा का ध्यानकर मौन में स्थित हो जांगल और अनूपरहित ऐसी साधारण पृथ्वी में उत्पन्न होनेवाली और उत्तरदिशा में स्थित जो औषधी हैं उनको ग्रहण करे। कोई कहता है कि उत्तराश्रित अर्थात् उत्तराभिमुख होकर औषध को उखाड़े, इस जगह 'गृह्लीयात्' यह पद दो बार आने से निश्चयार्थ ज्ञापन जानना।।५३।।

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजा ।
जन्तुवह्निहिमव्याप्ता नौषधी कार्यसाधिका ।।५४।।

अर्थ-सर्प आदिकी बँबई की, दुष्ट पृथ्वी की, जलप्राय स्थान की, शमशान की, ऊषर-(बंजड) पृथ्वी की, मार्ग (रास्ते) में उत्पन्न होनेवाली एवं जो कीड़ों की खायी हुई, अग्नि से जली हुई, सरदी की मारी हुई ऐसी औषधी कार्यसाधक नहीं होती, अतएव ऐसे स्थान की और बिगड़ी औषध नहीं लानी चाहिये। इस जगह हमारा कथन इतना ही है कि ये सम्पूर्ण औषध लाने की

आज्ञा वैद्य को है, यदि स्वयं वैद्य जावेगा तभी वल्मीकादि स्थान की और जन्तु, अग्नि, पाले आदि से दूषित औषधों की परीक्षा करेगा, नीच जङ्गली मनुष्य यह बात काह को देखेगा उसको तो कहीं से मिले ग्राहक को देकर अपने पैसे लेने से काम है। दूसरे शुभाशुभ दिन वह क्यों देखने लगेगा अतएव आजकल औषधी अपना गुण नहीं दिखाती। दूसरे यहां के वैद्य हकीम और डाक्टरों से कोई औषधी की परीक्षा के विषय में कुछ प्रश्न किया जावें तो वे केवल बछिया के बाबा ही निकलेंगे। कारण इसका भी वही है कि इन्होंने कभी परीक्षा न सीखी, न अपनी आँखों से देखी जो कुछ बाजार में जङ्गली आदमी दे जाते हैं और जो कुछ उसका नाम बता जाते हैं वही उनके वास्ते है, फिर औषध विपरीत गुण करे तो कौन आश्चर्य है, अतएव हमारे भारत-निवासी वैद्यों को इस परीक्षा में कटिबद्ध होना चाहिये, कि जिससे यह विद्या सर्वथा अस्त न हो॥५४॥

औषधि के ग्रहण करने का काल

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ।
विरेकवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ॥५५॥

अर्थ–शरद् ऋतु (आश्विन कार्तिक के महीने) में सम्पूर्ण औषधी रस से परिपूर्ण होती हैं, अतएव सर्व कार्य करने के अर्थ इन दोनों महीनों में औषध लेकर घर रखे तथा विरेक (जुल्लाब) और वमन (रद्द) के लिये ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ़ इन दो महीनों) में औषधि लेनी चाहिये। यद्यपि अखिल कार्य कहने से विरेक और वमन का बोध हो गया तथापि विशेषता सूचनार्थ पृथक् २ कहा है॥५५॥

द्रव्यों के ग्राह्य अङ्ग कहते हैं–

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ।
गृह्णीयात् सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ॥५६॥

अर्थ–जिन वृक्षों की बड़ी जड़ हो (जैसे–बड़, नीम, आम आदि) उनकी छाल लेनी चाहिये और जिन वनस्पतियों की छोटी जड़ हो (जैसे–कटेरी, धमासा, गोखरू आदि) उनके सर्व अङ्ग अर्थात् जड़–पत्ता–फूल और शाखा सब लेनी चाहिये। कोई कहता है कि बड़े वृक्षों की जड़ की छाल लेवे और छोटे वनस्पति की जड़मात्र लेनी चाहिये॥५६॥

अब औषधों का प्रसिद्ध अङ्गहरण कहते हैं–

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ।
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात् त्रिफलादितः ॥५७॥
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥५८॥

इति शार्ङ्गधरे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अर्थ–बड़ आदि शब्द से पाखर, आम, जामुन, अम्बाडे आदि की छाल लेनी, विजयसागर आदि शब्द से खैर, महुआ, बबूर आदि का सार लेना, तालीस आदि शब्द से पत्रज घीकुवार पान पत्ते लेने चाहिये, त्रिफला आदि शब्द करके सुपारी, कंकोल, मैनफल आदि के फल लेने चाहिये। धाय आदि शब्द करके सेवती, कुमोदनी, कमल आदि के पुष्प लेने चाहिये। थूहर और आदि शब्द करके आक, दुद्धि, मदार आदिका दूध लेना एवं चकार से नहीं कहे गये गोंद आदि जानना।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिकाया हिन्दीटीकायां प्रथमखण्डे परिभाषाऽध्यायः प्रथमः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः २

भैषज्यमभ्यवहरेत् प्रभाते प्रायशो बुधः ।
कषायांश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ।।१।।

अर्थ–प्रथमाध्याय में कह आये हैं कि "भैषज्याख्यानक तथा" अर्थात् इस शार्ङ्गधर के दूसरे अध्याय में भैषज्य (औषध) भक्षण का काल कहेंगे। अतएव उसको कहते हैं, वैद्य बहुधा प्रातःकाल में रोगी को औषध भक्षण करावे और कषाय (स्वरस, कल्क, काढा, फांट और हिम) ये विशेष करके प्रातःकाल में ही देवे "बुधः" इस पद के धरने से यह सूचना की, कि औषध के काल को विचार के वैद्य अपनी बुद्धि के अनुसार औषध देवे केवल प्रातःकाल ही नियम नहीं है।।१।।

अब अन्य कालों को वक्ष्यमाण प्रकार करके कहते हैं–

औषधभक्षण के पांच काल

ज्ञेयः पञ्चविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।।
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ।
सायन्तने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ।।२।।

अर्थ–मनुष्यों के औषधभक्षण विषय में पांच काल हैं। उनको कहते हैं, किंचित् सूर्योदय होने पर औषध लेना यह प्रथम काल तथा दिन में भोजन के समय औषधी लेना दूसरा काल तथा सायंकाल में भोजन के समय औषध लेना तृतीयकाल और वारंवार औषधी लेना चतुर्थकाल एवं रात्रि में औषध लेना वह पंचमकाल, इस प्रकार पांच काल जानना। तहां प्रात काल कषाय के सेवन में कहा, दूसरा काल जो भोजन के समय का है वह पांच प्रकार का है, जैसे भोजन के प्रथम लवण और अदरख का सेवन, भोजन में मिलायके हिंग्वष्टकादि चूर्ण; भोजन के मध्य में जैसे पानी आदि पीना, भोजनान्त में जैसे लौंग और हरीतक्यादिका सेवक और भोजन के आदि अन्त में जैसे अम्लपित्त रोग में धात्री अवलेह भोजन के आदि अन्त में दिया जाता है। तीसरा काल सायंकाल भोजन का समय है वह तीन प्रकार है, जैसे कि ग्रासग्रा कस पिछाड़ी और भोजन के अन्त में, बाकी के काल प्रसिद्ध हैं।।२।।

प्रथमकाल

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ।
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभाते नान्नमाहरेत् ।।
एवं स्यात् प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणं नृणाम् ।।३।।

अर्थ–पित्त और कफ के कुपित होने पर पित्त को विरेचन और कफ को वमन उसी प्रकार लेखन (दोषों को पतला करने के अर्थ) प्रातःकाल में निरन्तर औषध देवे तथा रोगी को प्रातःकाल भोजन न देवे। यदि दोष उत्कृष्ट होय तो अन्य समय भी देना हितकारी लिखा है। इस प्रकार औषध ग्रहण में मनुष्यों को प्रथम काल जानना।।३।।

(वक्तव्य श्लोक ३) विरेचन की औषधि निरन्न दी जाती है परन्तु वमन की औषधि निरन्न नहीं दी जाती यवागू पिलाकर दी जाती है देखो वमनविधि।

द्वितीयकाल

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते । अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥४॥ समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम् । दद्यात् भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥५॥ व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् । हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥६॥ एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्म्मणि ॥७॥

अर्थ–अपान कहिये गुदासंबंधी वायु उसके कुपित होने पर भोजनक किंचित् पूर्व औषध भक्षण करै। अरुचि होने पर अनेक प्रकार के अन्न तथा नाना प्रकार की रुचिकारी वस्तु में औषध मिलायके भोजन करैं तथा नाभि-सम्बन्धी समान वायु के कोप एवं अग्निमांद्य होने पर अग्निदीपनकर्ता औषध भोजन के मध्य में सेवन करै। सर्वदेहव्यापी व्यान वायु के कुपित होने पर भोजन के अन्त में औषध भक्षण करै। तथा हिचकी, आक्षेपक वायु एवं कंपवायु इनके कुपित होने पर भोजन के प्रथम और अन्त में औषध भक्षण करे इस प्रकार दूसरा काल कहा है॥४–७॥

तृतीयकाल

उदाने कुपिते वाते स्वरभङ्गादिकारिणि । ग्रासे ग्रासान्तरे देयं भैषज्यं सान्ध्यभोजने ॥८॥ प्राणे प्रदुष्टे सान्ध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते । औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ॥९॥

अर्थ–कंठसम्बन्धी उदान वायु के कुपित स्वरभङ्गादि कण्ठ का बैठ जाना वा गूङ्गा हो जाना अथवा (अन्य कण्ठ के रोग) होने से सायंकाल के भोजन के ग्रास (गस्सा) के साथ अथवा दो दो ग्रासों के बीच में औषध भक्षण करावे तथा हृदयस्थित प्राण वायु के कुपित होने पर बहुधा सायंकाल के भोजन के अन्त में औषध भक्षण करावे, इस प्रकार तीसरा काल जानना। कदाचित् कोई प्रश्न करै कि शार्ङ्गधर ने पवन के पांच भेद कहे इसी प्रकार कफ और पित्त के जो पांच २ भेद हैं वे क्यों नहीं कहे? तहां कहते हैं कि सब दोष, धातु, मलादिकों में वायु की प्रधानता है और वायु ही अन्य कफादिकों के प्रकोप का कारण है अतएव इसके प्रकोप करके पित्त कफ का प्रकोप होता है ऐसा जानना। जैसे कहा कि एक दोष कुपित हो सम्पूर्ण दोषों को कुपित करता है तथा सुश्रुत में लिखा है कि "अचिंत्यवीर्यवान्" दोषों का नियन्ता, सर्वरोगसमूहों का राजा ऐसा यह वायु "स्वयंभू" और "भगवान्" ऐसा कहा अतएव इसको प्रधानत्व होने से इसीके भेद कहे हैं अन्य कफादिकों के नहीं॥८॥९॥

चतुर्थकाल

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ।
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ॥१०॥

अर्थ–तृषा, वमन, हिचकी, श्वास तथा विषदोष ये रोग होने से बारम्बार अन्नसहित औषध भक्षण करना चाहिये। इस श्लोक में जो चकार है इससे यह सूचना की, कि, तृषादि रोगों में अन्नरहित भी औषध दे दे इस प्रकार चतुर्थकाल कहा॥१०॥

पंचमकाल

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ।। पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि। इति पञ्चमकालःस्यात् प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ।।११।।

अर्थ-जत्रु (हसली) के ऊपर भाग के (कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग तथा नासिक रोग इत्यादि) रोगों के विषय में तथा बढ़े हुये वातादि दोषों के घटाने से विषय में और अतिक्षीण दोषों के बढ़ाने के विषय में रात्रि के समय पाचनरूप तथा शमनरूप औषध अन्नरहित भक्षण करावे, (तहां कोई रात्रि के कहनें से सब रात्रिभर औषध देवे ऐसा कहते हैं, परन्तु व्यवहार में तो रात्रि के प्रथम प्रहर में औषध देना ठीक है) इस प्रकार पञ्चकाल जानना।।११।।

द्रव्ये रसो गुणो वीर्य विपाकः शक्तिरेव च ।
संवेदनक्रमादेताः पञ्चावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ।।१२।।

अर्थ-द्रव्य में रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पांच अवस्था हैं इनका ज्ञान क्रम करके जानना। तहां मधुरादि भेद से रस छः प्रकार का है। गुरु मन्दादि के भेद से गुण २० प्रकार का है। शीत उष्ण के भेद से वीर्य दो प्रकार का है। कोई शीत, उष्ण, रुक्ष विशदादि भेद करके अष्टविध वीर्य को मानते हैं। विपाक ३ प्रकार है। कोई लघु गुरु के भेद से विपाक दो ही प्रकार का मानते हैं। और द्रव्यों की शक्ति अचिन्त्य है अतएव द्रव्य प्रधान है, जैसे किसी ने कहा है कि-"विना[५४] वीर्य के पाक नहीं, और रस के विना वीर्य नहीं, द्रव्य के विना रस नहीं, अतएव द्रव्य को प्रधानत्व है" द्रव्य के कहने से सामान्यतः जल, छाल, सार, गोंद आदि जानना। जैसे लिखा है "जड़[५५], छाल, सार, गोंद, नाल, स्वरस, पल्लव, दूध, दूधवाले फल, फूल, भस्म तेल, कांटे, पत्र, शुंग (कोमल पत्ते की कली), कन्द प्ररोह और उद्भिज्ज आदि" तथा जंग[५६] में पार्थिव[५७] सब द्रव्य शब्द करके ग्रहण किये जाते हैं।।१२।।

रस का स्वरूप

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ।।
इत्येते षड् रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ।।१३।।

अर्थ-मधुर[५८], अम्ल[५९], क्षार[६०], चरपरा[६१], कडुआ[६२], और कषैला[६३] ये छः प्रकार के रस नाना द्रव्य के आश्रय करके रहते हैं ऐसे जानना।।१३।।

रसों का उत्पत्तिक्रम

धराऽम्बुक्ष्माऽनलजज्वलनाकाशमारुतैः ।
वाय्वग्निक्ष्मानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ।।१४।।

अर्थ-पृथ्वी और जल से मधुर (मीठा) रस उत्पन्न हुआ है। पृथ्वी और अग्नि से अम्ल (खट्टा) रस, जल और अग्नि से क्षार रस, आकाश और वायु से तीक्ष्ण रस, वायु और अग्नि से तिक्त रस, एवं पृथ्वी और वायु से कषाय (कषैला) रस उत्पन्न हुआ है, इस प्रकार दो दो भूतों करके एक एक रस उत्पन्न होता है। इस प्रकार छः रसों की उत्पत्ति जाननी।।१४।।

गुणों के स्वरूप

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात् ।।१५।।
धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ।
एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः ।।१६।।

अर्थ–पृथ्वी का भारी गुण, जल का स्निग्ध (चिकना) गुण, अग्नि का तीक्ष्ण गुण, वायु का रूक्ष गुण और आकाश का हलका गुण इस प्रकार पांच गुण क्रम करके पांच महाभूतों के जानने। तथा इन्हीं गुणों में दूसरे सांद्र, मृदु, श्लक्ष्ण इत्यादि गुण रहते हैं उनको अनुमान से जानना, कोई सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये तीन ही गुण कहते हैं, इसका विस्तार सुश्रुत ग्रन्थ में देखिये।।१५।।१६।।

वीर्य का स्वरूप

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ।
तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये ।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ।।१७।।

अर्थ–वीर्य बहुधा द्रव्य के आश्रय रहता है, वह दो प्रकार का है, एक शीतल और दूसरा उष्ण इसीसे त्रिलोकी में वीर्य अग्न्यात्मक और सोमात्मक दीखते हैं तथा इन शीतोष्णवीर्य अन्तर्गत अन्य वीर्य के (स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु, तीक्ष्ण इत्यादि) रहते हैं।।१७।।

विपाक में स्वरूप

मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः ।
कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात् प्रायशः कटुः ।
मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते ।
कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ।।१८।।

अर्थ–मिष्टरस और क्षाररस इनका मधुर पाक होता है, खट्टे रस का खट्टा पाक होता है। कषैले, चरपरे और कडुए रसों का पाक बहुधा तीक्ष्ण होता है, अतएव उन तीन पाकों करके जो तीन कर्म होते हैं, उनको कहते हैं—मधुर पाक करके कफ होता है; अम्ल पाक करके पित्त होता है, और तीक्ष्ण पाक करके वायु होता है, इस प्रकार ये तीन दोष उत्पन्न होते हैं।।१८।।

प्रभाव के स्वरूप

प्रभावस्तु यथा धात्री लकुचस्य रसादिभिः । समाऽपि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् । क्वचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः । ज्वरं हन्ति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ।।१९।।

अर्थ–आंवले रस गुण वीर्य विपाकादि गुण करके लकुच के समान होने पर भी अपने प्रभाव करके वातादि तीनों दोषों का नाश करते हैं इस शक्ति को प्रभाव कहते हैं। कहीं एक ही द्रव्य ऐसा है कि अपने प्रभाव से शीघ्र ही रोग को दूर करता है, जैसे सहदेई की जड़ को मस्तक में बांधने से ज्वर दूर होता है इस प्रकार प्रभाव का गुण जानना।।१९।।

रसादिकों की उत्कृष्टता

क्वचिद् रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।
कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ।।२०।।

अर्थ–कहीं रस, कहीं गुण, कहीं वीर्य, कही विपाक, कहीं शक्ति ये द्रव्य के आश्रय करके रहने से अपने अपने कर्म करते हैं, उन कर्मों को उदाहरण करके दिखाते हैं। प्रथम रस के उदाहरण–जैसे

गिलोय का रस कटु और उष्ण होने पर पित्त को शमन करता है, कारण उष्ण और कटु रस होने से गुण का उदाहरण जैसे तीक्ष्ण गुणवाली भी मूली कफ की वृद्धि करती है, कारण इसका यह है कि यह स्निग्ध गुणवाली है। वीर्य का उदाहरण जैसे बड़ा पंचमूल कषैला और कडुवेसा होने पर भी वादी को शमन करता है, कारण यह उष्णवीर्य है। विपाक का उदाहरण जैसे सोंठ तीक्ष्ण होने पर भी वायु को शमन करती है कारण यह कि इसका मधुर पाक है। शक्ति का उदाहरण जो कर्म रस, गुण, वीर्य विपाक करके नहीं होते वे कर्मशक्ति कहिये प्रभाव करके होते हैं, जैसे—खैर कुष्ठ का नाश करता है, कारण इसका यह है कि इसकी विलक्षण शक्ति है। इसी कारण औषधों का प्रभाव अचिंत्य है। कदाचित् कोई प्रश्न करे कि गुण वीर्य में क्या भेद है, क्योंकि जो गुण हरडे में है वही आमले में है? तहां कहते हैं कि आमला शीतलवीर्य है और हरडे उष्णवीर्य है अतएव वीर्य का भेद होने से दोनों पृथक् २ कहे हैं।।२०।।

इति द्रव्यादिकथनम्

वातादिदोषों का सञ्चय प्रकोप और उपशम

चयकोपसमा यस्मिन् दोषाणां संभवंति हि ।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात् ।।२१।।

अर्थ—जिन छः ऋतुओं में दोषों की वृद्धि, प्रकोप और उपशम का सम्भव होता है। वे ऋतु सूर्य के बारह राशियों में संक्रमण करने से होती है।।२१।।

ऋतुओं के नाम

ग्रीष्मो मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः ।
सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत् ।।
धनुर्ग्राहौ च हेमन्तौ वसंतः कुम्भमीनयोः ।।२२।।

अर्थ—मेषसंक्रांति से लेकर वृष संक्रान्ति की समाप्ति पर्यन्त ग्रीष्म ऋतु होती है। इसी प्रकार मिथुन संक्रांति से लेकर कर्क संक्रांति पर्यन्त प्रावृट् ऋतु, सिंह और कन्या की संक्रांति को वर्षा ऋतु, तुला और वृश्चिक संक्रांति को शरद् ऋतु, धन संक्रांति और मकर संक्रांति को हेमन्त ऋतु, एवं कुम्भ की संक्रांति से लेकर मीन की संक्रांति के समाप्ति पर्यन्त वसन्त ऋतु कहलाती है। इस प्रकार दो राशियों करके दो दो महीनों की एक ऋतु होती है ऐसे छः ऋतु जानना। ये दोषों के सञ्चय होने में ग्राह्य हैं, अयनविषय में ग्राह्य नहीं है जैसे सुश्रुत में लिखा है।।२२।।

ऋतुभेद करके वातादि दोषों का सञ्चय, कोप और शमन

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति । वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति । हेमन्ते चीयते श्लेष्मा वसंते च प्रकुप्यति । प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः । शरत्काले वसंते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः।।२३।।

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु में वायु का सञ्चय होकर प्रावृट् काल में प्रकोप होता है, वर्षा ऋतु में पित्त का संचय होकर शरद ऋतु में प्रकोप होता है एवं हेमन्त ऋतु में कफ का सञ्चय होकर वसन्त ऋतु में कफ कुपित होता है। वायु शरद् काल में अपने आपही शान्त हो जाता है और पित्त वसन्त ऋतु में स्वयं शान्त हो जाता है तथा कफ प्रावृट् काल में अपने आप शान्त हो जाता है।।२३।।

दोषसंचयप्रकोपशमनचक्रम्

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्म ऋतु वैशाख–ज्येष्ठ मेष–वृष	वर्षा ऋतु भाद्रपद–आश्विन सिंह–कन्या	हेमन्त ऋतु पौष–माघ धन–मकर
कोप	प्रावृट् ऋतु मिथुन–कर्क आषाढ़ श्रावण	शरद् ऋतु तुला–वृश्चिक कार्तिक–मार्गशिर	वसन्त ऋतु कुम्भ–मीन फाल्गुन–चैत्र
शमन	शरद्ऋतु तुला–वृश्चिक कार्तिक–मार्गशिर	वसंत ऋतु कुम्भ–मीन फाल्गुन–चैत्र	प्रावृट् ऋतु मिथुन–कर्क आषाढ़–श्रावण

अर्थ–वैद्यकशास्त्र में तीन दोषों में वायु को प्रधानता दी है अतएव ग्रीष्म ऋतु से आरम्भकर अन्त में वसन्त ऋतु कही है। गोदाबरी के दक्षिणभाग में चार महीने निरन्तर वर्षा होती है इसीसे चातुर्मास्य में प्रावृट् और वर्षा ये दो ऋतु कल्पना की गई। हेमन्त और शिशिर इन दोनों ऋतुओं के गुण दोष समान हैं अतएव शिशिरऋतु का परित्याग करके इस जगह हेमंतमात्र धरा है। यह कल्पना त्रिदोषों के संचय प्रकोप के अनुभव करके की है, देव पितृ कार्य में यह ऋतु कल्पना ग्रहण नहीं करना, उसमें चैत्र वैशाख वसंत ऋतु इत्यादिक जो धर्मशास्त्र में कही है वही संकल्प काल में कहनी चाहिये।

यहां पर वातादिकों के सञ्चय और कोप का कारण सुश्रुत से लिखते हैं कि–इस ग्रीष्म ऋतु में औषधि (गेहूं चनाआदि) साररहित, रूक्ष और अत्यन्त हलकी होती है तथा इसी प्रकार के रूक्षादि गुणयुक्त जल होते हैं, ऐसे अन्न जल के सेवन करने से सूर्य के तेज करके शोषित हैं देह जिन्होंकी ऐसे मनुष्यों के रूक्ष लघु और विशद गुणवान् होने के कारण वायु का सञ्चय होता है। वही वात का संचय प्रावृट् ऋतु में अत्यन्त जल में भीगी पृथ्वी में भीगी हुई देहवाले प्राणियों के शीत वात वर्षा करके प्रेरित वातजन्य व्याधियों को उत्पन्न करती है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि शीतगुणवायु का ग्रीष्मऋतु में क्योंकर संचय होता है? तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण वात के गुणों में रौक्ष्यगुण की प्रधानता है अतएव औषधियों के अति रूख होने से रूक्ष वायु का ग्रीष्म ऋतु में भी संचय होता है।

जिनको कफ पित्त के संचय प्रकोप का कारण जानना होय वे बृहन्निघण्टुरत्नाकरके "चर्याचन्द्रोदय" में देख लेवें इस जगह ग्रन्थ बढने के भय से नहीं लिखा।।२३।।

किसी २ पुस्तक में यह श्लोक अधिक है–

कार्तिकस्य दिनान्यष्टावाष्टावग्रयणस्य च ।
यमदंष्ट्रा समाख्याता योऽल्पाहारः स जीवति ।।२४।।

अर्थ-कार्तिक के अन्त के आठ दिन और मार्गशिर के आदि के आठ दिन "यमदंष्ट्रसंज्ञक" हैं इनमें थोडा भोजन करनेवाला जीवित रहता है।

कोई प्रश्न करै कि जिस ऋतु में दोषों का संचय होता है उसी ऋतु में कोप क्यों नहीं होता? तहां कहते हैं कि वायु का ग्रीष्म ऋतु में संचय होता है, पर इसमें ऋतु उष्ण होने के कारण वात का कोप नही होता। कोई दिन रात्रि में ही छः ऋतु के धर्म होते हैं ऐसा कहते हैं। जैसे दिन के पूर्वभाग में वसन्त के, मध्याह्न में ग्रीष्म के, अपराह्न में प्रावृट् के, प्रदोष में वर्षा के, अर्धरात्रि में शरद् के और दोघडी के तडके हेमन्त ऋतु के लक्षण होते हैं।।२४।।

अब दोषों के अकाल में भी चयादि निमित्तकारण हैं—

चयकोपशमा दोषा विहाराहारसेवनैः ।
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ।।२५।।

अर्थ-वातादि दोषों के जो गुण हैं उन गुणों के समान[६६] हैं गुण जिन्होंके ऐसे आहार और विहार इनके सेवन करके वातादि[६७] दोषों का संचय प्रकोप और उपशम होता है और वातादि दोषों के गुणों के विपरीत[६८] गुणकर्ता ऐसे विहार और गुरु स्निग्धादि पदार्थ इनके सेवन करके अकाल में वातादि दोषों का नाश होता है।।२५।।

वायु का प्रकोप तथा शमन

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा । प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिन्तारात्रिजागरैः । अविघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्नं धातुसंक्षयात् । वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ।।२६।।

अर्थ-लघु[६९] आहार तथा रूक्ष[७०] आहार एवं मित[७१] आहार इनके सेवन करके तथा अति शीतकाल, अतिशीत पदार्थों के सेवन, अत्यन्त परिश्रम करना, प्रदोषकाल में काम[७२], धन पुत्रादि के वियोगजनित दुःख, भय, चिन्ता, रात्रि में जागरण, शस्त्र, लकडी आदि की चोट लगना, जल में अत्यन्त बैठा रहना तथा आहार का पाक होना एवं धातु का क्षीण[७३] होना इत्यादिक कारणों से वायु का कोप होता है और इतने कहे हुए कारणों के प्रत्यनीक (विरुद्ध कहिये उष्ण तथा स्निग्धादि) पदार्थों के सेवन करने से वायु शान्त होता है।।२६।।

पित्तकोप और शमन

विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात् । मध्याह्ने क्षुत्तृषा-रोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके । पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनी-कैश्च शाम्यति ।।२७।।

अर्थ-दाहकारी[७४], तीक्ष्ण[७५], खट्टे, उष्ण पदार्थों के सेवन करने से, अत्यन्त अग्नि के तापने से दो प्रहर के समय भूख और प्यास के रोकने से, अर्द्धरात्रि के समय अन्न के परिपाक होते समय इत्यादि कारणों करके पित्त का प्रकोप होता है। इन उक्त कारणों के विरोधी मधुर, शीतल आदि पदार्थों के सेवन करने से पित्त का शमन होता है।।२७।।

कफ का कोप और शमन

मधुरस्निग्धसीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया । मंदेऽग्नौ च प्रभाते च

भुक्तमात्रे तथा श्रमात् ॥२८॥ श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥२९॥

अर्थ–मधुर, स्निग्ध शीतल तथा आदिशब्द से भरी, श्लक्ष्णदि पदार्थों के सेवन करने से, दिन में निद्रा लेने से, मन्दाग्नि में अधिक भोजन करने से, प्रातःकाल में भोजन करने से, देह को परिश्रम न देने से अर्थात् बैठे रहने से इत्यादि कारणों से कफ का प्रकोप होता है तथा इन कारणों के विरुद्ध कहिये उष्ण तथा रूक्षादि पदार्थों के सेवन करने से कफ का शमन होता है॥२८॥२९॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-
हिन्दीटीकायां भैषज्याख्यान नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः ३

प्रथम लिख आये कि ''नाडीपरीक्षादिविधिः'' अतएव भैषज्याख्यान के अनन्तर नाड़ी परीक्षा लिखते हैं–

नाड़ीपरीक्षा

करस्यागुंष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी ।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥१॥

अर्थ–जीव की साक्षिणी ऐसी धमनी नाड़ी हाथ के अंगूठे की जड़ में है, उसकी चेष्टा करके शरीर के सुखदुःख को पंडित जानें॥१॥

दोषों के निजस्वरूप की चेष्टा को कहते हैं–

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् । कुलिङ्ग-काकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः । हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ॥२॥

अर्थ–वादी के कोप से नाड़ी जोंक और सर्प की चाल के समान गमन करती है, पित्त के कोप से नाड़ी कुलिंग (घर का चिड़ा) कौआ और मेंडक इनकी गति से समान चलती है एवं कफ के कोप से नाडी हंस और कबूतर की चाल के सदृश चलती है॥२॥

सन्निपात द्विदोषकी नाड़ी

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥ कदाचिन्मन्दगमना कदाचिद्वगवाहिनी ॥३॥ द्विदोषकोपतो ज्ञेया हन्ति च स्थानविच्युता ॥

अर्थ–सन्निपात में नाड़ी लवाँ, तीतर और बटेर की सी चाल चलती है। दो दोषों के कोप से नाड़ी धीरे धीरे चलकर तत्काल जल्दी जल्दी चलने लगती है तथा अपने स्थान से अन्यत्र निजगति से चलती है जैसे पित्त के स्थान में चक्रगति से चले तो वातपित्त जानना इत्यादि। वर्तिक पक्षी को कोई गरुड़ भी कहते हैं॥३॥

असाध्यनाडी के लक्षण

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ॥४॥
अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हन्त्यसंशयम् ।

अर्थ-जो नाडी अपने स्थान को त्याग दे अर्थात् उस स्थान से आगे पीछे चलने लगे और जो ठहर ठहर के चले इन दोनों प्रकार की नाडी रोगियों के प्राणों का नाश करती है। नाडी अत्यन्त क्षीण हो गई हो और अत्यन्त शीतल हो गई वह निश्चय प्राणों को हरण करती है। चकार से जो नाडी कुटिल और ऊँची नीची चले उस नाडी को भी प्राणहरण करनेवाली जानो॥४॥

ज्वरादि के नाडी के लक्षण

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ॥५॥ कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥ मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मन्दतरा भवेत् ॥६॥ असृक्पूर्णा भवेत् कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥

अर्थ-सामान्य ज्वर के कोप में नाड़ी गरम और जल्दी जल्दी चलती है स्त्री आदि की इच्छा होने पर उनके न मिलने से तथा क्रोध से नाड़ी बहुत जल्दी चलती है एवं चिन्ता (सोच-विचार) और भय से नाड़ी क्षीण होती है। कोई "चिन्ताभयश्रमात्" ऐसा पाठ कहते हैं। तहां श्रम कहिये म्लानि से नाडी क्षीण होती हैं, मंदाग्नि और धातुक्षीणवाले मनुष्यों की नाड़ी अत्यन्त मन्द होती है तथा रुधिर के कोप से अर्थात् रुधिरपूरित नाडी कुछ गरम और भारी होती है। कोई "कोष्णा की जगह सोष्णा" ऐसा पाठ कहते हैं। आमयुक्त नाडी अत्यन्त भारी होती है। जठराग्नि के दुर्बल होने से जो विना पका हुआ रस शेष रहता है उसकी आमसंज्ञा है। अथवा आम करके इस जगह आमाजीर्ण जानना॥५॥६॥

उत्तमप्रकृति के लक्षण

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती भवेत् ॥७॥ सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता। चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा ॥८॥

अर्थ-जिस पुरुष की जठराग्नि प्रदीप्त होती है उसकी नाड़ी स्थिर और बलवती होती है, भूखे मनुष्य की नाड़ी चञ्चल होती है, और भोजन कर चुका हो उसकी नाड़ी स्थिर होती है। इति नाडीपरीक्षा ॥७॥८॥

अब प्रथम लिख आये हैं, कि आदि शब्द से दूत स्वप्नादिक जानने अतएव दूत के लक्षणों को कहते हैं-

दूतपरीक्षा

दूताः स्वजातयो व्यङ्गाः पटवो निर्मलाम्बराः। सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः ॥९॥ सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः। भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे ॥१०॥

अर्थ-वैद्य के बुलाने को अथवा प्रश्न करने के विषय में दूत कैसा होय सो कहते हैं कि-जो बुलाने को जाय वह उस रोगी की जाति का हो हाथ पैर आदि से हीन न हो, सर्व कर्म में कुशल हो, सफेद वस्त्रों को धारण करता हो और सुखी तथा उत्तम घोड़े और बैलपर बैठा हुआ सफेद पुष्प और रसभरे फल करके युक्त तथा उत्तम कुल का और उत्तम चेष्टा का करनेवाला दूत होना

चाहिये। इस श्लोक में जो चकार है इससे उत्तम दर्शन और उत्तम वेष हो तथा संजीव कहिये नासिका की पवन जिधर को बह रही हो उधर को बैठनेवाला, अथवा उस दिशा में आनेवाला। तथा समय पर वैद्य को मिलनेवाला इस प्रकार का दूत वैद्य को घर रोगी के लिये उत्तम तिथि नक्षत्र में आया हुआ रोगी को कल्याणकारी जानना। कोई "स्वजातयः" इस जगह "सजातयः" ऐसा पाठ कहते हैं॥९॥१०॥

दूत के शकुन

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ।
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम् ॥११॥

अर्थ–जिस समय दूत वैद्य के बुलाने को जाय उस समय रस्ते में भेरी मृदंगादिक सौम्य शकुन होय तो रोगी को शुभदयक नहीं होते, अगर तैल कुलथी इत्यादिक प्रदीप्त (अशुभ) शकुन हों तो शुभदायक हैं, अर्थात् अशुभ शकुन शुभ हैं और शुभ शकुन अशुभ होते हैं ऐसा ज्योतिषशास्त्र में लिखा है॥११॥

वैद्य के शकुन

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ।
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥१२॥

अर्थ–रोगी को औषध करने को जानेवाले वैद्य को मार्ग में सौम्य शकुन शुभदायक हैं और दीप्त शकुन अच्छे नहीं॥१२॥

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ।
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेन्द्रियः ॥१३॥

अर्थ–जिस रोगी की मलप्रकृति पलटी न हो तथा देह का वर्ण पलटा न हो, और सत्त्वगुणी वैद्य का आज्ञाकारी तथा इन्द्रियों का जीतनेवाला ऐसा रोगी होय तो उसकी वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् औषधि देवे॥१३॥

तहां दुष्ट स्वप्न

स्वप्नेषु नग्नान् मुण्डांश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान् । व्यङ्गांश्च विकृतान् कृष्णान् सपाशान् सायुधानपि ॥१४॥ बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान् । महिषोष्ट्रविरारूढान् स्त्रीपुंसान् यस्तु पश्यति । स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ॥१५॥

अर्थ–स्वप्न में नंगे, संन्यासी अथवा साई इत्यादि मुण्डे हुए, लाल, काले वस्त्रों को पहने हुए नाक कान कटे हुए, पागुरे, कुबड़े, खंजे, काले हाथों में फांस, तलवार, भाला, बरछी इत्यादि धारण किये हुए, बांधते मारते हुए, दक्षिण दिशा में स्थित भैंसा, ऊँट, गधा इन पर चढ़े हुए पुरुष किंवा स्त्रियों को देखे तो रोगरहित मनुष्य रोगी होवे और मनुष्य देखे तो मरण को प्राप्त हो॥१४॥१५॥

अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते । श्वापदैर्हन्यत योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥१६॥ यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत् ॥ तैलं सुरां पिबेत् वापि लोहं वा लभते

तिलान् ।।१७।। पक्वान्न लभतेऽश्नाति विशेत् कूपरसातलम् ।
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पञ्चताम् ।।१८।।

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्न में अपने को पर्वत अथवा वृक्ष इत्यादि उच्चस्थान से गिरता हुआ देखे तथा जल में डूब जावे, अग्नि में गिर जावे, कुत्ते ने काटा हो अथवा अपने कुटुंब के नाश करके पीड़ित हो, मछली आदि जिसको निगल जावें (आदि शब्द से मगर, सूंस फौट आदि निगल जावें) स्वप्न में नेत्र जाते रहें, जलता दीपक बुझ जावे, तेल सुरा को पीवे, लोह (सुवर्ण, तांबा, रांगा, शीशा, लोहा आदि) वा ग्रहण से कपास, खल, लवण आदि को प्राप्त हो और तिल मिले एवं पक्कान्न (पूड़ी, कचौड़ी, लड्डू) प्राप्त हों अथवा पक्वान्न का भोजन करे (तथा माता के उदर में अथवा माता की गोद में माता के साथ शयन करे) जो कुएँ में अथवा पाताल में प्रवेश करे तो रोगरहित मनुष्य रोगी हो और रोगी मनुष्य मरे।।१६-१८।।

दुःस्वप्न का परिहार

दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रूयान्न कस्यचित् । स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानथ ।।१९।। पठेत् स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत् । कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात् परिमुच्यते ।।२०।।

अर्थ–पूर्वोक्त कहे हुए (नग्नमुंडितादिक) खोटे स्वप्नों को देखकर किसी से न कहे, प्रातःकाल उठ स्नान कर काले तिल और सुवर्ण का दान करे और दुष्टस्वप्ननाशक (विष्णुसहस्रनाम गजेन्द्रमोक्षादि) देवस्तोत्रों को पाठ करे। इस प्रकार दिन में कृत्य कर रात्रि में देवमंदिर में रहकर जागरण करे। इस प्रकार तीन दिन करने से वह मनुष्य दुष्टस्वप्न (खोटे सपने) के दोष से छूट जाता है।।१९।।२०।।

अथ शुभ स्वप्न

स्वप्नेषु यः सुरान् भूपान् जीवनः सुहृदो द्विजान् ।
गोसामद्धाग्नितीर्थानि पश्येत् सुखमवाप्नुयात् ।।२१।।

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्न में इन्द्रादिक देवता, राजा महाराजा, जीवते हुए मित्र कुटुम्ब के लोग और ब्राह्मण, गौ, देदीप्यमान अग्नि, मथुरा, प्रयागादि तीर्थ इत्यादिकों को देखे अथवा तीर्थ कहिये गुरु आचार्य आदि को देखे तो सुख को प्राप्त हो।।२१।।

तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि ।
आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान् सुखी भवेत् ।।२२।।

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्न में कीच के पानियों को (आदिशब्द से नदी, नद, समुद्र को) तरे अर्थात् पार होय तथा शत्रुओं को जीत के आवे और सफेद घर, बैल, पर्वत और हाथी घोड़ा इन पर आपको चढ़ा हुआ देखे तो उसको सुख की प्राप्ति हो।।२२।।

शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसमत्स्यफलानि च ।
प्राप्यातुरः सुखी भूयात् स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ।।२३।।

अर्थ–जो मनुष्य सफेद पुष्प, सफेद वस्त्र, कच्चा मांस, मछली और आम्र आदि फलों को स्वप्न में देखे वह रोगी रोगरहित हो और रोगहीन देखे तो उसको धन की प्राप्ति हो।।२३।।

अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिम् ।
आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्यात्पये विदुः ॥२४॥

अर्थ–जो मनुष्य स्वप्न में अगम्या स्त्री (रजस्वला, बहिन, बेठी, गुरुपत्नी) आदि से गमन करे, अथवा अगम्य स्थान में जाय तथा विष्ठा से अपनी देह लिपी हुई देखे तथा आपको अथवा अन्य को रुदन करता अथवा मरा हुआ देखे तथा कच्चे मांस को भक्षण करता देखे तो रोगयुक्त निरोगी हो और अरोगी मनुष्य को धन प्राप्त होवे॥२४॥

जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत् ।
रोगी स भूयादारोग्यी स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥२५॥

अर्थ–जिस मनुष्य को सपने में जोक, भँवरी, सर्प और मक्खी काटैं, वा शब्द से बरैं, ततैया मच्छर आदि डसें तो रोगी रोगरहित हो और स्वस्थ मनुष्य को धन की प्राप्ति होवे॥२५॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकायां
हिन्दीटीकायां नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ४

प्रथम यह लिख आये हैं कि "ततो दीपनपाचनम्" अतएव दीपनपाचनाध्याय को कहते हैं–

दीपनपाचन औषध

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद् यथा निशि । पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम् । नागकेशरवद् विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥१॥

अर्थ–जो औषध आम को न पचावे और अग्नि को प्रदीप्त करे उसको दीपनसंज्ञक जानना। जैसे सौंफ[१०८] और जों औषध आम[१०९] को पचावे और अग्नि को प्रदीप्त न करे उसको 'पाचन' संज्ञक कहते हैं जैसे नागकेसर[११०] और जो अग्नि को प्रदीप्त करे और आम को भी पचावे उस औषध को "दीपनपाचन" कहते हैं- जैसे चित्रक[१११] ॥१॥

संमशन औषध

न शोधयति न द्वेष्टि समान् दोषांस्तथोद्धतान् ।
समीकरोति विषमान् शमनं तद यथाऽमृता ॥२॥

अर्थ–जो औषध वातादिदोष समान हों उनको बिगाड़े नहीं और शोधन करे तथा बिगड़े हुए दोषों में मिलाकर समान दशा में प्राप्त करे तात्पर्य यह है कि जो कुछ इस प्राणी ने खाया पिया है उनको विना निकाले अर्थात् न वमन करावे न दस्त करावे किंतु जो दोष हो उसमें मिलकर उसी जगह उसको शमन कर देवे उसको "शमन' संज्ञक कहते हैं। इस जगह दोष शब्द दोषों में और उन दोषों के कार्य में भी कार्य कारण के उपचार से लेना चाहिये। उदाहरण–जैसे गिलोय[११२] ॥२॥

अनुलोमन औषध

कृत्वा पाकं मलानां यद् भित्त्वा बन्धमधो नयेत् ।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ।।३।।

अर्थ–जो औषध मल कहिये वातादि दोषों के पाक अर्थात् कोप को शांत करके परस्पर बद्ध अथवा अबद्धों को पृथक् पृथक् कर नीचे को गिरावे, अथवा वात मूत्र पुरीषादिकों का बंध अर्थात् बद्ध कोष्ठको को स्वच्छ करके मलादिकों को अधोभाग में प्राप्त कर गुदा द्वारा निकाले उस औषध को "अनुलोमन" जानना। उदाहरण–जैसे हरड़े।।३।।

स्रंसन औषध

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम् ।
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात् कृतमालकः ।।४।।

अर्थ–पश्चात् पाक होने योग्य जो वातादिक[११३] दोष उनके कोष्ठाश्रित[११४] होने से जो औषध उनको विना ही पाक किये नीचे के भाग में लाकर गुदा के द्वारा निकाले उसको 'स्रंसन' संज्ञक औषध कहते हैं। उदाहरण–जैसे अमलतास का गूदा।।४।।

भेदन औषध

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिण्डितं मलैः ।
भित्त्वाऽधः पातयति तद् भेदनं कटुकी यथा ।।५।।

अर्थ–जो औषध वातादिदोषों करके बँधे हुए[११५] अथवा विना बंधे गांठ के समान मलमूत्रादिकों[११६] को तोड़ फोड़कर नीचे के भाग में लायके गुदा के द्वारा निकाले उसको "भेदन" संज्ञक कहते हैं। जैसे कुटकी।।५।।

रेचन औषध

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता तथा ।।६।।

अर्थ–जो औषध पेट के अन्नादिकों का उत्तम पाक होने पर अथवा कुछ कच्चे रहने पर उन अन्नादिकों[११७] को तथा वातादिमलों को पतला करके अधोभाग में लाय गुदा द्वारा दस्त करावे उसको "रेचन" संज्ञक कहते हैं, जैसे-निसोथ। चक मात्र द्रव्यों में पृथ्वीतत्त्व और जलतत्त्व के गुरुत्वादि गुण अधिक होने से नीचे को जाती है अतएव दस्त कराते हैं। गुरुत्व शब्द करके इस जगह प्रभाव विशेष जानना, अन्यथा मत्स्य, मसूर, मिष्टान्नादिकों को विरेचकत्व आवेगा।।६।।

वमन औषध

अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत् तु यत् ।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य[११८] फलं यथा ।।७।।

अर्थ–जो औषध पक्वदशा को नहीं प्राप्त हुए ऐसे पित्त और कफ को बलात्कार करके मुख के द्वारा निकाले (रद्द करावे) उसे "वमन" संज्ञक जाना। उदाहरण–जैसे मैनफल। संपूर्ण वमनकारी द्रव्यों में पवन और अग्नि के गुण लघुत्वादि अधिक होने के कारण ऊपर को जाते हैं अतएव रद्द होती है। इस जगह भी लघुत्वादि करके प्रभाव विशेष जानना अन्यथा तीतर खील आदि को वमनत्व आवेगा। कोई प्रश्न करे कि कफ को वमन और पित्त को विरेचन द्वारा निकाले ऐसा

शास्त्र में लिखा है, फिर इस जगह पित्त को वमन द्वारा निकालना कैसे कहा? तहां कहते हैं कि अपक्व पित्त को वमन द्वारा ही निकालना चाहिये, जैसा लिखा है कि कटु तिक्त और अम्लों को वमन करके निकाले। देखो दग्धपति अम्लता को प्राप्त होता है अतएव अम्लपित्त की चिकित्सा में प्रथम वमन कराना लिखा है॥७॥

संशोधन औषध

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ।
देहसंशोधनं तत् स्याद्देवदालीफलं यथा ॥८॥

अर्थ–जो औषध स्वस्थान में संचित मलों (वातादिकों) को ऊपर के भाग में लायकर (मुख[११९] नासिका) द्वारा बाहर निकाले, अथवा उस संचय को अधोग भाग में लायकर (गुदा, लिंग, भग) द्वारा बाहर निकाले, उसको "संशोधन[१२०]" जानना। उदाहरण जैसे देवदाली का फल, जिसको वंदाल और घघरवेल भी कहते हैं। देह के कहने से फस्त खोलना भी शोधन में लिया है॥८॥

छेदन औषध

श्लिष्टान् कफादिकान् दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ।
छेदनं तद् यवक्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥९॥

अर्थ–जो औषध परस्पर एक से एक मिले हुए कफादि दोषों को अपनी शक्ति करके फोड़कर पृथक् पृथक् कर देवे उसको "छेदन[१२१]" औषध कहते हैं। उदाहरण जैसे जवाखार, काली मिरच और शिलाजीत। "मरिचानि" इस बहुवचन से लाल मिरच भी छेदनकर्त्ता जाननी। प्रश्न–वातादि क्रम त्यागकर इस जगह श्लोक में कफादि क्रम क्यों कहा? उत्तर–देह को ऊर्ध्वमूलत्व अधः शाखत्व है इस कारण कफक्रम रखा है॥९॥

लेखन औषध

धातून् मलान् वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं[१२२] वचा यवा ॥१०॥

अर्थ–जो औषध रसादिधातु और वातादिदोष इनको सुखाय के देह से बाहर निकाल देवे उसको "लेखन" औषधि कहते हैं। उदाहरण जैसे-सहत, गरम, जल, वच[१२३] और जौ। मलान् वा इसमें "वा" जो पड़ा है उससे मन के दोष पृथक् जानना। क्योंकि मन के दोषों की चिकित्सा दूसरी है। प्रश्न–मन के दोष कौनसे हैं? उत्तर–"रजस्तमश्च मनसो द्वौ च दोषाबुदाहृतौ" इत्यादि, अर्थात् रजोगुण और तमोगुण ये दो मन[१२४] को बिगाड़नेवाले दोष हैं॥१०॥

ग्राही औषध

दीपनं पाचनं यत् स्यादुष्णत्वाद् द्रवशोषकम् ।
ग्राहि तच्च यथा शुण्ठी जीरकं गजपिप्पली ॥११॥

अर्थ–जो औषध अग्नि प्रदीप्त करे और आमादिकों को पाचन करे तथा उष्णवीर्य होने से जलस्वरूप जो कफादि दोष, धातु और मल इनका शोषण करे उसको 'ग्राही' कहते हैं। उदाहरण–जैसे सोंठ, जीरा और गजपीपल॥११॥

स्तंभन औषध

रौक्ष्यात् शैत्यात् कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद् भवेत् ।
वातकृत् स्तम्भनं तत् स्याद् यथा वत्सकटुंटुकौ ॥१२॥

अर्थ–जो औषधी रूक्ष गुण करके, शीतवीर्य करके, कषैले रस करके युक्त होने से एवं पाक करके हलकी होवे, इस प्रकार की जो औषधि वह वादी को उत्पन्न करे है। अतएव औषध को "स्तंभन" जाननी। उदाहरण जैसे—कुडा और स्योनाक (टेंटु) ।।१२।।

रसायन औषध

रसायनं च यद् ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम् ।
यथाऽमृता रुदन्ती च गुग्गुलुश्च हरीतकी ।।१३।।

अर्थ–जो औषध देह की वृद्धावस्था और ज्वरादि रोगों का नाश करे उसको रसायन जानना। उदाहरण जैसे-गिलोय, रुदंती (शाक का भेद-पश्चिम में बहुत विख्यात है) गूगल और हरड। प्रश्न–व्याधि के कहने से ही वृद्धावस्था का ग्रहण हो गया फिर पृथक् क्यों कही? उत्तर–जराशब्द करके इस जगह स्वाभाविक वृद्धावस्था का ग्रहण है, क्योंकि सत्तरवर्ष के उपरान्त स्वाभाविक वृद्धावस्था कहलाती है। जो रसादि धातुओं की अयन अर्थात् पोषणकारी होय उसको 'रसायन' कहते हैं।।१३।।

वाजीकरण औषध

यस्मात् द्रव्यात् भवेत् स्त्रीषु हर्षो वाजीकरं च तत् ।
यथा नागबलाद्यास्तु बीजं च कपिकच्छुजम् ।।१४।।

अर्थ–जो औषध धातु को बढ़ायकर स्त्रियों में हर्षयुक्त शक्ति को करे अर्थात् मैथुन शक्ति को बढ़ावे उसको वाजीकरण जानना। उदाहरण जैसे नागबला (खरेंटी) (आदि शब्द से जायफल, शतावर, दूध, मिश्री, इत्यादिक) और कौंच के बीज। वाजीकरण दो प्रकार का है–एक वीर्यस्तम्भनकर्ता, दूसरा वीर्यवृद्धिकारी ।।१४।।

धातुवृद्धिकारी औषध

यस्मात् शुक्रस्य वृद्धिः स्यात् शुक्रलं च तदुच्यते ।
यथाश्वगन्धा मुशली शर्करा च शतावरी ।।१५।।

अर्थ–जिस औषध से धातु की वृद्धि हो उस औषध कोशुक्रल जाननी। उदाहरण जैसे असगन्ध, मुसली, मिश्री, शतावर इत्यादि ।।१५।।

धातु को चैतन्यकर्त्ता तथा वृद्धिकारी औषध

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽऽमलानि च ।
प्रवर्तकानि कथ्यन्ते जनकानि च रेतसः ।।१६।।

अर्थ–शुक्र धातु को चैतन्य करनेवाली तथा उत्पन्नकारी ऐसी औषध दूध, उड़द, भिलावके फल की गिरी और आमले इत्यादि जानना।।६।।

वाजीकरण औषधविशेष

प्रवर्तनं स्त्री शुक्रस्य रेचने बृहतीफलम् ।
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी ।।१७।।

अर्थ–स्त्री वीर्य की प्रगट करनेवाली है और बड़ी कटेरी का फल शुक्र का रेचनकर्त्ता है एवं जायफल वीर्य का स्तंभक है और हरड शुक्र को सुखानेवाली है : कोई प्रथम पद का यह अर्थ करते

हैं कि कटेरी का फल स्त्री के वीर्य को प्रवर्तन और रेचनकर्त्ता है, पर यह अर्थ श्रेष्ठ नहीं।।१७।।

सूक्ष्म औषध

देहस्य सूक्ष्मच्छिद्रेषु विशेद् यत् सूक्ष्ममुच्यते ।
तद् यथा सैन्धवं क्षौद्रं निम्बस्तैलं रुबूद्भवम् ।।१८।।

अर्थ–जो औषध देह के सूक्ष्म छिद्र (रोमकूपों) में प्रवेश करे उसको सूक्ष्म औषध कहते हैं, उदाहरण जैसे सैंधानमक, सहत, नीम और अण्डी का तेल (अथवा नीम का तेल और अण्डी का तेल)।।१८।।

व्यवायी औषध

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च[१२६] गच्छति ।
व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनं चाहिसमुद्भवम् ।।१९।।

अर्थ–जो औषध अपक्व हो, सकल देह में व्याप्त हो फिर मद्य विष के समान पाक को प्राप्त होय उस औषध को "व्यवायि" जानना। उदाहरण जैसे भाँग और अफीम ।।१९।।

विकाशी औषध

सन्धिबन्धांस्तु शिथिलान् यत् करोति विकाशि तत् ।
विश्लेष्यौजश्च[१२७] धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ।।२०।।

अर्थ–जो औषध सर्व अङ्गों की संन्धियों के बन्धनों को शिथिल करे और रसादि धातु से उत्पन्न हुआ जो ओज[१२८] (अर्थात् सर्व धातुओं का तेज) उसको धातुओं में से शोषण करे उस औषध को "विकाशि" जानना।। उदाहरण जैसे-सुपारी और कोदोधान्य, चकार से अपक्व ही उक्त कर्मों को करे ऐसा जानना।।२०।।

मदकारी औषध

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारि तदुच्यते ।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ।।२१।।

अर्थ–जो पदार्थ बुद्धि का लोप करे उसको मदकारी कहते हैं, यह तमोगुणप्रधान है उदाहरण जैसे सुरादिक, मद्य दारू।

बुद्धिशब्द मेधा, घृति, स्मृति, मति और प्रतिपत्ति आदिवाचन है, प्रसङ्गवश इनके लक्षणों को कहते हैं, ग्रन्थधारणा शक्ति को "मेधा" कहते हैं। सन्तुष्टता को "धृति" कहते हैं, कोई नियमात्मिका बुद्धि को "धृति" कहते हैं। बीती हुई वार्ता के याद रखने को "स्मरण" कहते हैं, कोई अर्थधारण शक्ति को "स्मरण" कहते हैं। विना जानी वस्तु के ज्ञान को "मति" कहते हैं। कोई २ त्रिकालज्ञान को मति कहते हैं और अर्थावबोधप्राकटच को "प्रतिपत्ति" कहते हैं। 'सुरादिकम्' इस पद में आदिशध्द करके सम्पूर्ण मदकारी वस्तु जाननी। प्रश्न-मद्य तो बुद्धि, स्मृति, वाणी और चेष्टा कर्ता लिखा है यथा–"बुद्धिः स्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्द्धनश्च । संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि"।। फिर इस जगह मदकारी द्रव्यों को बुद्धिलोपकर्ता कैसे लिखा है? उत्तर–मद की चार पानावस्था हैं, तहाँ प्रथम मदपान बुद्धचादिक का लोप नहीं करता है शेष बुद्धयादिक के लोपकर्ता हैं अतएव शार्ङ्गधर ने लिखा है)।।२१।।

प्राणहारक औषध

व्ययायि च विकाशि स्यात् सूक्ष्मं छेदि मदावहम् ।
आग्नेयं जीवितहरं योगवाहि स्मृतं विषम् ।।२२।।

अर्थ-पूर्व कही हुई जो व्यवायि, विकाशि, सूक्ष्म, छेदि, मदकारी और आग्नेय और प्राण हरनेवाला तथा योगवाही (गरम के सङ्ग अतिगरम और शीतद्रव्य के सङ्ग अतिशीतल हो) उसे विष कहते हैं। कोई आचार्य लोक में "योगवाह्यमृतं विषम्" ऐसा भी पाठ कहते हैं। उसका अर्थ यह है कि वह विष योगवाही कहिये किसी संस्कार विशेष करके जिस जिस अनुपान के साथ देवे उसी अनुपान के गुणों को बढ़ाय के अमृत के तुल्य गुण करे।।२२।।

प्रमाथी औषध

निजवीर्येण यद् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम् ।
निरस्यति प्रमाथि स्यात् तद् यथा मरिचं वचा ।।२३।।

अर्थ-जो द्रव्य अपने शक्ति से कान, मुख, नासिका आदि छिद्रों से तथा अन्य छिद्रों से कफादि दोषसञ्चय को और व्याधिसञ्चय को निकाले उसको प्रमाथि कहते हैं। उदाहरण जैसे वच, कालीमिरच तथा लाल मिरच।।२३।।

अभिष्यन्दि लक्षण

पैच्छिल्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः ।
धत्ते यद् गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ।।२४।।

अर्थ-जो द्रव्य अपने पिच्छिल गुण करके भारीपने से रसवाहिनी २४ शिराओं को रोककर शरीर को भारी करे उस पदार्थ को अभिष्यन्दि कहिये स्रोतः स्रावी जानना। उदाहरण-जैसे दही।।२४।।

इति वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकायां
हिन्दीटीकायां दीपनपाचनादिविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

पञ्चमोऽध्यायः ५

प्रथम यह लिख आये हैं कि 'ततः कलादिकाख्यानम्' अतएव कलादिकों को कहते हैं-

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः । सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्तिताः ।।१।। त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां सन्धयस्तथा । दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ।।२।। सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा । चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ।।३।। मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पञ्चशतं बुधैः । स्त्रीणां च विंशत्यधिका कंडराश्चैव षोडश ।।४।। नृदेहे दश रन्ध्राणि नारीदेहे त्रयोदश । एतत् समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाधुनोच्यते ।।५।।

अर्थ-शरीर में रसादि धातुओं के जो स्थान हैं उनकी मर्यादाभूत ऐसी सात कला[१२९] हैं। कोष्ठ[१३०] में

सात आशय कहिये स्थान हैं। रस, रुधिर, मेद, अस्थि (हड्डि), मज्जा और शुक्र ये सप्त धातु हैं तथा उन धातुओं में सात मल हैं। धातुओं के समीप रहनेवाले ऐसे सात उपधातु हैं। शरीर में सात त्वचा हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। शरीर में डोरी के समान और बेल के समान ९०० बन्धन हैं, उनको स्नायु कहते हैं। दो सौ दश संधि हैं। श्लोक में जो चकार है, इससे संधि दो सौ दश से अधिक जाननी। शरीर में आधारभूत और बलकारी ३०० हड्डी हैं। जीव के आधारभूत ऐसे १०७ मर्मस्थान हैं। दोष और धातु तथा जल के बहानेवाली ७०० शिराएँ[१३१] हैं। चकार से कुछ अधिक भी हैं ऐसा जानना, रस बहानेवाली २४ (धमनी) नाडी हैं, और पुरुषं के देह में मांसपेशी अर्थात् मांस के लम्बे २ टुकड़े[१३२] ५०० तथा स्त्रियों[१३३] के २० टुकड़े अधिक हैं तथा कंडरा कहिये बड़े स्नायु[१३४] सोलह हैं। पुरुषों के देह में दश रन्ध्र कहिये छिद्र हैं और स्त्रियों के तीन छिद्र अधिक तेरह छिद्र हैं इस प्रकार कलादिक संक्षेप से कही अब इन्हीं को विस्तार करके कहते हैं।।१–५।।

कलाओं की व्यवस्था

मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ।
पञ्चमी च तथान्त्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ।।६।।
रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ।

अर्थ–पहली कला मांस को धारण करती है इसलिये उसको मांसधरा कहते है। दूसरी कला रुधिर को धारण करती है अतः उसको रक्तधरा कहते हैं इसी प्रकार मेद के धारण करनेवाली को मेदधरा कहते हैं। यकृत् और प्लीहा की चौथी कला है जो इन दोनों के मध्य में रहती है अतएव उसको कफधरा कहते हैं। अन्त्र कहिये आंतड़ों को धारण करनेवाली पांचवीं कला[१३५] को "पुरीषधरा" ऐसे कहते हैं अग्नि को धारण करनेवाली छठी कला[१३६] जो है उसको "पित्तधरा" कहते हैं। और सातवीं कला शुक्र को धारण करती है अतएव उसको रेतोधरा जाननी, इस प्रकार सात कला जाननी।।६।।

श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ।।७।। ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्वामभागे[१३७] व्यवस्थितः ।। तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ।।८।। मलाशयस्त्वधस्तस्य वस्तिर्मूत्राशयः स्मृतः । जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी।।९।। पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः । धरागर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ।।१०।।

अर्थ–वक्षस्थल में कफ का आशय कहिये कफ का स्थान है, कफस्थान के किंचित् अधो–भाग में आम[१३८] का स्थान है, नाभि के ऊपर बांई तरफ अग्नि का स्थान है, उसी को "ग्रहणी[१३९]" स्थान कहते हैं, उस अग्निस्थान के ऊपर जो तिल है उसको क्लोम कहते हैं वह पिपासास्थान है अर्थात् प्यास इसी जगह से उत्पन्न होती है। कोई आचार्य "तस्योपरि जलं ज्ञेयम्" ऐसा पाठ लिखकर अर्थ करते हैं कि उस तिल के ऊपर जल है। जैसे लिखा है–"अग्नेरूर्ध्वं जलं स्थाप्यं तदन्नं च जलोपरि । अग्नेरधः स्वयं वायुः स्थितोऽग्निं धमते शनैः । वायुना धममानोऽग्निरत्युष्णं कुरुते जलम् । तदन्नमुष्णतोयेन समन्तात् पच्यते पुनः ।।" इति। अर्थात् अग्नि के ऊपर जल है, उसके ऊपर अन्न है और अग्नि के नीचे

पवन स्थिर होकर स्वयं अग्नि को धमाता है, वह वायु से धमाई हुई अग्नि ऊपर के जलों को अत्यन्त गरम करती है तब वह उष्णजल अन्न का अच्छे प्रकार परिपाक करता है। अग्नि स्थान के नीचे पवन का स्थान है उस पवन की समान संज्ञा है फिर उस पवनाशय के नीचे मलाशय अर्थात् मल का स्थान है, इसी को पक्वाशय कहते हैं, यह बामभाग में है। (इसीके एक देश में विभाजित मलधारक उंडूक कहलाता है) लोक में इसको "पोट्टलक" कहते हैं, अतएव उंडूक से पक्वाशय पृथक् है परन्तु चरक में पुरीष अन्त्रशब्द करके उंड़का कहा। उसके पास ही कुछ नीचे दाहिनी तरफ चमड़े की थैली के आकार मूत्राशय है जिसको वस्ति कहते हैं। जीव तुल्य रक्त है कि जिसका स्थान उर है। ऐसे सात आशय कहिये स्थान जानने पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के तीन आशय अधिक हैं, जैसे एक गर्भाशय और दो स्तनाशय अर्थात् स्तनसंबधी दूध रहने के स्थान। तहां गर्भाशय-पित्त और पक्वाशय के मध्य में है ऐसा जानना।।१०।।

रसादि सात धातुओं का विवरण

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
जायन्तेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ।।११।।

अर्थ–रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु पित्त के तेज से पाचित होकर क्रम से एक से एक उत्पन्न होते हैं। जैसे रस के रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा, मज्जा से शुक्र धातु उत्पन्न होती है।।

(अब कहते हैं कि, धातुओं के मल का परिणाम भी स्थूल और अणुभाग विशेष करके तीन प्रकार का है। उदाहरण जैसे अन्न के पचने से विष्ठा मूत्र ये मल होते हैं और सारवस्तु रसधातु प्रगट होती है, वही रस पित्ताग्नि करके पच्यमान होने से उसका कफ है सो मल प्रगट होती है, स्थूल भाग रस और सूक्ष्मरस रुधिर होता है। रक्त के परिपाक से पित्त मल होता है, स्थूल भाग रक्त का रक्त ही है और सूक्ष्म भाग मांस प्रगट होता है। इसी प्रकार परिपक्व होकर मांस के कान का मल प्रगट होता है सो जानना। स्थूल भाग मांस और सूक्ष्म भाग मेह और उसका अग्नि से परिपक्व होने पर पसीना मल होता है और स्थूल भाग मेद और उसका सूक्ष्म भाग हड्डी होती है, वह हड्डी भी परिपक्व होकर केशरोमादिमल को प्रगट करती है। इसका स्थूल भाग हड्डी है और सूक्ष्म भाग मज्जा कहाती है, उस मज्जा के परिपक्व होने से स्थूल भाग मज्जा भाग शुक्र होता है और नेत्र पुरीष तथा त्वचा इनमें जो मैल आता है वह मज्जा धातु का मल है। वह शुक्र भी अपनी अग्नि से पचकर मल को प्रगट नहीं करता, जैसे हजार बार धमाया हुआ सुवर्ण मैल को नहीं प्रगट करता है इस शुक्र का स्थूल भाग शुक्र है और सूक्ष्म भाग ओज जानना)।।११।।

धातुओं के मल

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम्। कर्णविड्रसनादन्त-कक्षामेढ्रादिजं मलम् ।।१२।। नखा नेत्रमलं वक्त्रस्निग्धत्वं पिटिकास्तथा । जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनु-क्रमात् ।।१३।।

अर्थ–सात धातुओं के क्रम से मल होते हैं। जैसे जीभ का जल[140], नेत्रों का जल और कपोल का जल इनको रसधातु का मल जानना। रञ्जक[141] पित्त (अर्थात् रस को रँगनेवाले पित्त) रुधिर का मल है। कान का मैल मांस का मल है, जीभ, दांत, कांख और शिश्न इनका मैल है सो मेदधातु का

मैल है। आदि शब्द से पसीना भी मेद धातु का मल है। परन्तु यह शार्ङ्गधर का मत नहीं है क्योंकि स्वेद को उपधातुओं में वर्णन किया है। नख (नाखून) हड्डी का मल है। 'नखाः' यह जो बहुवचन है इससे (बाल) लोम (रोआं) इत्यादिक भी हड्डी का मल है। नेत्रों का मैल मुख की चिकनाई यह मज्जा धातु का मल है। और मुँह में मुहासों का होना यह शुक्र धातु का मल है तथा केश ग्रहण से डाढी मूँछ ये भी शुक्र धातु के मल है॥१२॥१३॥

कोई आचार्य छः धातुओं के छः ही मल मानते हैं। नेत्रमल मुख की चिकनाई और मुँहासे इनको मज्जा धातु का मल कहते हैं—

अब मनुष्य की उपधातुओं को कहते हैं—

स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ।
शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥१४॥
स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवोजश्च सप्तमम् ।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥१५॥

अर्थ—स्तन सम्बन्धी दूध रसधातु की उपधातु है अर्थात् रसधातु से प्रकट होता है और रज अर्थात् स्त्रियों के मासिक रुधिर जो गिरता है वह रुधिर धातु का उपधातु ये दोनों उपधातु स्त्रियों के कालविशेष में प्रगट होते हैं और नष्ट होते हैं (उसी प्रकार स्त्रियों के रोमराजि आदि भी काल करके प्रगट होते हैं) और (कोई आचार्य रस धातु से ही आर्तव की उत्पत्ति कहते हैं) शुद्ध मांस से उत्पन्न हुए स्नेह (चिकनाई) को वसा कहते हैं यह मास धातु का उपधातु है। स्नेह कहिये पसीना यह मेद धातु का उपधातु है, दांत अस्थि अर्थात् हड्डी धातु का उपधातु है। केश मज्जा धातु का उपधातु है। ओज शुक्रधातु का उपधातु है। इस प्रकार सात धातु से उत्पन्न सात उपधातु जानने। कोई आचार्य इन उपधातुओं को मल के ही अन्तर्गत मानते हैं॥१४॥१५॥

सप्त त्वचा

ज्ञेयाऽवभासिनी पूर्वं सिध्मस्थानं च सा मता । द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥१६॥ श्वेता तृतीया संख्याता स्थानं चर्मदलस्य च । ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥१७॥ पञ्चमी वेदिनी ख्याता सर्वकुष्ठोद्भवस्ततः ॥१८॥ स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा । इति सप्तत्वचः प्रोक्ताः स्थूला व्रीहिद्विमात्रया ॥१९॥

अर्थ—पहली त्वचा का नाम "अवभासिनी" है सो सिध्मरोग की जन्मभूमि है। इस लोक में चकार जो है इससे पद्मकंटकादि रोगों की भी जन्मभूमि जानना। यह जौ के अठारहवें भाग प्रमाण मोटी है। २ दूसरी त्वचा का नाम "लोहिता" है यही तिलकाल की जन्मभूमि है तथान्यच्च। व्यंगादिकों की भी जाननी और जौ के सोलहवें भाग प्रमाण मोटी है। तीसरी त्वचा का नाम "श्वेता" है। यह चर्मदल कुष्ठ की जन्मभूमि है और जौ के १२वें भाग प्रमाण मोटी है। चौथी त्वचा का नाम "ताम्रा" है। यह किलासकुष्ठ के होने की जगह है और जौ के आठवें भाग प्रमाण मोटी है। पांचवीं त्वचा का नाम "वेदनी" है। यह संपूर्ण कुष्ठों की जन्मभूमि है। "तत्" इस पद के कहने

से विसर्पादिरोगों की भी जन्मभूमि जानना। यह मुटाई में जौ के पांचवे भाग के समान मोटी है। छठी त्वचा का नाम "रोहिणी" है। यह ग्रंथि (गाँठ) गंडमाला तथा गंडमाला का भेद अपची इनकी जगह है ग्रंथि आदि कफ मेदप्रधान है अतएव इनके साधर्म्य से श्लीपद अर्बुद का जन्मस्थान भी यही छठी त्वचा है यह जौ के प्रमाण मोटी है। सातवीं त्वचा का नाम "स्थूला" है। यह विद्रधिरोग तथा आदि शब्द से अर्श (बवासीर) और भगंदरादिरोगों के होने की जगह है। इस प्रकार सात त्वचा कही है। ये सातों त्वचा दो जौ की जौ की बराबर मोटी हैं-यह प्रमाण पुष्टस्थान में जानना, ललाट और छोटी उँगली आदि में नहीं क्योंकि लिखा है कि स्फिक (कूला) और उदर आदि में व्रीहिं मुखशास्त्र से अँगूठे के बीज जितना मोटा है उतना चीरा देवे।।१६-१९।।

वातादि दोषत्रय

वायुःपित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा ।
तत्रापि पञ्चधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात् ।।२०।।

अर्थ-शरीर में वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं जो रसादि धातुओं को दूषित करते हैं अतएव उनके दोष कहते हैं और शरीर के धारण करने से उनकी धातुसंज्ञा है, वे रसादि धातुओं को मलीन करते हैं अतएव उनकी मल संज्ञा कही है। वे दोष शरीर धारकत्व करके एक एक पांच पांच प्रकार के हैं। उदाहरण-जैसे सुश्रुत में लिखा है कि प्रस्पन्दन, उद्वहन, पूरण, विरेचन और धारण लक्षणात्मक वायु पांच प्रकार की होकर शरीर को धारण करती है। इसी प्रकार राग, पक्ति, ओजस्तेजसात्मक पित्त के पांच विभागों में बँटकर अग्निकर्म से देह का पालन करता है तथा वृद्धि, संधि, श्लेष्मण, स्नेहन, रोपण प्रपूर्णात्मक कफ के पांच विभागों से विभक्त होकर जल कर्म करके देह का पालन पोषण करता है।।२०।।

वायु का प्राधान्यपूर्वकस्वरूप तथा विवरण

पवनस्तेषु बलवान् विभागकरणान्मतः । रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ।।२१।। मलाशये चरन् कोष्ठवह्निस्थाने तथा हृदि । कण्ठे सर्वाङ्गदेशेषु वायुः पञ्चप्रकारतः ।।२२।। अपानः स्यात् समानश्च प्राणोदानौ तथैव च । व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ।।२३।।

अर्थ-वात, पित्त, कफ इन तीन दोषों में वायु बलवान् है। इसको मलादिकों के पृथक् विभाग करने से तथा पित्त और कफ इनको जहां इच्छा होय तहां ले जाने की सामर्थ्य है, अतएव उस (वायु) की प्रधानता है। इस वायु में रजोगुण अधिक है। (शीतलस्वभाव होने से तथा देह के छिद्रों में प्रवेश करने से) बहुत बारीक है, शीतल और रूखी है तथा हलकी चंचल अर्थात् एक स्थान पर स्थित नहीं रहती। यह पांच स्थानों में गमन करती है अतएव पांच प्रकार की जाननी। उन पांच स्थान और पांच नामों को अनुक्रम से कहते हैं। मलाशय अर्थात् पक्वाशय में जो वायु रहता है उसको "अपान" वायु कहते हैं। कोष्ठ में अग्नि का स्थान है उसमें जो वायु रहे, उसको "समान" वायु कहते है। हृदय में रहनेवाले वायु को "प्राण" वायु कहते हैं, कंठ में रहनेवाले वायु को "उदान" वायु कहते हैं। और संपूर्ण देह में रहनेवाले पवन को "व्यान" वायु कहते हैं। इस प्रकार वायु के पांच स्थान तथा पांच नाम जानना।।२१-२३।।

पित्त का विवरण

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम्। कटु तिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥२४॥ अग्न्याशये भवेत् पित्तमग्निरूर्ध्वं तिलोन्मितम् । त्वचि कान्तिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यंगादि पाचकम् ॥२५॥ दृश्यं यकृति यत् पित्तं तादृशं शोणितं नयेत् । यत् पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् ॥२६॥ यत् पित्तं हृदये तिष्ठेन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत् । पाचकं भ्राजकं चैव रञ्जकालोचके तथा ॥२७॥ साधकं चेति पञ्चैव पित्तनामान्यनुक्रमात् ॥

अर्थ–अब पित्त का वर्णन करते हैं। पित्त गरम और एक पतला पदार्थ है, दूषित पित्त का नीलवर्ण है और निर्मल पित्त पीले रंग का होता है। इस पित्त में सत्त्वगुण अधिक है तथा निर्दूषित[१५०] पित्त का स्वाद चरपरा और कड़ुवा होता है, तथा उष्णादि पदार्थों के संयोग उसके विदग्ध (विकृति) होने से खट्टा हो जाता है, यह पित्त पांच स्थानों में रहता है। उन पांच स्थान और उनके नामों का क्रम करके कहता हूं। कोठे में अग्नि का स्थान है उस स्थान में जो पित्त है वह अग्निस्वरूप होकर तिल[१५१] के बराबर है। वह पित्त उस पित्त के स्थानों में चार[१५२] प्रकार के अन्न को पचाता है अतएव उसको "पाचक" पित्त कहते हैं त्वचा[१५३] में जो पित्त रहता है वह शरीर में कांति उत्पन्न करता है। चन्दनादिकों के लेप तैलादिकों के अभ्यंग आदि शब्द करके स्नानादिक इनको पचाता है। अतः उसको "भ्राजक" पित्त कहते हैं। वह पित्त बांई तरफ प्लीहा के स्थान में रहकर, जैसे रस से रुधिर को प्रगट करता है उसी प्रकार दाहिनी तरफ यकृत के स्थान में रहकर भी रस से रुधिर को प्रगट करता है, वह दृश्य कहिये दृष्टिगोचर है और उसको "रञ्जक" पित्त कहते हैं। (कोई कहता है कि यकृत कहिये कालखण्ड) (कलेजे) में जैसे रुधिर दीखता है उसी प्रकार का प्लीहा में रुधिर को उत्पन्न करता है) दोनों नेत्रों में जो पित्त रहता है वह सफेद, नील, पीत आदि रूप का दर्शन करता है उसको "आलोचक" पित्त कहते हैं। जो पित्त हृदय में है वह मेधारूप और प्रज्ञारूप बुद्धि को उत्पन्न करता है।।२४–२७।। अतः उसको "साधक" पित्त कहते हैं, इस प्रकार पित्त के पांच स्थान और पांच नाम क्रम करके जानने।

कफ का विवरण

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥२८॥ तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत् । कफश्चामाशये मूर्ध्नि कण्ठे हृदि च सन्धिषु ॥२९॥ तिष्ठन करोति देहेषु स्थैर्यं सर्वांगपाटवम् । क्लेदनः स्नेहनश्चैव रसनश्चावलम्बनः ॥३०॥ श्लेष्मकश्चेति नामानि कफस्योक्तान्यनुक्रमात् ॥

अर्थ–कफ चिकना, भारी, सफेद, पिच्छिल[१५४] (चिपचिपा) और शीतल है। तथा कफ में तमोगुण अधिक है और मीठा है तथा विकृत (दूषित) कफ का स्वाद निमकीन होता है। वही कफ पांच स्थानों में रहकर देह की स्थिरता और पुष्टता को करता है। अब उन पांच स्थान तथा उन पांचों के नाम क्रमपूर्वक कहते हैं। आम के स्थान में जो कफ रहता है, उसको "क्लेदन" कफ कहते हैं। वह

आमाशय में चार प्रकार के आहर का आधार है, तथा मधुर पिच्छिल और प्रक्लेदित्व होने पर भी अपनी शक्ति करके संपूर्ण कफ के स्थानों पर उसके कर्म करके उपकार करता है। मस्तक में रहनेवाले कफ को "स्नेहन" कफ कहते हैं। वह तर्पणादि द्वारा इंद्रियों को अपने कार्य में सामर्थ्ययुक्त करता है और कंठ में स्थित कफ को "रसन" कफ कहते हैं। यह जिह्वा की जड़ में स्थित और कटुतिक्तादि रसों के ज्ञान का कारण है। हृदय में रहनेवाले को "अवलंबन" कफ कहते हैं। यह अवलंबनादि कर्म द्वारा हृदय का पोषण करता है॥२८–३०॥ संधियों में रहनेवाले कफ को "संश्लेषण" कहते हैं। यह संधियों का यथास्थित करता हैं। इस प्रकार कफ के पांच स्थान और पांच नाम क्रमपूर्वक जानने॥

स्नायु के कार्य

स्नायवो बन्धनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥३१॥

अर्थ–स्नायु[१५५] अर्थात् मांसरज्जु ये मांसहड्डी और मेद इनके बंधन है, इनको हिन्दी में पट्ठे कहते हैं। इन्हीं के द्वारा हड्डी, मांस और मेद खिंचे हुए हैं॥३१॥

संधि के लक्षण

सन्धयश्चाङ्गसन्धानाद देहे प्रोक्ताः कफान्विताः ।

[१५६] अर्थ–शरीर में हाथ पैर आदि अंग जिस जगह एकत्रित हुए हैं उस स्थान को अर्थात् जोड़ को संधि स्थान कहते हैं। उन संधियों में कफ के सदृश पदार्थ भरा हुआ है।

अस्थि के कार्य

आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा जगुः ॥३२॥

अर्थ–देह में अस्थि[१५७] (हड्डी) सार[१५८] (बलरूप) और आधार है। यह कपास, रुचक वलय, तरुण, नलक सेसी पांच प्रकार की हैं॥३२॥

मर्म के कार्य

मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः ।

अर्थ–देह में मर्म प्रायः करके आत्मा के आधारभूत हैं ऐसे मुनीश्वर ने कहा है।

शिराओं के कार्य

सन्धिबन्धनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥३३॥

अर्थ–शिरा[१५९] (नस) संधि के बंधन करनेवाली और वातादिदोष तथा रसादि धातु इनके बहानेवाली हैं॥३३॥

धमनी के कार्य

धमन्यो रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ ।

अर्थ–देह में जो रसवाहिनी नाड़ी हैं वे पवन को धमन करती हैं अर्थात् धमाती है अतएव उनको धमनी[१६०] कहते हैं।

पेशी के कार्य

मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टंभाय देहिनाम् ॥३४॥

अर्थ–मांसपेशी[१६१] अर्थात् मांस के टुकड़े मनुष्यों के बल के अर्थ और अवभष्टं कहिये देह के सीधे खड़ा रहने के अर्थ जाननी॥३४॥

प्रसारणांकुचनयोरंगानां कंडरा मता ।

कंडरा के कार्य

अर्थ–कंडरा[१६२] कहिये बड़ी स्नायु उसे हाथ पैर आदि अंगों के प्रसारण (फैलाने) आकुञ्चन (समेटने) के विषय में समर्थ जाननी।

रंध्रो (छिद्रों) का विवरण

नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ।।३५।। मेहनापान वक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते । दशमं मस्तके चोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ।।३६।। स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भव-र्त्मनः । सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मि-नाम् ।।३७।।

अर्थ–नाक, नेत्र, कान इनमें दो दो छिद्र हैं; लिंग, गुदा और मुख इनमें एक एक छिद्र है, मस्तक में एक छिद्र है, कि जिसको ब्रह्मरंध्र कहते हैं। इस प्रकार पुरुषों के नौ छिद्र खुले हुए हैं और मस्तक में जो ब्रह्मरंध्र है वह ढका हुआ है ऐसे दश छिद्र हैं। तथा स्तनसंबंधी दो छिद्र और गर्भभाग में एक ऐसे तीन छिद्र पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के अधिक हैं। तथा इस प्राणी की त्वचा में अनेक छिद्र हैं परन्तु अत्यन्त बारकी होने से नहीं दीखते, चकार से प्राण, जल, रस, रुधिर, मांस, मेद, मूत्र, मल, शुक्र और आर्तव के बहानेवाला अन्य छिद्र और भी हैं ऐसा किसी आचार्य का मत है।।३५–३७।।

अब शरीरकथन के प्रसंग से अन्य फुप्फुसादिकों का स्वरूप दिखाते हैं–

तद्वामे फुप्फुसं प्लीहा दक्षिणांगे यकृन्मतम् । उदानवायोरा-धारः फुप्फुसं प्रोच्यते बुधैः ।।३८।। रक्तवाहिशिरामूलं प्लीहा ख्याता महर्षिभिः । यकृद् रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम् ।।३९।।

अर्थ–हृदय के वाम भाग में प्लीहा[१६३] और फुप्फुम तथा दक्षिण भाग में यकृत है। उसको कालखण्ड (कलेजा) कहते हैं। अब इनके कार्य कहते हैं–फुप्फुस (फेंफड़ा) जो है सो उदान अर्थात् कंठस्थवायु का आधार है और प्लीहा है सो रुधिर बहनेवाली शिराओं का मूल है, एवं यकृत है सो रंजक पित्त और रुधिर का स्थान है।।३८।।३९।।

तिल के लक्षण

जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम् ।

अर्थ–रुधिर के कीट (कीटी) से प्रगट और दक्षिण भाग में यकृत के समीप तिल नाम का एक स्थान है उसको क्लोम कहते हैं। वह तिल जल बहनेवाली नाडियों का मूल है अतएव तृष्णा कहिये प्यास को आच्छादन करता है।

वृक्क के लक्षण

वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ।।४०।।

अर्थ–वृक्क कहिये कुक्षिगोल[१६४] यह जठर (पेट) में रहनेवाले मेद को पुष्ट करते हैं अर्थात् बढ़ाते हैं। जठर शब्द का ग्रहण अन्य स्थानाश्रित भेद के निषेधार्थ है जैसे लिखा है-"स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वभ्यन्तराश्रिता । अथेतरेषु सर्वेषु सरक्ते मेद उच्यते" ।।इति।।४०।।

वृषण के लक्षण

वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ।

अर्थ–वृषण[१६५] कहिये आँड ये वीर्यवाही नाड़ियों के आधार है अतएव पुरुषार्थ अर्थात् पुरुषबल को देते हैं। "बीजवाहि" ऐसा भी पाठान्तर है।

लिङ्ग के लक्षण

गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः ।।४१।।

अर्थ–लिंग[१६६] कहिये शिश्नेन्द्रिय जो वीर्य द्वारा गर्भ को प्रकट करती है वीर्य तथा मूत्र निकलने का मार्ग है, जैसे लिखा है, द्व्यंगुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतः पथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते ।।" इति। "बीजमूत्रयोः" ऐसा भी पाठान्तर है।।४१।।

हृदय के लक्षण

हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम् ।

अर्थ–कमल की कली के समान किंचित् विकसित और अधोमुख ऐसा हृदय[१६७] है। यह चैतन्य का स्थान होकर ओज कहिये सम्पूर्ण धातुओं के तेजों का सार है। यद्यपि सामान्यता करके सर्व देह ही चेतना का स्थान है, जैसे चरक में लिखा है-"चेतनानामधिष्ठानं मनो देहश्च सेंद्रियः । केशलोमनखाग्रांतमलद्रव्यगुणैर्विना" इति। परन्तु विशेषता करके हृदय ही चेतना का मुख्य स्थान है और जैसे दूध में सार वस्तु घृत है इसी प्रकार सब धातुओं का तेज-स्नेहरूप ओज है अर्थात् तेजरूप है जैसे सुश्रुत में लिखा है-"रसादीनां शुक्रान्तानां धातूनां यत्परं तेजस्तदेव ओजस्तदेव बलमित्युच्यते," कोई आचार्य ओज शब्द करके जीव और रुधिर को ग्रहण करते हैं, कोई निर्विकार कफ को ही ओज कहते हैं और किसी २ ग्रन्थ में ओज शब्द करके रस का ग्रहण करते हैं।

शरीरपोषणार्थ व्यापार

शिरा धमन्यो नाभिस्थाः सर्वां व्याप्य स्थितास्तनुम् ।।४२।। पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात् सर्वधातुभिः ।

अर्थ–नाभिस्थान में रहनेवाली शिरा और धमनी सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो रात्रि दिवस वायु के संयोग करके रसादि सर्व धातुओं को सर्व शरीर में लेजाकर शरीर का पोषण करती है और चकार से पालन करती है। ये तरुण पुरुषों के शरीर का पोषण (पुष्ट) करती है और वृद्ध मनुष्य के देह का पालन करती हैं जैसे लिखा है-"स एवान्नरसो वृद्धानां परिपक्वशरीरत्वादप्रीणनो भवति" कोई कहे कि कैसे पोषण करती हैं, जैसे लिखा है कि-"क्रियाणामप्रतीघातममोहं बुद्धिकर्मणा । करोत्यन्यान् गुणांश्चापि स्वाः शिराः पवनश्चरन्" कौनसी वस्तुओं से पोषण करती है, तहां कहते हैं कि सम्पूर्ण रसादि धातुओं करके पोषण करती हैं, इस वाक्य से सबका सामान्य कर्म कहा। जैसे लिखा है कि-"याभिरिदं शरीरमाराम इव जलहारणीभिः केदार इव कूल्याभिरुपस्निह्यते, अनुगृह्यते चाकुञ्चनप्रसारणादिभिर्विशेषैरिति" कदाचित् कोई प्रश्न करे कि वे शिरा और धमनी नाड़ी नाभि में स्थित हो सर्वदेह को कैसे पोषण करती हैं? तहां कहते हैं-"व्याप्नुवन्त्यभितो देहं नाभिस्ताः प्रसृताः शिराः । प्रतानाः पद्मिनीकन्दबिसादीनां यथा जलम्"।।४२।।

प्राणवायु का व्यापार

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलान्तरम् ।।४३।। कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् । पीत्वा चाम्बरपीयूषं

पुनरायाति वेगतः ॥४४॥ प्रीणयन् देहमखिलं जीवै च जठरानलम् ॥

अर्थ–नाभि में स्थित प्राणपवन[१६८] (प्राणाश्रितवायु) हृदय का स्पर्श कर बाह्य आकाश से अमृत (हवा) पीने के वास्ते कंठ के बाहर जाता है, वहां अमृत को पीकर फिर उसी वेग से नासिका द्वारा अपने स्थान से आयकर संपूर्ण देह और जीव इनको सन्तुष्ट और जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। वह प्राणवायु सकलशरीर में व्यापक होने से नाभि में आवृत जो शिरा हैं उनमें भी स्थित है। अतएव लिखा है-नाभिस्थाः प्राणिनां प्राणाः प्राणान्नाभिव्यपाश्रिताः । शिराभिरावृता नाभिश्चक्रनाभिरिवारकैः" इति और भी ग्रन्थान्तर में लिखा है कि-"ब्रह्मग्रन्थौ नाभिचक्रं द्वादशारमवस्थितम् । लूतेव तन्तुजालस्थस्तत्र जीवी भ्रमत्ययम् ॥ सुषुन्मया ब्रह्मरन्ध्रमारोहत्यव-रोहति । जीवप्राणसमारूढो रज्ज्वा कोल्हाटिको यथा ॥" इस प्रमाण से पवन का कारण भी ग्रन्थान्तर में इस प्रकार लिखा है॥४३॥४४॥

"तेषां मुख्यतमः प्राणो नाभिकन्दादधः स्थितः । चरत्यास्ये नासिकायां नाभौ हृदयपङ्कजे । शब्दोच्चारणनिःश्वासश्वासकासादिकारणम्" ।

इत्यादि गुणविशिष्ट प्राणपवन[१६९] हृदयकमल के आभ्यंतर को स्पर्श करके अर्थात् हृदयकमल को प्रफुल्लित कर कंठ को उल्लंघन कर मस्तक में विष्णुपदामृत ब्रह्मरन्ध्राश्रित अमृत पीने को प्राप्त होता है-"चक्रं सहस्रपत्रं तु ब्रह्मरन्ध्रे सुधाधरम् । तत्सुधासारधाराभिरभिवर्द्धयते तनुम् ।" भरतोऽपि-"ब्रह्मरन्ध्रे स्थितो जीवः सुधया संप्लुतो यदा । तुष्टो गीतादिकार्याणि सम्प्रकर्षाणि साधयेत्" उस जगह उस ब्रह्मरन्ध्रस्थित अमृत को पीकर जिस वेग से ऊपर गई उसी वेग से फिर तत्क्षण लौटकर अपने स्थान पर आकर प्राप्त होती है। वह अपनी जगह पर आकर सकलदेह (चोटी से चरणपर्यन्त) को तथा जीव और जठरानल (पाचकाग्नि) को पुष्ट करती है। यद्यपि देह ग्रहणही से जीवानलादिक का ग्रहण हो गया, तो भी यह कहना विशेषताद्योतक है अर्थात् सामान्यता करके देह के अंगप्रत्यंग विभाग जानना और जीव तथा अग्नि ये विशेषता करके जानने, क्योंकि "शरीराद् भिन्नो जीवः" इति श्रुतेः । अर्थात् जीव को शरीर से भिन्न होने के कारण पृथक् कहा इस वास्ते दोष नहीं है। "आयुर्वर्णो बलं स्वास्थ्यमुत्साहोपचयप्रभाः । ओजस्तेजोऽग्नयः प्राणाः स्वक्ता देहेऽग्निदहेतुकाः । शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयम् । रोगी स्याद्विरते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते"॥

आयु के और मरण के लक्षण

शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते ॥४५॥
कालेन तद्वियोगाद्धि पञ्चत्वं कथ्यते बुधैः ।

अर्थ–एवं पूर्वोक्त श्लोक के अभिप्राय से शरीर और प्राण इनके संयोग को आयु[१७०] कहते और काल[१७१] करके शरीर और प्राण इन दोनों के वियोग होने को पंचत्व (मरण) कहते हैं॥४५॥

वैद्य को क्या कर्तव्य है

न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ॥४६॥
अतो मृत्युरवार्यः स्यात् किंतु रोगान् निवारयेत् ।

अर्थ–पृथ्वी में कोई प्राणी अमर (मृत्युरहित) नहीं है, अतएव मृत्यु के निवारण करने में कोई समर्थ नहीं है परन्तु वैद्य रोगों का निवारण करे। प्रसंग से वैद्य के लक्षण "व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं

वेदनायाश्च निग्रहः । एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यं प्रभुरायुषः ।।" अर्थात् व्याधि के निदानादि द्वारा यथार्थज्ञान करके रोगजन्य पीड़ा का शमन करना यही वैद्य का वैद्यत्व है किन्तु वैद्य आयु का प्रभु नही हैं।।४६।।

अब साध्य व्याधिका यत्न न करने से अवस्थांतर कहते हैं–

याप्यत्वं याति साध्यश्च याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ।।४७।।

जीवितं हन्त्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ।

अर्थ–साध्य व्याधि की चिकित्सा न करने से याप्य[१७२] होती है, याप्य की चिकित्सा न करने से व्याधि असाध्य हो जाती है और असाध्य होने से व्याधि प्राणहरण करती है। अतएव व्याधि के उत्पन्न होते ही चिकित्सा करनी चाहिये। जैसे लिखा है–"जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदाः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्याः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ।।" याप्य यह असाध्य का भेद है जैसे लिखा है कि–"असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः" तथा च "यापनीयं तु जानीयात् क्रियां धारयते तु यः । क्रियायां तु निवृत्तायां सद्य एव विनश्यति" उसी प्रकार साध्य भी दो प्रकार का है, एक सुखसाध्य और दूसरा कृच्छ्रसाध्य। एक दोषों से उत्पन्न उपद्रवरहित और नवीन इत्यादि लक्षण युक्त व्याधि सुखसाध्य कही गई है और शस्त्रादिसाधन द्वारा चिकित्सा योग्य व्याधि को कृच्छ्रसाध्य कहते हैं।।४७।।

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ।।४८।।

अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ।

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम[१७३] और मोक्ष इनका साधन (कारण) ऐसा यह देह है अतएव शुभाशुभ कर्म के फल को जाननेवाले मनुष्य रोगों से शरीर की रक्षा करें।।४८।।

अब दोषों की विषम और सम अवस्था को कहते हैं–

धातवस्तन्मला दोषा नाशयन्त्यसमास्तनुम् ।।४९।।

समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च ।

अर्थ–रसादि सात धातु और धातुओं के[१७४] मल तथा वातादि तीन दोष ये न्यूनाधिक होने से शरीर का नाश करते हैं और सम (स्वप्रमाणस्थित) होने से सुख, बल और शरीर की वृद्धि को देते हैं।।४९।। इति शारीरे कालादि कथनम् ।

प्रथम यह कह आये हैं कि, आदिशब्द से सृष्टिक्रम कहेंगे सो ही वर्णन करते हैं–

जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानन्दैकरूपिणः ।।५०।।

पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भाषतः ।

अर्थ–महदादि रूप जो जगत् (पृथिव्यादिभूत) आदि कारण होकर इच्छा रहित तथा चिदानन्द ज्ञानमय[१७५] ऐसा जो पुरुष उसको ईश्वर कहते हैं। उस पुरुष की नित्य और सूर्य की छाया के समान प्रकृति है उसको अव्यक्त भी कहते हैं।।५०।।

प्रकृति कैसे विश्व निर्माण करती है तथा पुरुष का कर्तृत्व कैसे यह कहते हैं–

अचेतनापि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ।।५१।।

अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति ।

अर्थ–वह मूलप्रकृति चेतनरहित (जड़) होकर परमात्मा के चैतन्य सम्बन्ध करके अनित्य ऐसे संपूर्ण महदादिरूप विश्व को करती है। इस विषय में दृष्टांत जैसे ऐंद्रजालिक (बाजीगर)

यंत्रप्रभाव से झूठे नाटकों को दिखाता है इस श्लोक का सम्बन्ध पूर्व श्लोक के साथ है।।५१।।

अब एक से कार्य का उत्पत्तिक्रम कहते हैं–

प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ।।५२।। इच्छामयीं महद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत् । त्रिविधिः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ।।५३।।

अर्थ–विश्व की जननी ऐसी जो प्रकृति है वह प्रथम इच्छामयी (सत्त्व, रज, तमोगुण स्वभावों से अनेक प्रकार की) और महद्रूप (महान् है पर्याय नाम जिसका अथवा स्फटिकमणि के समान) बुद्धि को उत्पन्न करती भई। उस बुद्धि से अहंकार उत्पन्न हुआ वह राजस तामस और सात्त्विक भेद से तीन प्रकार का है। तहां वैकारिक सत्त्वगुणी तेजसे रजोगुणी और भूतादि तमोगुणी जानना।।५२।।५३।।

त्रिविध अहंकार के कार्य

तस्मात् सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन् । मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रत्वङ् नयनं तथा ।।५४।। जिह्वाघ्राणत्वचो हस्तपादोपस्थगुदानि च । पञ्च बुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च।।५५।।कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव कथ्यन्ते सूक्ष्मबुद्धिभिः।

अर्थ–राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा तमोमात्र करके अनुविद्ध (मिश्रित) जो सात्त्विक अहंकार है उसमें श्रोत्र (कान), त्वचा, नेत्र, जीभ, नासिका, वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग और भग) गुदा और मन ये ग्यारह इंद्रिये उत्पन्न हुई। उनमें हसली (कान त्वचा आदि) ज्ञानेंद्रिय हैं, क्योंकि इनको बुद्धि का आश्रय है, अवशिष्ट (वाकी) रही जो पांच वे कर्मेन्द्रिय हैं, क्योंकि इनको कर्म का आश्रय है तथा उभयात्मक (बुद्धयात्मक और कर्मात्मक मन है) अथवा राजस अहंकार से इंद्रिय, सात्त्विक से इंद्रियों के देवता और मन ऐसे पृथक्त्वकरके उत्पत्तिक्रम जानना। कोई 'तस्मात्' इस जगह "तमः सत्त्वरजोयुक्तात्" ऐसा पाठ कहते हैं और व्याख्या करते हैं "तमः–सत्त्वरजोयुक्त से" इंद्रिये हुई। तात्पर्य यह है कि सांख्यशास्त्र में इंद्रियों को अहंकारजन्य कहा है और वैद्यक में भौतिकी कहा है इतना फर्क है।।५४।।५५।।

तन्मात्राओं की उत्पत्ति

तमः सत्त्वगुरोत्कृष्टादहङ्कारादथाभवत् ।।५६।। तन्मात्रपञ्चकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः । शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम्।।५७।।रसतन्मात्रकं गन्धतन्मात्रं चेति तद्विदुः ।

अर्थ–राजस अहंकार है सहायक जिसका तथा सत्त्वमात्र करके अनुविद्ध (युक्त) ऐसा जो तामस अहंकार उससे तन्मात्रा कहिये उसी उसी आश्रय पर मुख्यत्व करके रहनेवाले ऐसे गुण उत्पन्न हुए, उनके पांच नाम–शब्दतन्मात्र, स्पर्शतन्मात्र, रुपतन्मात्र, रसतन्मात्र और गन्धतन्मात्र इस प्रकार जानने। इन तन्मात्राओं को योगी पुरुष ही जान सकते हैं।।५६।।५७।।

तन्मात्रापंचकों का विशेष

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगन्धावनुक्रमात् ।।५८।।
तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ।

अर्थ–शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध ये क्रम करके तन्मात्रा पंचकों के विशेष जानने। इनका सुख दुःख और मोह इन्हीं से अनुभव होता है। अतएव स्थूलभाव को प्राप्त हुए जानने तथा तन्मात्रा पंचकों का अनुभव सूक्ष्म है इसीसे नहीं होता।।५८।।

भूतपंचकों की उत्पत्ति

तन्मात्रपंचकात् तस्मात् संजातं भूतपञ्चकम् ।।५९।।

व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम् ।

अर्थ–शब्दादि पञ्चतन्मात्राओं से भूतों के पंचक उत्पन्न हुए, उनके नाम–आकाश[१७६], पवन[१७७], अग्नि[१७८], जल[१७९], पृथ्वी[१८०] इस प्रकार जानने।।५९।।

बुद्धीन्द्रियाणां पंचैव शब्दाद्या विषया मताः ।।६०।।

कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारतः । आनन्दोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ।।६१।।

इंद्रियों के विषय

अर्थ–श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण ये पांच बुद्धीन्द्रिय हैं, इनके शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये पांच विषय क्रमपूर्वक जानने। उदाहरण–जैसे कर्णेन्द्रिय का शब्द, त्वगिंद्रिय का स्पर्श, चक्षुरिन्द्रिय का रूप, जिह्वा इंद्रिय का रस और घ्राण (नासिका) इंद्रिय का गन्ध विषय जानना। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ, गुदा ये कर्मेन्द्रिय हैं इनके भाषण, आदान, विहार, आनन्द, उत्सर्ग ये पञ्च विषय क्रम करके जानने। उदाहरणः जैसे वाणी इंद्रिय का विषय भाषण, हस्तेंद्रिय का ग्रहण, पैरों का विहार, उपस्थ का आनन्द और गुदा का उत्सर्ग ये विषय जानने।।६०।।६१।।

मूलप्रकृति के पर्यायनाम

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ।

एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता ।।६२।।

अर्थ–प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्या और अविकृति ये प्रकृति के पर्याय शब्द जानने। वह प्रकृति शिव का आश्रय करके ऐसे रहती है, जैसे सूर्य का प्रतिबिंब सूर्य के आश्रय रहता है। वह सत्त्व, रज, तमरूपा है जैसे सुश्रुत में लिखा है "सर्वभूतानां कारणमकारण सत्त्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमखिलस्य जगतः संभवे हेतुमव्यक्तं नाम" इति ।।६२।।

अब चौवीस सत्त्वराशि को पृथक् निकाल के कहते हैं।

महानहंकृतिः पञ्चतन्मात्राणि पृथक् पृथक् ।

प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः ।।६३।।

अर्थ–महत्तत्त्व, अहंकार और पंचतन्मात्रा ये सात इंद्रियादिकों के कारण हैं प्रकृतिरूप और प्रकृति के कर्मरूप कहिये विकृतिरूप हैं।।६३।।

षोडश विकार

दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पञ्च च ।

विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत् स्थिताः ।।६४।।

अर्थ–दश इंद्रिय उभयात्मक मन और पांच महाभूत ये सोलह विकार हैं। ये संपूर्ण जगत में व्याप्त होकर स्थित हैं।।६४।।

चौबीस तत्त्वराशि

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे । जीवात्मा नियतेर्निघ्नो वसति स्वान्तदूतवान् ॥६५॥ स देही कथ्यते पापपुण्यदुःख-सुखादिभिः । व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबन्धनैः ॥६६॥

अर्थ—अव्यक्त १ महान् २ अहंकार ३ शब्दतन्मात्रा ४ स्पर्शतन्मात्रा ५ रूपतन्मात्रा ६ रसतन्मात्रा ७ गंधतन्मात्रा ८ श्रोत्र (कान) ९ त्वक् (त्वचा) १० चक्षु (नेत्र) ११ घ्राण (नासिका) १२ रसना (जीभ) १३ वाक् (वाणी) १४ हाथ १५ पैर १६ उपस्थ (लिंग और योनि) १७ वायु (गुदा) १८ मन १९ पृथ्वी २० आप् २१ तेज २२ वायु २३ और आकाश २४ इस प्रकार चौवीस तत्त्व हुए। इन करके सिद्ध (निर्मित) शरीर रूप घर में पच्चीसवां पुरुष सर्वकाल रहता है, उसको जीवात्मा कहते हैं सो उसका दूत है वह जीवात्मा महदादिकृत सूक्ष्म लिंग शरीर में रहता है, अतएव उसको देही अथवा कर्म पुरुष भी कहते हैं। अतएव पापपुण्य सुख दुःख इन करके वह युक्त है। तथा मन के साथ वर्तमान ऐसा जो कृत्रिम कर्मबंधन तिस करके बद्ध है।

आदि शब्द से इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, प्राण, अपान, उन्मेष, बुद्धि, मन, संकल्प, विचार, स्मृति, विज्ञान, अध्यवसाय, विषय, उपलब्धि इत्यादिक गुण भी उत्पन्न होते हैं, अर्थात् इनसे बद्ध है।

कदाचित् कोई प्रश्न करे कि विकाररहित जीवात्मा विकार वस्तुओं करके कैसे बद्ध होता है? तहां कहते हैं कि, जीवात्मा निर्विकार भी है परंतु विकारवान् है। इसमें दृष्टांत देते हैं—जैसे सायंकाल में आकाश सूर्यकिरण के संयोग से लाल हो जाता है। उसी प्रकार जीव विकारवान् है वास्तव में आकाश के समान निर्विकार है। कोई आचार्य कहते हैं कि, ये सम्पूर्ण विकार उस लिंग देह में प्रतिविंब के सदृश रहते हैं जैसे तलाव पुष्करिणी आदि के जल में जल के कांपने से समीप स्थित वृक्षादि कंपित दीख पड़ते हैं।।६५।।६६।।

जीव के बन्धन

कामक्रोधौ लोभमोहावहंकारश्च पञ्चमः ।
दशेन्द्रियाणि बुद्धिश्च तस्य बन्धाय देहिनः ॥

अर्थ—काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, दश इंद्रिय और बुद्धि ये उस जीव के बन्धन हैं, इनके लक्षण क्रम से हम ग्रन्थातरों से कहते हैं।

काम

स्त्रीषु जातो मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा ।
परस्परकृतः स्नेहः काम इत्यभिधीयते ॥

अर्थ—पुरुषों के स्त्रियों में और स्त्रियों के पुरुषों में परस्पर प्रीति करने को काम कहते हैं। परन्तु यह प्रीति उपभोग निमित्त जाननी।

क्रोध

य उष्मा हृदयाज्जातः समुत्तिष्ठति वै सकृत् ।
परहिंसात्मकः क्लेशः क्रोध इत्यभिधीयते ॥

अर्थ–एक बार ही इस प्राणी के हृदय से गरमी प्रगट होकर पर को हिंसात्मक दुःख देनेवाली होती है इससे चित्त को एक प्रकार का क्लेश होता है उस क्लेश को क्रोध कहते हैं।

लोभ

परार्थं परभागांश्च परसामर्थ्यमेव च ।

दृष्ट्वा श्रुत्वा च या तृष्णा जायते लोभ एव सः ।।

अर्थ–परधन, परभाग और पराई सामर्थ्य को देखकर और सुनकर इस प्राणी के चित्त में जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको लोभ कहते हैं।

मोह

अश्रेयःश्रेयसोर्मध्ये भ्रमणं संशयो भवेत् ।

मिथ्याज्ञानं तु तं प्राहुरहिते हितदर्शनम् ।।

अर्थ–अश्रेय (अकल्याण) और कल्याण इन दोनों में बुद्धि के भ्रमण को संशय कहते हैं। और अहित में हित देखना उसको मिथ्याज्ञान (मोह) कहते हैं।।

अहंकार

अहामित्यभिमानेन यः क्रियासु प्रवर्तते ।

कार्यकारणयुक्तस्तु तदहङ्कारलक्षणम् ।।

अर्थ–जो प्राणी कार्य कारण करके युक्त अहं (मैं करता हूं) इस अभिमान के साथ क्रियाओं में प्रवृत्त होता है उसको अहंकार कहते हैं।।

अब बन्धन अबन्धन व्याधि और आरोग्य के लक्षण कहते हैं–

आप्नोति बन्धमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते ।

तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत् सुखावहम् ।।६७।।

अर्थ–यह पुरुष अज्ञान करके क्लेशादिक बन्धन को प्राप्त होता है और आत्मज्ञान (धर्माधर्म के विचार) से उस बन्धन को छूटता है। शरीर और शरीरी इनको जो दुःख देवे उसको व्याधि कहते हैं तथा इनको सुख देवे उसको आरोग्य कहते हैं। दुःख है सो इस प्राणी के स्वभाव के प्रतिकूल है और सुख अनुकूल है।।६७।।

इति सृष्टिक्रमशारीरं समाप्तम् ।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकायां हिन्दीटीकायां कलादिकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

षष्ठोऽध्यायः ६

प्रथम लिख आये हैं कि, "आहारादिगतिस्तथा" अतएव उसी आहारगति अध्याय को कहते हैं–

आहार की गति और अवस्था

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणनिलेरितः । माधुर्यं फनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ।।१।। अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां

व्रजेत् । ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते ॥२॥ ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटु ।

अर्थ–पांचभौतिक[१८१] अन्नादिकों का आहार प्राणवायुकरके[१८२] प्रेरित हुआ प्रथम आमाशय[१८३] में प्राप्त होता है फिर वही छः रसयुक्त भी आहार मधुरभाव[१८४] और फेन (झाग) रूप को प्राप्त होता है, फिर वही आहार उसी आमाशय में पाचक[१८५] पित्त के तेज से विदग्ध होकर अम्ल (खट्टे) भाव को प्राप्त होता है, पश्चात् उस आमाशय से समान वायुकरके ग्रहणी (अग्निस्थान) में प्राप्त होता है। उस ग्रहणीस्थान में कोष्ठाग्निकरके उस आहार का पाक होता है। वह पाक कटु (चरपरा) होता है। आहार की प्रथमावस्था मधुर, दूसरी अम्ल और तीसरी अवस्था कटु जाननी॥१॥२॥

उक्त आहारकी दो अवस्था

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥३॥

अर्थ–उस आहार का उत्तम पाक होने से रस होता है और कच्चा परिपाक होने से उसकी आम होती है॥३॥

रस और आम के कार्य

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः । पुष्णाति धातूनखिलान् सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥४॥ मन्दवह्निविदग्धश्च कटुश्चाम्लो भवेद् रसः ॥ विषभावं व्रजेद् वापि कुर्याद्वा रोमसंकरम् ॥५॥

अर्थ–वही पूर्वोक्त रस अग्नि के बल करके मधुरभाव और स्निग्धता को प्राप्त होकर सम्पूर्ण[१८६] रक्तादि धातुओं को पोषण करता है। अतएव उत्तम प्रकार से परिपक्व हुआ रस अमृत के तुल्य हैं और वही रस मन्दाग्नि करके विदग्ध हुआ विषभाव को प्राप्त होता है अर्थात् कटु अम्ल[१८७] होकर प्राणनाशकारी होता है। कदाचित् अल्प होने से भरणात्मक नहीं होता तो दोषों के दूषित होने से अनेक रुधिर विकार, ज्वर, भगन्दर, कुष्ठादि रोगों को करता है॥५॥

आहार के सार को कहकर निःसार को कहते हैं–

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः । शिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥६॥ तत्किट्टं च मलंज्ञेयं तिष्ठेत् पक्वाशये च तत् ।

अर्थ–उस आहार के रस को सार कहते हैं और आहार का निस्सार जो पदार्थ है उसको मलद्रव कहते हैं तहां वह द्रव मूत्रवाहिनी शिरा द्वारा वस्ति में जाकर मूत्र हो जाता है और अवशिष्ट रहा हुआ जो किट्ट वह पक्वाशय के एक देश में जाकर मल (विष्ठा) हो जाता है॥६॥

मल का अधोगमन

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥७॥ प्रवाहिनी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम् ।

अर्थ–गुदास्तितं[१८८] मल अपानवायु करके अधः-प्रेरित बलित्रितयात्मक गुदा के द्वार बाहर गिरता है। उन बलियों के नाम कहते हैं-प्रवाहिनी, सर्जनी और ग्राहिका इस प्रकार शंखावर्त (शंख के

आँटे के समान) तीन वली हैं।।७।।

सारभूत रस की कार्यत्व करके स्थानान्तर प्राप्ति कहते हैं–

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ।।८।।
रञ्जितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ।

अर्थ–वह रस समान वायु करके प्रेरित हो अग्निस्थान से हृदय[१८९] में आकर रजंक पित्त करके रोगयुक्त[१९०] तथा पाचकपित्त में पाचत हो रुधिररूप को प्राप्त होता है।।८।।

रक्त का प्राधान्य

रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ।।९।।
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद् भवेत् ।

अर्थ–सर्वशरीरस्य (पांचभौतिक[१९१]) रुधिर देहमूलत्व[१९२] होने से जीव का उत्तम आधार है। उसके गुण स्निग्ध, गुरु, चंचल और स्वादु हैं, वही रुधिर विदग्ध कहिये विकृत होने से पित्त के समान कटु (तीक्ष्ण) और खट्टा होता है।।९।।

रसादिधातुओं की उत्पत्ति का क्रम

पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ।।१०।।
शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ।

अर्थ–रसादिक[१९३] सात धातु पित्तताप करके परिपक्व हो क्रम करके एक महीने में शुक्र धातु को उत्पन्न करती हैं। उसी क्रम से एक महीने में स्त्रियों के रज होता है।।१०।।

गर्भोत्पत्तिक्रम

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ।।११।।
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ।

अर्थ–मन के संकल्प करके स्त्रीपुरुषों का रतिसंग होने से शुद्ध[१९४] शोणित (आर्तव) और शुद्ध[१९५] धातु इनके मिलाप करके स्त्रियों के गर्भाशय में गर्भ धारण होता है और जब वह प्रकट होता है तब उसको बालक[१९६] कहते हैं।।११।।

पुत्र[illegible]न्या होने में कारण

आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ।।१२।।
नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा[१९७] पारमेश्वरी ।

अर्थ–गर्भाधानकाल में ऋतुसम्बन्धी रक्त की अधिकता से कन्या होती है और शुक्र धातु के अधिक होने से पुत्र होता है तथा आर्त्तव और शुक्रधातु के समान होने से नपुसंक सन्तान होती है। इसका कारण कर्म के अनुसरणादि परमेश्वर की इच्छा है।।१२।।

बालक की मात्रा का प्रमाण

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ।।१३।। अवलेही कृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः । वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद् भवति वत्सरः ।।१४।। मासैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद् यावत् षोडशवत्सरः । ततः स्थिरा भवेत् तावद् यावद् वर्षाणि सप्ततिः ।।१५।। ततो

बालकवन् मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ।। मात्रेयं कल्कचूर्णानां
कषायाणां चतुर्गुणा ।।१६।।

अर्थ–बालक[१९८] को प्रथम[१९९] महीने में दूध, सहत, खांड और घृत[२००] इनमें से जो उपयुक्त हो उसी के साथ एक रत्ती सुवर्णादिक औषध[२०१] डाल अवलेहभूत (चाटने के योग्य) करके देवे। दूसरे महीने में दो रत्ती, तीसरे महीने में तीन रत्ती, इस प्रकार एक एक रत्ती के हिसाब से औषधि की वृद्धि एक वर्ष करानी चाहिये तो मासे के प्रमाण होय, दूसरे वर्ष में दो मासे[२०२], तीसरे वर्ष में तीन मासे इस प्रमाण औषधि की वृद्धि सोलह वर्षपर्यन्त करनी चाहिये। सोलह वर्ष के उपरांत सत्तर वर्ष की अवस्था पर्यन्त उस औषध के भक्षण में सोलह मासे ही प्रमाण जानना। फिर सत्तरवर्ष के उपरान्त उस मात्रा को जैसे बालक को बढ़ाई थी, उसी प्रमाण मात्रा को घटाता चला जावे। इसका यह कारण है कि बालक और वृद्ध इनकी समान चिकित्सा है तथा कल्परूप, चूर्णरूप और काढ़ा इनकी मात्रा बालक से चौगुणी देनी चाहिये।।१३-१६।।

अञ्जनादि करने का फल

अञ्जनं च तथा लेपः स्नानमभ्यङ्गकर्म च ।
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते ।।१७।।

अर्थ–बालकों के नेत्रों में काजल आदि का लगाना, उबटना करना, स्नान करना, तैलादि की मालिश करना, उलटी करना और प्रतिमर्श (निरूहणवस्ति अर्थात् गुदा में पिचकारी देना) इत्यादि कर्म बालक के जन्म से हितकारी हैं।।१७।।

वमनविरेचनादिकर्म

कवलः पञ्चमाद् वर्षादष्टमान्नस्य कर्म च ।
विरेकः षोडशाद् वर्षाद् विंशतेश्चैव मैथुनम् ।।१८।।

अर्थ–पांच वर्ष के उपरांत कवल (गंडूभेद यानी औषधादि करके कुल्ले करना) करे (पांच वर्ष के भीतर न करे) आठ वर्ष उपरांत नस्य (नास) लेवे, सोलह वर्ष के पश्चात् विरेचन (जुलाब[२०३]) देवे, बीस[२०४] वर्ष के पश्चात् मैथुन करना चाहिये।।१८।।

बाल्यादि दश पदार्थों का ह्रास

बाल्यं वृद्धिवपुमेधा त्वग् दृष्टिः शुक्रविक्रमौ ।
बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत् ।।१९।।

अर्थ–जन्म होने के दश वर्ष पश्चात् बाल्यावस्था नष्ट होती है। बीस वर्ष के पश्चात् शरीर का बढ़ना नष्ट होता है। तीस वर्ष के पश्चात् शरीर मोटा नहीं होता। इस श्लोक में "छविर्मेधा" ऐसा भी पाठ है, उप पक्ष में तीस वर्ष पर्यंत कांति रहती है फिर नहीं रहती। चालीस वर्ष के उपरांत ग्रन्थ पढ़कर याद रखने की शक्ति नहीं रहती। पचास वर्ष के पश्चात् शरीर की त्वचा शिथिल होती हैं। साठ वर्ष के उपरांत दृष्टि की तेजी नष्ट होती है अर्थात् दृष्टि मन्द पड़ जाती है। सत्तर वर्ष के उपरांत वीर्य नहीं रहता। सौ वर्ष के पश्चात् इस प्राणी की कर्मेंद्रिय के चलनवलनादि धर्म जाते रहते हैं। एक सौ दश वर्ष के पश्चात् चैतन्य नष्ट होता है और एक सौ बीस[२०५] वर्ष के पश्चात् जीव नष्ट होता है अर्थात् मरता है। इस दश वर्ष के अनन्तर एक एक का ह्रास (हानि) होता है।।१९।।

वातप्रकृति के लक्षण

अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ।
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥२०॥

अर्थ–छोटे छोटे बाल, कृश और रूखा (तेज रहित) शरीर, वाचाल, बकवादी, चञ्चलचित्त, स्वप्न में आकाश में गमन करे इत्यादि लक्षण वातप्रकृतिवाले मनुष्य के होते हैं॥२०॥

पित्तप्रकृति मनुष्य के लक्षण

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान् स्वेदी च रोषणः ।
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥२१॥

अर्थ–बिना समय बाल[२०६] सफेद हो जावें, बुद्धिमान् हो, अत्यन्त पसीना आता हो, क्रोधी हो और स्वप्न में नक्षत्र अथवा अग्नयादिक को देखे, उस पुरुष की पित्तप्रकृति की जाननी चाहिये॥२१॥

वातप्रकृति के लक्षण

गम्भीरबुद्धिः स्थूलाङ्गः स्निग्धकेशो महाबलः ।
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥२२॥

अर्थ–गम्भीर (संपूर्ण कार्य में क्षमाशील हो बुद्धि जिसकी) हो, पुष्ट शरीर, चिकने बाल और जिसके देह मे बहुत बाल हों तथा स्वप्न में जलाशयों (तालाब सरोवर) आदि को देखे, उस मनुष्य की कफ की प्रकृति जाननी॥२॥

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृति के लक्षण

ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोत्बणा नराः ।

अर्थ–दो दोषों के लक्षण मिलने से द्विदोषज प्रकृतिमान् जानना और तीन दोषों के लक्षणों से मनुष्य त्रिदोषजन्य[२०७] प्रकृतिवाला जानना चाहिये॥

निद्रादिकों की उत्पत्ति

तमःकफाभ्यां निद्रा स्यात् मूर्च्छा पित्ततमोभवा ॥२३॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्राश्लेष्मतमोऽनिलैः ।

अर्थ–तमोगुण और कफ के संसर्ग से निद्रा आती है, पित्त[२०८] और तमोगुण करके मूर्च्छा[२०९] होती है, रजोगुण, पित्त और वायु इन करके भ्रम होता है, कफ, तम और वायु इन करके घटपटादि पदार्थों का अज्ञान हो, शरीर गुरु (भारी) होय, जम्भाई और क्लम कहिये परिश्रम बिना श्रम ये लक्षण होते हैं इस स्थिति को तन्द्रा कहते हैं॥२३॥

ग्लानि के लक्षण

ग्लानिरोजःक्षयाद् दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत् ॥२४॥

अर्थ–संपूर्ण धातुओं के सारभूत ओज के क्षय से, दुःख से अजीर्ण से और श्रम[२१०] करके ग्लानि होती है। ग्लानि[२११] शब्द क्रम का दूसरा पर्यायवाचक नाम है अर्थात् हर्षक्षय जानना॥२४॥

आलस्य के लक्षण

यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते ।

अर्थ–देह में सामर्थ्य होने पर भी काम करने में उत्साहरहित हो उसको आलस्य[२१२] कहते हैं॥

जंभाई के लक्षण

चैतन्यशिथिलत्वाद् यः पीत्वैकश्वासमुद्वमेत् ।।२५।।
विदीर्णवदनः श्वासं जृम्भा सा कथ्यते बुधैः ।

अर्थ–चैतन्य के शिथिल होने से मनुष्य एक श्वास को पी कुछ देर मुख में रखकर फिर उसको मुख फाड़कर बाहर निकाले उसको जंभाई[२१३] कहते हैं।।२५।।

छींक के लक्षण

उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात् ।।२६।।
शब्दः संजायते नस्तः क्षुतं तत् कथ्यते बुधैः ।

अर्थ–उदान (कण्ठस्थित) वायु और प्राण (हृदयस्थ) वायु इनका ऊपर मस्तक में संयोग हो उससे (मस्तक से) कफ गिरे, इन दोनों के संयोग होने से जो शब्द होय उसको क्षुत्[२१४] (छींक) कहते हैं।।२६।।

डकार के लक्षण

उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भवेत् ।
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते ।।२७।।

अर्थ–उदान (कंठस्थित) वायु के कुपित होने से तथा अन्नादिकों के आहार को अपने स्थान में जायके सुस्थिर रहने से जो वायु का उर्ध्वगमन होता है उसको उद्गार (डकार) कहते हैं।।२७।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-
हिन्दीटीकायां आहारादिगतिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

सप्तमोऽध्यायः ७

प्रथमाध्याय में यह कह आये हैं कि "रोगाणां गणना चेति" अतएव उन्हीं रोगों की गणना को दिखाते हैं–

रोगाणां गणना पूर्वं मुनिभिर्या प्रकीर्तिता ।
सा मया प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ।।१।।

अर्थ–स्वरादिकों की गणना (संख्या) प्रथम जो मुनीश्वरों ने कही है उसी संख्या को हम इस ग्रंथ में कहते हैं क्योंकि उन रोगों के अनेक भेद मुनीश्वरों ने कहे हैं। तात्पर्य यह है कि इस ग्रन्थ में रोगों की गणनामात्र कही है अन्य नहीं। संख्या भी इस ग्रन्थ में प्रयोजन के वास्ते कही है, क्योंकि निदानादि पंचक रोगज्ञान के उपाय हैं तिन्होंमें संप्राप्ति जो कही है उसी का भेद संख्या है जैसे लिखा है–"संख्याविकतपप्रधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति"।।१।।

ज्वररोगसंख्या

पञ्चविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ।।२।। पृथग्दोषैस्तथा
द्वन्द्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः । एकश्च सन्निपातेन तद्भेदा बहवः

स्मृताः ॥३॥ प्रायशः सन्निपातेन पञ्च स्युर्विषमा ज्वराः । तथाऽऽगन्तुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः॥४॥अभिचारग्रहा-वेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा । क्षमाद्दाहात् क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातजो ज्वरः॥५॥कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौषधगन्धतः । अभिषङ्गज्वराः षट् स्यूरेवं ज्वरविनिश्चयः ॥६॥

अर्थ–ज्वर पच्चीस प्रकार कहा गया है। उसके भेद कहते हैं– १ वातज्वर[२१५], २ पित्तज्वर[२१६], ३ कफज्वर[२१७], ४ वातपित्तज्वर[२१८], ५ वातकफज्वर[२१९], ६ पित्तकफज्वर[२२०], ७ वातादि तीनों दोषों के मिलने से एक सन्निपातज्वर के तथा सन्निपातज्वर[२२१] के भेद अनेक होते हैं, तिन में प्रायः पांच विषमज्वर हैं–जैसे संतत[२२२], सतत[२२३], अन्येद्यु[२२४], तृतीयक[२२५], चतुर्थक[२२६]।

एक ज्वर से आगंतुकज्वर । उसके तेरह भेद हैं उनको कहता हूं–अभिचारज्वर[२२७], ग्रहावेशज्वर[२२८] और शापज्वर[२२९]। ये तीन प्रकार के ज्वर आगन्तुक ज्वर हैं। श्रम से उत्पन्न हुआ ज्वर, अग्न्यादि दाह करके उत्पन्न हुआ, घाव से उत्पन्न, शस्त्रादि के प्रहार से उत्पन्न ये चार ज्वर ''अभिघात'' संज्ञक जानने। तथा मन में इच्छित स्त्री के प्राप्त न होने से जो ज्वर होता है उसको कामज्वर कहते हैं। और भीति (डरने) से जो होय उसे भयज्वर कहते हैं। शोक (सोच) से होय सो शोकज्वर, क्रोध से हो सो क्रोधज्वर, स्थावर कहिये बच्छनागादिक विष तथा जंगम कहिये सर्पादिक विष इनके सेवन से जो ज्वर होवे उसको विषज्वर कहते हैं। तीव्र औषधि के गन्ध से जो ज्वर होता है उसको गन्धज्वर कहते हैं, ये छः प्रकार के ज्वर ''अभिषङ्ग'' संज्ञक हैं। इस प्रकार तेरह प्रकार के आगन्तुकज्वर और पहले बारह ज्वर सब मिलाने से पच्चीस प्रकार के ज्वर होते हैं॥६॥

अतिसार रोग

पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥७॥ अतिसारः सप्तधा स्यात्-

अर्थ–अतिसार रोग सात प्रकार का है, जैसे–१ वात्त[२३०], २ पित्त[२३१], ३ कफ[२३२], ४ सन्निपात[२३३], ५ शोक[२३४], ६ आम[२३५] और ७ भय[२३६] से उत्पन्न होनेवाला, इनके लक्षण नीचे लिखे अनुसार जानने॥७॥

संग्रहणी रोग

ग्रहणी पञ्चधा मता । पृथग्दोषैः सन्निपातात्तथा चामेन पञ्चमी ॥८॥

अर्थ–संग्रहणी रोग पांच प्रकार का है, जैसे–१ वातसंग्रहणी[२३७], २ पित्तसंग्रहणी[२३८], ३ कफसंग्रहणी[२३९], ४ त्रिदोषजसंग्रहणी[२४०], और पाचवीं आमजन्य[२४१] संग्रहणी, इस प्रकार संग्रहणी के पांच भेद जानने॥८॥

प्रवाहिका चतुर्धा स्यात् पृथग्दोषैस्तथाऽस्रतः ।

अर्थ–प्रवाहिका रोग चार प्रकार का है जैसे–१ वात[२४२] की प्रवाहिका, २ पित्तकी प्रवाहिका[२४३], ३ कफ[२४४] की प्रवाहिका और ४ रुधिर[२४५] की प्रवाहिका। इस प्रकार प्रवाहिका के चार भेद जानने॥

अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतत् ॥९॥ पित्ताद् विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते ॥ विषाजीर्णं रसादेकं–

अर्थ–अजीर्ण रोग तीन प्रकार का है, जैसे–वायु से विष्टब्धाजीर्ण[२४६], पित्त से विदग्धाजीर्ण[२४७] कफ से आमाजीर्ण होता है, अन्न के रस से जो अजीर्ण हो उसको विषाजीर्ण कहते हैं॥९॥

अलसकविशूच्यादि

–दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥१०॥ विषूची त्रिविधा दोषैः सा स्यात् पृथक् पृथक् ॥ दण्डकालसकश्चैव एकैव स्याद् विलम्बिका ॥११॥

अर्थ–वात पित्त और कफ इन तीन दोषों से पृथक् लक्षण करके "अलस"[२४८] रोग तीन प्रकार का है। यह अजीर्ण से उत्पन्न होता है। उसी प्रकार विषूचिका[२४९] (हैजा) वातादि भेदों से पृथक् पृथक् लक्षणों करके तीन प्रकार का है उसको "मोडी निवाही" कहते हैं। "दंडकालसक"[२५०] और "विलंबिका"[२५१] ये दो रोग उसी मोडी के भेद हैं॥१०॥११॥

मूलव्याधि (बवासीर)

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्त्रतः ॥ संनिपाताच्च संसर्गात् तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥१२॥ सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ॥

अर्थ–अर्श (बवासीर रोग) ६ प्रकार का है, जैसे–१ वातार्श[२५२], २ पित्तार्श[२५३], ३ कफार्श[२५४], ४ सन्निपातार्श[२५५], ५ रक्तार्श[२५६], ६ संसर्गार्श[२५७]। इस प्रकार छः प्रकार की बवासीर है, इसको कोई कोई देशवाले मूलव्याधि भी कहते हैं। इस छः प्रकार की अर्श के दो भेद हैं, एक सहज कहिये साथ उत्पन्न हो, दूसरी उत्तर प्रगट अर्थात् जन्म होने के उपरान्त मिथ्या आहार विहारादि करने से वातादि दोष कुपित हो उत्पन्न करे। एवं आर्द्र और शुष्क इन भेदों से दो प्रकार की है। आर्द्र कहिये गोली और शुष्क कहिये सूखी। लौकिक में इनको खूनी और बादी कहा है॥१२॥

चर्मकील रोग

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात् पित्तात् कफादपि ॥१३॥

अर्थ–चर्मकील रोग भी तीन प्रकार का है, जैसे १ वातजचर्मकील[२५८], २ पित्तजचर्मकील[२५९] और ३ कफजचर्मकील[२६०]। इस प्रकार चर्मकील के तीन भेद कहे हैं॥१३॥

कृमिरोग

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते । बाह्यास्तथाभ्यन्तरे च तेषु यूका बहिश्चराः ॥१४॥ लिख्याश्चान्येऽन्तरचराः कफात्ते हृदयादकाः । अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चूरवश्च महागुहाः ॥१५॥ सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातरः । सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः ॥१६॥ केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता मकेरुकाः । लेलिहाश्च मलूनाश्च सौसुरादाः ककेरुकाः ॥१७॥ तथान्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः ।

अर्थ–इक्कीस भेद करके कृमि रोग बाहर और भीतर के भेद से दो प्रकार का है, तिनमें यूका[२६१] (जुआं) लीखं[२६२], चर्मजूआं[२६३] यह तीन प्रकार की कृमि देह के बाहर रहती हैं और अठारह[२६४] प्रकार की कृमि देह की भीतर रहती हैं। इनको लौकिक में जन्तु कहते हैं। उनके भेद मैं कहता हूं–१ हृदयादक, २ अंत्राद, ३ उदरावेष्ट ४ चरव (चिनूना जो बालकों के होते हैं) ५ महागुह ६ सुगन्ध ७ दर्भकुसुम ये सात प्रकार के कृमि कफ[२६५] से उत्पन्न होते हैं। १ मातर २ सौरस ३ लोमविध्वंस ४ रोमद्वीप ५ उदुम्बर ६ केशाद ये छः प्रकार की कृमि रुधिर[२६६] से उत्पन्न होते हं। १ मकेरुक २ लेलिह ३ मलून ४ सौसुराद ५ ककेरुक ये पांच प्रकार की कृमि मल[२६७] से उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार अठारह प्रकार की भीतर की कृमि और तीन प्रकार की पूर्वोक्त बाहर कृमि ये सब मिलकर २१ प्रकार के कृमि होते हैं। उसी प्रकार कफ रक्त से जो उत्पन्न होता है उसको स्नायुक (नहरुआ अथवा नारू) कहते हैं।।१४–१७।।

पाण्डुरोगाश्च पञ्च स्युर्वातपित्तकफस्त्रिधा । त्रिदोषमृत्तिकाभिश्च–

अर्थ–पाण्डरोग[२६८] पांच प्रकार का है जैसे–वातपाण्डु[२६९] २ पित्तपाण्डु[२७०] ३ कफपाण्डु[२७१] ४ सन्निपातपाण्डु[२७२] ५ मृत्तिका भक्षण[२७३] से जो होता है वह मृत्तिका भक्षण का पाण्डु इस प्रकार पाण्डुरोग पांच प्रकार का है।।–

कामला, कुम्भकामला और हलीमक्र रोग

–तथैका कामला स्मृता । स्यात् कुम्भकामला चैका तथैव च
हलीमकम् ।।१८।।

अर्थ–कामलारोग एक प्रकार का यह रोग[२७४] पांडुरोग की उपेक्षा करने[२७५] से होता है। यह स्वतन्त्र है और उस कामला के दो भेद हैं–एक कुम्भकामला और दूसरा हलीमक ।।१८।।'

रक्तपित्तरोग

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम् ।
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम् ।।१९।।

अर्थ–रक्तपित्त[२७६] तीन प्रकार का है–एक ऊर्ध्वगामी, दूसरा अधोगामी और तीसरा वह जो ऊपर और नीचे दोनों मार्ग से हो। इनमें जो ऊर्ध्वगामी अर्थात् जो मुखादि मार्ग से गिरता है वह कफसम्बन्ध करके होता है और जो अधोमार्ग (गुदादि) द्वारा गिरे वह वात के सम्बन्ध से होता है, एवं दोनों मार्ग अर्थात् गुदा और मुख से गिरनेवाला रक्त-पित्त, कफ और वादी के सम्बन्ध से गिरता है। रक्तपित्त के ये तीन भेद जानने।।१९।।

कासरोग

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः ।
उरः क्षताच्चतुर्थः स्यात् क्षयाद् धातोश्च पञ्चमः ।।२०।।

अर्थ–कास[२७७] (खांसी) का रोग पांच प्रकार का है–१ वातकास[२७८], २ पित्तकास[२७९] ३ कफकास[२८०], ४ छाती में कुठार आदि के प्रहार से पीड़ा होकर जो होता है वह उरक्षतरोग[२८१] उससे उत्पन्न हुआ कास और धातुक्षयज[२८२] कास ऐसे कास और (खांसी) का रोग पांच प्रकार का है।।२०।।

क्षयरोग

क्षयाः पञ्चैव विज्ञेपास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ।
चतुर्थः सन्निपातेत पञ्चमः स्यादुरः क्षतात् ।।२१।।

अर्थ–क्षयरोग[२८३] पांच प्रकार का है, जैसे १ वातक्षय[२८४], २ पित्तक्षय[२८५], ३ कफक्षय[२८६], ४ सान्निपातिकक्षय[२८७], पांचवा उर:क्षत[२८८] के होने से इस प्राणी के होता है इस भांति क्षयरोग को पांच प्रकार का जानना। इसको क्षयी, राजयक्ष्मा और राजरोग भी कहते हैं।।२१।।

शोषरोग

शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो ब्रणात् ।
अध्वश्रमाच्च व्यायामाद् वार्धक्यादपि जायते ।।२२।।

अर्थ–क्षयरोग का भेद शोषरोग[२८९] है। उसके कारण–१ अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करना, २ अति शोक करना, ३ घाव, ४ अत्यंत रस्ता चलना, ५ बहुत दंड कसरत करना और ६ वृद्धावस्था है। इन छः कारणों से शोषरोग (जिससे देह सूख जाता है वह रोग) होता है।।२२।।

श्वासरोग

श्वासश्च पञ्च विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा ।
ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पञ्चमः ।।२३।।

अर्थ–श्वासरोग पांच प्रकार का है–१ क्षुद्रश्वास[२९०], २ तमकश्वास[२९१], ३ ऊर्ध्वश्वास[२९२], ४ महाश्वास[२९३] और ५ छिन्नश्वास[२९४]। इस प्रकार श्वास रोग पांच प्रकार के हैं।।२३।।

हिक्कारोग

कथिताः पञ्च हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा ।
गम्भीरा यमला चैव महती पञ्चमीति च ।।२४।।

अर्थ–हिक्का (हिचकी) रोग पांच प्रकार का है, जैसे–१ क्षुद्रा[२९५] हिचकी, २ अन्नजा[२९६] हिचकी, ३ गंभीर हिचकी[२९७], ४ यमला हिचकी[२९८] और ५ पांचवीं महती[२९९] हिचकी। इस प्रकार हिचकी पांच प्रकार की हैं।।२४।।

जठराग्नि के विकार

चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषमो वातसम्भवः ।
तीक्ष्णः पित्तात् कफान् मन्दो भस्मको वातपित्ततः ।।२५।।

अर्थ–जठर अर्थात् उदर की अग्नि के चार प्रकार के विकार हैं–जैसे वादी से विषमाग्नि[३००] होती है, पित्त से तीक्ष्णाग्नि[३०१] होती है, कफ से मंदाग्नि[३०२] होती है और वातपित्त से भस्माग्नि[३०३] होती है।।२५।।

अरोचक रोग

पञ्चैवारोचकाज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा । सन्निपातान्मनस्तपात्-

अर्थ–अरोचक रोग पांच प्रकार का है–१ वातारोचक[३०४], २ पित्तारोचक[३०५], ३ कफारोचक[३०६], ४ संनिपातारोचक[३०७] और ५ मन को दु:ख[३०८] होने से जो सन्ताप होता है उससे इस प्रकार उत्पन्न होनेवाला पांच प्रकार का अरोचक (अरुचि) रोग जानना।।

छर्दिरोग

छर्दयः सप्तधा मताः ।।२६।। त्रिभिर्दोषैः पृथक् तिस्रः कृमिभिः
सन्निपाततः।घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ।।२७।।

अर्थ–छर्दि (वमन) रोग सात प्रकार का है। जैसे–१ वातकी[३०९] छर्दि, २ पित्त[३१०] की छर्दि, ३ कफ[३११]

की छर्दि, ४ कृमियों[३१२] के विकार की छर्दि, ५ सन्निपात[३१३] की छर्दि, ६ अमेध्य और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों[३१४] के दुर्गन्ध से तथा मन के तिरस्कार होने से होती है, ७ सातवीं छर्दि स्त्रियों के गर्भ रहने के पश्चात् होती है। इस प्रकार से सात प्रकार की छर्दि जानना।।२६।।२७।।

स्वरभेदरोग

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ।
मेदसा सन्निपातेन क्षयात् षष्ठः प्रकीर्तितः ।।२८।।

अर्थ–स्वरभेद[३१५] (गले का बैठ जाना) रोग के छः प्रकार हैं। जैसे १ वात का स्वरभेद[३१६], २ पित्त[३१७] का स्वरभेद, ३ कफ[३१८] का स्वरभेद, ४ मेद बढ़ने का स्वरभेद[३१९], ५ सन्निपात[३२०] का स्वरभेद और छटा क्षयरोग[३२१] का स्वरभेद। ऐसे स्वरभेदरोग छः प्रकार का जानना।।२८।।

तृष्णारोग

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात् पित्तात् कफादपि ।
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद् धातोश्च षष्ठिका ।।२९।।

अर्थ–तृष्णारोग छः प्रकार का है, जैसे १ वाततृष्णा[३२२], २ पित्ततृष्णा[३२३], ३ कफतृष्णा[३२४], ४ त्रिदोषतृष्णा[३२५], ५ आगंतुक जो शस्त्रादिको करके क्षत होने से होती है सो उपसगज[३२६] तृष्णा और ६ जो धातुक्षय होती है सो धातुक्षयजन्य[३२७] तृष्णा ऐसे छः प्रकार की तृष्णा (प्यास) रोग है। मनुष्यों को जो बारंबार पानी पीने की इच्छा होती है और पानी पीने से भी प्यास जाती नहीं फिर फिर इच्छा होती है उसको तृष्णा कहते हैं।।२९।।

मूर्च्छारोग

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् । चतुर्थीसंनिपातेन–

अर्थ–मूर्च्छा चार प्रकार की है–१ वात्त[३२८] की मूर्च्छा, २ पित्त[३२९] की मूर्च्छा, ३ कफ[३३०] की मूर्च्छा और चौथी सन्निपात[३३१] की मूर्च्छा है। इस प्रकार चार प्रकार की मूर्च्छा जानना। तहां पित्त तमोगुण से मोह उत्पन्न होता है। संज्ञा और चेष्टा के वहनेवाले छिद्र वात के विकार से आच्छादित होने से, अकस्मात् शरीर में तमोगुण बढ़कर सुख दुःख का ज्ञान जाता रहे और मनुष्य लकड़ी के समान पृथ्वी पर गिर जावे उसको मूर्च्छा कहते हैं।

भ्रम, निद्रा, तन्द्रा, संन्यासरोग

–तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ।।३०।। निद्रा तंद्रा च संन्यासो
ग्लानिश्चैकैकजः स्मृतः ।

अर्थ–भ्रम १, निद्रा २, तन्द्रा ३, सन्यास[३३२] ४ और ग्लानि ५, ये पांच रोग एक एक प्रकार के हैं, इनके क्रम से लक्षण कहते हैं। रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम उत्पन्न होता है, तमोगुण और कफ इन दोनों से उत्पन्न हो, इंद्रिय और मन को मोहित कर बाह्य घटपटादिक पदार्थों का ज्ञान न रहे, उस अवस्था को निद्रा कहते हैं। और इंद्रियों को मोहित कर कुछ सोवे और जागता रहने पर नेत्र खुले मूंदे रहें उसको तंद्रा कहते हैं। देह मन इनका व्यापार बन्द होकर मरे के समान लकड़ी सा गिर पड़े उसको वाणीसंन्यास कहते हैं। यह एक घोर निद्रा की अवस्था है। ग्लानि के लक्षण इसी खण्ड के छठे अध्याय के अन्त में कह आये हैं सो जानना।।३०।।

मदरोग

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफास्त्रयः ॥३१॥
त्रिदोषैरसृजो मद्याद् विषादपि च सप्तमः ।

अर्थ–मदरोग सात प्रकार का है। जैसे १ वातमद, २ पित्तमद, ३ कफमद, ४ त्रिदोषमद, ५ रुधिर कुपित होने से जो होय सो करो और ६ प्रमाण से अधिक मद्य पीने से होय, सो तथा वच्छनाग आदि विष भक्षण करने से होय सो। इस प्रकार ७ प्रकार के मदरोग जानने। सुपारी, कोदो धान्य, धतूरा इत्यादि के भक्षण करने से जैसे मतवाला आदमी हो जाता है उसी प्रकार का वातादि दोष दुष्ट होकर मन को विभ्रम करते हैं उसको मद कहते हैं। इस रोगवाले को मतवाला कहते हैं।।३१।।

मदात्ययरोग

मदात्ययश्चतुर्धा स्यात् वातात् पित्तात् कफादपि ॥३२॥
त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा । पानाजीर्णं तथा चैकं
तथैकः पानविभ्रमः ॥३३॥ पानात्ययस्तथा चैकः–

अर्थ–मद्य का प्रमाण इस प्रकार लेना कि प्रातःकाल दांतन आदि शरीर की शुद्धि कर कर्म से निबटकर ८ तोले मद्य पीवे। दुपहर को चिकने पदार्थ घी मिला गेहूं का चून (मैदा) आदि तथा मांस इत्यादिकों के साथ पीवे। तथा रात्रि के आरंभ में चौगुनी पीवे परन्तु जितना अपनी देह को सहन होवे उतना ही पीवे, बढ़ती न होवे। इस प्रकार सेवन करने से वह मद्य रसायनरूप होकर आयुष्य की तथा शरीर की वृद्धि करता है। तथा बल देता है और अमृत के समान हितकारक होता है। इसमें अन्तर पड़ने से अर्थात् जितनी सेवन करते हैं उससे अधिक सेवन करने से बुद्धि भ्रंश होवे तथा वह मद्य विष के समान होकर दाहादिक उपद्रव के चिह्न करता है। प्राण व्याकुल होते हैं। तथा कहीं कही प्राणहानि भी होती है। उसको मदात्यय रोग कहते हैं। यह मदात्यय वात, पित्त[334], कफ[335], त्रिदोष[336] इन भेदों से चार प्रकार का है। परमपद, पानाजीर्ण, पान, विभ्रम और पानात्यय ये चार मदात्यय रोग के भेद जानने। यदि मद्य पीने आदि के गुणागुण अधिक जानने हों तो चरक सुश्रुत आदि बृहद् ग्रन्थों को देखो।।३२।।३३।।

दाहरोग

–दाहाः सप्त मतास्तथा । रक्तापित्तात् तथा रक्तात् तृष्णायाः
पित्ततस्तथा ॥३४॥ धातुक्षयन्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ।

अर्थ–देह में जो जलन होती है, उसको दाह रोग कहते हैं। यह सात प्रकार का है–१ रक्त[337] पित्त के कुपित होने से होय, २ रुधिर[338] के कोप से होय, ३ तृषा[339] के रोकने से, ४ पित्त[340] के कोप से. ५ रसादि[341] धातुओं के क्षय करके, ६ मर्मस्थल[342] में चोट लगने से जो होय और ७ बड़े भारी घोर शस्त्रादि[343] का प्रहार होकर कोठे में रुधिर जमने के कारण से होवे। इस प्रकार दाह रोग सात प्रकार का जानना।।३४।।

उन्मादरोग

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ।
संनिपाताद् विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥३५॥

अर्थ–उन्माद रोग छः प्रकार का है, जैसे–१ वातोन्माद[344], २ पित्तोन्माद[345], ३ कफोन्माद[346], ४

सन्निपातोन्माद[३४७], ५ विष[३४८] सेवन का उन्माद, ६ धन-बंधु-नाशजन्य मन के दुःख होने से होता है, सो शोकज[३४९] उन्माद वातादिक दोषों के बढ़ने से अपना अपना नित्य का मार्ग छोड़कर अन्य मनोवाहिनी नाड़ियों में जाके चित्त में विभ्रम करती है। इससे इस रोग को उन्माद कहते हैं।।३५।।

भूतोन्मादकरोग

भूतान्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि । गन्धर्वात्किन्नराद् यक्षात् पितृभ्यो गुरुशापतः ।।३६।। प्रेताच्च गुह्यकाद् वृद्धात् सिद्धाद् भूतात् पिशाचतः । जलाधिवेतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ।।३७।। राक्षसादपि कूष्माण्डात् कृत्यावेताल-योरपि ।

अर्थ–भूतान्माद बीस प्रकार का है उनके नाम कहते हैं–जैसे १ देवग्रह[३५०] कहिये गणमातृकादिक, २ दानव[३५१] (पापबुद्धि असुर), ३ गन्धर्व[३५२] (देवताओ के आगे गान करनेवाले, ४ किन्नर[३५३] (उन्हीं गन्धर्वो का भेद है),५ यक्ष[३५४], ६ पितर[३५५] (अग्निष्वातादिक), ७ गुरु[३५६] के शाप, ८ प्रेत, ९ गुह्यक, १० वृद्ध, ११ सिद्ध, १२ भूत, १३ पिशाच[३५७], १४ चलाधिदेवता[३५८], १५ नाग[३५९], १६ ब्रह्मराक्ष[३६०], १७ राक्षस[३६१], १८ कूष्मांडराक्षस, १९ कृत्या, २० वेताल। इस प्रकार बीस भेद देवतादिक ग्रहों के कहे हैं। तिन में ग्रह का शरीर में संचार होकर उस ग्रह की सी चेष्टा के समान मनुष्य चेष्टा करते हैं उसको भूतोन्माद कहते हैं।।३६।।३७।।

अपस्माररोग

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात् समीरात् पित्ततस्तथा ।।३८।।
श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ।

अर्थ–अपस्मार[३६२] रोग चार प्रकार है जैसे–१ वातापस्मार[३६३], २ पित्तापस्मार[३६४], ३ कफापस्मार[३६५] और ४ संनिपापस्मार[३६६] इस प्रकार से अपस्मार (मृगी) रोग को चार प्रकार का जानना।।३८।।

आमवातरोग

चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तककस्त्रिया ।।३९।। चतुर्थः सन्निपाताच्च शूलान्यष्टौ बुधा जगुः । पृथग्दोषैस्त्रिया द्वन्द्व-

अर्थ–आमवात[३६७] रोग चार प्रकार का है। जैसे–१ वातामवात[३६८], २ पितामवात[३६९], ३ कफामवात[३७०], ४ सनिपातामवात[३७१], इन भेदों से आमवात रोग चार प्रकार का है।।३९।।

–भेदेन त्रिविदान्यपि ।।४०।। आमेन सप्तम प्रोक्तं सन्निपातेन चाष्टमम् ।।

अर्थ–शूलरोग आठ प्रकार का है–१ वातशूल[३७२], २ पित्तशूल[३७३], ३ कफशूल[३७४], ४ वातपित्तशूल[३७५], ५ पित्तकफशूल, ६ कफवातशूल[३७६], ७ आमशूल[३७७], ८ संनिपातशूल[३७८], इस प्रकार आठ प्रकार का शूल रोग है। इन आठों में बहुधा वायु मुख्य शूलकर्ता है।।४०।।

परिणामशूल रोग

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥४१॥ मलैर्यैः शूल संख्या स्यात्तैरेव परिणामजे। अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥४२॥ एकैकं गणितं सुज्ञैः-

अर्थ-भोजन पचने पर जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं, वह उन वातादि दोषों करके परिणामशूल आठ प्रकार है। अन्नद्रव[३७९]शूल और जरत्पित्त[३८०]शूल ये दो शूल एक एक प्रकार के जानने॥४१॥४२॥

उदावर्तरोग

-उदावर्तास्त्रयोदश । एकः क्षुधा निग्रहजस्तृष्णारोधाद् द्वितीयकः ॥४३॥ निद्राघातात् तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वास-निग्रहात् । छर्दिरोधात् पञ्चमः स्यात् षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥४४॥ जृम्भारोधात् सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः । नवमः स्यादश्रुरोधाद् दशमः शुक्रवारणात् ॥४५॥ मूत्ररोधान्मल-स्यापि रोधाद् वातविनिग्रहात् । उदावर्तास्त्रयश्चैतेघोरोप-द्रवकारकाः ॥४६॥

अर्थ-उदावर्त रोग १३ प्रकार का है-जैसे १ क्षुधा[३८१], २ तृषा[३८२], ३ निद्रा[३८३], ४ श्वास[३८४], ५ वमन[३८५], ६ छीके[३८६], ७ जंभाई[३८७], ८ डकार[३८८], ९ नेत्रसंबंधी[३८९] जल, १० शुक्रधातु[३९०], ११ मूत्र[३९१], १२ मल[३९२] और १३ वायु[३९३]। इन तेरह प्रकार के वेगों के रोकने से तेरह प्रकार का उदावर्त उत्पन्न होता है। इनमें मूत्र मल और वायु इन तीनों के रोकने से जो उदावर्त हो वह घोर उपद्रव करता है॥४३-४६॥

आनाहरोग

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्वाशयोद्भवः ।
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥४७॥

अर्थ-आनाह[३९४] रोग दो प्रकार का है-एक पक्वाशय में होने से पेट को फुलाता है दूसरा आमाशय में होता है जिसको प्रत्याना कहते हैं, इस प्रकार दो प्रकार का आनाह रोग अर्थात् अफरा रोग जानना॥४७॥

उरोग्रह और हृदयरोग

उरोग्रहस्तथा चैकोहृद्रोगाः पञ्च कीर्तिताः । वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः सन्निपाततः ॥४८॥ पञ्चम कृमि संजातः-

अर्थ-छाती में खीचने के समान पीड़ा होवे, उसे उरोग्रह[३९५] कहते हैं उसे एक प्रकार का जानना तथा हृदयरोग पांच प्रकार का है, जैसे[४००]-१ वातहृद्रोग[३९६], २ पित्तहृद्रोग[३९७], ३ कफहृद्रोग[३९८], ४ सन्निपातजहृद्रोग[३९९] तथा ५ कृमिरोगजन्यहृद्रोग, इस प्रकार हृद्रोग पांच प्रकार का है॥४८॥

उदर रोग

-तथाष्टावुदराणि च । वातात् पित्तात् कफात् त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जलादपि ॥४९॥ प्लीह्नः क्षताद् बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम् ।

अर्थ-उदर[४०१]रोग आठ प्रकार का है-१ वातोदर, २ पित्तोदर, ३ कफोदर, ४ त्रिदोषोदर, ५ जलोदर, ६ प्लीहोदर, ७ क्षतोदर, ८ बद्धगुदोदर, इस प्रकार आठ प्रकार के उदररोग जानने।।४९।।

गुल्मरोग

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ।।५०।। द्वन्द्वभेदात्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः । रक्तस्त्वष्टमकः ख्यातः-

अर्थ-गुल्म[४०२] (गोलेका) रोग आठ प्रकार का है, जैसे वातगोला, २ पित्तगोला, ३ कफगुल्म, ४ वातपित्तगुल्म, ५ पित्तकफगुल्म, ६ कफवातगुल्म, ७ सन्निपातगुल्म और ८ रक्तगुल्म। इस प्रकार आठ प्रकार का गुल्मरोग जानना।।५०।।

मूत्रघातरोग

-मूत्राघातस्त्रयोदश ।।५१।। वातकुण्डलिका पूर्वं वाताष्ठीला ततः परम् । वातवस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः ।।५२।। पञ्चमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः । मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः ।।५३।। मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः । मूत्रसादश्चोष्णवातो वस्तिकुण्डलिका तथा ।।५४।।त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः।

अर्थ-मूत्रा[४०३]गातरोग १३ प्रकार का है जैसे-१ वातकुंडलिका, २ वाताष्ठीला, ३ वातवस्ति, ४ मूत्रातीत, ५ मूत्रजठर, ६ मूत्रक्षय, ७ मूत्रोत्सर्ग, ८ मूत्रग्रन्थी, ९ मूत्रशुक्र, १० विड्घात, ११ मूत्रसाद, १२ उष्ठवात, १३ वस्तिकुंडलिका, ऐसे तेरह प्रकार के मूत्राघात जानने। तिनमें मूत्रसाद उष्णवात वस्ति ये तीन बड़े भारी प्राण संकट करनेवाले हैं। पीड़ा थोड़ी होकर मूत्र का रुकना अधिक होवे, उस व्याधि को मूत्राघात कहते हैं। और मूत्रकृच्छ्र में मूत्र के रुकने से या अल्प मूत्र होने से अत्यंत पीड़ा होती है, इससे मूत्राघात और मूत्रकृच्छ्र में भेद है।।५१-५४।।

मूत्रकृच्छ्र

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युवातपित्तकफस्त्रिधा।।५५।।संनिपाताभभ च्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं तु पञ्चमम् । विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं धातुकृच्छ्रं च सप्तमम् ।।५६।। अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं-

अर्थ-मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकार का है। जैसे-१ वातमूत्रकृच्छ्र[४०४], २ पित्तमूत्रकृच्छ्र[४०५], ३ कफमूत्रकृच्छ्र[४०६], ४ संनिपात[४०७]मूत्रकृच्छ्र, ५ शुक्रमूत्र[४०८]कृच्च्त्र, ६ विण्मूत्र[४०९]कृच्छ्र, ७ धातुकृच्छ्र, और ८ अश्मरीकृच्छ्र। इस प्रकार मूत्रकृच्छ्र[४११] आठ प्रकार का है। मूत्रकृच्छ कहिये वातादि दोष अपने अपने कारण करके पृथक् पृथक् अथवा मिलकर कुपित हो। मूत्राशय में प्रवेश कर मूत्रमार्ग को पीड़ित करे। जिस समय यह मनुष्य अत्यन्त क्लेश करके मूत्रे उस रोग को मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।।५५।।५६।।

अश्मरीरोग

-चतुर्धा चाश्मरी मता । वातात् पित्तात् कफात् शुक्रात्-

अर्थ-अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकार है। जैसे १ वाता[४१२]श्मरी, २ पित्त[४१३]श्मरी, ३ कफा[४१४]श्मरी और ४ शुक्रा[४१५]श्मरी, इस प्रकार चार प्रकार की पथरी जाननी। वायु कुपित हो वस्ति में जायके

मूत्र, शुक्र, धातु, पित्त, कफ इनको सुखाय के उसी के मुख में क्रम करके पाषाण के गोले के समान गांठ उत्पन्न करे। इस रोग को पथरी कहते हैं। जैसे गौ के पित्त में क्रम से गोरोचन होता है उसी प्रकार पथरी होती हैं, इसमें वस्ति का फूलना तथा वस्ति, शिश्न (लिंग) और अण्डकोष इनमें पीड़ा तथा मूत्रकृच्छ्र, अरुचि इत्यादिक उपद्रव होते हैं। जिस पथरी का पाक होकर बालू के समान मूत्रमार्ग में होकर गिरे इसको शर्कराश्मरी कहते हैं।

प्रमेहरोग

–तथा मेहाश्च विंशतिः ।।५७।। इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः । शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च सीतकः ।।५८।। सिकताह्वः शनैर्मेहो दशैते कफसंभवाः । मंजिष्ठाख्यो हरिद्राभो नीलमेहश्चरक्तकः।।५९।।कृष्णमेहः क्षारमेहः षडैते पित्तसंभवाः । हस्तिमेहो वसामहो मज्जामेहो मधुप्रभः ।।६०।। चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ।

अर्थ–प्रमेह रोग बीस प्रकार का है, जैसे १ इक्षुमेह[४१६], २ सुरामेह[४१७], ३ पिष्टमेह[४१८], ४ सान्द्रमेह[४१९], ५ शुक्रमेह[४२०], ६ उदकमेह[४२१], ७ लालमेह[४२२], ८ शीतमेह[४२३], ९ सिकतामेह[४२४] और १० शनैमेह[४२५]। ये दश प्रमेह कफजन्य हैं अर्थात् कफ से प्रगट होते हैं। १ मंजिष्ठमेह[४२६], २ हरिद्रामेह[४२७], ३ नीलमेह[४२८], ४ रक्तमेह[४२९], ५ कृष्णमेह[४३०] और ६ क्षारमेह[४३१], ये छः प्रमेह पित्तजन्य हैं। १ हस्तिमेह[४३२], २ वसामेह[४३३], ३ मज्जामेह[४३४], ४ मधुमेह[४३५]। ये चार प्रकार के प्रमेह वातजन्य हैं अर्थात् वात से प्रगट हैं। इस प्रकार सब मिलाकर बीस प्रकार के प्रमेह जानना।।५७-६०।।

सोमरोग

सोमरोगस्तथा चैकः–

अर्थ–सब देह में उदक क्षोभित होकर योनिमार्ग से सफेद रंग का गिरता है उसको सोमरोग कहते हैं वह एक ही प्रकार का है।

प्रमेहपिटिका

–प्रमेहपिटिका दश ।।६१।। शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनताऽलजी । मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ।।६२।। विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसंभवाः।

अर्थ–प्रमेह की पिटिका (फुन्सी) दश प्रकार की हैं, जैसे १ शराविका[४३६], २ कच्छपिका[४३७], ३ पुत्रिणी[४३८], ४ विनता[४३९], ५ अलजी[४४०], ६ मसूरिका[४४१], ७ सर्षविका[४४२], ८ जालिनी[४४३], ९ विदारिका[४४४], और १० विद्राविका[४४५]। इस प्रकार दश प्रकार की पिटिका प्रमेह की उपेक्षा करने से होती हैं। यह सन्धि में मर्मस्थल में तथा जिस जगह मांस विशेष होता है उस जगह तथा देह में मेद दुष्ट होने से उत्पन्न होती हैं।।६१।।६२।।

मेदोदोषस्तथा चैकः–

मेदरोग

अर्थ–मेदरोग एक प्रकार का है। उसके लक्षण ये हैं कि, कफ को उत्पन्न करनेवाला आहार, विहार, स्नेहान्न कहिये घृतपक्व गोधूमपिष्टादि लड्डू, शकरपारे इत्यादि के सेवन करने से मेद

बढ़ता है। उससे अन्यधातु, अस्थ्यादि शुक्रान्त, उनका पोषण नहीं होता है किन्तु मेद बढ़ता है। जिससे मनुष्य सर्व कर्म में अशक्त हो जाता है और अल्पश्वास, तृषा, मोह, निद्रा, श्वासावरोध, सोते में अत्यन्त ठोरना, शरीर में ग्लानि, छींक, पसीनों की दुर्गंधि, अल्पप्राण और अल्पमैथुन इत्यादिक उपद्रव होते हैं। मेद सर्व प्राणीमात्रों के प्रायः करके रहती है अतएव जिस मनुष्य के मेदरोग होता है उसके पेट की बहुधा, अधिक वृद्धि होती है और उस मेह करके मार्ग रुद्ध होने पर पवन कोष्ठाग्नि में विशेष करके संचार करने लगता है और अग्नि को प्रदीप्त करके आहार को शोषण कर लेता है। इसी से भोजन किया हुआ पदार्थ तत्काल जीर्ण हो, फिर दूसरे भोजन की इच्छा होती है। कदाचित् भोजन का समय टल जावे तो घोर विकार प्रमेह, पीड़िका, ज्वर, भगन्दर, विदधि और वातरोग इनमें से कोई सा एक रोग होता है। और विशेषकर अग्नि और वायु ये उपद्रवकारी होने से मेदोरोगी के शरीर को जलाते हैं। इस विषय में दृष्टांत है–जैसे वनसम्बन्धी अग्नि और वायु की सहायता से वन को जलाता है उसी प्रकार जलावे तथा वह मेद अत्यन्त कुपित होने से एक की वातादिदोष कुपित हों। घोर उपद्रव करके मनुष्य को शीघ्र मारते हैं। उस मेद के योग से शरीर अत्यंत मोटा होने से मनुष्य का उदर, स्तन, और कूल्हे ये चलते समय थल थल हिलते हैं तथा विसर्प, भंगदर, ज्वर, अतिसार, प्रमेह, बवासीर, श्लीपद इत्यादि उपद्रव होते हैं। इस प्रकार मेदरोग के लक्षण जानने।।६१।।६२।।

शोथरोगा नव स्मृताः ।।६३।। दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाता-
द्विषादपि ।।

अर्थ–शोथरोग नौ प्रकार का है–१ वातशोध[४४६], २ पित्तशोथ[४४७], ३ कफशोथ[४४८], ४ वातपित्तशोथ[४४९], ५ पित्तकफशोथ[४५०], ६ कफवातशोथ[४५१], ७ त्रिदोष[४५२] की शोथ, ८ अभिघातशोथ[४५३] और ९ विषशोथ[४५४]। इस प्रकार शोथ रोग नौ प्रकार का है। इसको लोक में सूजन कहते हैं। स्वकारण से वायु कुपित होकर उसी प्रकार दुष्ट हुआ रक्त पित्त और कफ इनको बाहर की शिराओं में लायकर फिर वायु उस रक्तपित्त और कफ करके रुद्धगति हो त्वचा और मांस इनके आश्रित जो सूजन है उसको अकस्मात् उत्पन्न करे उस रोग को सूजन कहते हैं।।६३।।

वृद्धिरोग

घृद्धयः सप्त गदिता वातात् पित्तात् कफेन च ।।६४।। रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी ।

अर्थ–वृषण जिससे बड़े होवें उस रोग को वृद्धि कहते हैं। वह रोग सात प्रकार का है, जैसे–१ वातवृद्धि[४५५], २ पित्तवृद्धि[४५६], ३ कफवृद्धि[४५७], ४ रक्तवृद्धि[४५८], ५ मेहवृद्धि[४५९], ६ मूत्रवृद्धि[४६०] होय उसके होने से भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ये लक्षण होंय, हाथ लगाने से दूखे इसीसे नेत्र लाल होंय उसमें अत्यन्त दाह तथा पाक और ७ अन्त्रवृद्धि[४६१]। इस प्रकार वृद्धिरोग सात प्रकार का है। वृद्धिरोग अर्थात् वायु अपने स्वकारण करके कुपित हो सूजन और शूल को करती नीचे के भाग में जायकर वंक्षणद्वारा अंडकोशों में जायके वृषणवाहिनी नाड़ियों को दूषित कर कफ जैसे वृषण की गोला के ऊपर की त्वचा को बढ़ाय देवे उसको वृद्धिरोग कहते हैं।।६४।।

अण्डवृद्धिरोग

अण्डवृद्धिस्तथा चैक :—

अर्थ–गण्डकोश को वृद्धि को (पोते छिटकना) तथा कुरंड कहते हैं। यह एक प्रकार का है।

इसके लक्षण बहुधा अन्त्रवृद्धि के समान होते हैं।।

गण्डमाला, गलगण्ड और अपचीरोग

–तथैका गण्डमालिका ।।६५।। गण्डोऽपचीति चैका स्यात्–

अर्थ–गण्डमाला[४६२], (गलगंड[४६३]) अपची[४६४] ये तीन रोग एक एक प्रकार के हैं इनके लक्षण नीचे लिखे हैं सो देखना।।६५।।

ग्रन्थीरोग

–ग्रन्थसो नवधा मताः । त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्तात् शिराभि–

र्मेदसो व्रणात् ।।६६।। अस्थ्ना मांसेन नवमः–

अर्थ–ग्रंथिरोग नौ प्रकार का है। १ जैसे–वातग्रंथी[४६५], २ पित्तग्रंथी[४६६], ३ कफग्रंथी[४६७], ४ रक्तग्रंथी[४६८], ५ शिराग्रंथी[४६९], ६ मेदोग्रंथी[४७०], ७ व्रणग्रन्थी[४७१], ८ अस्थिग्रंथी[४७२] और ९ मांसग्रंथी[४७३]। इस प्रकार ग्रंथिरोग नौ प्रकार का है। वातादिदोष मांस और रक्त ये दुष्ट होकर मेद और शिरा इनको दूषित कर गोल और ऊंची तथा गांठ के समान सूजन उत्पन्न करे उसको ग्रंथी अर्थात् गांठ कहते हैं।।६६।।

अर्बुदरोग

षड्विधं स्यात्तथाऽर्बुदम् । वातात् पित्तात् कफाद् रक्तान्मां–

सादपि च मेदसः ।।६७।।

अर्थ–अर्बुदरोग[४७४] छः प्रकार का है, जैसे–१ वातार्बुद[४७५], २ पित्तार्बुद ३ कफार्बुद ४ रक्तार्बुद[४७६], ५ मांसार्बुद[४७७] और ६ मेद की अर्बुद, ऐसे अर्बुदरोग को छः प्रकार का जानना।।६७।।

श्लीपदरोग

श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात् कफादपि ।

अर्थ–श्लीपद[४७८] रोग तीन प्रकार का है–१ वात[४७९] का श्लीपद, २ पित्त[४८०] का श्लीपद, ३ कफ[४८१] का श्लीपद, ऐसे तीन प्रकार का जानना।।

विद्रधिरोग

विद्रधिः षड्विधः ख्यातो वातपित्तकफैस्त्रयः ।।६८।।

रक्तात् क्षतात् त्रिदोषैश्च–

अर्थ–विद्रधिरोग[४८२] छः प्रकार का है, जैसे–१ वात[४८३] की विद्रधि, २ पित्त की विद्रधि[४८४], २ कफ[४८५] की विद्रधि, ४ रुधिरजन्यविद्रधि[४८६], ५ क्षतजन्यविद्रधि[४८७] और ५ सन्निपातकीविद्रधि[४८८], इस प्रकार छः भेद विद्रधि के हैं।।६८।।

व्रणरोग

व्रणाः पञ्चदशोदिताः । तेषां चतुर्धा भेदः स्यादागन्तुर्देहजस्तथा ।।६९।। शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक् । वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रण ।।७०।। वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा । तथा पित्तकफाभ्यां च सन्निपातेन

चाष्टमः ॥७१॥ नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः ।
श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः ॥७२॥ वातश्लेष्मासृ-
गुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः । संनिपातासृगुद्भूत इति पञ्चदश
व्रणाः ॥७३॥

अर्थ–व्रण पंद्रह प्रकार के हैं। उनके चार भेद हैं। जैसे–१ आंगतुकव्रण[४८९], २ देहजव्रण[४९०], ३ शुद्धव्रण[४९१] और ४ दुष्टव्रण[४९२]। इस प्रकार चार प्रकार के व्रण जानने। उनकी संख्या कहते हैं–१ वातव्रण[४९३], २ पित्तव्रण[४९४], ३ कफव्रण[४९५], ४ रक्तव्रण[४९६], ५ वातपित्तव्रण[४९७], ६ वातकफव्रण[४९८], ७ पित्तकफव्रण, ८ सन्निपातव्रण, ९ वातरक्तव्रण, १० रक्तपित्तव्रण, ११ कफरक्तव्रण, १२ वातपित्तरक्तजन्यव्रण, १३ वातकफ, रुधिरजन्यव्रण, १४ पित्तकफरुधिरजन्यव्रण, १५ सन्निपातरुधिरजन्यव्रण। इस प्रकार पन्द्रह करके प्रकार के व्रण जानने।।६९–७३।।

आगंतुक व्रणरोग

सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादवक्लृप्तविलम्बितौ ।
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥७४॥

अर्थ–सद्योव्रण (आगंतुक[४९९]) आठ प्रकार का है, जैसे–१ अवक्लृप्त, २ विलंबित, ३ छिन्न, ४ भिन्न, ५ प्रचलित, ६ घृष्ट, ७ विद्ध और ८ निपतित, इस प्रकार आगंतुकव्रण आठ प्रकार के हैं।।७४।।

कुष्ठरोग

कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तश्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ।

अर्थ–कोष्ठभेद दो प्रकार का है, जैसे–छिन्नान्त्रक[५००] है, २ निःसृतान्त्रक[५०१] है।

अस्थिभङ्गरोग

अस्थिभङ्गोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते॥७५॥ विवर्तितश्च
विश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः । ऊर्ध्वगः सन्धिभङ्गश्च–

अर्थ–अस्थिभङ्ग शब्द करके इस जगह हस्तादिकों के काण्ड का भंग और संधिभंग इन दोनों का ग्रहण है, वह भग्नरोग आठ प्रकार का है। जैसे १ भग्नपृष्ठ[५०२] २ विदारित[५०३] ३ विवर्तित[५०४] ४ विश्लिष्ट[५०५] ५ तिर्यक्क्षिप्त[५०६] ६ अधोगत[५०७] ७ ऊर्ध्वग[५०८] और ८ संधिमंग[५०९] इस रीति से आठ प्रकार जानने। हड्डी टूटने आदि को भग्न कहते हैं।।७५।।

वह्निदग्ध रोग

–वह्निदग्धश्चतुर्विधः ॥७६॥ प्लुष्टोऽतिदग्धो दुर्दग्धः
सम्यग्दग्धश्च कीर्तितः ।

अर्थ–अग्नि से जले हुए को दग्ध कहते हैं। वह रोग चार प्रकार का है, जैसे–१ प्लुष्ट[५१०], २ अतिदग्ध,३ दुर्दग्ध और ४ सम्यग्दग्ध। इस प्रकार का अग्निदग्धरोग चारप्रकारका जानना ॥७६॥

नाडीव्रणरोग

नाड्यः पञ्च समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥७७॥
त्रिदोषैरपि शल्येन–

अर्थ–नाडीव्रण[५१४] (नासूर) पांच प्रकार के हैं। जैसे–१ वातनाडीव्रण[५१५] २ पित्तनाडीव्रण[५१६] ३

कफनाडीव्रण,[517] ४ त्रिदोषनाडीव्रण[518] और ५ शल्यनाडीव्रण।[519] इस प्रकार नाडीव्रण पांच प्रकार का जानना॥७७॥

भगन्दर रोग

–तथाऽष्टौ स्युर्भगन्दराः । शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवस्तु पित्ततः ॥७८॥ परिस्रावी कफाज्ज्ञेय ऋजुर्वातकफोद्भवः । परिक्षपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥७९॥ आगन्तुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः ।

अर्थ–भगंदररोग[520] आठ प्रकार का है। जैसे–१ वात मे शतपोनक,[521] २ पित्त से उष्ट्रग्रीव,[522] ३ कफ से परिस्रावी,[523] ४ वातकफ से ऋजु,[524] ५ वातपित्त से परिक्षेपी,[525] ६ कफपित्त से अर्शोज,[526] ७ आगंतुज उन्मार्गी[527] और त्रिदोष से ८ शङ्खावर्त[528] भगंदर होता है। इस प्रकार आठ प्रकार के भगंदर जानने॥७८॥७९॥

उपदंशरोग

मेढ्रे पञ्चोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥८०॥ संनि–पातेन रक्ताच्च–

अर्थ–लिंग में उपदंशरोग पांच प्रकार का है। जैसे–वात,[529] पित्त,[530] कफ,[531] संनिपात[532] और रक्त[533] से उपजा हुआ। तहां लिंगन्द्रिय में किसी कारण से हस्तका कठोर स्पर्श होने से बड़ी काम बाधा प्राप्त हो, नख (नाखून) दांत इनका अभिघात होने से, मैथुन के पश्चात् लिंग न धोने से, दासी आदि के साथ अत्यन्त विषय करने से, दीर्घ कठोर केश तथा रोगादि करके दूषित योनि जिसकी हो उस दोष से, ब्रह्मचारिणी, रजस्वला में गमनादि तथा वाजीकरणादिक के अनेक उपचार करने से इन सब कारणों से लिंगेन्द्रिय में जो रोग प्रकट होवे उसको उपदंश कहते हैं॥८०॥

शूकरोग

मेढ्रे शूकामयास्तथा । चतुर्विंशतिराख्याता लिङ्गार्शो ग्रथितं तथा ॥८१॥ निवृत्तमवमन्थश्च मृदितं शतपोनकः । अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिका ॥८२॥ मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः । मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकाऽलजी ॥८३॥ रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिका तिलकालकः । निरुद्धं प्रकाशः प्रोक्तस्तथैव परिवर्तिका ॥८४॥

अर्थ–लिंगेन्द्रिय में शूकरोग[534] चौबीस प्रकार का होता है जैसे–१ लिंगार्श,[535] २ ग्रथित,[536] ३ निवृत्ति,[537] ४ अवमन्थ,[538] ५ मृदिता[539] ६ शतपोनक,[540] ७ अष्ठीलिका,[541] ८ सर्षपिका[542] ९ त्वक्पाक,[543] १० अवपीडिका,[544] ११ मांसपाक,[545] १२ स्पर्शहानि,[546] १३ निरुद्धमणि,[547] १४ मांसार्बुद,[548] १५ पुष्करिका,[549] १६ संमूढपिटिका,[550] १७ अलजी[551] १८ रक्तार्बुद,[552] १९ विद्रधि,[553] २० कुम्भिका,[554] २१ तिलकालक,[555] २२ निरुद्ध,[556] २३ प्रकाश और २४ परिवर्तिका। इस प्रकार शूक रोग चौबीस प्रकार का जानना॥८१–८४॥

कुष्ठरोग

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात् कापालिकं भवेत् । पित्तनोदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके ॥८५॥ मरुत्पित्तादृक्षजिह्वा

श्लेष्मवाताद्विपादिका। तथा सिध्मैककुष्ठं च किटिभं चालसं तथा ॥८६॥ कफपित्तात् पुनर्दद्रूः पामा विस्फोटक तथा । महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम् ॥८७॥ त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यत् श्वित्रसंज्ञितम् । तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत् ॥८८॥

अर्थ–कुष्ठरोग[५५७] अठारह प्रकार का है। जैसे–१ कापालिक[५५८], २ औदुंबर[५५९], ३ मंडल[५६०], ४ विचर्चिका[५६१], ५ ऋक्षजिह्वा[५६२], ६ विपादिका[५६३], ७ सिघ्मकुष्ठ[५६४], ८ किटिभ[५६५] ९ अलस[५६६], १० दद्रु[५६७], ११ पामा[५६८], १२ विस्फोटक[५६९], १३ महाकुष्ट[५७०], १४ चमदल[५७१], १५ पुंडरीक[५७२], १६ शतारुक[५७३], १७ काकण[५७४] और १८ श्वित्रकुष्ठ[५७५] इस प्रकार अठारह प्रकार का कुष्ठ जानना। यह वात, पित्त और कफ के भेद से तीन तरह का होता है॥८५–८८॥

क्षुद्ररोग–विस्फोटक और मसूरिका रोग

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम् । इन्द्रवृद्धा पनसिका विवृत्तान्धालजी तथा ॥८९॥ वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपीतिलकालकः । गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका ॥९०॥ कदरो मसकश्चैव नीलिका जालगर्दभः । ईरिवेल्लीज्ज-तुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥९१॥ संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखो-ऽनुशयी तथा । पद्मिनीकंटकश्चिप्प्यमलसो मुखदूषिका ॥९२॥ कक्षा वृषणकच्छूश्च गन्धः पाषाणगर्दभः । राजिका च तथा व्यङ्गश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥९३॥ वातात् पित्तात् कफाद् रक्तादित्युक्तं व्यङ्गलक्षणम् । विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः ॥९४॥ पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्दैस्त्रिविधाः सप्तमो-ऽसृजः । अष्टमः—सन्निपातेन क्षुद्ररुक्षुन्मसूरिका ॥९५॥ चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा । द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता सन्निपातेन सप्तमी ॥९६॥ अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता । दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः । मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥९७॥

अर्थ–क्षुद्ररोग सात प्रकार के हैं–१ शर्कराबुद[५७६], २ इन्द्रवृद्धा[५७७], ३ पनसिका[५७८]; ४ विवृत्ता[५७९], ५ अंधालजी[५८०], ६ वराहदंष्ट्र[५८१], ७ वल्मीक[५८२], ८ कच्छपी[५८३], ९ तिलकालक[५८४], १० गर्दभी[५८५], ११ रकसा[५८६], १२ यवप्रख्या[५८७], १३ विदारिका[५८८], १४ कदर[५८९], १५ मसक[५९०] १६ नीलिका[५९१], १७ जालगर्दभ[५९२], १८ ईरिवेल्लिका[५९३], १९ जतुमणि[५९४] २० गुंदभ्रंश[५९५], २१ अग्निरोहिणी[५९६], २२ सन्निरुद्धगुद[५९७], २३ काठ[५९८], २४ कुनख[५९९]. २५ अनुशयी[६००], २६ पद्मिनीकंटक[६०१], २७ चिप्प्य[६०२], २८ अलस[६०३], २९ मुखदूषिका[६०४], ३० कक्षा[६०५], ३१ वृषणकच्छु[६०६], ३२ गंध[६०७], ३३ पाषाणगर्दभ[६०८], ३४ राजिक[६०९], और (१ वात २ पित्त ३ कफ ४ रुधिर इन भेदों से चार प्रकार का) व्यङ्ग[६१०]। पूर्वोक्त चौतीस और ये चार ऐसे अड़तीस प्रकार के क्षुद्ररोग हुए। तथा स्फोट रोग से देह में फुन्सी होती हैं अतएव उनका क्षुद्ररोगों में संग्रह किया। वह विस्फोट[६११] आठ प्रकार का

है–१ वातविस्फोटक, २ पित्तविस्फोटक, ३ कफविस्फोटक, ४ वातपित्तविस्फोटक, ५ कफपित्त-विस्फोटक, ६ वातकफविस्फोटक, ७ रक्तविस्फोटक, ८ संनिपातविस्फोटक इस प्रकार आठ प्रकार का विस्फोटक जानना। देह में शीतलारोग से ये फुन्सियां होती हैं। इस वास्ते क्षुद्ररोग में मसूरिका रोग का संग्रह किया है, वह मसूरिका[६१२] चौदह प्रकार की हैं, जैसे–१ वातमसूरिका[६१३] २ पित्तमसूरिका[६१४], ३ कफपित्तमसूरिका[६१५], ४ कफपित्तमसूरिका[६१६], ५ वातपित्तमसूरिका[६१७], ६ वातकफमसूरिका[६१८], ७ संनिपातमसूरिका[६१९], ८ त्वक्शब्दोक्त[६२०] जो रसधातु, उससे होनेवाली मसूरिका, ९ रक्तजा[६२१], १० मांसजा[६२२], ११ मेदोजा[६२३], १२ अस्थिजा[६२४], १३ मज्जाजन्य[६२५] तथा १४ शुक्रधातु[६२६] से होनेवाली। इनमें अन्त की चार मसूरिका कष्टसाध्य जाननी। इस प्रकार सब १४ मसूरिका, ८ विस्फोटक और पूर्वोक्त ३८ क्षुद्ररोग सब मिलने से ६० प्रकार का क्षुद्ररोग जानना।।८९–९७।।

विसर्परोग

विसर्परोगा नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा । त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः ।।९८।। अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभि-घातजः ।

अर्थ–विसर्परोग[६२७] नव प्रकार का है, जैसे–१ वातविसर्प, २ पित्तविसर्प, ३ कफविसर्प ४ वातपित्तविसर्प, ५ कफवातविसर्प, ६ कफपित्तविसर्प, ७ सन्निपातविसर्प, ८ जठराग्नितापजन्य-विसर्प, और ९ अभिघातविसर्प इस प्रकार नव प्रकार का विसंर्परोग जानना।

तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ।।९९।। वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ।

अर्थ–शीतलवायु के संपर्क करके कफ और वायु ये दुष्ट होकर पित्त से मिले भीतर रक्तादि धातु में और बाहर त्वचा में प्रवेशकर देह में जैसे मोहार की मक्खी के काटने से ददोडा उत्पन्न होता है उस प्रकार ददोडा उत्पन्न हों, उनमें खुजली, पीड़ा और दाह ये उपद्रव होवें। कफ पित्त के कोप से जिसमें खुजली अधिक चले और पीड़ा न्यून हो इसको उदर्द[६२८] कहते हैं। वह रोग एक प्रकार का है वातपित्त के कोप करके जिसमें खुजली थोड़ी और व्यथा अधिक होवे उसको शीत[६२९] पित्त (पित्ती) कहते हैं। इतना ही इनमें भेद जानना तथा ज्वर, वमन और दाह इत्यादि ये दोनों के साधारण लक्षण जानने।।९९।।

अम्लपित्तरोग

आम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेनं श्लेष्मणा तथा ।।१००।। तृतीयं श्लेष्मवाताभ्याम्–

अर्थ–अम्लपित्तरोग[६३०] तीन प्रकार का है १ वातज अम्लपित्त, २ कफज अम्लपित्त और ३ कफवातज इस प्रकार अम्लपित्त के तीनों भेद जानने चाहिये।

वातरोग

वातरक्तं तथाऽष्टधा । वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद्दोषत्रयेण च।।१०१।। रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः ।

अर्थ–वातरक्तरोग[६३१] आठ प्रकार का है। जैसे वायु का आधिक्य जिस वातरक्त में हैं वह १ वातज[६३२] २ पित्तजवातरक्त[६३३] ३ कफजवातरक्त[६३४] ४ त्रिदोषजवातरक्त[६३५] और ५ रक्त के आधिक्य से होनेवाला रक्तज[६३६]। दोषों से प्रकट द्वन्द्वज[६३७] वातरक्त तीन प्रकार के होते हैं, ऐसे सब मिलाके वातरक्तरोग आठ प्रकार का जानना।।१०१।।

वातरक्तरोग

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः ॥१०२॥ आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः । बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलः कटिग्रहः ॥१०३॥ दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तंभस्तथार्दितः । पक्षाघातः क्रौष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पंगुता ॥१०४॥ कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता । पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चावबाहुकः ॥१०५॥ अपतानो व्रणायमो वातकण्ठोऽपतन्वकः । अंगभेदोंऽगशोषश्च मिम्मणत्वं च गद्गदः ॥१०६॥ प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता । अङ्गपीडांगशूलं च संकोचस्तंभरूक्षताः ॥१०७॥ अङ्गभङ्गोंऽगविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता। मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारान्त्रकूजनम्॥१०८॥ वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा । कंपः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ॥१०९॥ निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलाक्षयः । अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यनाशश्च रेतसः ॥११०॥ अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता । कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ॥१११॥ रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कंडू रसाज्ञता । शब्दाज्ञता प्रसुतिश्च गन्धाज्ञत्वं दृशः क्षयः ॥११२॥

अर्थ–वादी का रोग ८० प्रकार का ऋषियों ने कहा है उनके नाम कहते हैं। १ आक्षेपक, २ हनुस्तंभ, ३ उरुस्तंभ, ४ शिरोग्रहं, ५ वाह्यायाम, ६ अभ्यंतरायाम, ७ पार्श्वशूल, ८ कटिग्रहे, ९ दंडापतानक, १० खल्ली, ११ जिह्वास्तिभ, १२ अर्दित, १३ पक्षाघात, १४ क्रोष्टुशीर्ष, १५ मन्यास्तभ १६ पंगु, १७ कलायखज, १८ तूनी, १९ प्रतितूनी, २० खंज, २१ पादहर्ष, २२ गृध्रसी, २३ विश्वाचो २४ अवबाहुक, २५ अपतंत्रक, २६ व्रणायाम, २७ वातकंटक, २८ अपतानक, २९ अंगभेद, ३० अंगशोष, ३१ मिम्मिण, ३२ गद्गद, ३३ प्रत्यष्ठीलिका, ३४ अष्ठीला, ३५ वामनत्व, ३६ कुब्जत्व, ३७ अंगपीड़ा, ३८ अंगशूल, ३९ संकोच, ४० स्तंभ, ४१ रूक्षता, ४२ अंगभंग, ४३ अंगविभ्रंश, ४४ विड्ग्रह, ४५ बद्धविट्कता, ४६ मूकत्व, ४७ अतिजंभ, ४८ अत्युद्गार, ४९ अत्र-कूजन, ५० वातप्रवृत्ति, ५१ स्फुरण, ५२ शिरापूरण, ५३ कंपवायु, ५४ कार्श्य, ५५ श्यावता ५६, प्रलाप, ५७ क्षिप्रमूत्रता, ५८ निद्रानाश, ५९ स्वेदनाश, ६० दुर्बलत्व, ६१ बलक्षय, ६२ शुक्रातिप्रवृत्ति, ६३ शुक्रकार्श्य, ६४ शुक्रनाश, ६५ अनवस्थितचित्तत्व, ६६ काठिन्य, ६७ विरसास्यता, ६८ कषायवक्त्रता, ६९ आध्मान, ७० प्रत्याध्मान, ७१ शीतता, ७२ रोमहर्ष, ७३ भीरुत्व, ७४ तोद, ७५ कण्डू, ७६ रसाज्ञता, ७७ शब्दाज्ञता, ७८ प्रसुप्ति, ७९ गंधाज्ञत्व, और ८० दृशःक्षय । इस प्रकार वादी के अस्सी भेद जानने।।१०२–११२॥

पित्तरोग

अथ पित्तभवारोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः॥ धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः ॥११३॥ कान्तिहानिः कंठशोषो

मुखशोषोऽल्पशुक्रता । तिक्तास्यताऽम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्ग-पाकता ॥११४॥ क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतकामता । रक्तस्रावोऽङ्गहरणं लोहगंधास्यता तथा ॥११५॥ दौर्गन्ध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता । पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता ॥११६॥ शीतेच्छा पीतनखता तेजो द्वेषोऽल्प-निद्रता । कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता ॥११७॥ उष्णोच्छ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च । तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥११८॥ निःसरत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद् रुजः स्मृताः ॥

अर्थ–पित्तरोग ४० प्रकार का है। उसके नाम कहते हैं–१ धूमोद्गार[७१८], २ विदाह[७१९], ३ उष्णांगत्व[७२०], ४ मतिभ्रम[७२१], ५ कांतिहानि[७२२], ७ कंठशोष[७२३], ७ मुखशोष[७२४], ८ अल्पशुक्रता[७२५], ९ तिक्तास्यता[७२६], १० अम्लवक्त्रत्व[७२७], ११ स्वेदस्राव[७२८], १२ अंगपाकता[७२९], १३ क्लम[७३०], १४ हरितवर्णत्व[७३१], १५ अतृप्ति[७३२], १६ पीतकायता[७३३], १७ रक्तस्राव[७३४], १८ अंगहरण[७३५], १९ लोहगंधास्यता[७३६], २० दौर्गंध्य[७३७], २१ पीतमूत्रत्व[७३८], २२ अरति[७३९], २३ पीतविट्कता[७४०], २४ पीतावलोकन[७४१], २५ पीतनेत्रता[७४२], २६ पीतदंतता[७४३], २७ शीतेच्छा[७४४], २८ पीतनखता[७४५], २९ तेजोद्वेष[७४६], ३० अल्पनिद्रता[७४७], ३१ कोप[७४८], ३२ गात्रसाद[७४९], ३३ भिन्नविट्कत्व[७५०], ३४ अंधता[७५१], ३५ उष्णोच्छ्वासत्व[७५२], ३६ उष्णमूत्रत्व[७५३], ३७ उष्णमलत्व[७५४], ३८ तमोदर्शन[७५५], ३९ पीतमंडलदर्शन[७५६] और ४० निःसरत्व[७५७]। इस प्रकार चालीस प्रकार का पित्तरोग जानना ॥११३–११८॥

कफरोग

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तन्द्रातिऽनिद्रता ॥११९॥ गौरवं मुखमाधुर्य मुखलेपः प्रसेकता । श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता ॥१२०॥ श्वेताङ्गवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्त-कामिता ॥ मलाधिक्यं च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता ॥१२१॥ आलस्यं मन्दबुद्धित्व तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ॥ अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥१२२॥

अर्थ–कफरोग बीस प्रकार का है जैसे–१ तन्द्रा[७५८], २ अतिनिद्रा[७५९], ३ गौरव[७६०], ४ मुखमीठा[७६१] रहना, ५ मुखलेप[७६२], ६ प्रसेकता[७६३], ७ श्वेतदेखना[७६४], ८ श्वेतविष्ठा का उतरना[७६५], ९ श्वेतमूत्र होना[७६६], १० देह[७६७] का वर्ण सफेद होना, ११ शैत्य[७६८], १२ उष्णेच्छा, १३ तिक्ता कमिता[७६९], १४ मलाधिक्य[७७०], १५ शुक्रबाहुल्य[७७१], १६ बहुमूत्रता[७७२], १७ आलस्य[७७३], १८ मन्दबुद्धि[७७४], १९ तृप्ति[७७५], २० घर्घरवाक्यता[७७६], २१ अचैतन्य[७७७]। इस प्रकार कफ के बीस रोग जानने, परन्तु यहां संख्या करने पर २१ होते हैं, सो शैत्य और उष्णेच्छा एक मानने से संख्या ठीक हो जाती है॥११९-१२२॥

रक्तरोग

रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तस्य गौरवम् । रक्तमण्डलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता ॥१२३॥ रक्तष्ठीवनता रक्तपिटिकानां च दर्शनम् । उष्णत्वं पूतिगन्धित्वं पीडा पाकश्च जायते ॥१२४॥

अर्थ–रुधिर से उत्पन्न होनेवाले १० रोग हैं–जैसे १ गौरव[७७८], २ रक्तमण्डलता[७७९], २ रक्तनेत्रत्व[७८०], ४ रक्तमूत्रता[७८१], ५ रक्तष्ठीवता[७८२], ६ रक्तपिटिकादर्शन[७८३], ७ उष्णत्व[७८४], ८ पूतिगंधित्व[७८५], ९ पीड़ा[७८६] और १० पाक[७८७], ऐसे दश प्रकार के हैं॥१२३॥१२४॥

ओष्ठरोग

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः । तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ॥१२५॥ वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषैरसृजस्तथा । क्षतमांसार्बुदं चैव खण्डौष्ठश्च जलार्बुदम् ॥१२६॥ मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः ।

अर्थ–मुख के रोग चौहत्तर है, उनमें ओष्ठरोग ग्यारह प्रकार के हैं, जैसे–१ वातज[७८८], २ पित्तज[७८९], ३ कफज[७९०], ४ सनिपातज[७९१], ५ रक्तज[८९२], ६ क्षतज[७९३], ७ मांसार्बुद[७९४], ८ खण्डौष्ठ[७९५], ९ जलार्बुद[७९६], १० मेदोर्बुद[७९७], ११ अर्बुद[७९८]। ये ओष्ठ के ग्यारह रोग हैं॥१२६॥

दन्तरोग

दन्तरोगा दशाख्याता दालनःक्रमिदन्तकः ॥१२७॥ दन्तहर्षः करालश्च दन्तचालश्च शर्करा । अधिदन्तः श्यावदंतो दन्तभेदः कपालिका ॥१२८॥

अर्थ–दांत के १० रोग हैं, उनको कहते हैं–१ दालन[७९९], २ क्रमिदन्त[८००], ३ दंतहर्ष[८०१], ४ कराल[८०२], ५ दंतचाल[८०३], ६ दंतचाल[८०४], ७ अधिदंत[८०५], ८ श्यामदंत[८०६], ९ दंतभेद[८०७] और १० कपालिक[८०८]। इस प्रकार भेद जानने॥१२७॥१२८॥

दन्तमूल रोग

तथा त्रयोदशमिता दंतमूलामयाः स्मृताः शीतादोपकुशौ द्वौ तु दंतविद्रधिपुप्पुयौ ॥१२९॥ अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिर-सौषिरौ । तथैव गतयः पञ्च वातात् पित्तात् कफादपि ॥१३०॥ संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाड़ी च पञ्चमी ।

अर्थ–अब दंतमूल के रोगों को कहते हैं। तहां दांत की जड़ के रोग तेरह हैं, जैसे १ शीताद[८०९], २ उपकुश[८१०], ३ दंतविद्रधि[८११], ४ पुप्पुट[८१२], ५ अधिमांस[८१३], ६ विदर्भ[८१४], ७ महासौषिर[८१५], ८ सौषिर[८१६], ९ वातनाड़ी[८१७], १० पित्तनाड़ी[८१८], ११ कफनाड़ी[८१९], १२ सन्निपातनाड़ी[८२०] और १३ रक्तनाड़ी[८२१], ऐसे तेरह प्रकार के दंतमूलरोग हैं॥१२९॥१३०॥

जिह्वारोग

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातापित्तकफैस्त्रिधा ॥१३१॥ अल्लसश्च चतुर्थः स्याद्धिजिह्वश्च पञ्चमः । षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्–

अर्थ–जीभ के रोग छः प्रकार के हैं, उनके नाम–१ वातज[८२२], २ पित्तज[८२३], ३ कफज[८२४], ४ अल्लस[८२५], ५ अधिजिह्व[८२६] और ६ उपजिह्व[८२७]। इस प्रकार जिह्वा के रोग छः प्रकार के हैं॥१३१॥

तालुरोग

–तथाष्टौ तालुजा गदाः ॥१३२॥ अर्बुदं तालुपिटिककच्छपी मांससंहतिः गलशुंडी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥१३३॥

अर्थ–तालुए के रोग आठ प्रकार के हैं, जैसे–१ अर्बुद, २ तालुपिटिक, ३ कच्छपी, ४ मांससंहित, ५ गलशुण्डी, ६ तालुशोष, ७ तालुपाक और ८ पुप्पुट।

गलरोग

गलरोगास्तथा ख्याता अष्टादशमिता बुधैः वातरोहिणिका पूर्वा द्वितीया पित्तरोहिणी ।।१३४।। कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी । मेदोरोहिणिका वृन्दो गलौघो गलविदधिः ।।१३५।। स्वरहा तुण्डिकरा च शतघ्नी तालुकोऽर्बुदम् । गिलायुर्वलयश्चापि वाताद् गण्डः कफात् तथा ।।१३६।। मेदोगण्डस्तथैव स्यादित्यष्टादश कण्ठजाः ।

अर्थ–कण्ठरोग अठारह प्रकार के हैं, जैसे–१ वातरोहिणी, २ पित्तरोहिणी, ३ कफरोहिणी, ४ संनिपातरोहिणी, ५ मेदोरोहिणी, ६ वृन्द, ७ गलौध, ८ मलविद्रधि, ९ स्वरहा, १० तुंडिकेरी, ११ शतघ्नी, १२ तालुका, १३ अर्बुद, १४ गिलायु, १५ वलय, १६ वातगंड, १७ कफगंड, १८ मेदोगंड। इस प्रकार अठारह प्रकार के कंठरोग हैं।।१३२-१३६।।

मुखान्तर्गतरोग

मुखान्तःसंश्रया रोगा ह्यष्टौ ख्याता महर्षिभिः ।।१३७।। मुखपाको भवेद् वातात् पित्तात् तद्वत् कफादपि । रक्ताच्च संनिपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वगुदावपि ।।१३८।। अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः ।

अर्थ–मुख के भीतर के रोग आठ प्रकार के हैं। जैसे–१ वातमुखपाक, २ पित्तमुखपाक, ३ कफमुखपाक, ४ रक्तमुखपाक, ५ संनिपातमुखपाक, ६ दुर्गंधास्य, ७ ऊर्ध्वगुद और ८ अर्बुद। इस प्रकार मुखपाक रोग आठ प्रकार का है।।१३७।।१३८।।

कर्णरोग

कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ।।१३९।। वातात् पित्तात् कफाद् रक्तात् संनिपाताच्च विद्रधिः । शोथोऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका । १४०।। बाधिर्यं तंत्रिका कंडूः शष्कुली कृमिकर्णकः । कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः ।।१४१।।

अर्थ–कर्णरोग १८ प्रकार के हैं जैसे–१ वात्त, २ पित्त, ३ कफ, ४ रक्त, ५ संनिपात, ६ विद्रधिः ७ शोथ, ८ अर्बुद, ९ पूतिकर्ण, १० कर्णाश, ११ कर्णहल्लिका, १२ बाधिर्य, १३ तंत्रिका१४ कंडू, १५ शष्कुली, १६ कृमिकर्णक, १७ कर्णनाद और १८ प्रतीनाह। इस प्रकार कान के रोग अठारह प्रकार के जानने।।१३९-१४१।।

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्धनः ।।१४२।। परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ।

अर्थ-कर्णपाली के रोग सात प्रकार के हैं, जैसे-१ उत्पात[८७१], २ पालिशोष[८७२], ३ विदारी[८७३], ४ दुःखवर्धन[८७४], ५ परिपोट[८७५], ६ लेही[८७६] और ७ पिप्पली[८७७]॥१४२॥

कर्णमूलरोग

कर्णमूलामयाः पञ्च वातात् पित्तात् कफादपि ॥१४३॥
संनिपाताच्च रक्ताच्च-

अर्थ-कर्णमूलरोगको[८७८] वात्त, पित्त, कफ, सन्निपात और रक्त इन भेदों से पांच प्रकार का जानना॥१४३॥

-तथा नासाभवा गदाः । अष्टादशैव संख्याताः प्रतिश्यायास्तु तेष्वपि ॥१४४॥ वातात् पित्तात् कफाद् रक्तात् सन्निपातेन पंचमः । आपीनसः पूतिनासो नासार्शो भ्रंशथुः क्षवः ॥१४५॥ नासानाहः पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् । नासाशोषो घ्राणपाकः पुटस्रावश्च दीपकः ॥१४६॥

अर्थ-नासारोग कहिये नाक में होनेवाले रोग अठारह हैं, जैसे-१ वातप्रतियशय[८७९], २ पित्तप्रतिश्याय[८८०], ३ कफप्रतिश्यया[८८१], ४ रक्तप्रतिश्याय[८८२], ५ संनिपातप्रतिश्याय[८८३], ६ आपीनस[८८४], ७ पूतिनास[८८५], ८ नासार्श[८८६], ९ भ्रंशयुं[८८७], १० क्षव[८८८], ११ नासानाह[८८९], १२ पूतिरक्त[८९०], १३ अर्बुद[८९१], १४ दुष्टपीनस[८९२], १५ नासाशोष[८९३], १६ घ्राणपाक[८९४], १७ पुटस्राव[८९५] और १८ दीप्तक[८९६], ऐसे ये अठारह नासिका के रोग हैं॥१४६॥

शिरोरोग

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः । शिरस्तापश्च वातेन पित्तात् पीडा तृतीयिका ॥१४७॥ चतुर्थी कफजा पीड़ा रक्तजा संनिपातजा । सूर्यावर्तात् शिरःपाकात् कृमिभिः शंखकेन च ॥१४८॥

अर्थ-मस्तकरोग दश प्रकार का है, जैसे-१ अर्धावभेदक[८९७], २ वातजशिरोभिताप[८९८], ३ पित्तजशिरोभिताप[८९९], ४ रक्तजशिरोभिताप[९००], ५ रक्तजशिरोभिताप[९०१], ६ सन्निपातजशिरोभिताप[९०२], ७ सूर्यावर्त्[९०३], ८ शिरःपाक[९०४], ९ कृमिज[९०५] और १० शंखक[९०६]। ऐसे मस्तक के दश रोग हैं॥१४७॥१४८॥

कपालरोग

तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम् । अरूंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम् ॥१४९॥ इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव ॥

अर्थ-कपाल[९०७] के रोग नव प्रकार के हैं-१ उपशीर्षक, २ अरूंषिका, ३ विद्रधि, ४ दारुण, ५ पिटिका, ६ अर्बुद, ७ इन्द्रलुप्त, ८ खालित्य और ९ पलित। ऐसे नव प्रकार के कपाल के रोग हैं॥१४९॥

वर्त्मरोग

तथा नेत्रभवाः ख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ॥१५०॥ तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसञ्ज्ञिताः।कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मशातः

कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः ॥१५१॥ अरुङ्‌निमेषः कथितो रक्तोत्लिकष्टः कुकूणकः । पक्ष्मार्शःपक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी ॥१५२॥ श्लिष्टवर्त्मा च बहलःपक्ष्मोत्सङ्गस्तथार्बुदम् । कुम्भिका सिकतावर्त्मा लगणोऽञ्जननामिका ॥१५३॥ कर्दमः श्यावबर्त्मादि बिसवर्त्म तथालजी । उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः ॥१५४॥

अर्थ–नेत्र के रोग ९४ हैं, उनमें पलकों के रोग २४ हैं। जैसे–१ कृच्छ्रोन्मील[१०८], २ पक्ष्मशात[१०९], ३ कफोत्क्लिष्ट[११०], ४ लोहित[१११], ५ अरुङ्‌निमेष[११२], ६ रक्तोत्क्लिष्ट[११३], ७ कुकूणक[११४], ८ पक्ष्मशात[११५], ९ पक्ष्मरोध[११६], १० पित्तोत्क्लिष्ट[११७], ११ पोथकी[११८], १२ श्लिष्टवर्त्म[११९], १३ बहल[१२०], १४ पक्ष्मोत्सङ्ग[१२१], १५ अर्बुद[१२२], १६ कुंभिका[१२३], १७ सिकतावर्त्म[१२४], १८ अलगण[१२५], १९ अंजननामिका[१२६], २० कर्दम[१२७], २१ श्यामवर्त्म[१२८], २२ बिसवर्त्म[१२९], २३ अलजी[१३०] और २४ उत्क्लिष्टवर्त्म[१३१]; इस प्रकार चौबीस प्रकार के पलकों के रोग हैं॥१५०-१५४॥

नेत्रसन्धिगतरोग

नेत्रसन्धिसमुद्‌भूता नव रोगाः प्रकीर्तिताः जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी ॥१५५॥ पूयस्रावः कृमिग्रंथिरुपनाहस्तथालजी । पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसंधिजा ॥१५६॥

अर्थ–नेत्रों की संधि के रोग नौ हैं, जैसे १ जलस्राव[१३२], २ कफस्राव[१३३], ३ रक्तस्राव[१३४], ४ पर्वणी[१३५], ५ पूयस्राव[१३६], ५ कृमिग्रंथि[१३७], ७ उपनाह[१३८], ८ अलजी[१३९] और ९ पूयालस[१४०]। इस प्रकार नेत्र के ९ रोग हैं॥१५५॥१५६॥

नेत्र के सफेदबबूले के रोग

तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश । शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥१५७॥ शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः । शिराजपिटिका चैव कफग्रन्थितकोऽर्जुनः ॥१५८॥ स्नाय्वर्म चाधिमांसः स्यादिति शुक्लगता गदाः ।

अर्थ–नेत्र के सफेद भाग के ऊपर तेरह रोग होते हैं जैसे–१ शिरोत्पात्त[१४१], २ शिराहर्ष[१४२], ३ शिरजाल[१४३], ४ शुक्तिक[१४४], ५ शक्लार्म[१४५] ६ अधिमासार्म[१४६], ७ प्रस्तार्यर्म[१४७], ८ पिष्टक[१४८], ९ शिराजपिटिका[१४९], १० कफग्रन्थितक[१५०], ११ अर्जुन[१५१], १२ स्नाय्वर्म[१५२], १३ अधिमांस[१५३], इस प्रकार नेत्र के सफेद भाग में होनेवाले १३ रोग जानने॥१५७॥१५८॥

नेत्र के काले बबूले के रोग

तथा कृष्णसमुद्‌भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्तिताः ॥१५९॥ शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाजकः । शिरासङ्गश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥१६०॥

अर्थ–नेत्र के काले भाग में होनेवाले रोग ५ हैं, जैसे–१ शुद्धशुक[१५४], २ शिराशुक्र[१५५], ३ क्षतशुक्र[१५६], ४ अजक[१५७], ५ शिरासंग[१५८]। इस प्रकार पांच भेद जानने॥१५९॥१६०॥

काचबिंदुरोग

काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात् पित्तात् कफादपि ।
सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ।।१६१।।

अर्थ–वातादिदोष कुपित हो दृष्टि के पटल में प्राप्त हो काँचरोग[९५९] को करते हैं वह छः प्रकार का है, जैसे–१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ सन्निपातज, ५ रक्तज, ६ संसर्गज, ऐसे मोतियाबिन्दु छः प्रकार का है।।१६१।।

तिमिररोग

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठे स्यात् संनिपाततः ।।१६२।।

अर्थ–नेत्र के पटल (परदे) वातादि दोष दुष्ट हो तिमिररोग को प्रगट करते है। इससे मनुष्य नानावर्ण और विपरीत स्वरूप देखता है। उन दोषों के लक्षण दृष्टि के पहिले पटल में वातादि दोष जानने से। इस प्राणी को रूपवान् पदार्थ धुँधरे धुँधरे से दीखें तथा वातादि दोषों के समान उन पदार्थों के वर्ण दीखें अर्थात् वादी से काजल के समान, पित्त से नीले रंग के, कफ से सफेद रंग के, रुधिर से लालरंग के और सन्निपात से अनेक वर्ण के दीखते हैं। ऐसे लक्षण सर्व पटलों में जानने। दूसरे परदों से वातादि दोष जाने से दृष्टि विह्वल होती है। अर्थात् नेत्र के सामने मच्छर, मूली, वाल, मंडल, जाली, पताका, किरश, कुंडल, बादल, ये सब अँधेरे के समूह और जाल से दीखते हैं। दूर का पदार्थ समीप और समीप का पदार्थ दूर है, ऐसा मालूम होवे, बड़े यत्न से भी सूई पिरोने में न आवे इत्यादि। नेत्र के तीसरे परदे में दोष पहुंचने से ऊपर के पदार्थ कपड़े से मढ़े हुए दीखें और नीचे के बिलकुल नहीं दीखे। नाक और कान के बिना मुख दीखे इत्यादि। वह तिमिर वात, पित्त, कफ, संसर्ग, रक्त और सन्निपात इनसे प्रगट छः प्रकार का है। इनके लक्षण मोतियाबिंद जो छः प्रकार के प्रथम लिख आये हैं उन्हीं के समान जानना।।१६२।।

लिंगनाशरोग

लिङ्गनाशः सप्तधा स्याद् वातात् पित्तात् कफेन च ।
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ।।१६३।।

अर्थ–तिमिर रोग नेत्र के चतुर्थ पटल (पर्दे) में पहुंचने से संपूर्ण दृष्टि को व्याप्त कर न दीखने समान करता है उसको लिंगनाश कहते हैं। वह लिंगनाश–१ वातजन्य[९६०], २ पित्तजन्य[९६१], ३ कफजन्य[९६२], ४ त्रिदोषजन्य[९६३], ५ उपसर्गजन्य[९६४], ६ संसर्गजज[९६५] और ७ रक्तज[९६६] इन सात कारणों से सात प्रकार का है।।१६३।।

दृष्टिरोग

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् । अम्लपित्त-
विदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ।।१६४।। नकुलान्ध्यं
धूसरान्ध्यं रात्र्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः । गम्भीरदृष्टिरित्येते
रोगा दृष्टिगताः स्मृताः ।।१६५।।

अर्थ–दृष्टिमंडल[९६७] में जो रोग होते हैं उनको दृष्टिरोग कहते हैं। वे १ पित्तविदग्ध, २ अम्लपित्तविदग्ध, ३ उष्णविदग्ध, ४ नकुलान्ध्य, ५ धूसरान्ध्य, ६ रात्र्यांध्य, ७ ह्रस्वदृष्टि और ८ गम्भीर दृष्टि, ऐसे आठ प्रकार के हैं।।१६४–१६५।।

अभिस्यन्दरोग

अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद् दोषैस्त्रिभिस्तथा ।।

अर्थ–संपूर्ण नेत्ररोगों के कारणभूत ऐसे अभिष्यंद रोग चार हैं–१ रक्ताभिष्यद, २ वाताभिष्यन्द, ३ पित्ताभिष्यंद और ४ कफाभिष्यंद।

अधिमन्थरोग

चत्वारश्चाधिमन्थाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ।।१६६।।

अर्थ–उस अभिष्यंद रोग की उपेक्षा करने से उससे वात, पित्त, कफ और रक्त इन चार कारणों से चार प्रकार के अधिमन्थ रोग उत्पन्न हों, उनके निस्तोद (चपका) स्तंभ इत्यादि पूर्वोक्त अभिष्यन्दों के लक्षण होते हैं। वे कला से गिरते हुए प्रतीत हों, नेत्रों में कोई धंस गया, ऐसा मालूम हो, आधा मस्तक बहुत दूखे ये इसके विशेष लक्षण है। अधिमन्ध वातज होने से वात के लक्षण शूलादिक, पित्तज होने से पित्त के लक्षण दाहादिक और कफज होने से कफ के लक्षण खुजली आदि होते हैं। इस अधिमन्थ में अञ्जनादिक मिथ्या उपचार करने से दृष्टि नष्ट होती है। वह इस प्रकार है जैसे कफाधिमन्थ मिथ्योपचार से कुपित होने से सात दिन में, रक्ताधिमन्थ पांच दिन में, वाताधिमन्थ छः दिन में और पित्ताधिमन्थ तत्काल दृष्टिनाश करता है।।१६६।।

सर्वाक्षिरोग

क्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः। अल्पशोथोऽन्यतोवात-
स्तथा पाकात्ययः स्मृतः ।।१६७।। शुष्काक्षिपाकश्च तथा
शोफोऽध्युषित एव च। हताधिमंथ इत्येते रोगाः
सर्वाक्षिसंभवाः ।।१६८।।

अर्थ–संपूर्ण नेत्रों में व्याप्त जो रोग होते हैं उनको सर्वाक्षिरोग कहते हैं। वे आठ प्रकार के होते हैं, जैसे–१ वातविपर्यय, २ अल्पशोथ, ३ अन्यतोवात, ४ पाकात्यय, ५ शुष्काक्षिपाक, ६ शोफ, अध्युषित और ८ हताधिमथ। इस प्रकार सर्वाक्षिरोग आठ हैं, ये सब नेत्ररोग मिलाने से ९४ होते हैं।।१६७।।१६८।।

षंढरोग

पुस्त्वषदोषाश्च पञ्चैव प्रोक्तास्तत्रैर्ष्यकः स्मृतः ।
आसेक्यश्चैव कुम्भीकः सुगन्धिः षण्ढसंज्ञकः ।।१६९।।

अर्थ–पुंस्त्वदोष कहिये वीर्यक्षीणता के कारण मनुष्य को नपुंसकत्व प्राप्त होता है, उसे–१ ईर्ष्यक, २ आसेक्य, ३ कुम्भिक, ४ सुगंधि और ५ षंढ ऐसे पांच प्रकार का जानना।।१६९।।

शुक्ररोग

शुक्रदोषास्तथाऽष्टौ स्युर्वातात् पित्तात् कफेन च ।
कुणपं चास्त्रपित्ताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः ।।१७०।।
क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः ।
मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ।।१७१।।

अर्थ–१ वातजन्य, २ पित्तजन्य, ३ कफजन्य, ४ रक्तपित्तजन्यकुर्णपसंज्ञक, ५ कफपित्तजन्य

पूयाभ, ६ वातपित्तजन्य क्षीण, ६ कफवातजन्यग्रंथिल, ८ सन्निपातजन्यमलाभ ऐसे पुरुषों के आठ शुक्रधातु के दोष हैं।।१७०।।१७१।।

स्त्रियों के आर्तवदोष

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः ।
अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।।१७२।।
पूयाभं कुणपं ग्रन्थिः क्षीणं मलसमं तथा ।

अर्थ–स्त्रियों को आर्तव कहिये, ऋतुसमय का जो रुधिर बहता है उसको रज कहते हैं, उसके दोष आठ प्रकार के हैं–जैसे १ वातज, २ पित्तज, ३ कफज, ४ पूयाभ, ५ कुणप, ६ ग्रंथि, ७ क्षीण और ८ मलसम। इस प्रकार आर्तवदोष आठ प्रकार के हैं।।१७२।।

प्रदररोग

तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ।।१७३।।
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः ।

अर्थ–रक्तप्रदर के–१ वातजन्य, २ पित्तजन्य, ३ कफजन्य और ४ सन्निपातजन्य, इस प्रकार चार भेद हैं।।१७३।।

योनिरोग

विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातात् पित्तात् कफादपि ।।१७४।। संनिपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा । शुष्का च वामिनी चैव षण्ढी चान्तर्मुखी तथा ।।१७५।। सूचीमुखी विप्लुता च जातघ्नी च परिप्लुता । उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिका ।।१७६।। स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः ।

अर्थ–१ वातला, २ पित्तला, ३ श्लेष्मला, ४ सन्निपातजा, ५ रक्तजा, ६ लोहितक्षया, ७ शुष्का, ८ वामिनी, ९ षण्ढी, १० अंतर्मुखी, ११ सूचीमुखी, १२ विप्लुता, १३ पुत्रघ्नी, १४ परिप्लुता, १५ उपप्लुता, १६ प्राक्चरणा, १७ महायोनि, १८ कर्णिका, १९ नन्दा और २० अतिचरणा। ऐसे बीस प्रकार के योनिरोग हैं।।१७४-१७६।।

योनिकन्दरोग

चतुर्विधं योनिकन्दं वातपित्तकफैस्त्रिधा ।।१७७।। चतुर्थं संनिपातेन–

अर्थ–योनिकन्द, रोग–१ वातज, २ पित्तज, ३ कफज और ४ सन्निपातज, ऐसे योनिकन्दरोग चार प्रकार के हैं।।१७७।।

गर्भ के रोग

–तथाष्टौ गर्भजा गदाः । उपविष्टकगर्भः स्यात् तथा नागोदरः स्मृतः ।।१७८।। मक्कल्लो मूढगर्भश्च विष्टम्भो गूढगर्भकः ।। जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ।।१७९।।

अर्थ–गर्भसम्बन्धी रोग आठ प्रकार के हैं, जैसे–१ उपविष्टकगर्भ, २ नागोदर, ३ मक्कल, ४

मूढगर्भ, ५ विष्टम्भ, ६ गूढगर्भ, ७ जरायुदोष और ८ गर्भपात। ऐसे आठ प्रकार के गर्भपात रोग हैं॥१७८॥१७९॥

स्तनरोग

पञ्चैव स्तनरोगाः स्युर्वातात् पित्तात् कफादपि । संनिपातात् क्षतात् चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥१८०॥ बालरोगेषु गदिताः–

अर्थ–स्तनरोग[१००७]–वातजन्य[१००८], ६ पित्तजन्य[१००९], ३ कफजन्य[१०१०], सन्निपातजन्य[१०११] और ५ क्षतजन्य[१०१२]। ऐसे पांच स्त्रियों के दूध सम्बन्धी बालरोग प्रकरण में कहे हैं॥१८०॥

स्त्रीदोष

–स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः । अदक्षपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहित-स्तथा ॥१८१॥ दैवाज्जातस्तृतीयस्तु–

अर्थ–स्त्रियों को दुःख उत्पन्न करनेवाले तीन दोष हैं, जैसे–१ अदक्षपुरुषोत्पन्न[१०१३], २ सपत्नीविहित[१०१४], ३ दैविक[१०१५] इस प्रकार स्त्रियों में तीन दोष हैं॥१८१॥

प्रसूतिरोग

–तथा च सूतिकागदाः । ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥१८२॥

अर्थ–बालक होने के पश्चात् ज्वरादिरोग[१०१६] उत्पन्न होते हैं उनको प्रसूति के रोग कहते हैं, उन रोगों का दोषानुसार बलाबल विचारकर चिकित्सा करनी चाहिये॥१८२॥

बालरोग

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः । वातात् पित्तात् कफाच्चैव दन्तोद्भेदश्चतुर्थकः ॥१८३॥ दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम् । मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षक ॥१८४॥ पार्श्वारुणस्तालुकण्ठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः । दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥१८५॥ रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृताः–

अर्थ–बालकों के जो रोग होते हैं उनको बालरोग कहते हैं। वे रोग बाईस हैं, उनमें स्त्री के स्तनसम्बन्धी दूध दुष्ट होने से उत्पन्न होनेवाले १ वातजन्य[१०१७], २ पित्तजन्य[१०१८] और ३ कफजन्य[१०१९], ऐसे तीन प्रकार के हैं। ४ दंतोद्भेद[१०२०], ५ दंतघात[१०२१], ६ दंतशब्द[१०२२], ७ अकालदन्त[१०२३], ८ अहिपूतनरोग[१०२४], ९ मुखपाक[१०२५], १० मुखस्राव[१०२६], ११ गुदपाक[१०२७], १२ उपशीर्षक[१०२८], १३ पार्श्वारुण[१०२९], १४ तालुकण्ठ[१०३०], १५ विच्छिन्न[१०३१], १६ पारिगार्मिक[१०३२], १७ दौर्बल्य[१०३३], १८ गात्रशोष[१०३४], १९ शय्यामूत्र[१०३५], २० कुकूणक[१०३६], २१ रोदन[१०३७] और २२ गजगल्ली[१०३८] ऐसे सब बाईस रोग हैं॥१८५॥

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः ॥१९८॥ स्कन्दग्रहोविशाखः स्यात् स्वग्रहश्च पितृग्रहः । नैगमेयग्रहस्त-द्वच्छकुनिः शीतपूतना ॥१८७॥ मुखमण्डनिका तद्वत् पूतना चान्धपूतना। रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती ।

[१०४४] अर्थ–बालग्रह[१०३९] १२ प्रकार के होते हैं, जैसे–१ स्कंदग्रह[१०४०], २ विशाखग्रह[१०४१], ३ स्वग्रह[१०४२], ४ पितृग्रह[१०४३], ५ नैगमेयं, ६ शकुनि[१०४५], शीतपूतना[१०४६], ८ मुखमण्डनिका[१०४७], ९ पूतना[१०४८], १० अन्धपूतना[१०४९], ११ रेवती[१०५०] और १२ शुष्करेवती[१०५१], ऐसे बारह बालग्रह जानने।।१८६।।१८७।।

अनुक्त रोगो का संग्रह

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये ।।१८८।। द्विचत्वा-
रिंशदुक्तास्ते रोगष्वेव मुनीश्वरैः । द्विषष्टिदोषभेदाः स्युः
सन्निपातादिकाश्च ये । तेपि रोगेषु गणिताः पृथक् प्रोक्ता न ते
क्वचित् ।।१८९।।

अर्थ–वातरक्त, पाद, सुप्तिपाद, स्तंभ, पाक तथा फूटना इत्यादि पैरों के रोग किसी आचार्य ने बयालीस प्रकार के कहे हैं, उसी प्रकार सन्निपातादिक जो बासठ प्रकार के वातादिदोषों के भेद कहे हैं, वे ऋषियों ने कहीं भी पृथक् नहीं कहे किन्तु उनकी गणना अनुक्रम से पादरोगों में तथा वातव्याधि में ही की है।।१८८।।१८९।।

पंचकमी के मिथ्यादि योग से होनेवाले रोग

हीनमिथ्यातियोगानां भेदैः पञ्चदशोदिताः ।। पञ्च कर्मभवा
रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः ।।१९०।।

अर्थ–१ वमन[१०५२], २ विरेचन[१०५३], ३ निरूणहवस्ति[१०५४], ४ अनुवासनवस्ति[१०५५] और ५ नस्य[१०५६] ये कर्म उत्तरखण्ड में कहे हैं, इन पांच कर्मों में जिसका हीनयोग[१०५७], मिथ्यायोग[१०५८], किंवा अतियोग[१०५९] होवे तो यह कर्म इन तीन कारणों से तीन प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं। ऐसे पांचों के मिलाने से पंद्रह होते हैं, उनका अन्तर्भाव उक्त रोगों में ही जानना।।१९०।।

स्नेहादिकों से होनेवाले रोग

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गण्डूषोऽञ्जनतर्पणे । अष्टादशै-
तज्जाः पीडास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः ।।१९१।।

अर्थ–१ स्नेहपान[१०६०], २ स्वेदविधि[१०६१], ३ धूम्रपान[१०६२], ४ गंडूष[१०६३] ५ अंजन[१०६४], ६ तर्पण[१०६५], इन छहों में से प्रत्येक के हीनगोग, मिथ्यायोग और अतियोग इन तीन भेद करके अठारह भेद होते हैं और उनसे जो होनेवाले रोग हैं वे भी सब उक्त रोगों में संगृहीत किये हैं।।१९१।।

शीतादिकों से होनेवाले रोग

शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोपतापकः शल्योपद्रव एकश्च
क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा ।।१९२।।

अर्थ–(१) अत्यन्त सरदी के योग करके मनुष्य को ठंड का उपद्रव होवे, (२) अत्यन्त गरमी से मनुष्य को उष्णता का उपद्रव होवे, (३) शल्य कहिये नख, केश, कांटा, खोबरा, हाड, सींग इत्यादिक पदार्थ एक साथ पेट में जाने से जो रोग होवे और ४ तीक्ष्णक्षारादिक से पेट में अथवा बाह्यस्पर्श करके जो उपद्रव होवे, इस प्रकार ये चार प्रकार के उपद्रव वैद्य को जानने चाहिये।।९२।।

विषरोग

स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम् । तेषां च

काककूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम् ॥१९३॥ जङ्गमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूता भुजङ्गमाः। बृश्चिका मूषकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः॥१९४॥ दंष्ट्राविषनखविषवालभृङ्गास्थिभिस्तथा।
मूत्रात् पुरीषात् शुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा ॥१९५॥
लालायाः स्पर्शतस्तद्वत् तथा शङ्काविषं मतम्।
कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः ॥१९६॥

अर्थ–स्थावर जंगम और कृत्रिम ऐसे तीन प्रकार के विष हैं, उनमें स्थावर विष कालकूट वच्छनागादि विषों का भेद करके नौ प्रकार के हैं। जंगम विष बहुत प्रकार के हैं जैसे–लूता, सर्प, विच्छू, कीड़ा, इनके वात, पित्त, कफ और संनिपात भेद से एक एक करके चार चार भेद हैं। जिन ठिकानों पर विष हैं उनका ठिकाना जाति भेद से पृथक् है, जैसे–डाढ़, नख, केश, सींग, हाड, मूत्र, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वास, लार, स्पर्श, इत्यादि। मन में विष की शंका आकर उससे वायु कुपित हो, सम्पूर्ण देह को सुजाय देवे तथा ज्वरादिक उपद्रव होवें उसको शंकाविष कहते हैं। यह और दूषीविष (पदार्थ के संयोग से प्रगट) इस भेद करके कृत्रिम विष दो प्रकार के हैं। दूषीविष कहिये विष कुछ काल करके शरीर में जीर्ण होकर छिपकर रहे तथा विष का अल्पवीर्य हो। इसी से प्राणनाश नहीं करे, परन्तु ज्वरादिक उपद्रव करे तथा देश, काल, अन्न और दिवानिद्रा इन करके दूषित होने से रसादि सप्त धातुओं को दूषित करते हैं। इसी से इसको दूषीविष कहते हैं। इस प्रकार कृत्रिम विष दो प्रकार का जानना॥१९३-१९६॥

विष के भेद

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम्।
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥१९७॥

अर्थ–सुवर्णादिक सप्तधातुओं की शुद्धि के विना की हुई भस्म भक्षण करने से तथा हरितालादिक सात उपधातुओं की अशुद्ध भस्म आक आदि और अशुद्ध उपविष इनके भक्षण करने से ये विष के समान पीड़ा करते हैं। अतएव इनकी विषसंज्ञा है॥१९७॥

अन्यविष के भेद

दुष्टनीरविषं चैक तथैकं दिग्धजं विषम्।

अर्थ–जिस पानी में कीचड़, काई, पत्ते, तिनका, लूतादिक, जन्तु के मल, मूत्र तथा मछली और मेंढ़क मर गये हों तो इन कारणों से पानी खराब हो जावे उस पानी को दुष्टनीर कहते हैं। उसमें स्नान करे अथवा पीवे तो उससे विष के समान पीड़ा उत्पन्न होवे। शस्त्रादिकों में विष का लेप कर प्रहार करने से घाव हो जावे और वह जल्दी अच्छा नहीं हो एवं विष के समान ज्वरादिक उपद्रव हों उसको विषदग्धशस्त्रज जानना।

उपद्रव

कपिकच्छुभवा कण्डूर्दुष्टनीरभवा तथा ॥१९८॥
तथा सूरणकण्डूश्च शोथो भल्लातजस्तथा।

अर्थ–कौंछ (किंवाल) की फली के रुआँ लगने से दुष्ट जल और जमीकन्द (सूरण) इन तीनों का देह में स्पर्श होने से अंग में अत्यंत खुजली चलती है तथा देह में दाह होता है। एवं भिलावा के

तेल का स्पर्श होने से अंग में सूजन होय और खुजली चले। इस प्रकार चार चार प्रकार के उपद्रव जानना।।१९८।।

आगंतुकभेद

मदाचतुर्विधश्चान्यः पूगभङ्गाक्षकोद्रवैः ।।१९९।।
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वं मूलपत्रजः ।

अर्थ–सुपारी, भांग, बहेड़े की फल के भीतर की मींगी, कोदो धान्य ये चार पदार्थ भक्षण करने से इनसे चार प्रकार के मद उत्पन्न होते हैं, सो मदात्यय रोग में कहा है उसे जानना और औषधी, बनस्पति इनके फल, छाल, मूल और पत्ते इन चारों के भक्षण करने से चार प्रकार के मद उत्पन्न होते हैं।।१९९।।

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ।
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसंभवाः ।।२००।।

इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां प्रथमखण्डे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अर्थ–ऐसे प्रसिद्ध रोगरूप उपद्रव इनकी संख्या निश्चय करके शार्ङ्गधराचार्य ने कही है, इसके सिवाय दूसरे स्वर्णादि धातु, हरतालादिक उपधातु, अनेक प्रकार की वनस्पति, औषधि और जीवादिक से उपद्रव होते हैं, वे उपद्रव असंख्य है उनकी संख्या नहीं होती। वह अनुमान करके जाननी।।२००।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामाप्रसादकृत–शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-हिन्दीटीकायां सप्तमोऽध्यायः परिपूर्णतामगात् ।।७।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां प्रथमं खण्डं सम्पूर्णम्

श्रीः

शार्ङ्गधरसंहिता

हिन्दीटीकासमेता

***

द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः १

पाँच काढे

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफाण्टकौ ।

ज्ञेयाः कषायाः पञ्चैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ।।१।।

अर्थ–स्वरस[1] २ कल्क ३ क्वाथ ४ हिम ५ फांट इन पांचों को कषाय कहते हैं, यह एक की अपेक्षा दूसरा हलका है। जैसे स्वरस की अपेक्षा कल्क हलका है, कल्ककी अपेक्षा क्वाथ हलका है, क्वाथ की अपेक्षा हिम और हिम की अपेक्षा फांट हलका है। रोगगणना के पश्चात् कषायादिकों का कथन ठीक है अतएव "अथातः" ऐसा पद श्लोक में कहा है।।१।।

स्वरस

अहतात् तत्क्षणात् कृष्टाद् द्रव्यात् क्षुण्णात् समुद्धरेत्।

वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ।।२।।

अर्थ–कीड़ा, अग्नि, पवन, जल इत्यादिक करके जो बिगड़ी न हो ऐसी वनस्पति को लाय के उसको उसी समय कूट कपड़े में डाल के निचोड़ लेवे। उस निचोड़े हुए रस को स्वरस अथवा अंगरस कहते हैं।।२।।

स्वरस की दूसरी विधि

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं चेद्द्विगुणे जले ।

अहोरात्रं स्थितं तस्माद् भवेद् वा रस उत्तमः।।३।।

अर्थ–एक कुडव सूखी औषध का चूर्ण करे। फिर उस औषध से दूना जल किसी घड़े आदि पात्र में भरके उस औषध को भिगो देवे। इस प्रकार एक दिन और एक रात भीगने दे दूसरे दिन औषधों को मसलकर उस पानी को कपड़े से छान लेवे, इसको भी स्वरस कहते हैं।।३।।

स्वरस की तीसरी विधि

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे । जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ।।४।। स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् । निःशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ।।५।।

अर्थ–यदि गली वनस्पति न मिले तो मूखी वनस्पति को लाकर उसमें आठ गुना पानी डाल दे और काढा करे। जब जलते २ चौथा हिस्सा जल शेष रहे तब उतार के पानी छान ले, यह स्वरस का तीसरा प्रकार है। स्वरस भारी है अतएव दो तोले सेवन करे और जिस औषधि को रात्रि में भिगोय के प्रातःकाल काढा किया हो वह ४ तोले के प्रमाण सेवन करे। औषध भक्षण में कलिंगपरिभाषा का मान लेना चाहिये।।४।।५।।

स्वरस में औषध डालने का प्रमाण

मधु श्वेतां गुडं क्षारान् जीरकं लवणं तथा ।
घृतं तैलं च चूर्णादीन् कोलमात्रान् रसे क्षिपेत्।।६।।

अर्थ–शहद, खांड, गुड, जवाखार, जीरा, सैंधानिमक, घृत, तेल तथा चूर्णादि ये स्वरस में डालने हों तो कोल प्रमाण डाले।।६।।

अमृतादिस्वरस प्रमेहपर

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ।
हरिद्राचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ।।७।।

अर्थ–गिलोय का स्वरस शहद मिलाय के पीवे तो सर्व प्रमेह दूर होवें, अथवा आमले के स्वरस में हल्दी का चूर्ण और शहद मिलाय के पीवे तो सर्व प्रमेह नष्ट होवें।।७।।

वासकादिस्वरस रक्तपित्तादिकों पर

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् । ज्वरकासभ-
क्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा।।८।। त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो
दार्वी रसोऽथ वा । निम्बस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति
कामलाम् ।।९।।

अर्थ–अडूसे के स्वरस में शहद मिलाय के पीवे तो ज्वर, खांसी और क्षयरोग को दूर करे। एवं त्रिफला, दारुहलदी, नीम की छाल और गिलोय इनमें से किसी एक के स्वरस में शहद मिलाय पीवे तो कामलारोग दूर होवे।।८–९।।

तुलसी और द्रोणपुष्पी इनका त्वरस विषमज्वरपर

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ।
द्रोणपुष्पीरसो वाऽपि निहन्ति विषमज्वरान्।।१०।।

अर्थ–तुलसी के पत्तों का स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी (गोमा रूँखडी) के पत्तों का स्वरस। इन दोनों में से किसी एक को ले उसमें काली मिरच का चूरा डाल के पीवे तो विषमज्वर दूर होवे।।१०।।

जम्ब्वाम्रार्द्रकस्वरस रक्तातिसारपर

जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत् ।
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्बणम् ।।११।।

अर्थ–जामुन, आम, आमले इनके पत्तों का स्वरस निकाल शहद, घी और दूध मिलायकर पीवे तो घोर रक्तातिसार को दूर करे।।११।।

स्थूलबब्बुल्यादिस्वरस सब अतिसारों पर

स्थूलबब्बुलिकापत्ररसः पानाद् व्यपोहति ।
सर्वातिसारान् श्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥१२॥

अर्थ–कांटेरहित बड़े बबूल के पत्तों का स्वरस पीने से सर्व प्रकार के अतिसार रोग दूर होवें अथवा टेंसू की छाल का स्वरस अथवा कूडा के छाल का स्वरस इनमें से किसी एक का पीवे तो सर्वप्रकार के अतिसार रोग दूर हो॥१२॥

आर्द्रकका स्वरस वृषणवात और श्वासपर

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत् ।
श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥१३॥

अर्थ–अदरक के रस में शहद मिलाय के पीवे को अण्डकोशों की बादी को दूर करे तथा श्वास खांसी अरुचि और जुकाम को दूर करे॥१३॥

बिजौरे का स्वरस पार्श्वादि शूलों पर

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् ।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम्॥१४॥

अर्थ–बिजौरे के फल को अथवा जड़ का स्वरस शहद और जवाखार मिलाय के पीवे को कुक्षि, हृदयशूल तथा दारुण ऐसा कोठे का वायु इन सब को दूर करे॥१४॥

शतावर का स्वरस पित्तशूलपर तथा

घीगुवार का स्वरस तिल्लीपर

शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः ।
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहाऽपचीहरः ॥१५॥

अर्थ–शतावरी के स्वरस में मिलाय के पीवे तो पित्तशूल दूर होय तथा घीकुवार का रस हल्दी मिलाय के पीवे तो प्लीहा (तिल्ली) का रोग और गण्डमाला का भेद जो अपची है उसको दूर करे॥१५॥

अलंबुषारस गंडमालापर

अलम्बुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ।
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥१६॥

अर्थ–गोरखमुंडी का स्वरस दो पँल पीवे तो अपची रोग, गण्डमाला ओर कामला रोग दूर होवे॥१६॥

शशमुंडरस सूर्यावर्त्तादिकोंपर

रसो मुण्डयाः सकोष्णो वा मरिचैरवधूलितः ।
जयेत् सप्तदिनाभ्यासात् सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥१७॥

अर्थ–गोरखमुण्डी के स्वरस को कुछ थोड़ा गरम कर काली मिरच का चूर्ण मिलाय पीवे तो सूर्यावर्त्त और अर्धावभेद (आधाशीशी) इनको दूर करे॥१७॥

ब्राह्मयादिका रस उन्मादरोगपर

ब्राह्मीकूष्माण्डषड्ग्रन्थाशंखिनीस्वरसः पृथक् ।
मधुकुष्ठयुताः पीताः सर्वोन्मादापहारिणः ॥१८॥

अर्थ–ब्राह्मी, पेठा, वच और शंखाहुली[१०] इनके स्वरस पृथक् पृथक् निकालके किसी एक को शदह मिलायके पीवे तो संपूर्ण उन्माद के रोग दूर होवें।।१८।।

कूष्माण्डकरस मदरोगपर

कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः ।
दुष्टकोद्रवसंजातं मदं पानाद् व्यपोहति ।।१९।।

अर्थ–पेठे के रस में गुड मिलाय के सेवन करे तो दुष्ट कोदों धान्य से उत्पन्न मद को दूर करे।।१९।।

गांगेरू का स्वरस व्रणरोगपर

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः ।
गाङ्गेरुकीमलरसैर्जायते गतवेदनः ।।२०।।

अर्थ–तल्वार आदि शस्त्र का घाव देह में होने से उसी समय घाव में गांगेरु[११] की जड़ स्वरस को भर देवे तो मनुष्य पीडारहित होवे।।२०।।

पुटपाक कहने का कारण

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।
अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ।।२१।।

अर्थ–पुटपाक और कल्क इन दोनों का ही स्वरस लिया जाता है अतएव पुटपाक की युक्ति कहते हैं।।२१।।

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्याङ्गारवर्णता । लेपं च द्व्यंगुलं स्थूलं कुर्याद् वांऽगुलमात्रकम् ।।२२।। काश्मीरवट-जाम्ब्वाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् । पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत्।।२३।।कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाःस्वरसवद् बुधैः ।

अर्थ–गीली वनस्पति को कूट पीस गोला बनावे, उसको कँमारी बड़ अथवा जामुन के पत्तों से लपेट उस पर दो अंगुल मोटा अथवा अंगुष्ठ प्रमाण मिट्टी का लेप करे। फिर उस गोले के नीचे उपले चुनके उसके बीच में उस गोले को रख के आंच जलावे। जब गोले की मिट्टी लाल हो जावे तब उसको निकाल मिट्टी और पत्ते ऊपर के दूर कर उसका रस निचोड़ लेवे। यदि वह वनस्पति कठोर होवे तो उसको पानी में अथवा जो द्रव द्रव्य कहे हैं उनमें पीसके इसी प्रकार गीले आदि की कृति करके रस काढ लेना चाहिये, इसके लेने की मात्रा एक पल की जाननी। उस रस में शहद डालना होवे तो अर्द्धपल डाले। कल्क चूर्ण दूध आदि शब्द से जो द्रव्यद्रव्यों का मान जैसा स्वरस में डालना लिखा है उसी प्रकार इस जगह डालना चाहिये।।२२।।२३।।

कुटजपुटपाक सर्वातिसारोंपर

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तण्डुलवारिणा ।।२४।। पिष्टां चतुष्पलमितां जम्बूपल्लववेष्टिताम् । सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम्।।२५।।लिप्तां च घनपंकेन गोमयैर्वह्निना दहेत् । अङ्गारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ।।२६।। ततो रसं

गृहीत्वा च शतं क्षौद्रयुतं पिबेत् । जयेत्सर्वानतीसारान् दुस्तरान् सुचिरोत्थितान् ॥२७॥

अर्थ–तत्काल की लाई हुई कुडे की छाल ४ पल उसको उसी समय चावलों के धोवन के जल में पीसके गोला बनावे। फिर उसको जामुन के पत्तों से लपेट सूत से बांध देवे, उसके ऊपर गेहूं के चून को सानके लपेट देवे और उसके ऊपर गाढ़ी २ मिट्टी का लेप करे, फिर उसको आरने उपलों में रखके फूँक देवे। जब गोले की मिट्टी आग के वेग से लाल होवे तब निकाल ले, उसकी मिट्टी और पत्ते आदि दूर कर किसी स्वच्छ कपड़े आदि में दबाय के रस निचोड़ लेवे। जब यह रस शीतल हो जावे तब शहद मिलाय के पीवे तो बहुत काल का दुर्घट अतिसार रोग दूर होवे॥२४–२७॥

चावलों के धोने की विधि

कण्डितं तण्डुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् ।
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥२८॥

अर्थ–एक पल बीने और फटके हुए चावलों में आठ गुना अर्थात् ८ पल जल मिलाय हाथों में मसल के चावलों का धुला हुआ पानी सब कार्य में लेना चाहिये॥२८॥

अरलुपुटपाक

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः ।
मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित् ॥२९॥

अर्थ–टेसू की गीली छाल को लाय के उसी समय कूट के गोला बनावे। फिर पूर्वोक्त विधि जो पुटपाक की कही है उसके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे। फिर रस निकाल उसमें शहद और मोचरस का चूर्ण डाल के पीवे तो सर्व प्रकार के अतिसार रोग दूर हों॥२९॥

न्यग्रोधादि पुटपाक

न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद् गौरतित्तिरैः । निरन्त्रमुदरं सम्यक् पुटपाकेन तत् पचेत् ॥३०॥ तत्कल्कस्य रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत् ।

अर्थ–१ वड़ २ गूलर ३ पापरी ४ जलवेत ५ पीपर इनकी छाल का चूर्ण करके पानी से पीस कल्क करके उसको सफेद तीतर के पेट में भर के पूर्वोक्त पुटपाक की विधि से उसका पुटपाक कर लेवे। फिर अग्नि से निकाल पत्ते मिट्टी आदि को दूरकर उस तीतर पक्षी के पेट से कल्क को निकाल के रस निचोड़ उसमें शहद मिलायके पीवे तो सब अतिसार नष्ट होवें॥३०॥

दाडिमादिपुटपाक

पुटपाकेन विपचेत् सुपक्वं दाडिमीफलम् ॥३१॥
तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः ।

अर्थ–पके हुए अनार को पुटपाक की विधि से अग्नि देवे। फिर रक्तवर्ण होने पर अग्नि से निकाल पत्ते मिट्टी आदि को दूर कर उस अनार को निकाल दाबकर रस निकाल लेवे। उसमें शहद मिलाय के पीवे तो संपूर्ण अतिसार रोग दूर होवें॥३१॥

बीजपूरादिपुटपाक

बीजपूराभ्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक् ॥३२॥ विपचेत्

पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः । छर्दिं निवारयेद् घोरां सर्वदोषसमुद्भवाम् ।।३३।।

अर्थ–बिजौरा, आम और जामुन इनके गीले पत्ते और जड़ लायके उसी समय कूट पीस गोला बनाय पूर्वोक्त रीति से अग्नि देवे। फिर उस गोले को बाहर निकाल दाब के रस निकाल लेवे। उसमें शहद मिलाय के पीवे तो सर्व दोषजन्य दुर्घट ओकारी का रोग दूर हो।।३२।।३३।।

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ।
मधुयुक्तो जयेद् रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ।।३४।।

अर्थ–अड़ूसा के गीले पत्तों को उसी समय कूट गोला बनावे। फिर पूर्वोक्त विधि से अग्नि देकर उसमें से रस निकाल लेवे। उसमें शहद मिलाय के पीवे तो रक्तपित्त, श्वास, ज्वर और क्षयरोग दूर होवें।।३४।।

कंटकारीपुटपाक

पाचेत् क्षुद्रां सपञ्चाङ्गां पुटपाकेन तद्रसः ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ।।३५।।

अर्थ–छोटी कटेरी के संपूर्ण वृक्ष को फल सहित लाकर उसी समय कूट के गोला बनावे। फिर पुटपाक की विधि से पकाय रस निकाल उस रस में पीपल का चूर्ण मिलाय कर पीवे तो श्वास खांसी और कफ ये दूर हों।।३५।।

बिभीतकपुटपाक

बिभीतकफलं किंचिद् घृतेनाभ्यज्य लेपयेत् । गोधूमपिष्टेनाङ्गारैर्विपचेत् पुटपाकवत् ।।३६।। ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत् । कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभङ्गान् जयेत्ततः ।।३७।।

अर्थ–बहेड़े के फल में घी चुपड़ के उस पर गेहूं के चून का लेप कर पुटपाक की विधि से अंगारों पर भूने, फिर उसके टुकड़े करके मुख में रखे तो श्वास[१५], कास[१६], खांसी, जुकाम और स्वरभंग इन सब रोगों को शीघ्र दूर करे।।३६।।३७।।

शुंठीपुटपाक आमातिसारपर

चूर्णं किंचिद् घृताभ्यक्तं शुठ्ण्या एरण्डजैर्दलैः । वेष्टितं पुटपाकेन विपचेद्मन्दवह्निा ।।३८।। तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम् । तेन यान्ति शमं पीडा आमातीसारसम्भवाः ।।३९।।

अर्थ–सोंठ के चूर्ण में थोड़ा घी मिलाय गोला करे फिर उसको अंडी के पत्तों से सपेट गोले को सूत से लपेट ऊपर मिट्टी का लेप करे। फिर उसको पुटपाक की विधि से पक्व करे पीछे उस गोले को आग से निकाल उस सोंठ के चूर्ण को खांड के साथ नित्य प्रातःकाल खाय तो आमातिसार से उत्पन्न हुई जो पीड़ा सो सब दूर होवें।।३८।।३९।।

दूसराशुंठीपुटपाक आमवातपर

शुण्ठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरण्डमूलजैः । विपचेत् पुटपाकेन

तद्रसः क्षौद्रसंयुतः॥४०॥ आमवातसमुद्भूतां पीड़ां जयति दुस्तराम् ।

अर्थ–अंड की जड के रस में सोंठ के चूर्ण को सानके गोला बनावे, उसको पुटपाक की विधि से पकाय के रस निकाल लेवे। उसमें शहद मिलाय के पीवे तो आमवायु से होनेवाली घोर पीड़ा दूर होवे॥४०॥

सूरणपुटपाक बवासीरपर

सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ॥४१॥
सतैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ।

अर्थ–सूरन (जमीकन्द) को कूट के गोला बनावे फिर पुट की विधि से पक्व करके रस निचोड़ लेवे उसमें तिल का तेल और सेंधानमक डाल के पीवे तो बवासीर का विकार दूर होवे॥४१॥

मृगशृङ्गपुटपाय हृदयशूलपर

शरावसंपुटे दग्धं शृङ्गं हरिणजं पिबेत् ।
गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥४२॥

इति शार्ङ्गधरे द्वितीयखण्ड प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अर्थ–मिट्टी के शरावे में हिरण के सींग के टुकड़े रख के उसको दूसरे शरावे से ढक कर उपलों में रख के फूँक देवे। फिर इस भस्म को गौ के घी में मिलाय के चाटे तो हृदय का शूल दूर होवे॥४२॥

इति वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायाः भावप्रकाशिकायां
हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः २

काढ़े करने की विधि

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् । मृत्पात्रे क्वाथयेद् ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥१॥ तज्जलं पाययेद् धीमान् कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् । शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते॥२॥ आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मितम् । वृद्धवैद्यो पदेशेन पिबेत् क्वाथं सुपाचितम् ॥३॥

अर्थ–एक पल औषध को जो कूट कर १६ पल पानी में डाल के हल्की अग्नि से औटावे। जब दो पल पानी शेष रहे तब उतार के छान ले, इसको कुछ २ गरम २ पीवे तथा रोगी को भले प्रकार अन्नपचन होने के पश्चात् वृद्ध वैद्य को पूछ करके काढ़ा देवे। १ घृत २ क्वाथ ३ कषाय और ४ निर्यूह ये काढ़े के पर्यायवाचक नाम हैं॥१–३॥

काढ़े में खांड़ और शहद डालने का प्रमाण

क्वाथे क्षिपेत् सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।

वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ।।४।।

अर्थ–काढ़े में खांड़ डालनी होवे तो वातरोग में काढे में काढ़े की चौथाई, पित्तरोग होवे तो आठवां हिस्सा, और कफरोग होवे तो काढ़े का सोलहवां भाग डाले। तथा पित्त रोग होय तो काढ़े का सोलहवां हिस्सा वातरोग होय तो आठवां हिस्सा और कफरोग होय तो चतुर्थांश शहद डाले ।।४।।

काढ़े में जीरा आदि करडे और दूध आदि पतले पदार्थ मिलाने का प्रमाण

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु ।

हिंगु त्रिकटुकं चैव क्वाथे प्राणोन्मितं क्षिपेत् ।।५।।

क्षीरं घृतं गुडं तैलं मूत्रं चान्यद्रवं तथा ।

कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत् कर्षसंमितम् ।।६।।

अर्थ–जीरा, गूगल, जवाखार, सेंधानमक, शिलाजीत, हींग, त्रिकुटा ये पदार्थ काढ़े में डालने हों तो शाणप्रमाण डाले। और दूध, घी, गुड़, तेल, मूत्र तथा अन्य दूसरे पतले पदार्थ कल्क चूर्णादिक एक एक वर्ष (२तो०) डाले।।५।।६।।

काढे के पात्र को ढकने का निषेध

अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत् ।।

तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः ।।७।।

अर्थ–काढ़ा होते समय उस पात्र को ढ़के नहीं क्योंकि काढ़े के पात्र को ढ़कने से काढ़ा भारी हो जाता है। इस कारण काढा करते समय उसके मुख पर ढकना न देवे यह नियम सर्वत्र है।।७।।

गुडूच्यादिकाढ़ा सर्वज्वरपर

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचन्दनपद्मकैः। गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ।।८।। दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत् ।

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया ३ नीम को छाल ४ पद्माख और ५ रक्तचन्दन इन पांच औषधों का काढा करके पीवे तो जठराग्नि को दीपन करके सर्व ज्वरों को दूर करे। उसी प्रकार वमन और अरुचि इन सर्व रोगों को दूर करे इसे गुडुच्यादि क्वाथ कहते हैं।।८।।

नागरादि वा शुण्ठचादिकाढ़ा सर्वज्वरपर

नागरं देवकाष्ठं च धान्याकं बृहतीद्वयम् ।।

दद्यात् पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम् ।।९।।

अर्थ–१ सोंठ २ देवदारु ३ धनिया ४ कटेरी और ५ बड़ी कटेरी (भटकटैया) इन पांच औषधों को छदाम २ भर ले काढ़ा कर प्रथम ज्वर के पचाने को यह पाचन काढ़ा देवे तो ज्वर दूर हो।।९।।

क्षुद्रादिक्वाथ

क्षुद्रा किराततिक्त च शुण्ठी छिन्ना च पौष्करम् ॥१०॥
कषाय एषां शमयेत् पीतश्चाष्टविधं ज्वरम् ॥

अर्थ–१ कटैरी २ चिरायता ३ कुटकी ४ सोंठ ५ गिलोय और ६ अंड की जड इन छः औषधों का काढा करके पीवे तो आठ प्रकार के ज्वर दूर हों॥१०॥

गुडूच्यादिक्वाथ

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥११॥
दद्याद् वातज्वरे पूर्णलिंगे सप्तमवासरे ॥

अर्थ–१ गिलोय २ पीपरामूल और ३ सोंठ इन तीन औषधों का काढ़ा वातज्वर पूर्णलिंग होने पर सातवे दिन के पश्चात् पाचन देवे तो वातज्वर नष्ट होवे॥११॥

शालपर्ण्यादिकाढा वातज्वरपर

शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा ॥१२॥
आसां क्वाथं पिबेत् कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम् ॥

अर्थ–१ काश्मरी २ सरवन ३ रास्ना ४ त्रायमाण और ५ गिलोय इन पांच औषधों का काढा थोड़ा गरम पीवे तो तीव्र वातज्वर दूर होय॥१२॥

काश्मर्यादिक्वाथ वातज्वरपर

काश्मरीसारिवारास्नात्रायमाणामृताभवः ॥१३॥
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः ॥

अर्थ–१ शालपर्णी २ खरेटी ३ रास्ना ४ गिलोय और ५ सरिवन इन पांच औषधों के काढा कर गुड़ मिलाय के पीवे तो वातज्वर दूर हो॥१३॥

कट्फलादिपाचन पित्तज्वरपर

कट्फलेन्द्रयवाम्बष्ठातिक्तामुस्तैः श्रृतं जलम् ॥१४॥
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात् तीव्रे पित्तज्वरे नृणाम् ।

अर्थ–१ कायफल २ इंद्रजौ ३ पाढ ४ कुटकी और ५ नागरमोथा इन पांच औषधों का काढा तीव्र पित्तज्वर के दश दिन जाने पर यह पाचन देवे तो पित्तज्वर दूर होवे॥१४॥

पर्पटादिकाढा पित्तज्वरपर

पर्पटो वासकस्तिक्ता किरातो धन्वयासकः ॥१५॥ प्रियङ्गुश्च
कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः । पिपासादाहपित्तास्रयुक्तं
पित्तज्वरं जयेत् ॥१६॥

अर्थ–१ पित्तपापड़ा २ अडूसा ३ कुटकी ४ चिरायता ५ धमासा और ६ फूलप्रियंगु इनका काढा करके खांड मिलायके पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त इनसे युक्त पित्तज्वर दूर होवे॥१५॥१६॥

द्राक्षादिकाढ़ा पित्तज्वरपर

द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुका कृतमालकः । पर्पटश्च कृतः क्वाथ
एषां पित्तज्वरापहः ॥१७॥ तृष्णमूर्छादाहपित्तासृक्शपनो भेदनः
स्मृतः ।

अर्थ–१ दाख, २ छोटी हरड, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी, ५ किरवारेका गूदा और ६ पित्तपापडा इन छः औषधों का काढ़ा पित्तज्वर को दूर करे तथा तृषा, मूर्च्छा, दाह, रक्तपित्त इनको शान्त करे एवं भेदक (बँधे हुए मल को तोडनेवाला) है।।१७।।

बीजपूरादिपाचन कफज्वरपर

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रन्थिकैः शृतम् ।।१८।।

सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ।

अर्थ–१ बिजोरे की जड २ छोटी हरड ३ सोंठ ४ पीपरामूल इन चार औषधियों का काढा करके उसमें जवाखार मिलाय बारह दिन के पश्चात् कफज्वर पर पाचन देवे तो कफज्वर दूर होय।।१८।।

भूनिम्बादिक्वाथ कफज्वरपर

भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी ।।१९।।

गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात् कफज्वरम् ।

अर्थ–१ चिरायता २ नीम की छाल ३ पीपर ४ कचूर ५ सोंठ ६ सतावर ७ गिलोय और ८ कटेरी इन आठ औषधों का काढ़ा करके पीवे तो कफ ज्वर को दूर करे।।१९।।

पटोलादिकाढ़ा कफज्वरपर

पटोलत्रिफलातिक्तशठीवासामृताभवः ।।२०।।

क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात् कफकृतं ज्वरम् ।

अर्थ–१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ कचूर ७ अडूसा और ८ गिलोय इन औषधों का काढ़ा शहद मिलाय के पीवे को कफज्वर को नष्ट करे।।२०।।

पर्पटादिकाढ़ा वातपित्तज्वरपर

पर्पटाब्दामृताविश्वकिरातैः साधितं जलम् ।।२१।।

पञ्चभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ।।

अर्थ–१ पित्तपापडा २ नागरमोथा ३ गिलोय ४ सोंठ और ५ चिरायता इन पांच औषधों का काढा करके पीवे तो वातपित्त ज्वर दूर होवे।।२१।।

लघुक्षुद्रादिकाढ़ा वातकफज्वरपर

क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ।।२२।। कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे। कासश्वासारुचिकर पार्श्वशूलविधायिनि ।।२३।।

अर्थ–१ कटेरी २ सोंठ ३ गिलोय और ४ अंड की जड़ इन चार औषधि का काढ़ा पीने से ज्वर में कफ वायु प्रबल हो उसको हरे और श्वास, खांसी, अरुचि, पीठ का शूल इन उपद्रव करके युक्त ऐसा त्रिदोषज ज्वर दूर होवे।।२२।।२३।।

आरग्वधादिकाढ़ा वातकफज्वरपर

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः । क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वतकफोद्भवम् ।।२४।। आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः ।

अर्थ–१ अमलतास का गूदा, २ पीपरामूल, ३ नागरमोथा, ४ कुटकी और ५ जंगीहरड़। इन

पांच औषधों का काढ़ा करके पीवे तो वातकफज्वर आमला शूल तत्काल नष्ट होय तथा मल उत्तम होकर दीपन पाचन करे॥२४॥

अमृताष्टक पित्तश्लेष्मज्वरपर

अमृतारिष्टकटुकामुसक्तेन्द्रयवनागरैः॥२५॥पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक्श्रृतम् ।अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥२६॥ छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम् ।

अर्थ–१ गिलोय, २ नीम की छाल, ३ कुटकी, ४ नागरमोथा, ५ इन्द्रजौ, ६ सोंठ, ७ पटोपलत्र और ८ लालचन्दन। इन आठ औषधों का काढ़ा करके पीपल का चूर्ण डाल के पीवे तो पित्त कफज्वर दूर होवे तथा वमन, अरुचि, हल्लास, दाह और प्यास को नष्ट करे॥२५॥२६॥

पटोलं चन्दवं सूर्वा तिक्ता पाठामृतागणः ॥२७॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकण्डूविषापहः ।

अर्थ–१ पटोलपत्र, २ रक्तचंदन, ३ मूर्वा, ४ कुटकी, ५ पाढ़ और ६ गिलोय। इन छः औषधों का काढ़ा करके पीवे तो पित्तकफज्वर, वमन, दाह, खुजली और विषबाधा इनको दूर करे॥२७॥

कंटकार्यादिपाचन सर्वज्वरपर

कण्टकारीद्वयं शुण्ठी धान्यकं सुरदारु च ॥२८॥
एभिः श्रृतं पाचनं स्यात् सर्वज्वरविनाशनम् ।

अर्थ–१ कटेरी, २ छोटी कटेरी, ३ सोंठ, ४ धनियां और ५ देहदारु। इन पांच औषधों का काढ़ा करके पीवे तो सर्व प्रकार के ज्वर दूर हों, इसको पाचन कहते हैं॥२४॥

दशमूलादिकाढ़ा वातकफज्वरादिपर

शालिपर्णी पृष्ठपर्णी बृहतीद्वयगौक्षुरैः ॥२९॥ बिल्वाग्निमन्थस्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः । दशमूलामिति ख्यातं क्वथितं तज्जलं पिबेत् ॥३०॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥३१॥ शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् । हृत्कम्पग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥३२॥

अर्थ–१ शालपर्णी, २ पिठवन, ३ छोटी कटेरी, ४ बड़ी कटेरी, ५ गोखरू, ६ बेलगिरि, ७ अरनी, ८ टेसूं, ९ कंभारी और १० पाढ़ल। इन दशमूल का काढ़ा पिप्पली का चूर्ण डालके पीवे तो वातकफज्वर सन्निपातज्वर प्रसूति का रोग शीर्ष सरदी का लगना, भ्रम पसीने खांसी और श्वास इन रोगों को दूर करे॥२९—३२॥

अभयादिकाढ़ा त्रिदोषज्वरपर

अभयामुस्तधान्याकरक्तचन्दनपद्मकैः । वासकेन्द्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥३३॥ पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्श्रृतम् । पिबेत्त्रिदोषज्वरजित् पिपासादाहकासनुत् ॥३४॥

प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम् । विण्मूत्रानिलविष्ट-म्भवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥३५॥

अर्थ–१ जंगी हरड, २ नागरमोथा, ३ धनिया, ४ लालचंदन, ५ पद्माख, ६ अडूसा, ७ इन्द्रजौ, ८ खस, ९ गिलोय, १० अमलतास का गूदा, ११ पाढ, १२ सोंठ, १३ कुटकी। इनका काढ़ा करके उसमें पीपल का चूर्ण डाल के पीवे तो त्रिदोषज्वर, प्यास, दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास, तन्द्रा इनको दूर करे। दीपन और पाचन है। एवं मल मूत्र अधोवायु इनका रुकना, वमन, शोष और अरुचि इनको दूर करे॥३३-३५॥

अष्टदशांगकाढ़ा सन्निपातादिकोंपर

किरातकटुकीमुस्ताधान्वेन्द्रयवनागरैः । दशमूलमहादारुगज-पिप्पलिकायुतैः ॥३६॥ कृतः कषायः पार्श्वातिसन्निपातज्वरं जयेत् । कासश्वासवमीहिक्कातंद्राहृद्ग्रहनाशनः ॥३७॥

अर्थ–१ चिरायता, २ कुटकी, ३ नागरमोथा, ४ धनिया, ५ इंद्रजो, ६ सौंठ, १० दशमूल मिलाय कर १६ हुए, १७ देवदारु और १८ गजपीपल इन अठारह औषधों का काढ़ा करके पीवे तो पार्श्वशूल और सन्निपातज्वर ये दूर हों। उसी प्रकार श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, तंद्रा और हृदयपीड़ा इनको दूर करे॥३६॥३७॥

यवान्यादिकाढ़ा श्वासादिकोंपर

यवानी पिप्पली वासा तथा वत्सकवल्कलः । एषां क्वाथं पिबेत् कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥३८॥

अर्थ–१ अजवायन, २ पीपल, ३ अडूसे के पत्ते और ४ कुड़े की छाल इन चार औषधों का काढ़ा करके पीवे तो खांसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश करे॥३८॥

कट्फलादिकाढ़ा कासादिपर

कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीभिधान्यरोहिषपर्पटैः । व चाहरीतकी-श्रृंगीदेवदारुमहौषधैः ॥ क्वाथः कासं ज्वरं हंति श्वासश्लेष्मम-लग्रहान् ॥३९॥

अर्थ–१ जायफल, २ नागरमोथा, ३ भारंगी, ४ धनियां, ५ रोहिषतृण, ६ पित्तपापड़ा, ७ वच, ८ हरड, ९ काकडासिंगी, १० देवदारु और ११ सोंठ इन ग्यारह औषधों का काढ़ा पीने से खांसी, ज्वर, श्वास, कफ और कंठ का रुकना इन सबको दूर करे॥३९॥

गुडच्यादिकाढ़ा तथा पर्पटादिकाढ़ा

क्वाथो जीर्णज्वरं हंति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥
तथा पर्पटजः क्वाथः पित्तज्वरहरः परः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥४०॥

अर्थ–गिलोय का काढ़ा सिद्ध होने पर पीपल का चूर्ण डाल के पीवे तो बहुत दिन का ज्वर जाय। इस प्रकार केवल पित्तपापड़े का काढ़ा करके उसमें पीपल का चूर्ण मिलाय के पीवे तो पित्तज्वर नष्ट होय। यदि लालचंदन, नेत्रवाला, सोंठ इनको मिलायके पित्तपापड़े का काढ़ा करके सेवन करे तो पित्तज्वर चला जाय, इसमें क्या कहना है॥४०॥

निदिग्धिकामृताशुण्ठीकषायं पाययेद् भिषक् ।।४१।।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ।।
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वरच्छिदम् ।।४२।।

अर्थ–१ कटेरी, २ गिलोय, ३ सोंठ, इन औषधों का काढ़ा पीपल का चूर्ण मिलाय के सेवन करे तो श्वास, खांसी, अर्दितवायु, सरेकमा, अरुचि, स्वरभङ्ग, शूल और जीर्णज्वर इनको दूर करे।।४१।।४२।।

देवदार्वादिकाढ़ा प्रसूतिदोषपर

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्तधान्या हरीतकी ।।४३।। गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ।। बृहत्यातिविषा च्छिन्ना कर्कटी कृष्णजीरकम् ।।४४।। क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत् स्त्रियम् । शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरीर्तिजित् ।।४५।।

अर्थ–१ देवदारु, २ वच, ३ कूठ, ४ पीपल, ५ सोंठ, ६ कायफल, ७ नागरमोथा, ८ चिरायता, ९ कुटकी, १० धनिया, ११ जङ्गीहरड, १२ गजपीपल, १३ लालधमासा, १४ गोखरू, १५ धमासा, १६ कटेरी, १७ अतिस, १८ गिलोय, १९ काकड़ासिङ्गी और २० काला जीरा। इन बीस औषधों का अष्टावेश काढ़ा करके पीवे तो प्रसूतिरोग, शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा कम्पवायु और मस्तकपीड़ा इन सबको दूर करे।।४३-४५।।

क्षुद्रादिकाढ़ा सर्वशीतज्वरोंपर

क्षुद्राधान्यकशुण्ठीर्भिगुडूचीमुस्तपद्मकैः । रक्तचन्दनभूनिम्बपटोलवृषपौष्करैः ।।४६।। कटुकेन्द्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समः । क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ।।४७।।

अर्थ–१ कटेरी, २ धनिया, ३ सोंठ, ४ गिलोय, ५ नागरमोथा, ६ पद्माख, ७ लाल चन्दन, ८ चिरायता, ९ पटोल पत्र, १० अडूसा, ११ अरंड की जड़, १२ कुटकी, १३ इन्द्रजौ, १४ नीम की छाल, १५ भारंगी और १६ पित्तपापड़ा। इन सोलह औषधों का काढ़ा प्रातःकाल पिवे तो सर्वशीतज्वर दूर हों।।४६-४७।।

मुस्तादिकाढ़ा ऐकाहिकज्वरपर

मुस्ताक्षुद्रामृताशुण्ठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ।।४८।।

अर्थ–१ नागरमोथा, २ कटेरी, ३ गिलोय, ४ सोंठ और ५ आमले इन पांच औषधों का काढ़ा शहद और पीपल का चूर्ण डाल के पीवे तो विषमज्वर दूर होय।।४८।।

पटोलादिकाढ़ा ऐकाहिकज्वरपर

पटोलत्रिफलानिम्बद्राक्षाशम्पाकविश्वकैः ।
क्वाथः सितामधुयुतो जयेदैकाहिकं ज्वरम् ।।४९।।

अर्थ–१ पटोलपुत्र, २ त्रिफला, ३ नीम की छाल, ४ मुनक्का (दाख), ५ अमलतास गूदा और

६ अडूसा। इन छः औषधों का काढ़ा शहद और खांड डाल के पीवे तो नित्य आनेवाला ज्वर दूर होवे।।४९।।

पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः । मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।।५०।। सन्तते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके । ऐकाहिके वा विषमे दाहपूर्वे-नवज्वरे ।।५१।।

अर्थ–१ पटोलपुत्र, २ इन्द्रजो, ३ देवदारु, ४ त्रिफला, ५ नगरमोथा, ६ मुनक्का (दाख), ७ मुलहटी, ८ गिलोय और ९ अडूसा इन नव औषधों का काढ़ा कर शहद मिलाय के पीवे तो सन्ततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयकज्वर, ऐकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वक ज्वर और नवज्वर इतने रोगों को दूर करे।।५०।।५१।।

गुडूच्यादिकाढ़ा तृतीयज्वरपर

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीर नागरैः । कृतं क्वाथं पिबेत् क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ।।५२।। तृतीयज्वरनाशाय तृष्णा-दाहनिवारणम् ।

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ नागरमोथा, ४ लालचंदन, ५ नेत्रवाला और ६ सोंठ। इन छः औषधों का काढ़ा शहद और खांड डाल कर पीवे तो तिजारी आना दूर होवे।।५२।।

देवदार्वादिकाढ़ा चातुर्थिकज्वरपर

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ।।५३।।
धात्रीयुतं शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ।।
चातुर्थिकज्वरश्वासकासे मन्दानले तथा ।।५४।।

अर्थ–१ देवदारु, २ जंगी, ३ अडूसा, ४ शालपर्णी, ५ सोंठ और ६ आमले इन छः औषधों का काढ़ा करके शीतल होने पर शहद और खांड मिलाय के पीवे तो चौथे या ज्वर, श्वास और खांसी दूर हो तथा अग्नि प्रदीप्त होती है।।५३।।५४।।

गुडूच्यादिकाढ़ा ज्वरातिसारपर

गुडूचीधान्यकोशीरशुण्ठीवालकपर्पटैः ।बिल्वप्रतिविषापाठा रक्तचन्दनवत्सकैः ।।५५।। किरातमुस्तेन्द्रयवैः क्वथितं शिशि पिबेत् । सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ।।५६।।

अर्थ–१ गिलोय, २ धनिया, ३ खस, ४ सोंठ, ५ नेत्रवाला, ६ पित्तपापड़ा, ७ बेलगिरी, ८ अतीस, ९ पाढ़, १० लालचन्दन, ११ कुटजकी छाल, १२ चिरायता, १३ नागरमोथा और १४ इन्द्रजौ, इन चौदह औषधों का काढ़ा शीतल कर शहद मिलायके पीवे तो रक्तपित्त और ज्वरातिसार दूर होवे।।५५।।५६।।

नागरादिकाढ़ा ज्वरातिसार

नागरं कुटजो मुस्तममृताऽतिविषा तथा ।
एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम् ।।५७।।

अर्थ–१ सोंठ, २ कुड़े की छाल, ३ नागरमोथा, ४ गिलोय और ५ अतीस। इन पांच औषधों का

काढ़ा पीवे तो ज्वरातिसार शान्त होवे॥५७॥

धान्यपञ्चक आमशूलपर

धान्यवासकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम् ।
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥५८॥

अर्थ–१ धनिया, २ नेत्रवाला, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ सोंठ। इन पांच औषधों का काढ़ा पीने से आमशूल दूर करके मल का अवष्टंभ दूर करे और दीपन पाचन करे॥५८॥

धान्यकादिकाढ़ा दीपनपाचनपर

धान्यनागरजः क्वाथो दीपनः पाचनस्तथा ।
एरण्डमूलयुक्तश्च जयेदामानिलव्यथाम् ॥५९॥

अर्थ–१ धनिया, २ सोंठ, इन दोनों औषधों का काढ़ा पीने से दीपन, पाचन करे और यदि इसमें अरण्डी की जड़ डाल लेवे तो आमवायु को दूर करता है॥५९॥

वत्सकादिकाढ़ा आमातिसार और रक्तातिसारपर

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तवालकमाशृतम् ।
अतिसारं जयेत् सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥६०॥

अर्थ–१ कुड़े की छाल, २ अतीस, ३ बेलगिरी, ४ नागरमोथा और ५ नेत्रवाला इन पांच औषधों का काढ़ा बहुत दिन के आमातिसार को और शूलसहित रक्तातिसार को दूर करे॥६०॥

कुटजाष्टक काढ़ा अतिसारादिकोंपर

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः । ह्रीबेरदाडिमयुतैः कृतः क्वाथः समाक्षिकः ॥६१॥ पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टकसञ्ज्ञकः । अतिसारान् जयेद्दात-रक्तशूलाम-दुस्तरान् ॥६२॥

अर्थ–१ कुड़े की छाल, २ अतीस, ३ पाढ़, ४ धाय के फूल, ५ लोध, ६ नागरमोथा, ७ नेत्रवाला और ८ अनारकी छाल। इन आठ औषधों का काढ़ा शहद और मोचरस मिलाय के पीवे तो जिस अतिसार में दाह, रक्तशूल और आम होय ऐसे घोर अतिसार को नष्ट करे॥६१॥६२॥

ह्रीबेरादि काढ़ा अतिसारादि रोगोंपर

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः । धान्याकातिविषा-मुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः ॥६३॥ कृतः कषायः शमयेदतिसारं चिरोत्थितम् । अरोचकामशूलासृग्ज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः ॥६४॥

अर्थ–१ नेत्रवाला, २ धाय के फूल, ३ लोध, ४ पाढ़, ५ लज्जालु, ६ कुड़े की छाल, ७ धनिया, ८ अतीस, ९ नागरमोथा, १० गिलोय, ११ बेलगिरि और १२ सोंठ। इन बारह औषधों का काढ़ा पीवे तो बहुत दिनों का अतिसार अरुचि आमशूल रुधिरविकार और ज्वर दूर करे इसको पाचन कहा है॥६३॥६४॥

धातक्यादिकाढ़ा बालकों के सब अतिसारोंपर

धातकीबिल्वलोध्राणि बालकं गजपिप्पली । एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम् ॥६५॥ प्रदद्यावलेह् वा सर्वातीसारशान्तये ।

अर्थ–१ धाय के फूल, २ बेलगिरी, ३ लोध, ४ नेत्रवाला और ५ गजपीपल। इन पांच औषधों के काढ़े को शीतल कर शहद मिलाय के बालक को चटावे तो बालक का अतिसार रोग दूर होवे॥६५॥

शालपर्ण्यादि काढ़ा संग्रहणीपर

शालिपर्णीबलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतं शृतम् ॥६६॥
आध्मानशूलसहितं वातजां ग्रहणीं जयेत् ।

अर्थ–१ शालपर्णी, २ खरेटी, ३ बेलगिरी, ४ धनियां और ५ सोंठ। इन पांच औषधों का काढ़ा करके पीवे तो पेट का फूलना और शूल इन करके युक्त वातज संग्रहणी को दूर करे॥६६॥

चतुर्भद्रादि काढ़ा आभसंग्रहणीपर

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्वाथः कृतो जयेत् ॥६७॥
आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः ।

अर्थ–१ गिलोय, २ अतीस, ३ सोंठ और ४ नागरमोथा। इन चार औषधों का काढ़ा पीवे तो आमयुक्तग्रहणी दूर होवे तथा ग्राही कहिये मल को अष्टंभव करनेवाला होकर दीपन पाचन करता है॥६७॥

इन्द्रयवादि काढ़ा सब अतिसारोंपर

यवधान्यं पटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः ॥६८॥
योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ।

अर्थ–१ इन्द्रजौ, २ धनिया और ३ पटोलपत्र, इन तीन औषधों के काढ़े में मिश्री और शहद मिलाय के पीवे तो सम्पूर्ण अतिसार दूर होवे। उसी प्रकार बेलगिरी का अथवा मिश्री आम की गुठली का, आम की गुठली और बेलगिरी का काढ़ा करके शहद मिलाय के पीवे तो रक्तपित्त और दुर्घट श्वास और खांसी दूर हो॥६८॥

त्रिफलादि काढ़ा कृमिरोगपर

त्रिफला देवदारुश्च मुस्ता मूषककर्णिका ॥६९॥ शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः । विडंगचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा ॥७०॥

अर्थ–१ हरड़, २ बहेड़ा, ३ आमला, ४ देवदारु, ५ नागरमोथा, ६ मूसाकर्णी और ७ संहिजने की छाल इन सात औषधों का काढ़ा पीपल का चूर्ण वा वायविडंग का चूर्ण मिलाय के पीवे तो कृमिज्वर और विवर्णतादि दूर होय॥६९॥७०॥

फलत्रिकादि काढ़ा कामला और पांडुरोगपर

फलत्रिकाऽमृतातिक्तानिम्बकैरातवासकैः ।
जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पाण्डुतां तथा ॥७१॥

अर्थ–१ हरड़, २ बहेड़ा, ३ आमला, ४ गिलोय, ५ कुट की, ६ नीम की छाल, ७ चिरायता और ८ अड़ूसे के पत्ते। इन आठ औषधों का काढ़ा कर उसमें शहद मिलाये के पीवे तो कामला और पांडुरोग को दूर करे।।७१।।

पुनर्नवादि काढ़ा पांडुकासादिरोगोंपर

पुनर्नवाऽभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः । गुडूचीनागरयुतैः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः ।।७२।।पाण्डुकासोदर-श्वासशूलसर्वाङ्गशोथहा ।।

अर्थ–१ सांठी की जड़, २ हरड़े, ३ नीम की छाल, ४ दारुहल्दी, ५ कुटकी, ६ पटोलपत्र, ७ गिलोय और ८ सोंठ। इनका काढ़ा गोमूत्र मिलायके पीवे तो पांडुरोग, खांसी, उदररोग, श्वास, शूल और सर्वांग की सूजन को नष्ट करे।।७२।।

वासादिकाढ़ा

वासाद्राक्षाऽभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।।७३।।
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ।

अर्थ–१ अड़ूसा, २ दाख, ३ हरडे। इनके काढ़े में शहद और मिश्री मिलाय के पीवे तो रक्तपित्त की पीड़ा, श्वास और दारुण खांसी इन सबको दूर करे।।७३।।

वासे का काढ़ा रक्तपित्तक्षयादिपर

रक्तपित्तं क्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा ।।७४।।
केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत् ।

अर्थ–केवल अड़ूसे के काढ़े में शहद मिलाय के पीवे तो रक्तपित्त, क्षय, खांसी और श्लेष्मपित्तज्वर दूर होवे।।७४।।

वासादि काढ़ा ज्वरखांसीपर

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा ।।७५।।

अर्थ–१ अड़ूसा, २ कटेरी और ६ गिलोय इनके काढ़े में शहद मिलायके पीवे तो ज्वर खांसी दूर होवे।।७५।।

क्षुद्रादि काढ़ा खांसीपर

कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राश्रृतस्तथा ।

अर्थ–कटेरी के काढ़े में पीपल का चूर्ण मिलाके पीवे तो खांसी दूर हो।।

क्षुद्रादि काढ़ा श्वासखांसीपर

क्षुद्राकुलत्थावसाभिर्नागरेण च साधितः ।।७६।।
क्वाथः पौष्करचूर्णाप्तः श्वासकासौ निवारयेत् ।

अर्थ–१ कटेरी, २ कुलथी, ३ अड़ूसा, ४ सोंठ, इनके काढ़े में पुहरकर मूल का चूर्ण मिलाय के पीवे तो श्वास खांसी को दूर करे।।७६।।

रेणुकादि काढ़ा हिक्कापर

रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः ।।७७।।
पापादव हि पञ्चापि हिक्का नाशयति क्षणात् ।

अर्थ–१ रेणुका और २ पीपल इनके काढ़े में हींग का कल्क मिलाकर पीवे तो पांच प्रकार की हिचकियों को तत्काल दूर करे॥७७॥

हिंग्वादिकाढ़ा गृध्रसीरोगपर

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलश्रृतं जयेत् ॥७८॥
गृध्रसीं केवलः क्वाथः शेफालीपत्रजस्तथा ।

अर्थ–दशमूल के काढ़ में भुनी हींग और पुहरकमूल का चूर्ण मिलायके पीवे तो गृध्रसी नामक वात का रोग दूर होवे अथवा केवल निर्गुंडी के पत्तों के काढ़े में भुनी हींग और पुहकरमूल का चूर्ण मिलाये के पीवे तो भी गृध्रसी वायु दूर होवे॥७८॥

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ॥७९॥
जयेत् त्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ।

अर्थ–बेल की छाल अथवा गिलोय के काढ़े में सहत डालके पीवे तो सन्निपात की छर्दि (वमनरोग) को दूर करे। अथवा पित्तपापड़े का काढ़ा शहद मिलाय के पीने से पित्तजन्य छर्दि को दूर करे॥७९॥

रास्नादिपंचकक्वाथ सर्वांगवातपर

रास्नाऽमृतामहादारुनागरैरण्डजं श्रृतम् ॥८०॥
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगजे पिबेत् ।

अर्थ–१ रास्ना, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ सोंठ और ५ अरण्ड की जड़। इनका काढ़ा सप्तधातुगत वायु, आमवात और सर्वांगगतवात के रोग में पीनी चाहिये॥८०॥

रास्नासप्तक

रास्नागोक्षुरकैरण्डदेवदारुपुनर्नवाः ॥८१॥ गुडूच्यारग्वधौ चैव क्वाथ एषां विपाचयेत् । शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तः पिबज्जंघाकटिग्रहे ॥८२॥ पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ।

अर्थ–१ रास्ना, २ गोखरू, ३ अरण्ड, ४ देवदारु, ५ पुनर्नवा, ६ गिलोय और ७ अमलतास का गूदा। इनका काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाय के जंघा और कमर के रह जाने में एवं पसवाड़े, पीठ, ऊरू की पीड़ा और आमवात इन रोगों में यह काढ़ा पीना चाहिये तो उक्त रोग दूर हों॥८१॥८२॥

महारास्नादिकाढ़ा संपूर्णवायुपर

रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे ॥८३॥ धन्वयासबलैरण्डदेवदारुशठीवचाः । वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ॥८४॥ गुडूची वृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः । अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥८५॥ कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं वृहतीद्वयम् । एभिः कृतं पिबेत् क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् ॥८६॥ कृष्णचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलनाऽथवा । अजमोदादि ऽपि तैलेनैरण्डजेन वा ॥८७॥

सर्वाङ्गकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽपबाहुके। गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ॥८८॥ अण्डवृद्धौ तथाध्माने जंघाजानुगदार्दिते। शुक्रामये मेढ्ररोगं वंध्यायोन्यामयेषु च ॥८९॥ महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम्।

अर्थ–१ रास्ना दो तोले और २ धमासा, ३ खिरेटा, ४ अरण्ड की जड़, ५ देवदारु, ६ कचूर, ७ वच, ८ अडूसे का पंचांग, ९ सोंठ, हरड की छाल, ११ चव्य, १२ नागरमोथा, १३ सोंठ की जड़, १४ गिलोय, १५ विधायरा, १६ सौंफ, १७ गोखरू, १८ असगंध, १९ अतीस, २० अमलतास का गूदा, २१ शतावर, २२ पीपल छोटी, २३ पियाबांसा, २४ धनिया और २५-२६ दोनों छोटी बड़ी कटेरी एक एक तोला। इन छब्बीस औषधों के काढ़े में सोंठ का चूर्ण मिलाय के अथवा पीपल के चूर्ण को मिलायके अथवा योगराजगूगल के साथ अथवा अजमोदादिचूर्ण के साथ अथवा अरंडी के तेल के साथ इस काढ़े की पीवे तो सर्वांगकंप, कुबड़ापन, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानकवायु, अंडवृद्धि, अफरा, जंघा-जानु की पीड़ा, शुक्र के दोष, लिंग के रोग, वन्ध्या की योनि के और गर्भाशय के रोग इन सबो दूर करे। ब्रह्मदेव ने गर्भ स्थापन में कारण यह महारास्नादि क्वाथ कहा है।।८३-८९।।

एरण्डसप्तक स्तनादिगतवायुपर

एरण्डो बीजपूरश्च गोक्षुरो वृहतीद्वयम् ॥९०॥ अश्मभेदस्तथा बिल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः। एरण्डतैलहिंग्वाढ्यः सयवक्षारसैन्धवः ॥९१॥ स्तनस्कन्धकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत्।

अर्थ–१ अरंड की जड़ २ बिजोरे की जड़ ३ गोखरू ४ छोटी कटेरी ५ बड़ी कटेरी ६ पाषाणभेद और ७ बेलगिरी इन सात औषधियों की जड़का काढेंगे अंरडी का तेल और भुनी हींग तथा जवाखार और सेंधानमक इनका चूर्ण मिलाकर पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिङ्ग और छाती इन ठिकानों पर होनेवाली वातसम्बन्धी पीड़ा को दूर करे।।९०।।९१।।

नागरादिकाढा वातशूलपर

नागरैरण्डयोः क्वाथः क्वाथ इन्द्रयवस्य वा ॥९२॥ हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥

अर्थ–१ सोंठ २ अरण्डी की जड़ इन दोनों औषधों का काढा करके उसमें भुनी हींग और काला नमक मिला के पीवे अथवा इन्द्रजौ के काढे में काला नमक और हींग मिलायके पीवे तो वातसम्बन्धी पीडा दूर होवे।।९२।।

त्रिफलादिकाढा पित्तशूलपर

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥९३॥ रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः।

अर्थ–१ हरड २ बहेड़ा ३ आमला और ४ अमलतास इन चार औषधों के काढ़े में खाँड और शहद मिलायके पीवे तो रक्तपित्त, दाह और पित्तशूल दूर हों।।९३।।

एरण्डमूलादिकाढा कफशूलपर

एरण्डमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत् ।।९४।।

तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा ।

अर्थ–१ अरण्ड की जड़ दो पल[22] ले, उसमें आठ पल पानी मिलाय के काढा करे जब अष्टमावशेष काढा हो जावे तब उतार छान उसमें जबाखार मिलायके पीवे तो पखवाड़े और हृदय में होनेवाले कफ के शूल का नाश होवे।।९४।।

दशमूलादिकाढा हृद्रोगादिकोंपर

दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैन्धवः ।।९५।।

हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकामश्वासांश्च नाशयेत् ।

अर्थ–दशमूल काढ़ा कर उसमें जबाखार और सेंधानमक मिलाय के पीवे तो हृदयरोग, गोला, शूल, श्वास और खाँसी इनका नाश करे।।९५।।

हरीतक्यादि काढा मूत्रकृच्छ्रपर

हरीतकीदुरालम्भाकृतमालकगोक्षुरैः ।।९६।। पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः । विबन्धे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः ।।९७।।

अर्थ–१ छोटी हरड २ धमासा ३ अमलता का गूदा ४ गोखरू और ५ पाषाणभेद इन पांच औषधों का काढा कर उसमें शहद मिलाय के पीवे तो दाह, मूत्र का रुकना तथा वायु का अवरोध और उपद्रवयुक्त मूत्रकृच्छ्र दूर होवे।।९६।।९७।।

वीर तर्वादिकाढा मूत्राघातादिकोंपर

वीरतरुर्वृक्षवन्दा काशः सहचरत्रयम् । कुशद्वयं नलो गुन्द्रा बकपुष्पोऽग्निमन्थकः ।।९८।। मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा । अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ।।९९।। वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा । मूत्राघातं वायुरोगान् नाशयेन्निखिलानपि ।।१००।।

अर्थ–१ कोहवृक्ष की छाल २ बाँदा ३ कासा ४ सफेद ५ पीला और ६ काला ऐसा पियाबाँसा ७ कुशा ८ डाभ ९ देवनल १० गुद्रा[23] (पटेर) बकपुष्प (शिवर्लिगी) १२ अरनीकी जड १३ मूर्वा १४ पाषाण,भेद १५ टेसू की जड १६ गोखरू १७ ओंगा (चिरचिटा) १८ कमल और १९ ब्राह्मी[24] के पत्ते इन उन्नीस औषधों का काढा करके पीवे तो यह वीरतर्वादिक्वाथ शर्करा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात और सर्व प्रकार के वातादि रोगों को दूर करे।।९८–१००।।

एलादि काढा पथरीशर्करादिकोंपर

एलामधुकगोकण्ठरेणुकैरण्डवासकाः । कृष्णाश्मभेदसहितः क्वाथ एषां सुसाधितः ।।१०१।। शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ।

अर्थ–१ छोटी इलायची के बीज २ मूलहटी ३ गोखरू ४ रेणुका[25] बीज ५ अरांड की जड ६ अड़ूसा ७ पीपर और ८ पाषाणभेद इन औषधों का काडा करके उसमें शिलाजीत मिलायके पीवे

तो शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र इनको दूर करे॥१०१॥

समूलगो क्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः ॥१०२॥

नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ।

अर्थ–जड़सहित गोखरूके वृक्ष का काढा कर उसमें खाँड और शहद मिलाय के पीवे तो मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात (गरमी का रोग) दूर होता है॥१०२॥

त्रिफलादि काढा प्रमेहपर

वरादार्व्यब्ददारूणां क्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ॥१०३॥

वत्सको त्रिफला दार्वी मुस्तको बीजकस्तथा ।

अर्थ–१ हरड २ बहेड़ा ३ आमला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ देवदारु इनका काढा शहद मिलाय के पीवे तो प्रमेह दूर हो। १ कुडे की छाल २ हरडे ३ बहेडा ४ आमला ५ दारुहल्दी ,६ नागरमोथा ७ बीजक इन सात औषधों का काढा शहद मिलायके पीवे तो प्रमेह को दूर करे॥१०३॥

दूसरा फलत्रिकादि काढा प्रमेहपर

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः कृत पिबेत् ॥१०४॥

निशाकल्कयुतं सर्वं प्रमेहविनिवृत्तये ।

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ दारुहल्दी ५ नागरमोथा और ६ इंद्रायन की जड इन छः औषधों के काढे में हलदी मिलाय के पीवे तो सर्व प्रकार के प्रमेह दूर होवें॥१०४॥

दार्व्यादि काढा प्रदररोगपर

दार्वी रसाञ्जनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः ॥ कैरातश्च पिब देषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम् । जयेत् सशूलं प्रदरं पीतः श्वेतासितारुणम् ॥१०५॥

अर्थ–१ दारुहल्दी २ रसोंत ३ नागरमोथा ४ भिलावा ५ बेलगिरी ६ अड़ूसा और ७ चिरायता इन सात औषधों के काढे को शीतल करके उसमें शहद मिलायके पीवे तो शूलसहित पीला, सफेद, काला ऐसे रंगवाला स्त्रियों का प्रदररोग दूर हो॥१०५॥

न्यग्रोधादि काढा व्रणादिरोगोंपर

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसा बदरी तुणिः । मधुयष्टी प्रियालुश्च लोध्रद्वयमुदुम्बरः ॥१०६॥ पिप्पल्यश्च मधूकश्च तथा पारिस–पिप्पलः। सल्लकी तिन्दुकी जम्बूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥१०७॥ कदंबककुभौ चैव भल्लातकफलानि च । न्यग्रोधादिगणक्वाथं यथालाभं च कारयेत् ॥१०८॥ अयं क्वाथो महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत् । योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः ॥१०९।

अर्थ–१ बड़ की छाल २ पाखर की छाल ३ अंबाड़े की छाल ४ वेत की छाल ५ बेर की छाल ६ चूनी (तूत वृक्ष की छाल) ७ मुंलहटी ८ चिरौंजी ९ लाल लोध १० सफेद लोध ११ गूलर की छाल १२ पीपल की छाल १३ महुआ की छाल १४ पारिसपीपल की छाल १५ सालईवृक्ष की छाल १६ तेंदु १७ छोटी जामुन १८ बड़ी जामुन की छाल १९ आम २० छोटी हरड २१ कदंब की

छाल २२ कोहकी छाल और २३ मिलावे इन तेइस औषधों का काढा करके पीवे तो मलका अवष्टंभ होक व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग और विषदोष ये नष्ट होवें।।१०६–१०९।।

बिल्वादि काढ़ा मेदोरोगपर

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ।

क्वाथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ।।११०।।

अर्थ–१ बेलगिरि २ अरनी ३ टेंटू ४ कंभारी ५ पाढल इस बृहत्पञ्चमूलका काढ़ा करके उसमें शहद मिलायके पीवे तो सब शरीर में भेद बढ़कर जो पीड़ा होती है वह दूर होवे।।११०।।

दूसरा त्रिफलादिकाढा

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः ।

शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत् क्षौद्रसंयुतम् ।।१११।।

अर्थ–त्रिफला काढा करके उसमें शहद मिलायके पीवे तो मेदरोग नष्ट होवे उसी प्रकार औटे हुए जल को शीत कर उसमें शहद मिलाय के पीवे तो मेद रोग दूर होवे।।१११।।

चव्यादि काढा उदररोगपर

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा ।

क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदरान् जयेत् ।।११२।।

अर्थ–१ चव्य २ चीते की छाल ३ सोंठ और ४ देवदारु इन चार औषधों का काढा उसमें निशोथ का चूर्ण और गोमूत्र मिलाय के पीवे तो सम्पूर्ण उदररोग दूर हों।।११२।।

पुनर्नवादि काढा शोथोदरपर

पुनर्नवाऽमृतादारुपथ्यानागरसाधितः ।

गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहा ।।११३।।

अर्थ–सांठी की जड़ २ गिलोय ३ देवदारु ४ जंगी हरड और ५ सोंठ इन पांच औषधों का काढ़ा करके उसमें गूगल गोमूत्र मिलायकर पीने से सूजनवाला उदररोग नष्ट होवे।।२३।।

पथ्यारोहितकक्वाथं यवक्षारकणायुतम् ।

प्रातः पिबेद् यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ।।११४।।

अर्थ–१ जंगीहरड २ रक्तरोहिडा इन दोनों औषधों का काढा कर उसमें पीपल का चूर्ण और जवाखार मिलायके प्रातःकाल पीवे तो यकृत रोग और प्लीहा का रोग तथा गुल्मोदर इनको दूर करे।।११४।।

पुनर्नवादि का काढ़ा सूजनपर

पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुण्ठी हरीतकी । गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः ।।११५।। पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोफं निवारयेत् ।

अर्थ–१ सांठ की जड़ २ हारुहलदी ३ हलदी ४ सोंठ ५ जंगीहरडे ६ गिलोय ७ चीते की छाल ८ भारंगी ९ देवदारु इन नौ औषधों का काढा करके पीवे तो संपूर्ण अंग की सूजन दूर होव।।११५।।

त्रिफलादिकाढा वृषणशोथपर

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥११६॥
बातश्लेष्मकृतं हंति शोथं वृषणसम्भवम् ।

अर्थ–१ हरडे २ बहेडे ३ आंवला इन तीन औषधों का काढा करके उसमें गोमूत्र मिलाय के पीवे तो वातकफजन्य जो अंडकोषों की सूजन है वह दूर होवे॥११६॥

रास्नादि काढा अन्त्रवृद्धिपर

रास्नाऽमृताबलायष्टीगोकण्टैरण्डजः शृतः ॥११७॥
एरण्डतैलसंयुक्तो वृद्धिमन्त्रोद्भवाञ्जयेत् ।

अर्थ–१ रास्ना २ गिलोय ३ खरेंटी ४ मुलहटी ५ गोखरू ६ अरण्ड की जड़ इन छः औषधों का काढा करके उसमें अरण्डी का तेल मिलायके पीवे तो अन्त्रवृद्धि (अर्थात् अन्तर्गत वायु कि जिसमें अण्डकोश बड़े होते हैं) रोग दूर होवे॥११७॥

कांचनारादि गण्डमालापर

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् ॥११८॥
गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः ।

अर्थ–कचनार वृक्ष की छाल का काढा कर उसमें सोंठ का चूर्ण मिलायके पीवे अथवा उसी प्रकार करना वृक्ष की छाल का काढा कर उसमें शहद मिलायके पीवे तो गण्डमाला दूर होवे॥११८॥

शाखोटकादि काढा गण्डमालापर

शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥११९॥
श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ।

अर्थ–सहोडा की छाल का काढा करके उसमें गोमूत्र मिलायके पीवे तो श्लीपद रोग (जो कि विशेष करके पैरों में होता है जिसको पीलापाव कहते हैं वह) और मेदोरोग ये दूर होवें॥११९॥

पुनर्नवादि काढा अन्तर्विद्रधिपर

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोऽतर्विद्रधीन् जयेत् ॥१२०॥
तथा शिग्रुभवः क्वाथो हिङ्गुकल्केन संयुतः ।

अर्थ–१ पुनर्नवा २ वरना इन दोनों औषधों का काढा पीने से अंतर्विद्रधि को दूर करे। अथवा सहँजने की छाल का काढा करके उसमें भुनी हींग डालके पीवे तो भी अतर्विद्रधि रोग दूर होय॥१२०॥

वरुणादिकाढा मध्यविद्रधिपर

वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ ॥१२१॥
ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे ।

अर्थ–वरुणादिक औषधों का गुण जो आगे कहेंगे उसका काढा करके तथा ऊषकादि औषधों का चूर्ण जो आगे कहेंगे उसका चूर्ण करके उस काढे में मिलायके पीवे तो पक्व नहीं हुआ जो विद्रधिरोग सो दूर होवे॥१२१॥

वरुणादिकाढा

वरुणो बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥१२२॥ अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् । सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः ॥१२३॥ अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी । वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥१२४॥ हंति गुल्मं शिरः शूलं तथाऽऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥

अर्थ–१ वरनाकी छाल २ शिवलिंगी ३ कोमल बेलफल ४ ओंगा ५ चित्रक ६ छोटी अरनी ७ बड़ी अरनी ८ कडुआ सँहजना ९ मीठा सँहजना १० छोटी कटेरी ११ बडी कटेरी १२ पीले फूल का पियाबांसा १३ सफेद फूल का पियाबांसा १४ काले फूल का पियाबांसा १५ मूर्वा १६ काकड़ासिंगी १७ चिरायता १८ मेढासिंगी १९ कडुई कंदूरीकीज अथवा पत्ते २० कंजा और २१ शतावर इन इक्कीस औषधों का काढा करके पीवे तो कफमेदरोग, मस्तकशूल और गोले का रोग ये दूर हों जो अंतर्विद्रधि नामका रोग होता है वह दूर हो। मूल के श्लोक में "तथा विद्रधि पीनसान्" ऐसा भी पाठ है उस पक्ष में पीनसरोग को भी दूर करे ऐसा अर्थ जानना॥१२२–१२४॥

ऊषकादिगण

ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकाशीसद्वयसैन्धवम् ॥१२५॥
सशिलाज तु कृच्छ्राश्मगुल्ममेदः कफापहम् ।

अर्थ–१ खारी मिट्टी २ शुद्ध किया हुआ मोचरस ३ भुनी हींग ४ सफेद हीराकसीस ५ पीला हीराकसीस (इसको शुद्ध करके लेना चाहिये) ६ सेंधानमक और ७ शिलाजीत इन सात औषधियों का चूर्ण सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदरोग दूर होता है॥१२५॥

खादिरादिकाढा भगंदररोगपर

खदिरात्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः ॥१२६॥
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः ।

अर्थ–१ खैरसार २ हरड ३ बहेड़ा ४ आमला इन चार औषधों का काढा करके उसमें भैंस का घी और वायविडंग चूर्ण मिलाकर पीवे तो भंगदर रोग दूर होवे॥१२६॥

पटोलादिकाढा उपदंशपर

पटोलत्रिफलानिम्बकिरातखदिरासनैः ॥१२७॥
क्वाथः पीतो जयत् सवानुपदंशान् सगुग्गुलुः ।

अर्थ–१ पटोपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ नीम की छाल ६ चिरायता ७ खैरसार और ८ विजयसार इन आठ औषधों का काढा करके उसमें गूगल मिलायके पीवे तों सम्पूर्ण उपदंश (गरमी के रोग) दूर हों॥१२७॥

अमृतादिकाडा वातरक्तपर

अमृतैरण्डवासानां क्वाथ एरण्डतैलयुक् ॥१२८॥
पीतः सर्वाङ्गसञ्चारि वातरक्तं जयेद् ध्रुवम् ।

अर्थ--१ गिलोय २ अरंड की जड और ३ अडूसा इन तीन औषधियों के काढे में अरंडी का तेल

मिलायकर पीवे तो सम्पूर्ण अंग में विचरनेवाला वातरक्त रोग दूर होवे।।१२८।।

दूसरा पटोलादिकाढा

पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी।।१२९।।
एष क्वाथो जयेत् पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ।

अर्थ–१ पटोलपत्र २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ गिलोय और ७ शतावर इन सात औषधियों का काढा करके पीवे तो दाहयुक्त वातरक्त दूर हो।।१२९।।

अवल्गुजादि काढा श्वेतकुष्ठपर

क्वाथोऽवल्गुजचूर्णाढ्यो धात्रीखदिरसारयोः।।१३०।।
जयेत् सुशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम् ।

अर्थ–आमला और खैरसार इन दोनों औषधियों का काढा करके उसमें बावची का चूर्ण मिलाकर पीवे और पथ्य से रहे तो मनुष्य का सफेद कुष्ठ दूर हो।।१३०।।

लघुमंजिष्ठादि काढा वातरक्तकुष्ठादिकोंपर

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचादारुनिशामृता।।१३१।।
निम्बश्चैषां कृतः क्वाथो वातरक्तविनाशनः ।
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमण्डलजिन् मतः ।।१३२।।

अर्थ–१ मंजी २ हरड ३ बहेडा ४ आमला ५ कुटकी ६ वच ७ दारुहल्दी ८ गिलोय जौर ९ नीम की छाल इन नौ औषधियों का काढा करके पीवे तो वातरक्त, खाज, कपालिककुष्ठ, तथा रुधिर के विकार (देह में काले चकत्तों का होना) दूर होवें।।१३१।।१३२।।

बृहन्मजिष्ठादि काढा कुष्ठादिकोंपर

मञ्जिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः। भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिम्ब-निशाद्वयफलत्रिकैः ।।१३३।। पटोलकटुकीमूर्वाविडङ्गासन-चित्रकैः । शतावरीत्रायमाणाकृष्णेन्द्रयवबासकैः ।।१३४।। भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचन्दनैः । त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुची-कृतमालकैः।।१३५।।शाखोटकमहानिम्बकरञ्जातिविषाजलैः । इन्द्रवारुणिकानन्तासारिवापर्पटैः समैः।।१३६।।भिःकृतं पिबेत-क्वाथंकणागुग्गुलुसंयुतम् । अष्टादशसुकुष्ठेषु वातरक्तार्दिते तथा ।।१३७।। उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके । मेदोदोषे नेत्ररोगे मञ्जिष्ठादिः प्रशस्यते ।।१३८।।

अर्थ–१ मंजीठ २ नागरमोथा ३ कुंडकी छाल ४ गिलोय ५ कूठ ६ सोंठ ७ भारंगी ८ कटेरी का पंचांग ९ वच १० नीम की छाल ११ हल्दी १२ दारुहल्दी १३ हरडे १४ बहेडा १५ आंवला १६ पटोलपत्र १७ कुटकी १८ मूर्वा १९ वायविडंग २० विजय २१ चित्रक (चीते) की छाल २२ शतावर २३ त्रायमाण २४ पीपल २५ इन्द्रजौ २६ अडूसे के पत्ते २७ भांगरा २८ देवदारु २९ पाढ ३० खैरसार ३१ लालचन्दन ३२ निसोथ ३३ वरनाकी छाल ३४ चिरायता ३५ बावची ३६ अमलतासका गूदा ३७ सहोडाकी छाल ३८ बकायन ३९ कंजा ४० अतीस ४१ नेत्रवाला ४२

इंद्रायन की जड़ ४३ धमासा ४४ सारिवा और ४५ पित्तपापडा इन पैंतालिस औषधियों को कूट पीस जवकूट करके एक तोले का काढा कर उसमें पीपल का चूर्ण और गूग्गल मिलायके पीवे तो अठारह प्रकार के कोढ, वातरक्त, उपदंश (गरमी का रोग), श्लीपदरोग, अंगशून्य, पक्षाघात, वायु, मेदरोग और नेत्ररोग ये सब दूर हों।।१३३–१३८।।

पथ्यादि काढा शिरोरोगादिकोंपर

पथ्याक्षधात्रीभूनिम्बैर्निशानिम्बाऽमृतायुतैः । कृतः क्वाथः षडङ्गोऽयं सगुडः शीर्षशूलहा ।।१३९।। भ्रूशंखकर्णशूलानि तथार्धशिरसो रुजम् । सूर्यावर्तं शंखकं च दन्तपातं च तद्रुजम् ।।१४०।। नक्तान्ध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति ।

अर्थ–१ हरडें २ बहेडा ३ आंवला ४ चिरायता ५ हल्दी ६ नीम की छाल और ७ गिलोय इन सात औषधियों का काढा करके उसमें गूगल मिलायकर पीवे तो मस्तकशूल, भौंह, शंख (कनपटी) और कानसम्बंधी शूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त (सूर्योदय से दो प्रहरपर्यन्त जो शूल मस्तक में चढ़ता है वह) शंख का शूल, दांतों के हिलने से जो पीड़ा होती है वह साधारण दन्तशूल, रतौंध नेत्रों के पटलगत रोग एवं नेत्र का फूला तथा नेत्रों का दूखना इन सब उपद्रवों सहित रोगों को यह पथ्यादि काढा दूर करता है।।१३९–१४०।।

वासादि काढा नेत्ररोगपर

बासाविश्वामृतादार्वीरक्तचंदनचित्रकैः।।१४१।। भूनिम्बनिम्बकटुकापटोलत्रिफलांबुदैः । यवकालिंगकुटजैः क्वाथःसर्वाक्षिरोगहा।।१४२।। वैरवर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसः क्षतत् ।

अर्थ–१ अड़ूसा २ सोंठ ३ गिलोय ४ दारुहल्दी ५ लालचन्दन ६ चीते की छाल ७ चिरायता ८ नीम को छाल ९ कुट को १० पटोलपत्र ११ हरड १२ बहेडा १३ आमला १४ नागरमोथा १५ जौ १६ इन्द्रजौ और १७ कुडेकी छाल इन सत्रह औषधियों का काढा करके पीवे तो सम्पूर्ण नेत्र के रोग, स्वरभंग, पीनसरोग श्वास और उरःक्षत ये संपूर्ण रोग दूर होवें।।१४१।।१४२।।

दूसरा अमृतादिकाढा

अमृतात्रिफलाक्वाथः पिप्लीचूर्णसंयुतः ।।१४३।।
सक्षौद्रः शीलितो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत् ।।

अर्थ–१ गिलोय २ हरड ३ बहेडा ४ आमला इन चार औषधियों का काढा करके उसमें पीपल का चूर्ण शहद मिलायके पीने से संपूर्ण नेत्र के रोग दूर होते हैं।।१४३।।

व्रणादिकप्रक्षालन करने का काढा

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ।।१४४।।
व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात् स्मृतम् ।

अर्थ–१ पीपल २ गूलेर ३ पोखर ४ वड और ५ वेंत इन पांच औषधियों की छाल के काढे से व्रण, सूजन, गर्मी का रोग धोने से नष्ट होता है।।१४४।।

प्रमथ्यादिकषाय भेद

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात् कल्कीकृताच्छृतात् ।।१४५।।
तोयेऽष्टगुणिते तस्य पानमाहुः पलद्वयम् ।

अर्थ–एक पल औषधी को कूटपीस कर कल्क कर (यदि औषध सूखी हुई हो तो उसको भिगोकर कल्क करे) उसमें आठगुना जल डाल के औटावे। जब दो पल जल शेष रहे तब उतारले इसको प्रमथ्या कहते हैं। इसके सेवन करने का प्रमाण दो पल है॥१४५॥

मुस्तादि प्रमथ्या रक्तातिसारपर

मुस्तकेन्द्रयवैः सिद्धा प्रमथ्या द्विपलोन्मिता ॥१४६॥
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी ।

अर्थ–१ नागरमोथा और २ इंद्रजौ इन दोनों औषधियों को १ पल कूट पीस के कल्क करे। उसमें आठगुना जल मिलाय के २ पल शेष रहने पर्यंत औटावे। फिर उतार शीतल करके उसमें शहद मिलायके पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे॥१४६॥

यवागू का विधान

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुः षष्टिपले जले ॥१४७॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्घनाम् ।

अर्थ–चार पल औषध लेकर कुछ थोड़ीसी कूट के उसमें ६४ चौसठ पल पानी मिलाय के औटावे। जब आधा जल शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छान के उसमें दूसरे द्रव्य चावल आदि जो कहे हैं वे मिलायके फिर औटावे जब गाढी हो जावे तब उतार ले इसे यवागू कहते हैं॥१४७॥

आम्रादियवागू संग्रहणीपर

आम्राम्रातकजम्बूत्वक्कषाये विपचेद्बुधः ॥१४८॥
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत् ।

अर्थ–१ आम २ अंबाडा ३ जामुन इन तीन वृक्षों की चार पल छाल को जब कूट कर चौंसठ गुने पानी में डाल के औटावे। जब आधा पानी रह जावे तब उतारके इस जल को छान ले, फिर उसमें चार पल चावल डाल के फिर औटावे। जब औटाते २ गाढा हो जावे तब उतार ले। इसको आम्रादि यवागू कहते हैं इसके भोजन (सेवन) करने से संग्रहणी दूर होवे॥१४८॥

कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी ॥१४९॥
वारिप्रस्थेन विपचेत् स द्रवो यूष उच्यते ।

अर्थ–कल्क की औषध सामान्यतया १ पल लेवे। तथा जिस प्रयोग में सोंठ और पीपल हों उस जगह वह तीक्ष्ण होने के कारण आधा २ कर्ष लेवे। या दोनों मिलायके अर्ध कर्ष लेवे, फिर उनका कल्क करके उसमें जल एक प्रस्थ (सेरभर) डालकर मिलाय देवे। उसको चूल्हेपर रखके पेज के समान गाढी करे उसको यूष ऐसे कहते हैं॥१४९॥

सप्तमुष्टिकयूष सन्निपातादिकोंपर

कुलित्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः ॥१५०॥
शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्माऽनिलापहः ।
सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरं जयेत् ॥१५१॥
आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणां विशोधनः ।

अर्थ–१ कुलथी २ जौ ३ बेर ४ मूँग ५ छोटी मूली ६ सोंठ और ७ धनियां इन सात औषधों को एक २ लेकर सोलह गुने पानी में गाढ़ा होने पर्यंत औटावे। इसको सप्तमुष्टिक यूष कहते हैं। इस

यूष के पीने से कफ वायु सन्निपातज्वर और आमवात दूर होता है तथा कण्ठ हृदय और मुख की शुद्धि होती है।।१५०।।१५१।।

पानादि कल्पना

क्षुण्णं द्रव्यपलं साध्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ।।१५२।।
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसंनिधौ ।

अर्थ-एक पल औषध ले जवकूट कर उसको ६४ चौसठ पल जल में डाल के औटावे, जब आधा पानी रहे तब उतारकर कपड़े से छान ले उसको जब जब प्यास लगे तब और भोजन के समय थोड़ा २ पीवे। वह प्रकार आगे लिखा जाता है।।१५२।।

उशीरादिपानक पिपासाज्वर पर

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ।।१५३।।
जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ।

अर्थ-१ खस २ पित्तपापड़ा ३ नेत्रवाला ४ नागरमोथा ५ सोंठ और ६ रक्तचंदन इन छः औषधियों को मिलाय चार तोले लेवे। जवकूट करके उसको २५६ तोले जल में डाल के आधा पानी रहे तत्पर्यंत औटावे, फिर उतार के छान लेवे। शीतल होने पर जिस ज्वर में अत्यन्त लगती हो उसमें थोड़ा २ क्रम से पीने को देवे तो प्यास और ज्वर ये दूर हों।।१५३।।

गरमजल की विधि ज्वरादिकोंपर

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनाऽर्धकेन वा ।।१५४।।
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ।

अर्थ-पानी को औटाय के आठवां हिस्सा या चौथा हिस्सा अथवा अर्धावशेष रखे अथवा उत्तम रीति से खूब औटावे। इसको उष्णोदक (गरम जल) कहते हैं।।१५४।।

रात्रि में गरमजल पीने की विधि

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं वस्तिशोधनदीपनम् ।।१५५।।
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ।

अर्थ-रात्रि में गरमजल पीने से कफ आमवात मेदरोग खांसी श्वास ज्वर नष्ट हों तथा पेट की शुद्धि और अग्नि प्रदीप्त हो।।१५५।।

दूध के पाक की विधि आमशूलपर

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात् क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ।।१५६।।
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ।

अर्थ-औषधियों के आठ गुना गौ का दूध लेवे और दूध से चौगुना पानी ले सबको एकत्र करके दूध शेष रहे इतना औटावे फिर उस दूध को पीवे तो आमशूल दूर होवे।।

पञ्चमूलीक्षीरपाक सर्वजीर्णज्वरोंपर

सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम् ।।१५७।। श्वासात् कासाच्छिरःशूलात् पार्श्वशूलात्सपीनसात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ।।१५८।।

अर्थ-१ शालपर्णी, २ पृष्ठपर्णी, ३ छोटी कटेरी, ४ बड़ी कटेरी और ५ गोखरू इन पांच

औषधियों की जड़ को जवकूट करके आठ गुने दूध में और दूध से चौगुने पानी में डाल के औटावे। जब औटाते औटाते केवल दूध शेष रहे तब उतारके छान लेवे। इसके पीने से श्वास, खाँसी, मस्तकशूल, पसवाड़ों का शूल, पीनस और जीर्णज्वर दूर हों। (यह दूध सम्पूर्ण जीर्णज्वरों की उत्तम औषधि हैं)।।१५७।।१५८।।

त्रिकण्टकादि क्षीरपाक

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः ।।१५९।।

अर्थ–१ गोखरू, २ खरेंटी, ३ कटेरी की जड़ का वल्कल, ४ कुष्ठ और ५ सोंठ, इन पांच औषधों को आठ गुने दूध से और दूध से चौगुने पानी में औटावे। जब दूधमात्र बाकी रहे तब उतार ले। इस दूध के पीने से मल और मूत्र उत्तम रीति से उतरे तथा कफज्वर दूर होवे।।१५९।।

अन्नस्वरूप यवागू

अथान्नप्रक्रियात्रैव प्रोच्यते नातिविस्तरात् । यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृशरा घना ।।१६०।। तण्डुलैर्माषमुद्गैश्चतिलैर्वाधिता हितायवागूग्राहिणी बल्या तर्पिणी वातनाशिनी।।१६१।।

अर्थ–अन्नक्रिया कहिये अन्नस्वरूप यवागू विलेपी और पेया इनके तैयार करने की विधि संक्षेप करके कहता हूं-चावल, मूँग, किंवा, उड़द या तिलों से जिस द्रव्य की यवागू बनानी हो उसको लेकर उसमें उससे छः गुना पानी डाल के जब तक गाढ़ी न होवे तब तक औटावे उसको अन्नयवागू कहते हैं। उस यवागू के दो नाम हैं–एक कृशरा, दूसरा घना, वह मलादिकों का स्तंभन, बलवृद्धि, शरीर की पुष्टि तथा वायु का नाश करनेवाली होती है।।१६०।।१६१।।

विलेपी के लक्षण और गुण

विलेपी च घनासिक्था[३७] सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ।
बृंहणी तर्पणी ह्रद्या मधुरा पित्तनाशिनी ।।१६२।।

अर्थ–द्रव्य से चौगुना पानी डाल के औटावे। जब ल्हपसी के समान गाढ़ी और लिपटनेवाली हो जावे उसको विलेपी कहते हैं। वह धातु की वृद्धि करनेवाली शरीर को पुष्ट करनेवाली हृदय को हितकारी, मधुर और पित्त का नाश करनेवाली है।।१६१।।

पेयालक्षण

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले ।। सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किञ्चिद्घनः स्मृतः ।।१६३।। पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा । यूषो बल्यस्ततः कण्ठ्यो लघूपाय[३८]: कफापहः ।।१६४।।

अर्थ–द्रव्य से चौदह गुने पानी में डाल के पतली पेज के समान और कुछ लसदार होने पर्यंत औटाने से उसको पेया कहते हैं। पेया की अपेक्षा कुछ गाढ़ी को यूष कहते हैं। पेया बहुत हल्की मलादिकों का स्तंभन करनेवाली और धातुपुष्ट करनेवाली है। और यूष बल को देनेवाला, कंठ को हितकारी, हलका तथा कफ को दूर करनेवाला जानना।।१६३।।१६४।।

भात करने का प्रकार

जले चतुर्दशगुणे तण्डुलानां चतुःपलम् ।

विपचेत् स्रावयेन् मण्डं स भक्तो मधुरो लघुः ।।१६५।।

अर्थ–चार पल बीने फटे के बारीक चावलों को चौदह गुने जल में डाल के औटावे, जब सीज जावे तब मांड निकाल ले। यह चावलों का भात मधुर तथा हलका होता है।।१६५।।

शुद्धमण्ड

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः ।

शुण्ठीसैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ।।१६६।।

अर्थ–शुद्ध चावलों को चौदह गुने पानी में डाल के औटावे। जब चावल सीज जावे तब मांड निकाल लेवे। इस मांड को शुद्धमंड कहते हैं, इसमें सोंठ और सेंधानमक मिलाकर पीवे तो अन्न का पचन और अग्नि का दीपन होवे।।१६६।।

अष्टगुणमंड

धान्यत्रि कटुसिन्धूत्थमुद्गतण्डुलयोजितः ।

भृष्टश्च हिङ्गुतैलाभ्यां स मण्डोष्टगुणः स्मृतः ।।१६७।।

दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ।

ज्वरजित् सर्वदोषघ्नो मण्डोष्टगुण उच्यते ।।१६८।।

अर्थ–१ धनिया, २ सोंठ, ३ मिरच, ४ पीपल, ५ सेंधानमक, ६ मूंग, ७ चावल, ८ हींग और ९ तेल, इन नौ औषधियों में से प्रथम तेल में हींग मिलाय के उसमें मूंग एक पल तथा चावल दो पल लेकर दोनों को भूने। फिर दूसरी औषधि रही हुई वह थोड़ी थोड़ी खारी और चरपरी न होवे इस प्रकार मूँग चावलों में मिलाय के चौदहगुने पानी में डालके औटावे। जब सीज जावे तब उतारकर कपड़े से छान लेवे। इसको पीने से अग्नि प्रदीप्त होकर प्राणों में तेज आता है तथा वस्तिका शोधन होकर रुधिर की वृद्धि होती है, ज्वर और वातादि तीन दोष दूर होवें। इसको अष्टगुणमण्ड कहते हैं।।१६७।।१६८।।

वाटचमण्ड कफपित्तादिरोगोंपर

सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाटचमण्डो यवैर्भवेत् ।

कफपित्तहरःकण्ठचो रक्तपित्तप्रसादनः ।।१६९।।

अर्थ–उत्तम जवों को उत्तम रीति से कूट फटककर भूने फिर बीन फटककर उनमें चौदह गुना पानी चढ़ायके सिजावे। फिर उस पानी को छान के सेवन करे। इसको वाटचमण्ड कहते हैं। यह मण्ड पीवे तो कफ पित्त का प्रकोप दूर होवे, कण्ठ को हितकारक होय तथा रक्तपित्त का प्रकोप दूर होता है।।१६९।।

लाजामण्ड कफपित्तज्वरादिकोंपर

लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः ।

श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन् मतः ।।१७०।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने क्वाथादिकल्पना नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

अर्थ–धान की भुनी खली अथवा चावलों को भून के उसमें चौदहगुना पानी डाल के औटावे फिर उसको पसाय के मांड निकाल लेवे, इसे लाजमण्ड कहते हैं। यह मंड पीवे तो कफपित्त का प्रकोप दूर होकर संग्रहणी और अतिसार इनका स्तंभन होय तथा जिस ज्वर में प्यास अधिक लगे सो दूर होय।।१७०।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकाया-
हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तृतीयोऽध्यायः ३

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णे विनिक्षिपेत् । मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत् पटात् ।।१।। स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम् । मधुश्वेतगुडादींश्च क्वाथवत् तत्र निक्षिपेत् ।।२।।

अर्थ–एक पल औषधियों को लेकर अच्छी रीति से कूट एक कुँडव प्रमाण जल के किसी पात्र में भरके जब अच्छी तरह गरम हो जावे तब पूर्वोक्त कूटी हुई औषधियों को डाल के खूब औटावे। फिर उस पानी को कपड़े से छान लेवे। इसको फांट तथा चूर्णद्रव कहते हैं। इस फांट के पीने का प्रमाण दो पल है तथा उस फांट में शहद, मिश्री, खांड, गुड़ आदि शब्द से अन्य पदार्थ डालना होय तो जिस प्रकार काढ़े में शहत, मिश्री आदि का डालना लिखा है उसी प्रमाण इस जगह फाण्ट में डालना चाहिये।।१।।२।।

मधूकादिफाण्ट वातपित्तज्वरपर

मधूकपुष्पं मधुकं चन्दनं सपरूषकम् । मृणालं कमलं लोध्रं कम्भारी नागकेशरम् ।।३।। त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान् कोष्णे जले क्षिपेत् । सितामधुयुतः पेयः फाण्टो वाऽसौ हिमोऽथवा ।।४।। वातपित्तज्वर दाह तृष्णमूर्च्छारतिभ्रमान् । रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ।।५।।

अर्थ–१ महुआ के फूल, २ मुलहटी, ३ लाल चन्दन, ४ फालसे, ५ कमल की डंडी, ६ कमल, ७ लोध, ८ कंभारी, ९ नागकेशर, १० त्रिफला, ११ सारिवा, १२ मुनक्का दाख और १३ धान की खील इन तेरह औषधों को कूटकर इसमें से १ पल लेवे। फिर चार पल पानी को चूल्हे पर चढ़ायके खूब गरम करे, जब जल उबलने लगे तब उक्त कुटी हुई १ पल औषधियों को गेर देवे। फिर खूब औटावे तब उस पानी को उतारके छान लेवे। इसको मधूकादि फाण्ट कहते हैं। यह फांट खांड और सहत मिलायके पीवे तो वातपित्तज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा, अरति, भ्रम, रक्तपित्त और मंदरोग ये दूर होवें, इसमें सन्देह नहीं है। तथा ये तेरह औषध रात्रि में पानी में भिगो देवे। प्रातःकाल उस पानी को छान के सेवन करे, इसको हिमविधि कहते हैं। इस हिम के पीने से यह भी फाण्ट के समान गुण करता है।।३-५।।

आम्रादिफाण्ट पिपासादिकों पर

आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः । उशीरेण कृतः फाण्टः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः ।।६।। पिपासाच्छर्द्यतीसारान् मूर्च्छां जयति दुस्तराम् ।

अर्थ–१ आम और २ जामुन, इनके कोमल पत्ते और बड़ की कली के भीतर के पत्ते तथा उसके कोमल २ पत्ते और नेत्रवाला इन औषधों का पूर्वरीति से फाण्ट करके पीवे तो ज्वर, प्यास, वमन, अतिसार तथा कष्टसाध्य मूर्च्छा के रोग दूर हों।।६।।

मधुकादिफाण्ट पित्ततृष्णादिकोंपर

मधूकपुष्पक्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः ।।७।। द्राक्षया च कृतः फाण्टः शीतः शर्करया युतः । तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ।।८।।

अर्थ–१ महुआ के फूल, २ कंभारी, ३ लालचन्दन, ४ नेत्रवाला, ५ धनियां और ६ दाख इन छः औषधियों को फांट करके पीवे तो प्यास, पित्त, दाह, मूर्छा और भ्रम दूर होते हैं।।७।।८।।

मन्थकल्पना

मन्थोऽपि फाण्टभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते ।

अर्थ–मंथ भी फाट का ही भेद है इसी से उसको भी इसी जगह कहते हैं।

मन्थकी विधि

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं क्षिपेत् ।।९।।
मृत्पात्रे मन्थयेत् सम्यक् तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ।

अर्थ–एक पल औषधियों को अच्छी रीति से कूटे। फिर चार पल शीतल पानी को मृत्तिका के पात्र में भरके उसमें उस कुटी हुई औषधि को डाले रई से मन्थन करे। जब अत्यन्त झाग उठे तब उसको छान ले, इसें मन्थ कहते हैं। इस मन्थ के पीने की मात्रा दो पल की है।।९।।

खर्जूरादिमन्थ सर्वमद्यविकारोंपर

खर्जूरदाडिमद्राक्षातिन्तिडीकाम्लिकामलैः ।।१०।।
सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत् ।

अर्थ–१ खर्जूर, २ अनारदाने, ३ दाख, ४ तिन्तिड़ी, ५ इमली, ६ आमले और ७ फालसे, इन सात औषधियों को कूट के एक पल लेवे, फिर चार पल शीतल जल को मृत्तिका के पात्र में भरके उस कुटी हुई औषधियों को डाल के रई से खूब मथे। फिर उस पानी को छान ले। इसको पीवे तो सम्पूर्ण मद्यविकार, सुपारी का मद, कोदोधान्य का मद तथा आसवों का मद ये सब मद दूर होयँ।।१०।।

मसूरादिमन्थ वमनरोगपर

क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमांभसा ।।११।।
मथिता वारयंत्याशु च्छर्दि दोषत्रयोद्भवाम् ।

अर्थ–साबत मसूर को भुनाय के चून कराय ले। फिर पके हुए अनारदाने का पानी करके उसमें

मसूर के चून को सहत मिलायके पीवे तो वातपित्त तथा कफ इन तीनों दोषों से उत्पन्न हुई जो वमन वह दूर हो॥११॥

यवों का मन्थ तृष्णादिकोंपर

प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः ॥१२॥
मथिता वारयंत्याशु च्छर्दि दोषत्रयोद्भवाम् ।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने फाप्टादिकल्पनाध्यायस्तृतीयः ॥३॥

अर्थ–साबत जवों को भुनाय के चून पिसवाय ले, उसको शीतल जल में इस प्रकार मिलावे जिसमें न बहुत पतला होवे न बहुत गाढ़ा होवे। फिर मथ के उसमें घी मिलाय के पीवे तो प्यास दाह और रक्तपित्त ये दूर हों॥१२॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतशार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४

हिमकल्पना

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक् षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम् ।
निशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥१॥
तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः ।

अर्थ–एक पल औषधि को जौकुट कूटके फिर छः पल जल को किसी मिट्टी के बर्तन में भरके उसमें कुटी हुई औषधि को मिलाय के रात्रि में भिगो देवे। प्रातःकाल उस पानी को छानके पीवे। उसको हिम अथवा शीत काढ़ा इस प्रकार कहते हैं। इसके पीने की मान फांट के समान दो पल जानना॥१॥

आम्रादिहिम रक्तपित्तपर

आम्र जम्बूं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥२॥
हिमं तस्य पिबेत् प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित् ।

अर्थ–१ आम की छाल २ जामुन की छाल और ३ कोह की छाला इन तीन छालों को (एक पल प्रमाण) लेकर चूर्ण करे। फिर छः पल जल किसी मिट्टी के पात्र में भरके उसमें पूर्वोक्त कुटी हुई छालों के चूर्ण को भिगो देवे, रात्रि भर भीगने दे, प्रातःकाल उस पानी को छानकर शहद मिलाय के पीवे तो रक्तपित्त दूर होवे॥२॥

मरीचादिहिम तृष्णादिकोंपर

मरीचं मधुयष्टी च काकोदुम्बरपल्लवाः ।
नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥३॥

अर्थ-१ काली मिरच, २ मुलहटी, ३ कटूमर के पत्ते और ४ नीलाकमल। इन चार औषधियों को (एक पल ले) सबको जौकुट करे, फिर छः पल पानी को एक पात्र में भरके उसमें पूर्वोक्त औषधियों को भिगोय देवे। प्रातः काल उस पानी को छान के पीवे तो प्यास और वमन दूर होय।।३।।

नीलोत्पलादिहिम वातपित्तज्वरपर

नीलोत्पलं बला द्राक्षा मधूकं मधुकं तथा ।।४।। उशीरं पद्मकं चैव काश्मरी च परुषकम् । एष शीतकषायश्च वातपित्तज्वरा-ञ्जयेत् ।।५।। सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ।

अर्थ-१ नीलाकमल, २ खरेंटी की छाल, ३ दाख, ४ महुआ, ५ मुलहटी, ६ नेत्रवाला, ७ पद्माख, ८ कंभारी, ९ फालसे, इन नौ औषधियों का पूर्व विधि से हिम बनाय के पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और प्यास ये रोग दूर होवें।।४।।५।।

अमृतादिहिम जीर्णज्वरपर

अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ।।६।।

अर्थ-पूर्वोक्त विधि से गिलोय हिम करके पीवे तो जीर्णज्वर दूर होवे।।६।।

वासाहिम रक्तपित्तज्वरपर

वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ।

अर्थ-अडूसा का हिम करके पीवे तो खाँसी और रक्त पित्तज्वर, ये दूर हों।

धान्यादिहिम अन्तर्दाहपर

प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्यकसंभवः ।।७।।
अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ।

अर्थ-रात्रि को पानी में धनिये को भिगोय देवे, प्रातःकाल उस पानी को खांड मिलायके पीवे तो शरीर के भीतर का दाह और प्यास ये दूर हों, तथा मूत्रादिमार्गों का शोधन होय।।७।।

धान्यादिहिम रक्तपित्तादिकोंपर

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ।।८।।
रक्तपित्तज्वरं दाहं तृष्णां शोषं च नाशयेत् ।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने हिमकल्पनाऽध्यायश्चतुर्थः ।।४।।

अर्थ-१ धनियां, २ आंवले, ३ अडूसा, ४ दाख और पित्तपापड़ा इन पांचों का हिम करके पीवे तो रक्तपित्तज्वर, दाह, प्यास और शोष इनको दूर करे।।८।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतशार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे चतुर्थोऽध्यायः ।।४।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५

कल्क की कल्पना

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसंमितम् ।।१।।
कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।
सितागुडौ समौ दद्याद्द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ।।२।।

अर्थ—गीलौं औषधि को चटनी के समान बारीक पीसो। यदि सूखी औषधि होय तो उसमें पानी डाल के पीसनी चाहिये, इसका कल्क कहते हैं। इसके सेवन करने की मात्रा १ कर्ष अर्थात् एक तोल की कही है तथा इसके दो और नाम हैं। एक प्रक्षेप और दूसरा आवाप। यदि कल्क के शहद घी और तेल डालने हों तो कल्क से दुगने डाले, खांड और गुड़ डालने हों तो कल्क के समान डाले। दूध पानी आदि पतले पदार्थ डालने हों तो कल्क से चौगुने डालने चाहिये।।१।।२।।

वर्धमानपिप्पली पांडुरोगादिकोंपर

त्रिवृद्धया पञ्चवृद्धया वा सप्तवृद्धया थवा कणाः ।
पिबेत् पिष्ट्वा दशदिन तांस्तथैवापकर्षयेत् ।।३।।
एवं विंशद्दिनः सिद्धं पिप्लीवर्द्धमानकम् ।
अनेन पाण्डुवानास्त्रकासश्वाससारुचिज्वराः ।।
उदरार्शःक्षय श्लेष्मवाता नश्यन्त्युरोग्रहाः ।।४।।

अर्थ—आज तीन, कल छः, परसों नौ इस प्रकार वृद्धि करके अथवा पांच से वा सात से वृद्धि करके पीपल का बारीक कल्क करे। उस कल्क से चौगुना दूध अथवा पानी मिलाय दश दिनपर्यंत पीवे। फिर जिस क्रम से बढ़ाई हो उसी क्रम से १० दिन मे घटाय लेवे। इस प्रकार बीस दिन पीपल पीवे तो पांडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु और उरोग्रह ये रोग दूर होवें। इस औषधि को वर्धमानपीपल कहते हैं। मथुरा आदि के प्रान्तों में इस पीपल को विषमज्वर में दूध औटाकर देते हैं।।३।।४।।

निम्बकल्क व्रणादिकोंपर

लपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ।
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ।।५।।

अर्थ—नीम के पत्तों को पानी से बारीक पीस कल्क करे। उस कल्क का लेप व्रण (घाव) पर करने से तथा इसकी टिकिया बाँधने से उस व्रण का शोधन होकर घाव भर जाता है तथा इस कल्क को खाने से वमन, कुष्ठ और पित्त कफ की बीमारी सम्बन्धी कृमिरोग दूर हों।।५।।

महानिम्बकल्क गृध्रसीपर

महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ।।६।।

अर्थ—बकायन की जड़ को पानी से पीस कल्क करके पीवे तो गृध्रसी वायु जो वादी के रोगों में कही है वह दूर होवे।।६।।

रसोनकल्क वायु और विषमज्वरपर

शुद्ध कल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ।
वातरोगाञ्जयेत् तीव्रान् विषमज्वरनाशनः ।।७।।

अर्थ–लहसन का कल्क करके उसमें तिल का तेल मिलाय के पीवे तो दारुण वायु का रोग और विषमज्वर दूर होवे।।७।।

दूसरा रसोनकल्क वातरोगपर

पक्वकन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता । पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात् तदंकुरम् ।।८।। तदुग्रगन्धनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत् । अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ।।९।। तन्मध्ये पञ्चमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् । सोवर्चलं यमानीं च भर्जितं हिंगु सैंधवम् ।।१०।। कटुत्रिकं जीरकं च सम्भवानि चूर्णयेत् । एकीकृत्य ततः सर्वं कल्कं कर्षप्रमाणतः ।।११।। खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया । अनुपानं ततः कुर्यादिरण्ड–शृतमन्वहम् ।।१२।। सर्वाङ्गैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतंत्रकम् । अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तंभं च गृध्रसीम् ।।१३।। उरःपृष्टकटीपार्श्वकुक्षिपीडां क्रमीञ्जयेत् । अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम् ।।१४।। रसोनमश्नन् पुरुषस्त्यजे-देतन्निरंतरम् । मद्यं मांसं तथाऽम्लं च रसं सेवेत नित्यशः ।।१५।।

अर्थ–उत्तम हकपोती लहसन की गांठों को लाकर उनके ऊपर का छिलका उतार कर दूर करे। फिर उस लहसन की बास दूर करने को रात्रि में भिगोकर रख छोड़े। प्रातःकाल उनको निकाल शिला पर लोढ़े से बारीक पीसकर कल्क करे। फिर १ सञ्चरनोन, २ अजमोदा, ३ भुनी हुई हींग, ४ सेंधानमक, ५ सोंठ, ६ कालीमिरच, ७ पीपल और ८ जीरा। इन आठ औषधियों के चूर्ण को उस लहसन के कल्क का पाँचवाँ हिस्सा लेकर मिलावे। सबको एकत्र कर अरण्डी के जल का काढ़ा करके उस कल्क में १ तोला मिलाय के पीवे, तथा अपनी शक्ति को विचार के और ऋतु कौन है उसका विचार करके जैसा आपको हित हो उसी प्रकार सेवन करे तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुख का टेढ़ा होना, अर्दितवायु, धनुर्वात, मृगी, उन्माद, ऊरुस्तंभ, वायु, गृध्रसी वायु, उर, पीठ, कमर तथा पसवाड़ा, इन सबका शूल और क्रमिरोग, इनको दूर करे। लहसन का खानेवाला अजीर्णकारी पदार्थ, धूप में रहना, क्रोध करना, अत्यंत जल पीना, दूध गुड़ इन सब पदार्थों को सर्वथा त्याग देवे। तथा मद्यमान मांसभक्षण, खटाई वाले पदार्थ इनको सदैव सेवन किया करे ये पथ्य हैं।।८-१५।।

पिप्पल्यादिकल्क ऊरुस्तभादिकोपर

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च ।
एतत्कल्कश्च सक्षौद्र उरुस्तम्भनिवारणः ।।१६।।

अर्थ–१ पीपर, २ पीपरामूल और ३ भिलावे के फल इन तीन औषधियों को पानी में पीस

कल्क करके शहद मिलाय के सेवन करने से ऊरुस्तंभ वायु दूर होता है॥१६॥

विष्णुक्रान्ताकल्क परिणामशूलपर

विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः ।
परिणामभवं शूलं नाशयेत् सप्तभिर्दिनैः ॥१७॥

अर्थ—विष्णुक्रांता (कोयल) की जड़ का कल्क करके उसमें खांड और शहद तथा घी मिलायके सेवन करे तो परिणामशूल दूर होवे। यह सात दिन रहता है॥१७॥

दूसरा शुण्ठीकल्क

शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् ।
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत् ॥१८॥

अर्थ—१ सोंठ, २ तिल समान ले और दोनों के बराबर गुड़ लेवें इन तीन औषधियों का कल्क करके गौ के चौगुने दूध में मिलाय के सेवन करे तो परिणामशूल अथा आमवात ये दूर होवें। अन्न के पचने के समय जो शूल होता है उसको परिणाम शूल कहते हैं॥१८॥

अपामार्गकल्क रक्तार्शपर

अपामार्गस्य बीजानां कल्कस्तंडुलवारिणा ।
पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः ॥१९॥

अर्थ—ओंगा (चिरचिरा) के बीजों का कल्क करके चावलों कें धोवँन के पानी में पीवे तो खूनी बवासीर दूर होय॥१९॥

बदरीमूलकल्क रक्तातिसारपर

बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः ।
मधुक्षीरयुतः कुर्याद् रक्तातीसारनाशनम् ॥२०॥

अर्थ—झरबेरीकी जड़ और तिल इनके कल्क पृथक् २ तैयार करके दोनों को मिलाय गौ के दूध में अथवा बकरी के दूध में मिलाय के पीवे तो रक्तातिसार दूर होवे॥२०॥

लाक्षाकल्क रक्तक्षयादिकोंपर

कूष्माण्डकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत् ।
रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥२१॥

अर्थ—बेर की अथवा पीपर की लाख दो तोले लेकर बारीक चूर्ण कर चौगुना पेठे का रस मिलाय पीवे तो रक्तक्षय तथा जिस रोग से छाती दुखे वह और क्षयरोग दूर हो॥२१॥

तण्डुलीयकल्क रक्तप्रदरपर

तण्डुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसांजनः ।
तण्डुलोदकसंपीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥२२॥

अर्थ—चौलाई की जड़ को पीस कल्क करके उसमें शहद और रसोंत मिलाय चावलों के धोवँन से पीवे तो स्त्रियों का रक्तप्रदर नष्ट होवे (इस रोग में स्त्री की योनि से लाल २ पानी गिरा करता है)॥२२॥

अङ्कोटकल्क अतिसारपर

अंकोटमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तण्डुलाम्बुना ।
अतिसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः ॥२३॥

अर्थ-अंकोल की वृक्ष की जड़ को कूट पीस कर कल्क करे, उसमें शहद मिलाय के चावलों के धोवन के जल से पीवे तो अतिसार दूर होय तथा सिंगिया आदि का विष और सर्पादिकों का विष भी दूर हो॥२३॥

कर्कोटिकाकल्क विषोपर

वन्ध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ।
घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥२४॥

अर्थ-१ बांझककोडा की जड़, २ पाढपाटला की जड़, ३ बेल की जड़ इन तीन जड़ों में जो मिले उस जड़ को कूट पीस कल्क करके घी में मिलाय के पीवे तो वच्छनागादिक विष तथा सर्पादिकों का विष दूर होवे॥२४॥

अभयादिकल्क दीपनपाचनपर

अभयासैन्धवकणाशुण्ठीकल्कस्त्रिदोषहा ।
पथ्यासैन्धवशुण्ठीभिः कल्को दीपनपाचनः ॥२५॥

अर्थ-१ जंगीहरडे ३ सेंधानमक ३ पीपल और ४ सोंठ इन चार औषधियों के चूर्ण को पानी में पीसके कल्क करे, इस कल्क के पीने से वात पित्त और कफ का प्रकोप दूर होय। उसी प्रकार १ छोटी हरडे, २ सेंधानमक और ३ सोंठ इन तीन औषधियों के कल्क करके पीवे तो अन्न का पाचन हो तथा अग्नि प्रदीप्त होवे॥२५॥

त्रिवृतादिकल्क कृमिरोगपर

त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीकयवानिका ।
कम्पिल्लकं विडङ्गं च गुडश्च समभागकः ॥२६॥
तक्रेण कल्कमेतेषां पिबेत् कृमिगणापहम् ।

अर्थ-१ निसोथ, २ पलास (ढाक) के बीज, ३ किरमानी अजवायन, कबीला और ५ वायविडंग इन पांच औषधियों के चूर्ण कर उसके समान गुड मिलाय के सबका कल्क करे। उसको छाछ में मिलायके पीवे तो कृमिरोग दूर होय। ग्रन्थातर में इस प्रकार है कि किरमानी अजवायन को प्रातःकाल शीतल जल से पीवे तो कृमिविकार दूर हो॥२६॥

नवनीतकल्क रक्तातिसारपर

नवनीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः ॥२७॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापि तद्विधः ।

अर्थ-तिलों को पीस उसका मक्खन में कल्क करके सेवन करे। अथवा नागकेशर को पीस मक्खन और मिश्री में कल्क करके पीवे तो खूनी बवासीर में जो रुधिर निकला करता है वह बन्द हो जावे॥२७॥

मसूरकल्क संग्रहणीपर

पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः ।
जयेत्सङ्ग्रहणा तद्वत् तक्रेण बृहतीभवः ॥२८॥

इतिश्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां चिकित्सा-स्थान कल्ककल्पनाऽध्यायः पंचमः ॥५॥

अर्थ–१ सोंठ और २ छोटा कच्चा बेल का फल इन दोनों औषधियों का कल्क करे, फिर मसूर का यूष जो प्रथम कह आये हैं उस प्रकार बनाय उसमें इस कल्क को मिलाय के पीवे तो संग्रहणी रोग दूर होवे॥२८॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-
हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ६

चूर्णकी कल्पना

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् । तत्स्याच्चूर्णं रजः क्षोदस्तन्मात्रा कर्षसंमिता ॥१॥ चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् । चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद् भवेत् ॥२॥ लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः । पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥३॥ चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुमापकम् । पित्तवातकफातंके त्रिद्व्येकपलमापकम् ॥४॥ यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति । अनुपानबलादङ्गे तथा सर्पति भेषजम् ॥५॥ द्रवेण यावता सम्यक् चूर्णं सर्वं प्लुतं भवेत् । भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥६॥

अर्थ–अत्यन्त सूखी औषधियों को कूट पीस कपड़छान करे तो उसको चूर्ण कहते हैं। उस चूर्ण के दो नाम हैं एक रज और दूसरा क्षोद । इस चूर्ण के भक्षण की मात्रा एक कर्ष अर्थात् तोले भर की है। यदि चूर्ण गुड मिलाना होय तो चूर्ण के बराबर डालना चाहिये, यदि हींग डालना होय तो घी में भून के हींग डाले तो विकलता नहीं करे। घी और शहद आदि चिकने पदार्थ के साथ चूर्ण लेना होय तो वे पदार्थ चूर्ण से दुगुने लेवे। तथा दूध, गोमूत्र पानी और अन्य पतली वस्तु चूर्ण में डालनी होयँ तो चूर्ण से चौगुनी लेकर उसमें चूर्ण मिलायके पीवे चूर्ण, अवलेह गुटिका और कल्क इनके जो अनुपान कहे हैं वे यदि पित्तरोग होय तो तीन पल लेवे। वात रोग होय तो दो पल के अनुमान लेवे और कफ के रोग में एक पल लेवे तो औषधि उत्तमता के साथ देह में फैल जाती है। इस विषय में दृष्टांत देते हैं कि जैसे जल में तेल की बूँद डालने से फैल जाती है उसी प्रकार अनुपान के बल से देह में औषधि फैल जाती है तथा चूर्ण में नींबू के रस का अथवा दूसरी वनस्पति के रस का पुट देना होवे तो जब तक चूर्ण रस में डूब न जाय तब तक पुट देवे। इस प्रकार चूर्णो के बनाने की विधि जाननी॥१–६॥

आमलं चित्रकं पथ्या पिप्पली सैन्धवस्तथा ।
चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥७॥
भेदी रुचिकरः श्लेष्मजेता दीपनपाचनः ।

अर्थ–१ आमले, २ चीते की छाल, ३ जंगीहरड ४ पीपल और ५ सेंधानमक ये पांच वस्तु समान भाग लेकर चूर्ण करके सेवन करे तो संपूर्ण ज्वर दूर हों। यह दस्तावर है, रुचि प्रगटकर्ता है

तथा कफ को दूर करे, अग्नि प्रदीप्त हो और अन्न का पाचन होवे।।७।।

पिप्पलीचूर्ण खांसी आदिपर

मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत् कासज्वरापहम् ।।८।।
हिक्काश्वासहरं कण्ठचं प्लीहघ्नं बालकोचितम् ।

अर्थ–एक मासे पीपल के चूर्ण को शहद में मिलाय के चाटे तो खांसी, ज्वर, हिचकी और प्यास ये दूर हों। यह चूर्ण कंठ को हितकारी है, प्लीह रोग को दूर करनेवाला तथा बालकों को अत्यन्त उपयोगी है।।८।।

त्रिफलादिचूर्ण प्रमेह आदिपर

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ ।।९।।
चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ।
त्रिफला मेहशोथघ्नी नाशयेद विषमज्वराम् ।।१०।।
दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी ।
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयाञ्जयेन् ।।११।।

अर्थ–हरड एक, बहेडा दो और आमले चार, इन तीन औषधियों का चूर्ण करे इससे त्रिफला कहते हैं। इस त्रिफला चूर्ण के सेवन करने से प्रमेह, सूजन, विषमज्वर, कफ, पित्त और कुष्ठ ये दूर हों, अग्नि प्रदीप्त हो। यह त्रिफला रसायन है। घी और शहद ये दोनों विषम भाग ले एकत्र कर उसमें इस त्रिफले के चूर्ण को मिलाय सेवन करे तो संपूर्ण नेत्र के विकार दूर हों।।९–११।।

त्र्यूषणचूर्णकफादिकोंपर

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ।
दीपनं श्लेष्ममेंदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ।।१२।।
जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान् ।

अर्थ–१ पीपल, २ काली मिरच और ३ सोंठ इन तीन औषधियों को त्र्यूषण कहते हैं। इसका चूर्ण करके सेवन करे तो अग्नि प्रदीप्त हो कफ, मेद, कुष्ठ, पीनस अरुचि आमदोष, प्रमेह, गोला, और कण्ठरोग ये दूर हों।।१२।।

पञ्चकोलचूर्ण अरुच्यादिकोंपर

पिप्पली चव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ।।१३।।
पञ्चकोल मति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम् ।
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम् ।।१४।।

अर्थ–१ पीपल २ चव्य, ३ सोंठ ४ पीपरामूल और ५ चीते की छाल इन पांच औषधियों को पंचकोल कहते हैं। इस पंचकोल के चूर्ण का सेवन करे तो यह रुचिकारक, पाचन और दीपन है। इससे अफारा, प्लीह, गोले का रोग, शूल और कफोदर ये दूर होवे।।१३।।१४।।

त्रिगन्ध तथा चतुर्जातचूर्ण

त्रिगन्धमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरम् ।
त्रिगन्धं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघु पित्तकृत् ।।१५।।

वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ।

अर्थ–१ छोटी इलायची, २ दालचीनी और ३ पत्रज इन तीन औषधियों को त्रिगन्ध कहते हैं इससे चौथी केशर मिलावे तो इसको चतुर्जात कहते हैं इनका चूर्ण वीर्य करके रूक्ष, गरम, पाककाल में हलका, पित्त को बढ़ानेवाला, कांति का दाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण और पित्तकफ संबंधी रोगों को दूर करनेवाला है।।१५।।

कृष्णादिचूर्ण बालकों के ज्वरातिसारपर

कृष्णारुणामुस्तकश्रृङ्गिकाणां तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकण।
ज्वरातिसारःप्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम्।।१६।।

अर्थ–१ पीपल २ अतीस ३ नागरमोथा और ४ काकडासिंगी, इन चार औषधियों के चूर्ण को शहद में मिलाय के बालक को चटावे तो श्वास, खांसी वमन इन उपद्रवों करके युक्त ज्वरातिसार नष्ट होय।।१६।।

जीवनीयगण तथा उसके गुण

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा । मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा ।।१७।। मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम् । जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसन्धानकृद् गुरुः ।।१८।। स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः । रक्तपित्तं क्षयं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ।।१९।।

अर्थ–१ काकोली २ क्षीरकाकोली ३ जीवक, ४ ऋषभक ५ मेदा ६ महामेदा ७ जीवन्ती, ८ मुलहठी, ९ मुद्गपर्णी और १० माषपर्णी इन दश औषधियों के समुदाय को जीवनीयगण कहते हैं। यह जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थायक, भारी, स्तनों में दूध उत्पन्न करनेवाला, शरीर को पुष्ट करनेवाला, स्त्रीगमन में हर्ष देनेवाला, स्निग्ध या शीतल होकर प्यास, रक्तपित्त, क्षय, शोष, ज्वर दाह और वायु इनका नाश करता है।।१७–१९।।

अष्टवर्ग तथा उनका गुण

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ।।२०।। ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः । अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीय-समो गुणैः ।।२१।।

अर्थ–१ मेदा, २ महामेदा, ३ काकोली ४ क्षीरकाकोली, ५ जीवक, ६ ऋषभक, ७ ऋद्धि और ८ वृद्धि ये आठ औषधियां समीप नहीं मिलतीं, किन्तु काश्मीर काबुल आदि देशों में और हिमालय पर्वत पर और महामेदा इन दोनों के अभाव में मुलहटी लेनी, काकोली और क्षीरकाकोली इन दोनों के अभाव में असगंध लेनी, जीवक और ऋषभक के अभाव में बिदारीकन्द लेना और ऋद्धि तथा वृद्धि इन दोनों के अभाव में वाराहीकन्द वैद्य को लेना चाहिये। इस अष्टवर्ग के भी गुण जीवनीयगण के समान जानने।।२०।।२१।।

लवणपञ्चकचूर्ण तथा गुण

सिन्धु सौवर्चलं चैव विडं सामुद्रिकं गडम् । एकद्वित्रिचतुः पंचलवणानि क्रमाद्विदुः ।।२२।। तेषु मुख्यं सैन्धवं स्यादनुक्ते

तत् प्रयोजयेत् । सैन्धवाद्यं रोमकान्तं ज्ञेयं लवणपञ्चकम् ॥२३॥ मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं मलापहम् । वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम् ॥२४॥

अर्थ–१ सेंधानमक, २ संचरनमक, ३ विडनमक ४ समुद्रनमक और ५ साम्हरनमक इन पांचों में पहिला एक लवण, पहिला और दूसरा इनको द्विलवण, पहला, दूसरा और तीसरा इनको त्रिलवण, पहला, दूसरा, तीसरा और चतुर्थ इनको चतुर्लवण, एवं पहला, दूसरा, तीसरा, चतुर्थ और पांचवां इनको पंचलवण कहते हैं। तथा इन पांचों में सेंधानमक उत्तम है। अतएव जिस जगह लवन डाले ऐसे विना विशेष नामके कहा हो वहां पर सेंधानमक डालना चाहिये। यह लवणपंचक मधुर है। इससे मूत्र और मल अच्छी रीति से उतरते हैं। ये (पञ्चलवण) स्निग्ध और सूक्ष्म होकर मल को हीन करते हैं। उष्ण वीर्यवाले होने से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं तथा तीक्ष्ण है अतएव कफ पित्त को बढ़ाते हैं॥२२–२४॥

क्षार गुल्मादिकोंपर

स्वर्जिका यावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् । ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिका यावशूकजौ ॥२५॥ क्षाराश्चाऽन्येपि गुल्मार्शो-ग्रहणीरुक्छिदः सराः । पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरि-नाशनाः ॥२६॥

अर्थ–१ सज्जीखार और २ जवाखार ये दोनों खार अग्नि के समान पाचक हैं इस प्रकार जानना तथा आक, ओंगा, थूहर, केला, अमलतास, मोथा इत्यादिक जो अन्य औषधियों के खार हैं वे गोला, बवासीर और संग्रहणी इनको दूर करते हैं। दस्तकारक होकर अग्नि को दीप्त करते हैं तथा कृमिविकार, पुरुषत्व और शर्करा एवं पथरी को नष्ट करते हैं॥२५–२६॥

सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरोंपर

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारी युगं सठी । त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥२७॥ कटुका पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् । निम्बाः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥२८॥ यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्टजा।वचात्पक्पद्मकोशीरं चन्दनातिविषाबला ॥२९॥ शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडङ्गं तगरं तथा । चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥३०॥ जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशरोचना । पुण्डरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥३१॥ तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् । सर्वचूर्णस्य चार्धांश किंरातं प्रक्षिपेत् सुधीः ॥३२॥ एतत् सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् । ज्वरांश्च निखिलान् हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥३३॥ पृथग्द्वंद्वागन्तुजांश्च धातुस्थान् विषमज्वरान् । सन्निपातोद्भवांश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥३४॥ शीतज्वरैकाहिकादीन् मोहं तन्द्रां भ्रमं तृषाम् ।

श्वासं कासं च पाण्डुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम् ॥३५॥ त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम्।शीताम्बुना पिबेद्धीमान् सर्वज्वरनिवृत्तये ॥३६॥ सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् । तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशकम् ॥३७॥

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ छोटी कटेरी, ७ बडी कटेरी, ८ कचूर, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल १२ पीपरामूल, १३ मूर्वा, १४ गिलोय, १५ धमासा, १६ कुटकी, १७ पित्तपापडा, १८ नागरमोथा, १९ त्रायमाण, २० नेत्रवाला, २१ नीम की छाल, २२ पुहकरमूल, २३ मुलहटी, २४ कुडा की छाल, २५ अजमायन, २६ इन्द्रजौ, २७ भारंगी, २८ सहँजने के बीज, २९ फिटकरी, ३० वच, ३१ दालचीनी, ३२ पद्माख, ३३ चन्दन, ३४ अतीस, ३५ खरेंटी, ३६ शालपर्णी, ३७ पृष्ठपर्णी, ३८ वायविडंग, ३९ तगर, ४० चिते की छाल, ४१ देवदारु ४२ चव्य, ४३ पटोपत्र, ४४ जीवक, ४५ ऋषभक, ४६ लौंग, ४७ वंशलोचन, ४८ सफेद कमल, ४९ काकोली ५० पत्रज, ५१ जावित्री, ५२ तालीसपत्र इन बावन औषधियों को समान भाग ले और सब औषधियों का आधा चिरायता मिलावे, सबको कूटके दरदरा चूर्ण करे इसको सुदर्शन चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण को शीतल जल से सेवन करे तो वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व, सन्निपात इनसे होनेवाला ज्वर, विषमज्वर, आगन्तुकज्वर, धातुजन्यज्वर, मानसज्वर इत्यादिज्वर और शीतज्वर, ऐकाहिक आदि ज्वर, मोह, तंद्रा, भ्रम, तृष्णा, श्वास, खांसी, पांडुरोग, हृदयरोग, कामला, त्रिक, पीठ, कमर, जानु, पसवाडा, इनका शूल ये सब दूर होवें। जैसे सुदर्शनचक्र दैत्यों का नाश करता है उसी प्रकार यह सुदर्शनचूर्ण सब ज्वरों का नाश करता है॥२७–३७॥

त्रिफलापिप्पलीचूर्ण श्वासखांसीपर

कासश्वासज्वरहरी त्रिफला पिप्पलीयुता ।
चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥३८॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला और ४ पीपर इनका चूर्ण कर शहद में मिलाय के चाटे तो मल का भेद हो (दस्त साफ हो), अग्नि प्रदीप्त होवे और श्वास खांसी तथा ज्वर दूर हो॥३८॥

कट्फलादिचूर्ण ज्वरादिकोंपर

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शुण्ठा भृङ्गी च पौष्करम् । चूर्णमेषां च मधुना भृङ्गबेररसेन वा ॥३९॥ लेह्यं ज्वरहरं कंठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत् । वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥४०॥

अर्थ–१ कायफल २ नागरमोथा ३ कुटकी ४ सोंठ ५ काकडासिंगी और ६ पुहकरमूल इनका चूर्ण करके शहद अथवा अदरख के रस में सेवन करे तो ज्वर दूर होवे तथा खांसी, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल और क्षय का रोग दूर होवे॥३९॥४०॥

दूसरा कट्फलादिचूर्ण कफशूलादिकोंपर

कट्फलं पौष्करं भृङ्गी मुस्ता त्रिकटुकं शठी । समस्तान्येकशो

वाऽपि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।।४१।।आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्
कफविनाशनम्।शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ।।४२।।

अर्थ–१ कायफल २ पुहकरमूल ३ काकडासिंगी ४ नागरमोथा ५ सोंठ ६ मिरच ७ पीपल और ८ कचूर इन आठ औषधियों को पृथक् पृथक् कूटे अथवा सबको एकही जगह कूट चूर्ण करे। फिर अदरख के रस से अथवा शहद के साथ मिलाकर दे तो कफ, शूल, वादी, अरुचि, ओकारी, खांसी, श्वास और क्षयरोग दूर होवें।।४१।।४२।।

तथा कट्फलादिचूर्ण कफादिकोपर

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह ।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ।।४३।।

अर्थ–१ कायफल २ पुहरकरमूल ३ पीपल ४ काकडासिंगी इन चार औषधियों का चूर्ण कर शहद से चाटे तो श्वास, खांसी और कफज्वर इनको नष्ट करे।।४३।।

शृंग्यादिचूर्ण बालकों के कासज्वरपर

शृङ्गीं प्रतिविषां कृष्णां चूर्णितां मधुना लिहेत् ।
शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवला विषा ।।४४।।

अर्थ–१ काकडसिंगी २ अतीस और ३ पीपर इनका चूर्ण कर शहद मिलाय बालकों को चटावे। अथवा एक अतीसका ही चूर्ण करके शहद मिलाय के चटावे तो बालक की खांसी, ज्वर और वमन ये रोग दूर होवें।।४४।।

यवक्षारादिचूर्ण बालकों की पांच खांसी पर

यवक्षारविषा शृङ्गी मागधी पौष्करोद्भवम् ।
चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पञ्चकासाञ्जयेच्छिशोः ।।४५।।

अर्थ–१ जवाखार २ अतीस ३ काकडासिंगी ४ पीपल ५ पुहकरमूल इन पांच औषधियों का चूर्ण बालकों को शहद में चटावे तो पांच प्रकार की खांसी का रोग दूर हो।।४५।।

शुण्ठ्यादिचूर्ण आमातिसारपर

शुण्ठीप्रतिविषाहिङ्गुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ।।४६।।

अर्थ–१ सोंठ २ अतीस ३ हींग ४ नागरमोथा ५ इन्द्र जौ और ६ चीते की छाल इन छः औषधियों के चूर्ण को चौगुने गरम जल से पीवे तो आमातिसार दूर हो।।४६।।

दूसरा हरीतक्यादिचूर्ण

हरीतकी प्रतिविषा सिन्धु सौवर्चलं वचा ।
हिङ्गु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ।।४७।।
आमातिसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम् ।

अर्थ–१ जंगीहरडे २ अतीस ३ सेंधानमक ४ संचरनमक ५ वच और ६ भुनी हुई हींग इन छः औषधियों का चूर्ण करके गरम जल के साथ पीवे तो आमातिसार दूर होवे तथा मल का अवष्टंभ दूर होकर अग्नि प्रदीप होती है।।४७।।

लघुगङ्गाधरचूर्ण सब अतिसारोंपर

मुस्तमिन्द्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा ॥४८॥ धातकीं चूर्णयेत्तक्रगुडाभ्यां पाययेत् सुधीः । सर्वातिसारशमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम् ॥४९॥ लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ॥

अर्थ–१ नागरमोथा २ इन्द्रजौ ३ बेलगिरी ४ लोधपठानी ५ मोचरस और ६ धाय के फूल इन छः औषधियों का चूर्ण कर छाछ में गुड़ मिलाय उसके साथ इस चूर्ण को पीवे तो संपूर्ण अतिसार तथा प्रवाहिका रोग दूर होवे। इस चूर्ण को लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण मल का अवष्टम्भ करनेवाला है॥४८॥४९॥

वृद्धगंगाधरचूर्ण सर्व अतिसारोंपर

मुस्तारलुकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रवालकैः ॥५०॥ बिल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः । आम्रबीजं प्रतिविषा लज्जालुरिति चूर्णितम् ॥५१॥ क्षौद्रतण्डुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका । सर्वातिसारग्रहणी प्रशमं याति वेगतः ॥५२॥ वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगेऽपि बन्धकम् ।

अर्थ–१ नागरमोथा २ टेंटु ३ सोंठ ४ धाय के फूल ५ लोध ६ नेत्रवाला ७ बेलगिरी ८ मोचरस ९ पाढ १० इन्द्रजौ ११ कुडा की छाल १२ आम की गुठली १३ अतीस और १४ लजालु इन चौदह औषधियों का चूर्ण करके चावलों के धोवन के जल में शहद मिलाय इसके साथ पीवे तो प्रवाहि का रोग, संपूर्ण अतिसार और संग्रहणी ये शीघ्र दूर हों। इस चूर्ण को वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण अतिसार के नदी समान वेग को भी दूर करता है॥५०–५२॥

अजमोदादिचूर्ण अतिसारपर

अजमोदा मोचरसं सभृङ्गबेरं सधातकीकुसुमम् ।
गोदधिमथितेन युतं गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥५३॥

अर्थ–१ अजमोदा २ मोचरस ३ अदरख और ४ धाय के फूल इनका चूर्ण करके बिना पानी के जमाये हुए गौ के दही में मिलाके पीवे तो गंगा के समान दस्तों के वेग को भी बन्द करता है॥५३॥

मरीच्यादिचूर्ण संग्रहणीपर

तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥५४॥
चित्रसावैर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति ।
उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शोनाशनं भवेत् ॥५५॥

अर्थ–१ कालीमिरच २ चीते की छाल ३ संचरनमक इन औषधियों का चूर्ण छाछ में मिलाय के नित्य पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीह, मन्दाग्नि, गोला और बवासीर इनको दूर करे॥५४॥५५॥

कपित्थाष्टकचूर्ण संग्रहणी आदिपर

अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता । दाडिमं तिन्तिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा ॥५६॥ अजमोदा पिप्पली च प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः । मरिचं जीरकं धान्यं ग्रन्थिकं

वालकं तथा ।।५७।। सौवर्चलं यवानी च चातुजातं सचित्रकम् । नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम्।।५८।। कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद्गलामयान् । अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति ।।५९।।

अर्थ—कैथ का गूदा ८ तोले मिनी ६ तोले और १ अनारदाना, २ इमली, ३ बेलगिरी, ४ धाय के फूल, ५ अजमोद और ६ पीपल इन छः औषधों को तीन तीन तोले लेवे। १ कालीमिरच, २ जीरा, ३ धनियां ४ पीपरामूल, ५ नेत्रवाला, ६ सञ्चरनोन, ७ अजवायन, ८ दालचीनी, ९ इलायची के बीज, १० तमालपत्र, ११ नागकेशर, १२ चीते की छाल और १३ सोंठ इन तेरह औषधों को एक एक तोला लेवे। सबका बारीक चूर्ण करे। इस चूर्ण को कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं, इसके सेवन करने से कण्ठ के रोग, अतिसार, क्षय, गोला और संग्रहणी ये दूर होते हैं।।५६–५९।।

पिप्पल्यादिचूर्ण संग्रहणीपर

पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिङ्गकाः । चित्रकं सारिवा पाठा शठी लवणपञ्चकम् ।।६०।। तच्चूर्णं पाययेद् दध्ना सुरयोष्णाम्बुनाऽपि वा । मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ।।६१।।

अर्थ—१ पीपल, २ कटेरी, ३ बड़ी कटेरी, ४ जवाखार, ५ इन्द्रजौ, ६ चीते की छाल, ७ सरिबन, ८ पाढ, ९ कपूरकचरी और पांचों नमक इन १४ चौदह औषधियों का चूर्ण कर दही, मद्य अथवा गरम जल के साथ पीवे तो वात की संग्रहणी नष्ट होय।।६०।।६१।।

दाडिमाष्टकचूर्ण संग्रहण्यादिकोंपर

दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डा चाष्ट पलानि वा । त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात् पलत्रयम् ।।६२।। एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद् दाडिमाष्टकम् । रुचिकृद् दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम् ।।६३।।

अर्थ—अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी, इलायची और तेजपात ये तीनों मिलायके १ पल लेवे। तथा सोंठ, कालीमिरच और पीपल ये तीनों औषधि एक एक पल ले सबको कूट पीस चूर्ण करे। इसको दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण के सेवन से मुख में रुचि आवे, अग्नि प्रदीप्त होवे, कण्ठ को हितकारी और मल का अवष्टंभक होकर खांसी और ज्वर दूर हों।।६२।।६३।।

वृद्धदाडिमाष्टक अतिसारादिकोंपर

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम् । पिप्पली पिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा ।।६४।। धान्यकं जीरकं शुण्ठी प्रत्येकं पलसंमितम् । कर्षमात्रा तुगाक्षीरी त्वक्पत्रैलाश्च केशरम् ।।६५।। प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम् । अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम् ।।६६।। मन्दाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ।

अर्थ–अनारदाना और मिश्री प्रत्येक आठ आठ पल लेवे तथा १ पीपल, २ पीपरामूल, ३ अजमोद, ४ कालीमिरच, ५ धनियां, ६ जीरा और ७ सोंठ प्रत्येक एक एक पल लेवे। वंशलोचन १ तोला ले और १ दालचीनी २ तेजपात, ३ इलायची, ४ नागकेशर, ये चार औषधि आठ आठ मासे लेवे। इन सब औषधियों को कूट पीस चूर्ण करे। इसको वृद्धदाडिमाष्टक कहते हैं। इस चूर्ण के सेवन करने से अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मन्दाग्नि, पीनस और खांसी ये रोग दूर होते हैं।।६४–६६।।

तालीसादिचूर्ण अरुचिआदि रोगोंपर

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना ।।६७।। एकद्वित्रिचतुः पञ्चकर्षैर्भागान् प्रकल्पयेत् । एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् ।।६८।। मृतं वङ्गं मृतं ताम्रं समभागानि कारयेत् । द्वात्रिंशत् कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ।।६९।। तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ।।७०।। शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपाण्डु-रोगजित् ।

अर्थ–१ तालीसपत्र एक तोला, २ सोंठ तीन तोले, ३ पीपल चार तोले, ४ वंशलोचन पांच तोले, ५ इलायची के दाने और ६ दालचीनी छः छः मासे, ७ ताम्रभस्म ये दोनों आठ आठ तोले और मिश्री तीन तीन तोलें ले। सबका चूर्ण कर मिश्री मिलाय सेवन करे। यह तालीसचूर्ण रोचन, पाचक तथा खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, प्लीहा, संग्रहणी और पांडुरोग इनको नष्ट करता है।।६७–७०।।

लवङ्गादिचूर्ण हृद्रोगादिपर

लवङ्गं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ।।७१।। जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् । कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा ।।७२।। चन्दनं तगरं वालं कङ्कोलं चेति चूर्णयेत् । समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्धा सिता भवेत्।।७३।। लवङ्गाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम् । रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् ।।७४।। हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् । यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरः क्षतम् ।।७५।। प्रमेहारुचिगुल्मादीन् ग्रहणीमपि नाशयेत् ।

अर्थ–१ लौंग, २ भीमसेनीकपूर, ३ इलायची, ४ दालचीनी, ५ नागकेसरा, ६ जायफल, ७ खस, ८ सोंठ, ९ कालाजीरा, १० कालाअगर, ११ वंशलोचन, १२ जटामांसी, १३ नीला कमल, १४ पीपल, १५ सफेद चन्दन, १६ तगर, १७ नेत्रवाला और १८ कंकोल, इन अठारह औषधियों को समान भाग लेकर चूर्ण करे, चूर्ण से आधी मिश्री मिलावे, इस चूर्ण को लवंगादिचूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण राजाओं को देने के योग्य है। इस चूर्ण से अग्नि प्रदीप्त होय और यह रुचिकारी है, शरीर पुष्ट होवे, स्त्री भोगने की शक्ति हो, वात, पित्त, कफ इनके प्रकोप को दूर करे, बल करे, हृदयरोग, कण्ठरोग, खांसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास अतिसार, अरुचि, प्रमेह, गोला और संग्रहणी इन सब रोगों को दूर करता है।।७१–७५।।

जातीफलादिचूर्ण संग्रहण्यादिपर

जातीफललवङ्गैलापत्रतत्वङ्नागकेशरैः ॥७६॥ कर्पूरचन्दनतिलः त्वक्षीरीतगरामलैः । तालीसपिप्पलीपथ्यास्थूलजीरकचित्रकैः ॥७७॥ शुण्ठीविडंगमरिचैः समभागैर्विचूर्णितैः ॥ यावन्त्येतानि सर्वाणि कुर्याद्भृंगां च तावतीम् ॥७८॥ सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ॥ कर्षमात्रं ततः खादेत् मधुना प्लावितं सुधीः ॥७९॥ अस्य प्रभावाद् ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ॥ वातश्लेष्म-प्रतिश्यायाः प्रशमं यान्ति वेगतः ॥८०॥

अर्थ–१ जायफल, २ लौंग, ३ इलायची, ४ तमालपत्र, ५ दालचीनी ६ नागकेशर, ७ कचूर, ८ सफेद चन्दन, ९ काले तिल, १० वंशलोचन, ११ नगर १२ आंवले, १३ सोंठ तालीतपत्र, १४ पीपल, १५ हरड, १६ कालाजीरा, १७ चीते की छाल, १८ सोंठ, १९ वायबिडंग और २० कालीमिरच ये बीस औषधि समान भाग लेवे, तथा इन सब औषधियों के समान भाग शुद्ध भांग मिलाकर सबका चूर्णकर चूर्ण की बराबर सफेद मिश्री मिलावे। सबको एकत्रकर एक एक तोला नित्य शहद के साथ सेवन करे तो संग्रहणी, खांसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वात कफ के विकार और पीनस ये रोग दूर होवें॥७६–८०॥

महाखाण्डवचूर्ण अरुच्यादिपर

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च । प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥८१॥ त्वक्कणा तिन्तिडीकं च जीरकं च द्विभागकम् । धान्याम्लवेतसौ विश्वभद्रैलाबदराणि च ॥८२॥ अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ॥ सर्वौषधिचतुर्थांश दाडिमस्य फलं भवेत् ॥८३॥ द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयाऽर्धमात्रया । महाखाण्डवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥८४॥ अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासाती-सारनाशनम् ॥ हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥८५॥ विषूचिकां तथाऽऽध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ॥ छर्दिं पञ्चविधां श्वासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥८६॥

अर्थ–१ कालीमिरच, २ नागकेशर, ३-तालीसपत्र, ४ सैंधानमक, ५ सञ्चरनमक, ६ विडनमक, ७ समुद्रनमक और ८ रेहका नमक ये आठ औषधि एक एक तोला लेवे। तथा १ पीपरामूल, २ चित्रक, ३ दालचीनी, ४ पीपल, ६ इमली की छाल, ६ जीरा, ये औषधि दो दो तोले लेवे। १ धनियां, २ अमॅलवेत, ३ सोंठ, ४ बडी इलायची के दाने, ५ छोटे बेर, ६ अजमोद और नागरमोथा ये सातौ औषधि तीन तीन तोले और सब औषधियों का चतुर्थ भाग आनारदाना ले, फिर सब औषधियों का चूर्ण कर इस चूर्ण में आधी सफेद मिश्री मिलावे, सबको एकत्र करे इसको महाखांडव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण के सेवन करने से रुचि हो, अग्नि प्रदीप्त हो, यह हृदय को हितकारी, खांसी, अतिसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग, मुखरोग, विषूचिका (हैजा) अफरा,

बवासीर, गोला, कृमिरोग, पांच प्रकार का छर्दिरोग तथा श्वास ये दूर होवें॥८१-८६॥

नारायणचूर्ण उदररोगपर

चित्रकं त्रिफलाव्योषं जीरकं हपुषा वचा। यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाऽजगन्धिका ॥८७॥ अजमोदा शठी धान्यं विडङ्गंस्थूलजीरकम्। हेमाह्वा पौष्करं मूलं क्षारौ लवणपञ्चकम् ॥८८॥ कुष्ठं चेति समांशानि विशाला स्याद् द्विभागिका। त्रिवृत् त्रिभागा विज्ञेया दन्त्या भागत्रयं भवेत् ॥८९॥ चतुर्भागा शातला स्यात् सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्। पाचनं स्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः ॥९०॥ दद्याच्चूर्णं विरेकाय सर्वरोगप्रणाशनम्। हृद्रोगे पाण्डुरोगे च कासे श्वासे भगन्दरे ॥९१॥ मन्देऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे। दद्याद्युक्तानुपानेन तथाऽऽध्माने सुरादिभिः ॥९२॥ गुल्मे बदरीनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना। उष्णाम्बुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिगर्तिषु ॥९३॥ उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम्। प्रसन्नया वातरोगे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥९४॥ द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम्। चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम् ॥९५॥

अर्थ–१ चीते की छाल, २ हरड, ३ बहेड़ा, ४ आंवला, ५ सोंठ, ६ मिरच, ७ पीपल, ८ नीरा, ९ हाउबेर, १० वच, ११ अजवायन, १२ पीपरामूला, १३ सौंफ, १४ वर्वरी (वनतुलसी), १५ अजमोदा, १६ कचूर, १७ धनियां, १८ वायविडंग, १९ मगरेला (कलौंजी), २० पुहकरमूल, २१ सज्जीखार, २२ जवाखार, २३ सैंधानमक, २४ संचरनमक, २५ विडनमक, २६ समुद्रनमक, २७ कचिया नमक और २८ कूट। इन अट्ठाइस औषधियों को एक एक तोला लेवे। इंद्रायण की जड़ २ तोले, निसोत ३ तोले और दंती की जड़ ३ तीन तोले एवं पीली थूहर ४ तोले, इन सब औषधियों को कूट पीस चूर्ण करे। फिर पाचन करके और स्नेहनादि करके जिस मनुष्य का चिकना कोठा हो गया हो तो उस मनुष्य को दस्त होने का वास्ते यह चूर्ण देवे तो संपूर्ण रोग दूर होवें, हृदयरोग, पांडुरोग, खांसी, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ़, संग्रहणी इन रोगो में मद्य आदि अनुपान के साथ देवे। पेट के फूलने पर दारू के साथ देवे। गोले के रोग में बेर के काढ़े के साथ देवे, मलबद्धवाले को दही के जल से देवे और अजीर्ण रोगी को गरम जल के साथ देवे। गुदा में कतरनी की सी पीड़ा होवे तो बिंतिडी के काढ़ के साथ देवे। उदररोग (जलंधर) में ऊँटनी के दूध के साथ अथवा गौ के तक्र के साथ देवे। बादी के रोग में प्रसन्न मद्य के साथ देवें, बवासीर में अनारदाने के जल के साथ देवे। स्थावर और जंगम विषों में घृत के साथ देवे तो दोनों प्रकार के विष दूर हों। इसको नारायण चूर्ण कहते हैं, इससे संपूर्ण दुष्ट रोग दूर होते हैं॥८७-९५॥

हपुषादिचूर्ण अजीर्णउदरादिकोंपर

हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली। हेमक्षीरी

त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा ॥९६॥ नालिनी सैन्धवं कृष्णलवणं चेति चूर्णयेत्।उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः ॥९७॥ तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः । अजीर्णे प्लीहगुल्मेषु शोफार्शोविषमाग्निषु ॥९८॥हलीमकामलापाण्डु-कुष्ठाध्मानोदरेष्वपि ।

अर्थ–१ हाऊबेर, २ हरड, ३ बहेड़ा, ४ आंवला, ५ त्रायमाण, ६ पीपल, ७ चोक, ८ निसोथ, ९ पीली थूहर, १० कुटकी, ११ वच, १२ नीलो, १३ सैंधानमक, १४ काला नमक प्रत्येक समान भाग लेवे। सबका चूर्ण कर गरम जल के वा गोमूत्र के साथ वा अनारदाने के रस से अथवा त्रिफला के काढ़े के साथ अथवा वन के हरिणादिकों के मांसरस से योग्यता विचार के देवे तो अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पांडुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग इन सबको दूर करे॥९६-९८॥

पञ्चसमचूर्ण शूलादिकोंपर

शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत् सौवर्चलं तथा ॥९९॥ समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् । ज्ञेयं पञ्चसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम् ॥१००॥ आध्मानजठरार्शोघ्नमाम-वातहरं स्मृतम् ।

अर्थ–१ सोंठ, २ हरड़, ३ पीपल, ४ निसोथ और ५ संचर नमक, ये पांचो औषधि समभाग लेकर बारीक चूर्ण करे। इसको पंचम चूर्ण कहते हैं। इसके सेवन करने से शूल रोग, पेट का फूलना, मंदाग्नि, बवासीर और आम वायु ये रोग दूर होते हैं॥९९॥१००॥

पिप्पल्यादिचूर्ण अफराआदिपर

कर्षमात्रा भवेत् कृष्णा त्रिवृत्ता स्यात् पलोन्मिता ॥१०१॥ खण्डात् पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् । कर्षोन्मितं लिहदेतत् क्षौद्रेणाध्माननाशनम्॥१०२॥गाढविट्कोदरकफान् पित्तं शूलं च नाशयेत् ।

अर्थ–पीपल १ तोला, निसोथ ४ तोले, मिश्री ४ तोले। इनका एकत्र चूर्ण कर शहद से सेवन करे तो पेट का अफरा तथा मलबद्धता, उदररोग, कफ, पित्त और शूल को नाश करे॥१०१॥१०२॥

लवणत्रितयादिचूर्ण यकृत्प्लीहादिकों पर

लवणत्रितयं क्षारं शतपुष्पाद्वयं वचा ॥१०३॥ अजमोदाऽ-जगन्धा च हपुषा जीरकद्वयम् । मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली॥१०४॥हिंगुश्च हिङ्गुपत्री च शठी पाठोपकुञ्चिका । शुण्ठीचित्रकचव्यानि विडङ्गं चाम्लवेतसम् ॥१०५॥ दाडिमं तिन्तिडीकं च त्रिवृद्दन्ति शतावरी । इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारुयवानिका ॥१०६॥ कुस्तुम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं

बदराणि च । शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥१०७॥ भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा । तत् पिबेत् सर्पिषा जीर्णमद्यनोष्णोदकेन वा ॥१०८॥ कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनौष्ट्रेण मस्तुना । यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षि-हृदामयान् ॥१०९॥ अर्शोविष्यम्भमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणि च । हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः ॥११०॥ एतैरेवौषधः सम्यग्घृतं वा साधयेद्भिषक् ।

अर्थ–१ सेंधानमक, २ संचरनमक, ३ बिडनोन, ४ सज्जीखार, ५ जवाखार, ६ सौंफ, ७ मगरेला (कलौंजी), ८ वच, ९ अजमोदा, १० बर्बरी (वनतुलसी), ११ हाउबेर, १३ सफेद जीरा, १३ कालाजीरा, १४ काली मिरच, १५ पीपलामूल, १६ पीपल, १७ गजपीपल, १८ हींग भुनी, १९ हिंगपुत्री, २० कचूर, २१ पाढ, २२ छोटी इलायची, २३ सोंठ, २४ चव्य, २५ चीते की छाल, २६ वायविडंग, २७ अमलवेत, २८ अनारदाना, २९ तिंतीडीक, ३० निशोथ, ३१ दन्ती, ३२ सतावर, ३३ इन्द्रायँण का गूदा, ३४ भारंगी, ३५ देवदारु, ३६ अजवायन, ३७ धनियां, ३८ चिरफल, ३९ पुहकरमूल, ४० बेर और ४१ छोटी हरडे। ये इकतालीस औषधि समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उस चूर्ण को अदरख के रस का एक तथा बिजोरे के रस का एक पुट देकर सुखाय लेवे। इस चूर्ण को घी, पुराना मद्य, गरम जल, अथवा बेर का काढ़ा, गौ की छाल, ऊंटनी का दूध और दही का पानी, इनमें जो अनुमान रोगी को हितकारी होय वह उसके साथ देवे तो कलेजे का रोग, प्लीहा (तिल्ली) कमर का दर्द, गुदा का रोग, कूख का शूल, हृदयरोग, बवासीर, मल का अवरोध, मन्दाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदररोग, हिचकी, अफरा, श्वास और खांसी ये रोग दूर होवें। अथवा इस चूर्ण में कही हुई औषधियों का काढ़ा करके उसमें घी मिला के साधन करे, जब घी सिद्ध हो जावे तब उतार ले। इस घृत के सेवन करने से ऊपर कहे हुए सम्पूर्ण रोग दूर होय॥१०३-११०॥

तुम्बर्वादिकचूर्ण शूलादिकोंपर

तुम्बरूणि त्रिलवणं यवानीपुष्कराह्वयम् ॥१११॥ यवक्षार-भयाहिङ्गुविडङ्गानि समानि च । त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥११२॥ पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्वाथेन वा पिबेत् । जयेत् सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥११३॥

अर्थ–१ धनिया अथवा चिरफल, २ सेंधानमक, संचरनमक, ४ विडनमक, ५ अजमोदा, ६ पुहकरमूल, ७ जवाखार, ८ हरड, ९ भुनी हुई हींग और १० वायविडंग इन दश औषधियों को समान भाग लेवे तथा निसोथ तीन भाग ले, सब औषधियों का बारीक चूर्ण कर गरम जल से अथवा जौके काढ़े के साथ सेवन करे तो सब प्रकार के शूल, गोला, अफरा और उदररोग दूर होवें॥१११-११३॥

चित्रकादिचूर्ण गुल्मादिकोंपर

चित्रकं नागरं हिङ्गु पिप्पली पिप्पलीजटा । चव्याजमोदा

मरिचं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥११४॥ स्वर्जिका च यवक्षारः सिन्धुसौवर्चलंविडम् । सामुद्रकरोकंचकोलमात्राणिकारयेत् ॥११५॥ एकीकृत्याखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुङ्गजैः रसैर्दाडिमजैर्वाऽपि शोषयेदातपन च ॥११६॥ एतच्चूर्णं जयेद् गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम् । अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत् कफनाशनम् ॥११७॥

अर्थ–१ चीते की छाल, २ सोंठ, ३ भुनी हुई हींग, ४ पीपल, ५ पीपलामूल, ६ चव्य, ७ अजमोहा, ८ कालीमिरच, इन आठ औषधियों को तोले तोले भर लेवे तथा १ सज्जीखार, २ जवाखार, ३ सैंधवनमक, ४ सञ्चरनमक, ५ विडनोन, ६ समुद्रनमक और ७ रेहका नमक इन सात खारों को आठ मासे लेवें। फिर सब औषधियों को चूर्ण कर विजोरे के रस की एक भावना देवे। अथवा अनारदाने के रस का एक पुट देवे, फिर धूप में धर के सुखाय लेवे। इस चूर्ण के सेवन करने से गोला, संग्रहणी, आम ये दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त हो, रुचि बढ़े तथा कफ दूर होय॥११४-११७॥

वडवानलचूर्ण मन्दाग्नि आदि रोगोंपर

सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्यचित्रकम् । शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धया विचूर्णयेत् ॥११८॥ वडवानलनाम्नैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम् ।

अर्थ–१ सैंधानमक एक भाग, २ पीपरामूल दो भाग, ३ पीपल तीन भाग, ४ चव्य चार भाग, ५ चीते की छाल पांच भाग, ६ सोंठ छः भाग, ७ जंगी हरड सात भाग–इस क्रम से ये औषधि लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण को वडवानल चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करने से अग्नि प्रदीप्त होती है॥११८॥

अजमोदादिचूर्ण आमवातपर

अजमोदा विडङ्गादि सैन्धवं देवदारु च ॥११९॥ चित्रकः पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली । मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥१२०॥ कर्षास्तु पञ्च पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात् । नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥१२१॥पिबेत् कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम्।आमवातरुजं हन्ति सन्धिपीडां च गृध्रसीम् ॥१२२॥ कटिपृष्ठगुदस्थां च जंघयोश्च रुजं जयेत्। तूणीप्रतूणीविश्वाचीकफवातामयाञ्ज–येत् । समेन वा गुडेनास्य वटकान् कारयेत्सुधीः ॥१२३॥

अर्थ–१ अजमोद, २ वायविडंग, ३ सैंधानमक, ४ देवदारु, ५ चित्रक, ६ पीपरामूल, ७ सौंफ, ८ पीपल और ९ कालीमिरच। इन औषधियों को तोले तोले लेवे तथा जङ्गीहरडे २ तोले ले, विधायरा १० तोले और सोंठ दश तोले। सब औषधियों को कूट पीस और छानके चूर्ण करे; इसको गरम जल के साथ ले तो सूजन,आमवात, सन्धियों का दुःखना, गृध्रसी, वायु (जो करसे

लेकर पैर पर्यंत पीड़ा होती है वह) कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पीडरियों की पीड़ा, तूनी, वायु, प्रतूनी वायु तथा विश्वाची वायु और कफवायु के विकार, सम्पूर्ण रोग दूर होवें अथवा इस चूर्ण के समान भाग गुड़ मिलाय के गोली बनाय के खाय तो चूर्ण खाने से जो रोग नष्ट होते हैं वे ही इस गोली के सेवन से नष्ट होय॥११९-१२३॥

शुंठ्यादिचूर्ण श्वासादिकोंपर

शुण्ठीसौवर्चलं हिंगु दाडिमं चाम्लवेतसम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशान्तये ॥१२४॥

अर्थ-१ सोंठ, २ सञ्चरनामक, ३ भुनीहुई हींग, ४ अनारदाना और ५ अमलवेत इनका चूर्ण गरम जल के साथ ले तो श्वास और हृदयरोग नष्ट होवें॥१२४॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर

हिंगूग्रगन्धाबिडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् । पिबेत् ससौवर्चलपुष्कराह्वं हिमांभसा शूलहृदामयघ्नम् ॥१२५॥

अर्थ-१ हींग, २ वच, ३ विडनोन, ४ सोंठ, ५ पीपल, ६ कूठ, ७ हरड, ८ चीते की छाल, ९ जवाखार, १० सञ्चरनमक और ११ पुहकरमूल, इन ग्यारह औषधियों का चूर्ण कर शीतलजल के साथ पीवे तो शूल और हृदयरोग शांत होवे॥१२५॥

हिंग्वादिचूर्ण शूलादिकोंपर

हिंगुपाठाऽभया धान्यं दाडिमं चित्रकं शठी । अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम् ॥१२६॥ अजगन्धा तिन्तिडीकं जीरकं पौष्करं वचा । चव्यं क्षारद्वयं पञ्च लवणानीति चूर्णयेत् ॥१२७॥ प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत् प्रयोजयेत् । पिबेद्वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा ॥१२८॥गुल्मे वातकफोद्भूते विड्ग्रहेऽष्ठीलिकासु च । हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गदयोनिजे ॥१२९॥ मूत्रकृच्छ्रे तथाऽनाहे पाण्डुरोगेऽरुचौ तथा । हिक्कायां यकृति प्लीह्नि श्वासे कासे गलग्रहे ॥१३०॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत् प्रशस्यते । भावितं मातुलुङ्गस्य बहुशः स्वरसेन वा ॥१३१॥ कुर्याच्च गुटिकाः पथ्या वातश्लेष्मामयापहाः ।

अर्थ-१ भुनी हींग, २ पाढ़, ३ जंगीहरड, ४ धनिया, ५ अनारदाना, ६ चीते की छाल, ७ कचूर, ८ अजमोद, ९ सोंठ, १० मिरच, ११ पीपल, १२ हाऊबेर, १३ अमलवेत, १४ वनतुलसी, १५ तिंतिडीक अथवा इमली, १६ जीरा, १७ पुहकरमूल, १८ वच, १९ चव्य, २० सज्जीखार, २१ जवाखार, २२ सैंधानोंन, २३ संचरनोंन, २४ बिडनोंन, २५ बागड खार और २६ समुद्र का नोंन, इन छब्बीस औषधियों को कूट पीस के चूर्ण करे। इसको भोजन आदि में अथवा भोजन के मध्य में खाय अथवा बहुत दिन के पुराने मद्य के साथ सेवन करे, अथवा गौ की छाछ एवं गरम जल के साथ सेवन करे तो वात कफ से उत्पन्न होनेवाला, गोले के रोग, हृद्रोग, अष्ठीला इस नाम से पेट में होनेवाला वादी का रोग, हृदय, वस्ति, कूख इनका शूल तथा गुदा का शूल, योनिशूल,

मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पांडुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृद्रोग, तिल्ली का रोग, श्वास, खांसी, कंठरोग, संग्रहणी, बवासीर, ये संपूर्ण रोग दूर हों। इस चूर्ण में बिजौरे के रस के सात पुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात कफ से होनेवाले रोग दूर होवें।।१२६-१३१।।

यवानी खण्ववचूर्ण अरुच्यादिपर

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ।।१३२।। वादराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च । सार्द्धद्विशाणमरिचं पिप्पली दश शाणिका ।।१३३।। त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणिकम् ।चतुःषष्टिमितैः शाणैः शर्करामत्रयोजयेत् ।।१३४।। चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखाण्डवाभिधम् । चूर्णं जयेत् पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणी ज्वरम् ।।१३५।। छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम्।अरुचिं शूलमन्दाग्नी अर्शोजिह्वागलामयान् ।।१३६।।

अर्थ–१ अजमोदा, २ अनारदाना, ३ सोंठ, ४ तिंतीडीक अथवा इमली, ५ अमलवेंत और ६ खट्टे बेर, ये छः औषधि चार चार शाण लेवे। काली मिरच ढाई शाण, पीपल दश शाण, दालचीनी, संचरनमक, धनियां, जीरा ये प्रत्येक दो दो शाण और मिश्री चौसठ शाण ले, फिर सब औषधियों को कूटकर चूर्ण करे, इस चूर्ण को यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं। इस चूर्ण के सेवन करने से पांडुरोग, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि, शूल, मन्दाग्नि, बवासीर, जीभ और गले के रोग ये सब दूर होते हैं।।१३२-१३६।।

तालीसादिचूर्ण अरुच्यादिरोगोंपर

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचनम् । एकद्वित्रिचतुःपञ्छकर्षै र्भागान् प्रकल्पयेत् ।।१३७।। एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् । द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रपेया शर्करा बुधैः ।।१३८।। तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् । कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसार नाशनम्।।१३९।।शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।। पक्त्वा वा शर्करां चूर्णं क्षिपेत् स्याद्गुटिका ततः ।।१४०।।

अर्थ– तालीसपत्र १ तोला, कालीमिरच २ तोले, सोंठ २ तोले, पीपल ४ तोले, वंशलोचन ५ तोले, छोटी इलायची और दालचीनी दोनों छः छः मासे और मिश्री ३२ तोले ले फिर सबको कूट पीस चूर्ण करके सेवन करे तो रुचि होय, अन्न पचे, तथा खांसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी और पांडुरोग ये दूर हों, अथवा मिश्री की चासनी करके उसमें इस चूर्ण को डाल गोली बनाय लेवे तो यह भी चूर्ण के समान गुण करती है।।१३७-१४०।।

सितोपलादिचूर्ण खांसीक्षयपित्तादिकोंपर

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद् वंशरोचना । पिप्पली स्याच्चकर्षा स्यादेला स्याच्च द्विकार्षिकी ।।१४१।। एकः

कर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत् सर्वमेकतः । सितोपलादिकंचूर्णं मधुसर्पियुतं लिहेत् ॥१४२॥ श्वासकासक्षयहरं हस्तपादाङ्ग-दाहजित् । मन्दाग्निं शून्यजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥१४३॥ ज्वर मूर्ध्वगतं रक्तपित्तमाशु व्यपोहति ।

अर्थ–मिश्री १६ तोले, वंशलोचन ८ तोले, पीपल ४ तोले, छोटी इलायची के बीज २ तोले, दालचीनी १ तोला। इन सबको कूट पीसकर चूर्ण करे, इसको सितोपलादिचूर्ण कहते हैं और इस चूर्ण को शहद और घी के साथ मिलाय के खाय तो श्वास, खांसी, क्षय, हाथ पैरों का तथा अङ्गों का दाह, मंदाग्नि, जीभ की शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर, ऊर्ध्वगत, रक्तपित्त (नाक मुख से रुधिर आना) ये सब तत्काल दूर होवें।।१४१-१४३।।

लवणभास्करचूर्ण संग्रहणीगुल्मादिकोपर

सामुद्रलवणं कार्यमेटकर्षमितं बुधैः ॥१४४॥ पञ्च सोवर्चलं ग्राह्यं विडं सैन्धवधान्यके । पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीर-पत्रकम्॥१४५॥नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा । द्विकर्ष-मात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥१४६॥ मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् । दाडिमांस्याच्चतुःकर्षत्वगेलेचार्धक-र्षिके ॥१४७॥ बीजपूररसेनैव भावितं सप्तवारकम् । एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् । शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः ॥१४८॥ वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम् । अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् ॥१४९॥ शोफं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् । मन्दाग्निं नाशयेदेतत् दीपनं पाचनं परम् ॥१५०॥ सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणो-दितं पुरा ।

अर्थ–समुद्रनमक ८ तोले, संचरनोन ५ तोले तथा १ विडनोन, २ सेंधानमक, ३ धनियां, ४ पीपल, ५ पीपरामूल, ६ कालाजीरा, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ तालीसपत्र और १० अमलवेत। ये दश औषधि एक एक तोला ले कालीमिरच जीरा और सोंठ ये तीन औषधि एक एक तोला ले तथा अनारदाना ४ तोले दालचीनी और इलायची छः छः मासे इन सब औषधियों को कूट पीस चूर्ण करे। बिजौरे के रस की सात बार भावना दे। इसको दही के जल से वा मलाई या छाछ और मद्य (दारु) इनमें से रोगानुसार अनुपान के साथ ४ मासे देवे तो वातकफ से उत्पन्न होनेवाला गीली, प्लीहा, उदररोग, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ़, मलबद्धता, (बद्धकोष्ठ) भगंदर, सूजन, शूल, श्वास, खांसी, आमबात, हृद्रोग और मन्दाग्नि ये सब रोग दूर हों। अग्नि प्रदीप्त हो, तथा अन्न का उत्तम परिपाक होवे। यह चूर्ण लोकों के हित के वास्ते सूर्य ने कहा है। इसी से इसका नामं लवणभास्कर चूर्ण विख्यात है।।१४४-१५०।।

एलादिचूर्ण वमनपर

एलाप्रियं गुमुस्तानि कोलमज्जा च पिप्पली ॥१५१॥

श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेसरम् । एतच्चूर्णीकृतं सर्वंसिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥१५२॥ वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिहन्त्यतिवेगतः ।

अर्थ-१ छोटी इलायची के बीच, २ फूलप्रियंगु, ३ नागरमोथा, ४ बेर की गुठली, ५ पीपर, ६ सफेद चंदन, ७ खील, ८ लौंग, ९ नागकेशर। इनको कूट पीस चूर्ण करके शहद और मिश्री के साथ खाय तो वात, पित्त और कफ से उत्पन्न हुआ वमन (रद्द) ये सब तत्काल दूर हों॥१५१॥१५२॥

पञ्चनिम्बचूर्ण कुष्ठादिकोंपर

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निम्बात् समाहरेत् ॥१५३॥ सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात् पलैः पञ्चदशोन्मितैः। लोहभस्महरीतक्यौ चक्रमर्दकचित्रकौ ॥१५४॥ भल्लातकविडङ्गानि शर्करामलकं निशा । पिप्पली मरिचं शुण्ठी बाकुची कृतमालकः॥१५५॥ गोक्षुरश्च पलोन्मानमेकैकं कारयेद् बुधः । सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत्॥१५६॥ अष्टभागावशिष्टेन खदिरासन-वारिणा । भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः क्षिपेत् ॥१५७॥ खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाथवा । मासेनसर्व-कुष्ठानि विनिहंति रसायनम् ॥१५८॥ पञ्चनिम्बमितं चूर्णं सर्वरोगप्रणाशनम् ।

अर्थ-१ जड़, २ पत्ते, ३ फल, ४ फूल और ५ छाल ये पांच अंग नीम के १५ पल लेय उनको चूर्ण करे, इसमें १ लोहे की भस्म, २ जंगीहरड, ३ पवाड़ के बीज, ४ चीते की छाल, ५ भिलावे, ६ वायविडंग, ७ मिश्री, ८ आमलक, ९ हल्दी, १० पीपर, ११ कालीमिरच, १२ सोंठ, १३ बावर्ची, १४ अमलतास का गूदा और १५ गोखरू। ये पन्द्रह औषधि प्रत्येक एक एक पल लेकर इन सबका चूर्ण करके तथा पूर्वोक्त नीम की चूर्ण और पन्द्रह औषधियों का चूर्ण मिलाय एकत्र करके भांगरे के रस की भावना देकर सुखाय ले। पश्चात् खैर की छाल का काढ़ा करके उसका एक पुट दे। फिर विजयसार की छाल का काढ़ा करके एक पुट देकर सुखाय लेवे, १ तोला इस चूर्ण को खैर की छाल के काढ़े से पीवे। अथवा विजयसार के काढ़े से वा गौ के घी या दूध से पीवे तो एक महीने में संपूर्ण कोढ़ दूर होवे। इस चूर्ण को पंचनिंब चूर्ण कहते हैं, यह चूर्ण रसायन हैं॥१५३-१५८॥

शतावरीचूर्ण वाजीकरणपर

शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम् ॥१५९॥ गांगेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरकोद्भवम् । चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि॥१६०॥न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ।

अर्थ-१ शतावर, २ गोखरू, ३ कौंच के बीज, ४ गंगेर की छाल, ५ कंगही की छाल, ७ तालमखाना, इनका चूर्ण कर रात्रि में गौ के दूध के साथ सेवन करे तो बहुत स्त्री भोगने से भी इच्छा की तृप्ति नहीं हो, ऐसा चूर्ण का प्रभाव है॥१५९॥१६०॥

अश्वगन्धादिचूर्ण पुष्टाइपर

अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारकः ॥१६१॥ चूर्णीकृत्योभयं विद्वान् घृतभाण्डे निधापयेत् । कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति ॥१६२॥ अगत्वा प्रमदां भूयो वलीपलितवर्जितः ।

अर्थ–असगन्ध १० पल, विधायरा १० पल, इन दोनो का चूर्ण कर घी के बासन में भर के रात्रि को रख देवे फिर इनमें से २ तोले चूर्ण को गौ के दूध से सेवन करे तो बहुत सी स्त्रियों से भोग करने पर भी तृप्त न हो और यदि स्त्रीसेवन को त्याग के इन चूर्ण का सेवन करे तो अंग में गुजलटों का पड़ना और बालों का सफेद होना, ये रोग दूर हों और बुड्ढे से जवान हो॥१६१॥६१२॥

मुसलीचूर्ण धातुवृद्धिपर

मुसलीकन्दचूर्णं तु गुडूचीतसत्त्वसंयुतम् ॥१६३॥ वानरीगोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्करामलैः । आलोड्य घृतदुग्धेन दापयेत् कामवर्धनम् ॥१६४॥

अर्थ–१ सफेद मूसली, २ गिलोय का सत्व, ३ कौंच के बीज, ४ गोखरू, ५ सेमर का मूसला, ६ मिश्री और ७ आँवले। इन सात औषधियों का चूर्ण करके गौ के दूध में घी मिलाय के इस चूर्ण को पीवे तो धातु की वृद्धि होकर काम बढ़ावे॥१६३॥१६४॥

नवायचूर्ण पाण्डुरोगादिकोंपर

चित्रकं त्रिफलामुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च । समभागानि सर्वाणि नवभागो हतायसः ॥१६५॥ एतद्वेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पियुतं लिहेत् । गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते ॥१६६॥ पाण्डुरोगं जयत्युग्रं त्रिदोषं च भगन्दरम् । शोथकुष्ठोदरार्शांसि मंदाग्निमरुचिं कृमीन् ॥१६७॥

अर्थ–१ चीते की छाल, २ हरड, ३ बहेड़ा, ४ आँवला, ५ नागरमोथा, ६ वायविडंग, ७ सोंठ, ८ कालीमिरच और ९ पीपल ये नौ औषधि समान भाग ले चूर्ण करके उस चूर्ण के समान लोहभस्म मिलावे। फिर इस चूर्ण को शहद और घी के साथ अथवा गोमूत्र से अथवा गौ की छाछ से सेवन करे तो बड़ा भारी घोर पाण्डुरोग, त्रिदोष, भगन्दर, सूजन, कोढ़, उदररोग, बवासीर, मन्दाग्नि और कृमिरोग, इन सबको नष्ट करे॥१६५-१६७॥

अकारकरभादिचूर्ण स्तम्भनपर

अकारकरभः शुण्ठी कङ्कोलं कुंकुमं कणा । जातीफलं लवङ्गं च चन्दनं चेति कार्षिकान् ॥१६८॥ चूर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम् ॥ सर्वमेकीकृतं सूक्ष्मं माषैकं मधुना लिहेत् ॥१६९॥ शुक्रस्तम्भकरं चूर्णं पुंसामानंदकारकम् । नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥१७०॥

अर्थ–१ अकरकरा, २ सोंठ, ३ कंकोल, ४ केशर, ५ पीपल, ६ जायफल, ७ लौंग और ८ सफेद

चन्दन ये आठ औषधि एक एक तोला लेवे तथा अफीम चार तोले लेवे। इन सबको एकत्र चूर्ण करके १ मासे के अनुमान इस चूर्ण को शहद से रात्रि के समय सेवन करे तो धातु का स्तम्भन होकर पुरुष को आनन्द होय तथा स्त्रियों में प्रीति उत्पन्न होय।।१६८-१७०।।

मञ्जन

बकुलत्वग्भवं चूर्णं घर्षयेद्दंतपङ्क्तिषु ।
वज्रादपि दृढीभूता दन्ताः स्युश्चपला ध्रुवम् ।।१७१।।

इति श्रीदामोदरसूनुशाङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने चूर्णकल्पनाऽध्यायः षष्ठः ।।६।।

अर्थ-मोलसिरी की छाल के चूर्ण को दातो में घिसा करे तो हिलते हुए दात भी वज्र के समान दृढ़ होवें, इसमें सन्देह नहीं।।१७१।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत शाङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः ७

वाटिकाश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी । मोदको वटिकापिण्डी गुडोवर्तिस्तथोच्यते ।।१।। लेहवत साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराऽथवा । गुग्गुलं वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ।।२।। प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटी । द्रवेण मधुना वाऽपि गुटिकां कारयेद् बुधः ।।३।। सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः । चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ।।४।। द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः । कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यताम् ।।५।।

अर्थ-१ गुटिका, २ वटी, ३ मोदक, ४ वटिका, ५ पिंडी, ६ गुड़ और ७ वत्ती ये सात वटिका अर्थात् गोली के पर्याय शब्द हैं। इनका बनाना इस प्रकार है कि गुड़, खांड अथवा गूगल का पाक करके उसमें चूर्ण मिलाकर गोली बनानी चाहिये। पाक करे बिना गोली बनानी होवे तो गूगल को शोध पीस उसमें चूर्ण मिलाकर घीसे गोली बनाय लेवे। अथवा जल दूध शहद आदि पतली वस्तुओं में चूर्ण डाल के खरल कर गोली बनाय लेवे। यदि खांड मिश्री आदि डाल के गोली बनानी होवे तो चूर्ण से चौगुनी मिश्री मिलायके गोली बनावे। यदि गुड़ मिलाय के गोली करनी होवे तो चूर्ण से दूना गुड़ मिलायके गोली बनावे, कभी गूगल और शहद दोनों डाल के बनानी हो तो, गूगल और शहद वे दोनों चूर्ण के समान भाग लेकर गोली बनावे। और पानी दूध इत्यादि द्रव पदार्थ से गोली बनानी होवे तो चूर्ण से दूना डाल के गोली बनानी चाहिये। चूर्ण के सेवन की मात्रा का प्रमाण १ तोला है अथवा रोगी की प्रकृति के अनुसार वैद्य को मात्रा देनी चाहिये।।१-५।।

बाहुशालगुड़ बवासीपर

इन्द्रवारुणिकामुस्ते शुण्ठी दन्ती हरीतकी।त्रिवृच्छठीविडङ्गानि गोक्षुरश्चित्रकस्तथा ।।६।। तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथगद्रव्याणि कारयेत् । सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारु चतुष्पलम् ।।७।। चतुः पलं स्याद् भल्लातः क्वाथयेत् सर्वमेकतः । जलद्रोण चतुर्थांशं गृह्णीयात् क्वाथमुत्तमम् ।।८।। क्वाथ्यद्रव्यात्त्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत् । सम्यक् पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत् प्रदापयेत् ।।९।। चित्रकस्त्रिवृता दन्ती तेजोह्वा पलिकाः पृथक् । पृथक् त्रिपलिकाः कार्या व्योषैला मरिचत्वचः ।।१०।। निक्षिपन् मधु शीते च तस्मिन् प्रस्थप्रमाणतः । एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान् बाहुशालगुडः शुभः ।।११।। जयेदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा । आमवातं प्रतिश्यायं ग्रहणीक्षयपीनसान् ।।१२।। हलीमकं पांडुरोगे प्रमेहं च रसायनम् ।

अर्थ–१ इंद्रायन की जड़, २ नागरमोथा, ३ सोंठ, ४ दन्ती, ५ जंगी हरडे, ६ निसोथ, ७ कचर, ८ वायबिडंग, ९ गोखरु, १० चीते की छाल, ११ तेजबल, ये ग्यारह औषधि प्रत्येक दो दो तोले लेवे, जमीकन्द (सूरन) आठ पल, विधायरा १६ तोले, भिलावा ४ पल ले। इन सब औषधियों को एकत्रकर कूट पीस उसमें दो द्रोण जल डाल के अग्नि पर चढ़ाकर मन्दी मन्दी आंच से चतुर्थांश जल शेष रहे तत्पर्यन्त गाढा करे, और सब औषधियों से तिगुना गुड डाले। फिर औटायकर पाक करे। फिर इस पाक में आगे कहा हुआ औषधियों का चूर्ण डाले। जैसे–चीते की छाल, निसोथ, दन्ती, तेजबल ये चार औषधियां एक एक पल ले, सोंठ, मिरच, पीपल, आंवले, दालचीनी ये पांच औषधियां तीन २ पल ले। सबका चूर्ण कर उस पाक में मिलावे। इसको बाहुशाल गुड़ कहते हैं। इस गुड़ के खाने से सम्पूर्ण बवासीर, गुल्म, वातोदर, बादी से अङ्गों से जकड़ना, आमवात, जुखाम, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पांडुरोग और प्रमेह दूर होवे। यह बाहुशालगुड़ रसायन है।।६–१२।।

मरीचादिगुटिका खांसीपर

मरिचं कर्षमात्रं स्यात् पिप्पली कर्षसंमिता ।।१३।। अर्धकर्षो यवक्षारःकर्षयुग्मं च दाडिमम्। एतच्चूर्णकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि ।।१४।। शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत् । अस्याः प्रभावात्सर्वेऽपि कासा यान्त्येव संक्षयम् ।।१५।।

अर्थ–कालीमिरच और पीपल २ तोले, जवाखार आधा तोला, अनार की छाल २ तोले इनका चूर्ण कर ८ तोले गुड मिलायके ४ मासे की गोली बनावे फिर इस गोली को मुख में रखे तो संपूर्ण जाति की खांसी दूर होवे, इसमें संशय नहीं।।१३–१५।।

व्याघ्र्यादिगुटिका ऊर्ध्ववातपर

व्याघ्रीजीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात् ।।१६।।

अर्थ-१ कटेरी, २ जीरा और आंवला इनका चूर्ण कर शहद मिलाकर चाटे तो ऊर्ध्ववायु, महाश्वास और तमकश्वास ये सब रोग तत्काल दूर हो॥१६॥

गुडादिगुटिका श्वासखांसीपर

गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ।
श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभितकम् ॥१७॥

अर्थ-१ सोंठ, २ जंगी हरडे और ३ नागरमोथा इनको कूट पीसकर इसमें दूना गुड़ मिलायके गोली बनावे। फिर एक गोली को मुख में रखे तो सम्पूर्ण खांसी और श्वास ये दूर हों। अथवा साबूत बहेड़े की छाल को मुख में रखने से श्वास और खांसी दूर होवे॥१७॥

आमलक्यादिगुटिका मुखशोषादिपर

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् । एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥१८॥ तृष्णां प्रवृद्धां हन्त्येषा मुखशोषं च दारुणम् ।

अर्थ-१ आमला, २ कमल, ३ कूट, ४ खील और ५ वड की कोंपल इन पांच औषधियों को शहद में मिलायके गोली बनावे। इसको मुख में रखे तो अत्यन्त प्यास का लगना और मुख के घोर शोष को यह दूर करे॥१८॥

सञ्जीवनीगुटिका सन्निपातादिकोंपर

विडङ्गं नागरं कृष्णा पथ्यामलविभीतकौ ॥१९॥ वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् । एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥२०॥ गुञ्जाभा गुटिका कार्या दद्यादार्द्रकजै रसैः । एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥२१॥ तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सन्निपातके । वटी सञ्जीवनी नाम्ना सञ्जीवयति मानवम् ॥२२॥

अर्थ-१ वायबिंडग, २ सोंठ ३ पीपल, ४ जंगीहरड, ५ आंवला ६ बहेडा, ७ वच, ८ गिलोय, ९ भिलावा, १० वच्छनाग (शुद्ध किया हुआ) इन दश औषधियों को समान भाग लेकर गौ के मूत्र में पीस के एक एक रत्ती की गोली बनावे। फिर इसको अदरख के रस के साथ अजीर्ण रोग में तथा गोला के रोग में १ गोली सेवन करे, विषूचिका (हैजा) में दो गोली, सर्प के विषपर तीन गोली, सन्निपात में चार गोली सेवन करे। यह गोली मनुष्यों को सञ्जीवन करनेवाली है इसीसे इसको सञ्जीवनी गुटिका कहते हैं॥१९-२२॥

व्योषादिगुटिका पीनसपर

व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकस्तथा । जीरकं तिन्तिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम् ॥२३॥ त्रिसुगन्धं त्रिशाण स्याद्गुडः स्यात् कर्षविंशतिः। व्योषादिगुटिका सामपीनसश्वासकासजित् ॥२४॥ रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्यामाप्रणाशिनी ।

अर्थ-१ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल, ४ अमलवेत, ५ चव्य, ६ तालसीपत्र, ७ चित्रक ८ जीरा और ९ इमली की छाल इन नौ औषधियों को एक एक तोला लेवे। तथा १ दालचीनी २

इलायची के दाने तथा ३ पत्रज ये तीन औषधियों को तीन २ शाण लेवे, फिर सब औषधियों को कूट पीस चूर्ण कर इसमें २० तोले गुड मिलायके गोली बना लेवे। यह व्योषादि गुटिका आम, पीनस का रोग, श्वास, खांसी इन सब रोगों को दूर करै तथा मुख में रुचि प्रगट करे, इससे स्वर (आवाज) शुद्ध हो तथा सरेम का जुखाम दूर होय।।२३-२४।।

गुडवटिकाचतुष्टय आमादिकोंपर

आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णे गुडपिप्पलीम् ।।२५।।
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शः सु च गुडाभयाम् ।

अर्थ–सोंठ के चूर्ण में गुड मिलाय के गोली बनाकर भक्षण करे तो आंव दूर हो। गुड और पीपल एकत्र करके गोली बनावे, इसके सेवन से अजीर्ण दूर हो। गुड और जीरे को एकत्र कूट पीस गोली बनावे, इसके सेवन से मूत्रकृच्छ्र दूर हो। एवं छोटी हरडे के चूर्ण में गुड मिलायके गोली बनावे। इसका सेवन करे तो बवासीर का रोग दूर होवे।।२५।।

वृद्धदारुकमोदक बवासीरपर

वृद्धदारुकमल्लातशुण्ठीचूर्णेम योजितः ।।२६।।
मोदकः सगुडो हन्यात् षड्विधार्शः कृतां रुजम् ।

अर्थ–१ विधायरा, २ भिलावा और ३ सोंठ इनको समान भाग लेकर चूर्ण करे, चूर्ण से दूना गुड़ मिलायके गोली बनावे। इसके खाने से छः प्रकार का बवासीर रोग नष्ट होता है।।२६।।

सूरणवटक बवासीरपर

शुष्कसूरणचूर्णस्य भागान् द्वात्रिंशदाहरेत् ।।२७।। भागान्षोडश चित्रस्य शुण्ठ्या भागचतुष्टयम् । द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ।।२८।। गुडेन पिण्डिकां कुर्यादर्शसां नाशिनीं पराम् ।

अर्थ–१ जमीकंद को सुखाकर ३२ तोले ल। चीते की छाल १६ तोले, सोंठ ४ तोले और काली मिरच २ तोले ले। सबको कूट पीस चूर्ण करे। चूर्ण के समान गुड मिलायके गोली बनावे, इस गोली को नित्य खाने से छः प्रकार की बवासीर नष्ट होवे। यह सूरणवटक कहाता है।।२७।।२८।।

वृहत्सूरणवटक बवासीरपर

सूरणो वृद्धदारुश्च भागैः षोडशभिः पृथक् ।।२९।। मुसलीचित्रकौ ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक् । शिवा बिभीतकी धात्री विडङ्गं नागरं कणा ।।३०।। भल्लातः पिप्पलीमूलं तासीसं च पृथक्पृथक् । चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेला मरिचं तथा ।।३१।। द्विभागमात्राणि पृथक् ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत् । द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान् धारयेद् बुधः ।।३२।। प्रबलाग्निकराह्येतास्त-थार्शोऽनाशनाः परम् । ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम्।।३३।। प्लीहानं श्लीपदं शोफं हिक्कां मेहं भगन्दरम्।

निहन्युः पलितं वृष्यास्तथा मेघ्या रसायनाः ।।३४।।

अर्थ–जमीकन्द १६ तोले, विधायरा १६ तोले, मसूरी ८ तोले, चीते की छाल, ८ तोले लेवे। तथा १ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ वायविडंग, ५ सोंठ ६ पीपल, ७ भिलावा, ८ पीपरामूल और ९ तालीसपत्र ये नौ औषधि चार चार तोले ले। एवं १ दालचीनी, २ इलायची और ३ कालीमिरच ये तीन औषधि दो दो तोले ले। इन सब औषधियों को कूट पीस चूर्ण करे, इसमें सब चूर्ण से दूना गुड़ मिलायके गोली बनावे। इसका सेवन करें तो अग्नि प्रदीप्त होय, बवासीर का रोग, वात कफ से उत्पन्न हुआ संग्रहणी, श्वास, खाँसी, क्षय, पेट में होनेवाला प्लीहा का रोग, श्लीपदरोग, सूजन, हिचकी, प्रमेह, मगन्दर और जिसमें सफेद बाल होंवे ऐसा पलित रोग ये सब दूर होवे। ये गोलियां स्त्रीगमन की इच्छा कराती हैं तथा बुद्धि देती हैं, एवं शरीर की वृद्धावस्था को दूर करती है।।२९–३४।।

मण्डूरवटक कामलादिकोंपर

त्रिफला त्र्यूषणं चव्यं पिप्पली मूलचित्रकौ । दारु माक्षिकधातुश्च दार्वी मुस्तं विडङ्गकम् ।।३५।। प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वाद्विगुणितं तथा ।। मण्डूरं चूर्णयेत् सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत् ।।३६।। पक्त्वा च वटकान् कृत्वा दद्यात् तक्रानुपानतः । कामलापाण्डुमेहार्शः शोथकुष्ठकफामयान् ।।३७।। ऊरुस्तंभमजीर्णं च प्लीहानं नाशयेदपि।

अर्थ–१ हरड, २ बहेडा, ३ आमला, ४ सोंठ, ५ मिरच, ६ पीपली, ७ चव्य ८ पीपरामूल, ९ चीते की छाल, १० देवदारु, ११ सुवर्णमाक्षिक की भस्म, १२ दालचीनी, १३ दारु हल्दी, १४ नागरमोथा और १५ वायविडग इन पंद्रह औषधियों को तोले तोले भर लेकर चूर्ण करे और मण्डूक को डाल के औटाकर गाढा करे, जब गोली बन्धने योग्य होय तब गोली बनाय लेवे। इस गोली को छाछ के साथ सेवन करे तो नेत्रों में जो कमलवायुरोग (पोलिया का भेद) होता है सो दूर होवे। पांडुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ, कफ के विकार जिस करके जांघों का स्तम्भन होय वहां जो अजीर्ण और प्लीहा इन सबको दूर करै।।३५–३७।।

पिप्पलीमोदक धातुज्वरादि

क्षौद्राद्द्विगुणितं सर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ।।३८।। सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम् । चतुर्जातं क्षौद्रतुल्यं पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान्।।३९।। धातुस्थांश्च ज्वरान् सर्वान् श्वासं कासं च पाण्डुताम् । धातुक्षयं वह्निमान्द्यं पिप्पलीमोदको जयेत् ।।४०।।

अर्थ–शहद से दूना घी और घी से दूनी पीपल, पीपल से दूनी मिश्री, मिश्री से चौगुना दूध ले तथा १ दालचीनी, २ तेजपात, ३ इलायची के बीज और ४ नागकेशर इन चारों का चूर्ण शहद के बराबर लेना चाहिये। फिर सबका पाक करके लड्डू बनावे। एक एक लड्डू नित्य सेवन करे तो धातुगतज्वर, श्वास, खांसी, पांडुरोग, धातुक्षय और मन्दाग्नि इन सब विकारों को नष्ट करता है।।३८–४०।।

चन्द्रप्रभा गुटिका प्रमेहादिकोंपर

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम् । हरिद्राऽतिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ।।४१।। धान्यकं त्रिफलं चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली । व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ।।४२।। एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद् बुधः। त्रिवृद्दन्तीपत्रकं च त्वगेला वंशरोचना ।।४३।। प्रत्येकं कर्षमात्रं च कुर्यादेतानि बुद्धिमान् । द्विकर्षं हतलोहं स्याच्चतुः कर्षा सिता भवेत् ।।४४।। शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षाश्च गुग्गुलोः।एभिरेकत्र सक्षुण्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा ।।४५।। चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी । प्रमेहान् विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाऽश्मरीम् ।।४६।। विबन्धानाहशूलानि मेहनं ग्रथिमर्बुदम् । अण्डवृद्धिं तथा पाण्डुं कामलां च हलीमकम् ।।४७।। अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं कासं श्वासं विचर्च्चिकाम्। कुष्ठान्यर्शांसि कंडूं च प्लीहोदरभगन्दरे ।।४८।। दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्तवजां रुजम् । पुंसां शुकगतान् दोषान् मंदाग्निमरुचिं तथा ।।४९।। वायुं पित्तं कफं हन्याद्बल्या वृष्या रसायनी । चंद्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते ।।५०।।

अर्थ- १ कचर, २ वच, ३ नागरमोथा, ४ चिरायता, ५ गिलोय, ६ देवदारु, ७ हल्दी, ८ अतीस, ९ दारुहल्दी, १० पीपरामूल, ११ चीते की छाल, १२ धनिया, १३ हरड, १४ बहेडा, १५ आमला, १६ चव्य, १७ वायविडंग, १८ गजपीपल, १९ सोंठ, २० कालीमिरच, २१ पीपल, २२ सुवर्णमाक्षिक की भस्म, २३ सज्जीखार, २४ जवाखार, २५ सैंधानमक, २६ संचरनमक और २७ विडनमक ये सत्ताईस औषधि एक-एक शाण प्रमाण लेवे। तथा १ निशोथ, २ दंती, ३ तेजपात, ४ दालचीनी, ५ इलायची के दाने और ६ वंशलोचन ये छः औषधि सोलह-सोलह मासे लेकर इन सबका चूर्ण करे। फिर लोहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले, शिलाजीत ८ तोले और गुग्गुल ८ तोले इन सब औषधियों को एक जगह कूट पीस एक जीव करके एक कर्ष अर्थात् चार शाण की गोली बनावे। इस रसायन के विषय में कर्ष शब्द चार शाण का बोधक है। इस योग को 'चन्द्रप्रभा' कहते हैं। यह सम्पूर्ण रोगों को दूर करने में विख्यात है। २० प्रकार के प्रमेह के रोग, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात, पथरी, मलबद्धता, पेट का फूलना, शूल, प्रमेहपिडिका, जिस करके अण्डकोश बढ़ जावे वह रोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमर की पीडा, श्वास, खांसी, विचर्चिका, कोढ़, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगंदर, दांत के रोग, नेत्र के रोग, स्त्रियों के रजोधर्म सम्बन्धी रोग, पुरुषों के वीर्य का विकार, मन्दाग्नि, अरुचि, वात, पित्त और कफ इनका प्रकोप ये सम्पूर्ण रोग दूर होवें। तथा यह चन्द्रप्रभावटी बल देनेवाली, स्त्रीगमन की इच्छा करनेवाली रसायन है।।४१-५०।।

काङ्कायनगुटिका गुल्मादिरोगोंपर

यवानी जीरकं धान्यं मरीचं गिरिकर्णिका। अजमोदोषकुञ्ची च

चतु: शाणा पृथक्पृथक् ।।५१।। हिंगु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम्।त्रिवृच्चाष्टमितः शाणः प्रत्येकं कल्पयेत् सुधीः ।।५२।। दन्ती शठी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा । चित्रोऽम्लवेतसः शुंठी शाणैः षोडशभिः पृथक्।।५३।। बीजपूररसेनैषां गुटिकाः कारयेद्बुधः।घृतेन पयसा मद्यैरम्लै-रुष्णोदकेन वा ।।५४।। पिबेत् काङ्कायनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम् । मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ।।५५।। मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् । उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ।।५६।। हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत् ।

अर्थ–१ अजवायन, २ जीरा, ३ धनियां, ४ कालीमिरच, ५ गणियारी (इस्फन्द), ६ अजमोद और ७ कलौंजी ये सात औषध चार २ शाण लेवे। भुनी हींग छः शाण लेवे। तथा १ जवाखार, २ सज्जीखार, ३ सेंधानमक, ४ सचरनमक, ५ बिडनोन, ६ समुद्र का नमक, ७ बांगडता नमक और ८ निसोथ ये आठ औषधि २ शाण लेवे। एवं १ दंती, २ कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ वायबिडंग, ५ अनार की छाल, ६ जंगी हरड, ७ चीते की छाल, ८ आमलवेत, ९ सोंठ ये नौ औषध कुटी हुई सोलह २ लेवे। फिर सबका चूर्ण करे, इस चूर्ण को बिजोर के रस में खरलकर गोली बना लेवे इसको (कांकायनगुटिका) कहते हैं। यह गुटिका घी, गौ का दूध, खट्टा मद्य, अथवा गरम पानी, इनमें से किसी एक के साथ अनुपान माफिक गोला दूर होने के वास्ते देव। यह गोली मद्य के साथ लेने से वायुगोला दूर होवे। गौ के दूध से सेवन करे तो पित्त का गोला नष्ट होवे। गोमूत्र के साथ सेवन करने से कफ गुल्म दूर होवे। दशमूल के काढ़े के साथ सेवन करे तो त्रिदोष अर्थात् सन्निपात का गोला दूर होवे। ऊँटनी के दूध के साथ खाने से स्त्रियों का रक्तगुल्म दूर होवे। तथा यथायोग्य अनुपान के साथ सेवन करने से यह हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमिरोग और बवासीर इन सब रोगों को नष्ट करे।।५१–५६।।

योगराजगुग्गुलु वातादिरोगोंपर

नागरं पिप्पली चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।।५७।। भृष्टं हिंग्वजमोदं च सर्षपो जीरकद्वयम् । रेणुकेन्द्रयवा पाठा विडङ्गं गजपिप्पली ।।५८।। कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वा त्रिभागतः ।। प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः ।।५९।। द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् । एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः ।।६०।। वङ्गं रौप्यं च नागं च लोहसारं तथाऽभ्रकम् । मण्डूरं रससिन्दूरं प्रत्येकं पलसंमितम् ।।६१।। गुडपाकसमं कृत्वा इमं दद्याद्यथोचितम् । एकपिण्डं ततः कृत्वा धारयेद् घृतभाजने ।।६२।। गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः । गुग्गुलुर्योगराजोऽयं

त्रिदोषघ्नो रसायनः ॥६३॥ मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते । सर्वान् वातामयान् कुष्ठानृशांसि ग्रहणीगदम् ॥६४॥ प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगन्दरम् । उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥६५॥ मन्दाग्निं श्वासकासञ्च नाशयेद-रुचिं तथा । रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥६६॥ पुंसामपत्यजनको वन्ध्यानां गर्भदस्तथा । रास्नादिक्वाथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम् ॥६७॥ काकोल्यादिशृतात् पित्तं कफमारग्वधादिना । दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेणैव पाण्डुताम् ॥६८॥ मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठं निम्बशृतेन वा । छिन्नाक्वाथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाशृतात् ॥६९॥ पाटलाक्वाथसहितो विषं मूषकजं जयेत् । त्रिफलाक्वाथसहितो नेत्रार्तिं हन्ति दारुणाम् ॥७०॥ पुनर्नवादेः क्वाथेन हन्यात् सर्वोदराण्यपि ।

अर्थ—१ सोंठ, २ पीपल, ३ चव्य, ४ पीपलामूल, ५ चीते की छाल, ६ भुनी हुई हींग, ७ अजमोद, ८ सरसों, ९ जीरा, १० काला जीरा, ११ रेणुका, १२ इंद्रजौ, १३ पाढ, १४ वायविडंग, १५ गजपीपल, १६ कुटकी, १७ अतीस, १८ भारंगी, १९ वच और २० मूर्वा ये बीस औषधि एक एक शाण लेवे। इन औषधियों से दुगुना त्रिफला लेव, फिर इन सब औषधियों को कूटकर चूर्ण करके इस चूर्ण के समान भाग शुद्ध गूगल लेकर खरल में डाल के खूब बारकी पीसके गुड़ के पाक समान पतला करके उसमें पूर्वोक्त चूर्ण को मिला देवे। पश्चात् वंग, रूपरस, नागेश्वर, लोहसार, अभ्रक, मण्डूर और रससिंदूर इन सातों की भस्म चार चार तोले लेकर उस गूगल में मिला देवे। सबका एक गोला बनावे। फिर इनमें से चार गोलियां बनावे। इनको घी के चिकने बासन में भर के घर रखे, इसको योगराजगूगल कहते हैं। यह गूगल सेवन करने से त्रिदोष को दूर करे, तथा रसायन है। इसके ऊपर मैथुन करना, खाना, पीना, इनका निषेध नहीं है। बिना पथ्य के भी गुण करता है, इससे सम्पूर्ण वादी के रोग, कोढ, बवासीर, संग्रहणी, प्रमेह, वातरक्त, नाभिका शूल, भगंदर, उदावर्त्त, क्षयरोग, गोले का रोग, मृगीरोग, उरोग्रह, मंदाग्नि, खांसी, श्वास और अरुचि, ये सब रोग नष्ट होते हैं। यह रोगराजगूगल पुरुषों के धातुविकार को दूर करता है और स्त्रियों के रजोदर्शनसम्बन्धी रोगों को दूर करता है। पुरुषों के धातु की वृद्धि करके पुत्र देता है, बांझ स्त्रियों को गर्भ देता है। रास्नादि काढे के साथ सेवन करने से अनेक प्रकार के वायु दूर होयँ। काकोल्यादि काढे से सेवन करे तो पित्तरोग दूर होवें । और आरग्वधादि काढे के साथ सेवन करे तो कफविकार दूर हो। दारुहल्दी के काढे से सेवन करे तो प्रमेह को दूर करे। गोमूत्र से सेवन करे तो पांडुरोग को नष्ट करे। जो प्राणी मेद के बढ़ने से अधिक मोटा हो गया हो वह शहद के साथ इसे सेवन करे कुष्ठरोग में नीम की छाल के काढे से सेवन करे। वातरक्तरोग में गिलोय के काढे से खाय। शूल और सूजन इनमें पीपल के काढे से सेवन करे। मूसे के विष पर पाडल के काढे से सेवन करे नेत्ररोग में त्रिफला के काढे से साधन करे। और पुनर्नवादि काढे के साथ सम्पूर्ण उदर के रोगों पर सेवन करना चाहिये । (इस प्रकार योगराज गूगल के अनुपान हैं बाकी अपनी बुद्धि से वैद्य कल्पना करे)॥५७–७०॥

केशोरगुग्गुलु वातरक्तादिकोंपर

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत् ।।७१।। संकुटच्य लोहपात्रेण सार्धद्रोणाम्बुना पचेत् । जलमर्धश्रृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम् ।।७२।। क्वाथे क्षिपेत्तु शुद्धं च गुग्गुलुं प्रस्थसंमितम् । पुनः पचेदयस्पात्रे दर्व्या संघट्टयेन मुहुः ।।७३।। सान्द्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम् । चूर्णीकृत्य यतस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत् ।।७४।। त्रिफलाऽर्द्धपलाज्ञेया गुडूची पलिका मता । षडस्त्रं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गनां पलार्धकम् ।।७५।। दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता । ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिःक्षिपेत् ।।७६।। गुटिका शाणिका कार्या युञ्ज्याद् दोषाद्यपेक्षया । अनुपानैर्भिषग्दद्यात् कोष्णं नीरं पयोऽथवा ।।७७।। मञ्जिष्ठादि श्रृतं वाऽपि युक्तियुक्तमतः परम् । जयेत् सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम् ।।७८।। सर्वव्रणानि गुल्मानि प्रमेहपिडिकास्तथा । प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ।।७९।। हन्तिसर्वामयान् नित्यमुपयुक्तो रसायनम् । कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कान्ति कारकः ।।८०।। वासादिना नेत्रगदान् गुल्मादीन् वरुणादिना । क्वाथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत् ।।८१।। अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम् । मद्यं रोषं त्यजेत् सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः ।।८२।।

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला और ४ गिलोय ये चारों औषधि एक एक प्रस्थ लेवे, इनको कुछ कूटकर लोहे की कढ़ाई में डेढ़ द्रोण पानी डालके उसमें इन औषधियों को डालके आधा पानी रहने पर्यत औटावे. फिर इसको दूसरे पात्र में कपड़े में छान के इसमें शुद्ध किया हुआ गूगल १ प्रस्थ प्रमाण लेकर बारीक कूट के मिलाय देवे, फिर इस गुग्गुलयुक्त काढ़े को अग्नि पर लोहे की कढ़ाई में चढ़ाय के लोहे की कलछी से बारंबार चलता जावे; इस प्रकार गुड़ के पाक समान होने पर्यंत गाढ़ा करे। फिर इसमें आगे लिखी हुई औषधियों का चूर्ण करके डाले, उन औषधियों का कहते हैं। १ हरड, २ बहेड़ा, ३ आमला, ४ गिलोय, ये चार औषधि आधा आधा पल ले और १ सोंठ, २ कालीमिरच और ३ पीपल ये तीन औषधि दो दो अक्ष लेवे, बायविडंग आधा पल लेय। दन्ती एक कर्ष, निसोथ एक कर्ष इन सबका चूर्णकर उस गूगल के पाक में मिलाय के कूट डाले, जब एक जीव हो जावे तब एक एक शाण की गोली बनाय लेवे। इनको घी के चिकने बासन में रख देवे। इसको कैशोरगूगल कहते हैं। इस गूगल को गरम जल के साथ अथवा दूध के साथ अथवा मंजिष्ठादि काढ़े से सेवन करे। यह गोली रोगी की शक्ति का तथा रोग का तारतम्य देख के अनुपान के साथ देवे तो सम्पूर्ण कुष्ठ तथा त्रिदोष से उत्पन्न हुए वातरक्त एवं सम्पूर्ण व्रण, गोला, प्रमेह, उदर, मन्दाग्नि, श्वास और पांडुरोग ये दूर होवें। यह कैशोरगुगल कांति को देता है।

वासकादि, काढ़े के साथ सेवन करने से नेत्र के रोग दूर होते हैं। तथा वरुणादि काढ़े के साथ सेवन करने से गुल्मादिक रोग दूर हो। खदिरादि काढ़े के साथ सेवन करने से व्रण और कुष्ठरोग दूर होवें। अब गूगल सेवनकर्ता प्राणी को इसका पथ्य कहते हैं, जैसे—खटाई, तीक्ष्ण, अजीर्ण, स्त्री से मैथुन करना, परिश्रम करना, धूप में रहना, मद्य पीना तथा क्रोध करना, ये सब वस्तु गूगल सेवनकर्त्ता (जिस प्राणी को गुण की इच्छा हो) उसको त्याज्य हैं। जो अपथ्य को त्याग पथ्य के साथ गूगल सेवन करता है उसको ही गुण होता है अन्यथा गुण के बदले अवगुण होता है। इति कैशोरगुग्गुलः ।।७१-८२।।

त्रिफला गुग्गुलु भगन्दररोगादिकोंपर

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम् । गुग्गुलं पञ्च पलिकं क्षोदयेत् सर्वमेकतः ।।८३।। ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुञ्ज्याद् बह्वपेक्षया । भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत् ।।८४।।

अर्थ—१ हरड़े, २ बहेड़ा, ३ आंवला और ४ पीपल, ये चार औषधि एक एक पल लेकर चूर्ण करे, फिर शुद्ध किया हुआ गूगल ५ पल ले। इन सबको बारीक कूट पीस के गोली बनावे। रोगी को जठराग्नि का बलाबल विचार के इसे देवे तो भगन्दररोग, गोलों का रोग, सूजन और बवासीर इन सब रोगों को नष्ट करे।।८३।।८४।।

गोक्षुरादिगुग्गुलु प्रमेहादि रोगोंपर

अष्टाविंशतिसंख्यानि पलान्यनीय गोक्षुरात् । विपचेत् षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशेषितः ।।८५।। ततःपुनः पचेत्तत्र पुरं सप्तपलं क्षिपेत् । गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत् ।।८६।। त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पलसप्तकम् । ततः पिण्डीकृतस्यास्य गुटिकामुपयोजयेत् ।।८७।। हन्यात् प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम् । वातास्रं वातरोगाश्च शुक्रदोषं तथाऽश्मरीम् ।।८८।।

अर्थ—अट्ठाईस पल (११२ तोले) गोखरू लेकर जौकुट करके छः गुने पानी में चढ़ाय के जब तक आधा न जले तब तक औटावे। जब आधा जल रहे तब शुद्ध किया गूगल ७ पल प्रमाण लेकर उत्तम रीति से कूट पीस के उस काढ़े में मिलाय देवे। फिर उस काढ़े का गुड़ के समान पाक करे। जब गाढ़ा हो जावे तब आगे लिखी हुई औषधियों को मिलावे—१ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ हरड, ५ बहेड़ा, ६ आंवला और ७ नागरमोथा। ये सात औषधि एक एक पल लेवे। सबका चूर्ण करके उस पाक की चासनी में मिलाय के एक गोला बनाय ले। फिर इसकी गोली बनाय ले। इसके सेवन करने से प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियों का प्रदररोग, मूत्राघात, वातरक्त, वादी के रोग, धातु के विकार, अर्थात् वीर्यसंबधी रोग और पथरी, इन सब रोगों को दूर करे।।८५-८।।

एलासकर्पूरसितासधात्रीजातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक् । सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च।।८९।। गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कार्धमात्रा मधुना ततश्च ।

बद्धा गुटी चन्द्रकला तु नाम्ना मेहेषु सर्वेषु च योजनीया ।।९०।।

अर्थ–१ इलायची के दाने, २ कपूर (शुद्ध), ३ मिनी, ४ आवले, ५ जायफल, ६ गोखरू, ७ कांटेदार सेमर की छाल, ८ रससिंदूर, ९ वंगभस्म और १० लोहभस्म ये दश औषध समान भाग लेकर इनको गिलोय और सेमर के काढे की भावना देकर दो दो मास की गोली बनावे, इनको शहद में मिलाय के खावे, तो सर्व प्रकार के प्रमेह नष्ट होवें।।८९।।९०।।

त्रिफलादिमोदक कुष्ठादिकोंपर

त्रिफलाष्टपला कार्या भल्लातानां चतुःपलम् । बाकुचीं पञ्चपलिकां विडङ्गानां चतुः पलम् ।।९१।। हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु । एकैकं पलमात्रं स्यात् पलार्धं पौष्करं भवेत् ।।९२।। चित्रकस्य पलार्धं स्यात्त्रिशाणं मरिचं भवेत् । नागरं पिप्पलीमुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम् ।।९३।। शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः । ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे ।।९४।। मोदकान् पलिकान् कृत्वा प्रयुञ्जीत यथोचितम्। हन्युःसर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान् ।।९५।। भगन्दरप्लीहगुल्मान् जिह्वातालुगलामयान्।शिरोऽक्षिभ्रूगतान् रोगान् मन्यापृष्ठगतानपि ।।९६।। प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधः कायस्थिति गदे । भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते ।।९७।। भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च ।

अर्थ–१ हरड, २ बहेड़ा, और ३ आमला ये तीन औषधि आठ पल लेय। भिलावा चार पल, बावची पांच पल, वायविडंग चार पल और १ लोहभस्म, २ निशोथ, ३ गूगल, ४ शिलाजीत ये चार औषधि एक एक पल लेनी चाहिये। गांठदार पुहकरमूल आधा पल, चीते की छाल आधा पल, कालीमिरच दो शाण, एवं १ सोंठ २ पीपल, ३ नागरमोथा, ४ दालचीनी, ५ इलायची ६ तेजपात और ७ नागकेशर ये सात औषधि एक एक शाण लेवे। सबको कूटपीस चूर्ण करे, इस चूर्ण के बराबर मिश्री लेके पाक करे उसमें इस चूर्ण को डाल के सबको एक जीव करके एक एक पल के मोदक बनावे। इस मोदक के सेवन करने से सर्व प्रकार के कुष्ठ रोग, त्रिदोष से उत्पन्न भगंदर रोग, नेत्रों के रोग, प्लीह रोग, गोले का रोग, जीभ, तालु, गला, शिर, नेत्र, भौंह इनके रोग, गरदन, पीठ इनके रोग, इत्यादि सर्व दूर होवें। कमर से लेकर नीचे पैरों तक रोग होवे तो प्रातःकाल औषधि सेवन करे। यदि पेट के रोग होवे तो भोजन समय ग्रास (गस्सा) के साथ सेवन करे, छाती से लेकर माथे पर्यंत के रोगों में भोजन करने के पश्चात् उस त्रिफलादि मोदक का सेवन करना चाहिये।।९१–९७।।

काञ्चनारगुग्गुलु गण्डमालादिकोंपर

कांचनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधः ।।९८।। त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात् पलत्रयम् । पलकै वरुणं कुर्यादेलात्वक्पत्रकं तथा ।।९९।। एकैकं कर्षमात्रं स्यात्

सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् । यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ॥१००॥ संकुटच्य सर्वमेकत्र पिण्डं कृत्वा च धारयेत् । गुटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचिताः॥१०१॥ गण्डमालां जयत्युग्राम-पचीमर्बुदानि च । ग्रन्थीन् गुल्मांश्च व्रणांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम्॥१०२॥ प्रदेयश्चानुपानार्थं क्वाथो मुंडानि-काभवः । क्वाथः खदिरसारस्य पथ्याक्वाथोष्णकं जलम् ॥१०३॥

अर्थ–कचनार वृक्ष की छाल १० पल लेवे तथा १ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला ये तीन औषधि दो दो पल अर्थात् सब छः पल ले और १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल ये तीनों औषधि एक एक पल लेनी। तथा बरना एक पल, १ इलायची, २ दालचीनी, ३ तेजपात ये तीन औषधि एक एक कर्ष लेनी चाहिये फिर सब औषधियों को कूटपीस चूर्ण करे इस चूर्ण के समान भाग शुद्ध किये हुए गूगल को कूट पीस के उस चूर्ण में मिलाय देवे। फिर कूट के एक गोला करके एक २ शाण की गोलियां बनावे। प्रातःकाल मुंडी अथवा खैरसार अथवा हरडे के काढे से या गरम जल के साथ एक २ गोली सेवन करे तो घोर दुर्धर गण्डमाला का रोग तथा गण्डमाला का भेद, अपचीरोग, अर्बुद, गाठ, व्रण, गोला, कोढ, भगन्दर ये सब रोग दूर होवें॥९८–१०३॥

माषादिमोदक धातुपुष्टिपर

निस्तुषं माषचूर्णं स्यात्तथा गोधूमसंभवम् । निस्तुषं यवचूर्णं च शालितण्डुलजं तथा ॥१०४॥ सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत् । एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद्गोघृतेन च ॥१०५॥ अर्धमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खण्डं समं क्षिपेत् । जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेच्च शनैः शनैः ॥१०६॥ ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान् कुर्वीत मोदकान् । भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत् क्षीरं चतुर्गुणम् ॥१०७॥ वर्जनीयौ क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि । कृत्वैवं रमयेन्नारीर्बह्वीर्न क्षीयते नरः ॥१०८॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने वटक कल्पना नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अर्थ–उड़द की दाल का चून, गेहूं का चून, तुषरहित जौ का चून, चावलों का चून और पीपल का चूर्ण ये सब औषधि एक २ पल लेवे। सबको एकत्र करके इन सबका आधा शुद्ध गौ का घी कड़ाही में डाल के उन सबको मन्द मन्द अग्नि से भूने। फिर सबकी बराबर खांड की चासनी चूना जल डाल के करै। उसमें पूर्वोक्त भुने हुए चून को मिलाय के एक एक पल अर्थात् चार चार या पांच पांच तोले के लड्डू बना लेवे, इसको रात्रि के समय खाकर ऊपर से पाव भर दूध पीवे, तथा खटाई और खारी पदार्थ न खाय इस प्रकार करने से मनुष्य बहुत स्त्रियों से भोग करने पर भी क्षीणबल नहीं होता है॥१०४–१०८॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकां हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्ड सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः ८

अवलेहों की योजना

क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया । सोऽवलेहश्च लेहःस्यात्तन्मात्रा स्यात् पलोन्मिता ।।१।। सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः । द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ।।२।। सुपक्वे तन्तुमत्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति । खरत्वं पीडिते मुद्रागन्धवर्णरसोद्भवः ।।३।। दुग्धगिक्षुरसो यूषः पञ्चमूलकषायजः । वासाक्वाथो यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ।।४।।

अर्थ–औषधियों के कषाय और फाण्ट आदिकों को पुनः औटाय के गाढ़ा करने से जो रसकर्म होता है उसको अवलेह और लेह कहते हैं। इस अवलेह की मात्रा १ पल अर्थात् ४ तोले भर की हैं। उसमें खाड डालनी हो तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुनी डालनी और गुड़ डालना हो तो जितना चूर्ण हो उससे दुगुना डालना। दूध, मूत्र, पानी आदिक पतले पदार्थ डालने हों तो जितना चूर्ण हो उससे चौगुने डालने। ऐसा सर्व अवलेह-प्रकरण में निश्चय है सो जानना। यह अवलेह अच्छा पका या नहीं? इसकी परीक्षा कहते हैं–अवलेह का अच्छी रीति से पाक हो जाने से तांत छूटते हैं और पानी में वह अवलेह डालने से डूब जाता है और अँगुलियों से दबाने से करडा और चिकना होता है तथा उसमें दूसरे ही किसी एक प्रकार के अपूर्व गन्ध, वर्ण और स्वाद उत्पन्न होते हैं इन लक्षणों से अवलेह परिपक्व हुआ ऐसा जानना। दूध, ईख का रस, पञ्चमूल के काढे का यूष और अडूसे का काढा, ये इस अवलेह के अनुपान हैं इनमें से रोग की योग्यता विचार के जो अनुपान देने का होवे, सो देना चाहिये।।१–४।।

कण्टकारी अवलेह हिचकी श्वासकासों के ऊपर

कण्टकारीं तुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् । पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ।।५।। पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः । मुस्तं कर्कटशृङ्गी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ।।६।। भार्ङ्गी रास्ना शठी चैव शर्करा पलविंशतिः । प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्यात् घृततैलयोः ।।७।। पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम् । चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम् ।।८।। क्षिप्त्वा निदध्यात् सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे । लेहोऽयं हंति हिक्कार्तिं श्वासकासानशेषतः ।।९।।

अर्थ–भटकटैया ४०० तोले लेके थोड़ी २ कूटकर उसमें एक द्रोण (१०२४ तोले) पानी डाल के चौथाई पानी शेष रहे तब तक कषाय करके फिर उस काढे को छानना। और उसमें इन औषधियों का चूर्ण मिलाना, गिलोय, चव्य, चीता, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिरच, पीपल अवासा, भार्ङ्गी, रास्ना, कचूर, ये बारह औषधि चार चार तोले लेके इनका चूर्ण कर उस

काढे में डाले। खांड ८० तोले घृत और तेल ३२ तोले डालना। ये सब औषधि डाल के औटाय के अवलेह करके ठण्डा करना, फिर उसमें बत्तीस तोले शहद और सोलह तोले वंशलोचन तथा पीपला चूर्ण उस अवलेह में मिलाय के दृढ मिट्टी के पात्र में धरके अच्छी रीति से रखना, यह अवलेह नित्य सेवन करने से हिचकी की पीड़ा, श्वास और कास इन सब रोगों को नष्ट कर देता है।।५–९।।

क्षयादिकोंपर च्यवन प्राशावलेह

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः । पर्ण्यौ बृहत्यौ पिप्पल्यः शृंगी द्राक्षाऽमृताऽभयाः ।।१०।। बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवन्तिका शठी ।। जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका ।।११।। मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा । काकोल्यौ कमलं मेदं सूक्ष्मैला गरुचन्दनम् ।।१२।। एकैकं पलसंमानं स्थूलचूर्णितमौषधम् । एकीकृत्य बृहत्पात्रे पञ्चामलशतानि च ।।१३।। पचेद्द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशेषितम् । ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य ।।१४।। दृढहस्तेन संमर्द्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम् । पलसप्तमितं तानि किंचिद्दृष्ट्वाऽल्पवह्निना ।।१५।। ततस्तत्र क्षिपेत् क्वाथं खण्डं चार्धतुलोन्मितम् । लेहबत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत् ।।१६।। पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुष्पला । प्रत्येकं च त्रिशाणः स्युस्त्वगेलापत्रकेसराः ।।१७।। ततस्त्वेकीकृते तस्मिन् क्षिपेत् क्षौद्रं च पटपलम्।इत्येवं च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञकम् ।।१८।। लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा खादेत् क्षीणो रसायनम् । बालवृद्धक्षतक्षीणा नारीक्षीणांश्च शोषिणः ।।१९।। हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते । कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसोग्रहम् ।।२०।। वातं पित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत् । मेधां स्मृतिं स्त्रीषु हर्षं कान्तिं वर्णं प्रसन्नताम् ।।२१।। अस्य प्रयोगादाप्नोति नरोऽजीर्णविवर्जितः ।

अर्थ–सिरस, अरनी, काश्मर्य, वेलवृक्ष की जड़, स्योनापाठा, गोखरू, शालिपर्णी, पृष्ठिपर्णी, दोनों कटेली, तीनों पीपल, काकड़ासिंगी, दाख, गिलोय, हरड, खरेंटी, भूमिआंवला, अड़ूसा, ऋद्धि, जीवंतिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौआटोडी, मूंगपर्णी, माषपर्णी, विदारीकंद, साठी, काकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन ये सब औषधि चार चार तोले लेकर थोड़ा थोड़ा कूट इकट्ठी करे। फिर बड़े बड़े आंवले ५०० लेकर बड़े मटके में डाल तिसमें १०२४ तोले पानी डालके पकावे। जब उसका आठवां हिस्सा शेष रहे तब उन औषधियों से ५०० पांच सौ आंवलों को निकाल लेवे। पीछे उन आंवलों को छीलकर कलई किये हुए पात्र के ऊपर वस्त्र को दृढ़ बांधकर उसके ऊपर धरके करडे हाथ से अत्यंत मर्दन

करे। फिर पीछे नीचे उतरे हुए आंवलों के मगज में २८ तोले घृत डाल के मन्द अग्नि के ऊपर थोड़ा सा भूनकर पीछे तिस में पूर्व किया हुआ क्वाथ और अर्धतुला खांड डालना जब तक वह कठिन होवे तब तक उसे पकाना। ऐसे इसको लेह की रीति से सिद्ध करे। पीछे ये औषधि डाल पीपल ८ तोले भर वंशलोचन १६ तोले और दालचीनी, इलायची और तेजपात, ये औषधि ३ शाण परिमाण ले। तब अवलेह को इकट्ठा करके उसमें २४ तोले सहत मिलावे। यह च्यवनऋषि का कहा हुआ च्यवनप्राशसंज्ञक अवलेह है। क्षीण हुए पुरुष को रसायनरूप है, इसको अग्नि का बलाबल देख के खाना चाहिये। यह च्यवनप्राशावलेह, बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुसक, शोषरोगी, हृद्रोगी, स्वरक्षीण इन पुरुषों को उपयुक्त है। और यह कास, श्वास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वात, पित्त, वीर्य के दोष, मूत्र के दोष, इतने रोगों का नाश करता है। इस अवलेह के प्रयोग से पुरुष बुद्धि, स्मरणशक्ति स्त्री के साथ संग करने की इच्छा, शरीर की कांति और वर्ण, अंतःकरण के संतोष को प्राप्त होता है और अजीर्ण करके रहित होता है।।१९-२१।।

कूष्माण्डकावलेह रक्तपित्तादिकोंपर

निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डात् पलशतं पचेत् ।।२।। निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते । तानि कूष्माण्डखंडानि पीडयेद् दृढवाससा ।।२३।। आतपे शोषयेत् किञ्चिच्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत । क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं घृतम् ।।२४।। तेन किंचिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं च चलं क्षिपेत् । खण्डं पलशतं दत्त्वा सर्वमेकत्र पाचयेत् ।।२५।। सुपक्वे पिप्पली शुंठी जीराणां द्विपलं पृथक् । पृथक्पलार्धं धान्याकं पैला मरिचं त्वचम् ।।२६।। चूर्णीकृत्य क्षिपेत् तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावपेत् । खादेदग्निबलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयज्वरी ।।२७।। शोषतृष्णा-तमच्छार्दिकासश्वासक्षतातुरः । कूष्मांडकावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते ।।२८।। उरःसन्धानकृद् वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः ।

अर्थ–उत्तम पके हुए पेठे के ऊपर की छिलका कतर के तथा भीतर के बीजों को निकाल के छोटे छोटे टुकड़े कर १०० पल लेवे। उनमें दो तोला जल डाल के औटावे, जब आधा अर्थात् एक तुला जल रहे तब उतार ले। उस जल को छान के एक जगह रख देवे। फिर उन पेठे के टुकडों को कपड़े में बांधके निचोड़ लेवे। पश्चात् उनको कुछ गरम बाफ देकर सूए के अत्यंत छेदे। तांबे के पात्र में ९ पल घी डाल उन टुकड़ों को धीमी आंचपर भूने। पश्चात् पूर्वोक्त पेठे के निचुड़े हुए पानी में उस भुने पेठे को डाले तथा १०० पल मिश्री मिलायके पाक करे। जब पाक सिद्ध होने पर आवे तब आगे लिखी औषधें डाले। जैसे–१ पीपल, २ सोंठ और ३ जीरा, ये तीन औषधि दो दो पल तथा १ धनियां, २ पत्रज, ३ इलायची के दाने, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी, ये पांच औषधि आधा आधा पल लेवे, फिर सबका चूर्ण करके पाक में मिलाय देवे और सहत ४ पल मिलावे। उसको कूष्मांडावलेह कहते हैं, यह अवलेह रोगी को अपना बलाबल विचार के सेवन करना चाहिये, इससे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृषा, नेत्रों के आगे अंधेरी का आना, वमन, खांसी, श्वास और उरःक्षत ये रोग दूर होवें। यह अवलेह बालक और बुड्ढों के उपयोगी हैं। छाती में जो अन्न का रस

आता है उसका साधक होता है, स्त्रीप्रसंग की इच्छा प्रगट करे, धातुवृद्धि करे तथा बल बढ़ावे॥२२-२८॥

कूष्माण्डखंडलेह बवासीपर

युक्त्या कूष्माण्डखंडं च सूरणं विपचेत् सुधीः ॥२९॥
अर्शसां मूढवाताना मन्दाग्नीनां च युज्यते ।

अर्थ–१ पेठे के बारीक बारीक टुकड़े तथा सूरण (जमीकंद) का सीरा, इन दोनों को मिलाय के घी में भूनकर दुगुनी मिश्री मिलाय के पाक करे, अर्थात् अवलेह बनावे। इसमें बवासीर, मूढ़वादी (अधोवायु का नीचे न उतरना) ये दूर हों तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो॥२९॥

अगस्त्यहरीतकी क्षयादिकोंपर

हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा ॥३०॥ पलानि दशमूलस्य विंशतिं च नियोजयेत् । चिपकः पिप्पलीमूलमपा-मार्गः शठी तथा ॥१॥ कपिकच्छूः शंखपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली । बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥३२॥ पचेत् पञ्चाढक नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत् । तच्चाभयाशतं दद्यात् क्वाथे तस्मिन् विचक्षणः ॥३३॥ सर्पिस्तैलाष्टपलकः क्षिपेद् गुणतुलां तथा । पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धे शीते पृथक्पृथक् ॥३४॥ क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात् कुडवमात्रया । हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥३५॥ क्षयं कासं ज्वरं हिक्कार्शोऽरुचिपीनसान्।ग्रहणी नाशयत्येष वलीपलितनाशनः ॥३६॥ बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् । विदितोऽगस्त्य-मुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥३७॥

अर्थ–१ आढ़क जौ ले, उनको जो कुट करके चौगुना जल मिलायके औटावे, जब चौथाई जल रहे तब उतार छान के धर रखे और उन औटे हुए जबों को फेंक देवे फिर दशमूल की औषधि बीस पल लेवे और १ चित्रक, २ पीपरामूल, ३ ओंगा, ४ कचूर, ५ कौंच के बीज, ६ शंखपुष्पी, ७ भारङ्गी, ८ गजपीपल, ९ खरेंटी की जड़ और १० गांठदार पुहकर मूल ये दश औषधि दो दो पल ले। इस प्रकार बीस औषधियों को एकत्र करके जौकुट कर लेवे। इनमें ५ आढ़क जल मिलाय के औटावे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको पूर्वोक्त जौ के काढ़े में मिलाय दे, पीछे इसमें बड़ी बड़ी हरड़ १०० नग डाले। घी और तिलों का तेल, आठ आठ पल लेवे, गुड़ एक तोला भर ले, सबको काढ़े में मिलाय के पाक करे, जब गाढ़ा हो जाय तब उतार ले। फिर शीतल होने पर पीपल का चूर्ण और शहद, ये दोनों कुडव अर्थात् पाव पाव भर लेकर उस पाक में मिला देवे। इस अगसत्यऋषि के कहे हुए अवलेह को अगस्त्यहरीतकी कहते हैं। इसमें से जो हरड अवलेह के साथ खाय तो क्षय, खांसी, ज्वर, श्वास, हिचकी, मूलव्याधि (बवासीर, अरुचि, पीनसरोग (जो नरक में होता है वह) तथा देह में गुजलट पड़े, वे दूर हों, सफेद बाल काले होंय, बल और कांति आवे। यह अवलेह रसायन है, इससे सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं॥३०-३७॥

कुटजावलेह अर्शादिपर

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः । कषायं पादशेषं च गृह्णीयाद् वस्त्रगालितम् ।।३८।। त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र दत्त्वा च विपचेत् पुनः । सान्द्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत् ।।३९।। रसाञ्जनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा। लज्जालु चिबुकं पाठां बिल्वमिन्द्रयवं वचम् ।।४०।। भल्लातकं प्रतिविषां विडङ्गानि च वालकम् । प्रत्येकं पलसंभानं घृतस्य कुडवं तथा ।।४१।। सिद्धशीते ततो दद्यान् मधुनः कुडवं तथा । जयेदेषोऽवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः ।।४२।। दुर्नामप्रभवान् रोगानतीसारमरोचकम् । ग्रहणीं पाण्डुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम् ।।४३।। अम्लपित्तं तथा शोषं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम् । अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयो दधि ।।४४।। घृतं जलं वा जीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः ।

अर्थ–कुडाकी छाल एक तुला ४०० तोले लेवे, उसको जौकुट कर १ द्रोण जल में डाल के काढ़ा करे। जब जल चतुर्थांश शेष रहे तब उतार के कपड़े से छान लेवे, इसमें गुड़ ३० पल डाल के फिर औटावे। जब गाढ़ा होने पर आवे तब आगे लिखी औषधि मिलावे। १ रसोंत, २ मोचरस, ३ सोंठ, ४ मिरच, ५ पीपल, ६ हरड, ७ बहेड़ा, ८ आंवला, ९ लजालु, १० चीते की छाल, ११ पाढ, १२ कच्चा बेलखूल, १३ इन्द्रजौ, १४ वच, १५ भिलावा, १६ अतीस, १७ वायविडंग और १८ नेत्रवाला ये अठारह औषधि एक एक पल लेवे, सबका चूर्ण करके पाक में मिलावे, घी एक कुडव डाले। जब पाक शीतल हो जावे तब शहद कुडव मिलावे, पश्चात् इस अवलेह को बकरी के दूध, छाछ, दही अथवा घी मिलाय के लेवे तथा औषधि पचने पर उत्तम भोजन करे तो सम्पूर्ण बवासीर के तथा बवासीर के कारण से होनेवाले दूसरे भगन्दरादि रोग अतिसार, अरुचि, संग्रहाणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, नेत्रों में होनेवाला कामलरोग, अम्लपित्त, सूजन, कृशता, प्रवाहिका और अतिसारभेद ये सब रोग दूर होवें।।३८-४४।।

दूसरा कुटजावलेह अतिसारादि रोगोंपर

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत् ।।४५।। पादशेषं भृतं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत् । लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा ।।४६।। मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात् पलं पलम् । ततस्तु विपचेद् भूयो यावद्दर्वीप्रलेपनम् ।।४७।। जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत् । सर्वातिसारान् घोरांस्तु नानावर्णान् सवेदनान् असृग्दरं समस्तं च सर्वांर्शांसि प्रवाहिकाम् ।।४८।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने अवलेहकल्पना नामाष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अर्थ—कुड़े की गीली छाल १ तुला प्रमाण लेवे, उसको जौकुट करके एक द्रोण जल मिलाकर काढ़ा करे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार के उसके जल को कपड़े में छान लेवे। फिर १ लजालु, २ धाय के फूल, ३ कोमल, बलगिरी, ४ पाठ, ५ मोचरस, ६ नागरमोथा और ७ अतीम ये सात औषधि एक एक प्रमाण लेकर सबका चूर्ण करके उस काढ़े में मिलाकर उस काढ़े को लोहे की कढ़ाह में चढ़ाकर पाक करके अवलेह कलछुली में लिपटने लगे, इतना गाढ़ा करे। फिर इस आवलें को जल अथवा बकरी के दूध से किंवा माँड के साथ सेवन करे तो वेदनायुक्त तथा नीलपीतादिक अनेक प्रकार के रंग का घोर अतिसार रोग संपूर्ण दूर होवें। स्त्रियों के सर्व प्रकार के असृग्दरादि रोग, संपूर्ण मूल्यव्याधि (बवासीर) और प्रवाहिका रोग जो अतिसार का भेद है वे सब दूर होवें।।४५-४८।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे अष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अथ नवमोध्यायः

घृततैलआदिस्नेहों का साधनप्रकार

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा । चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ।।१।। निक्षिप्य क्वाथयेत् तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम् । पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैवं साधयेत् ।।२।। चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम् । तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ।।३।। अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम् । कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम् ।।४।। तदूर्ध्वं कुडवं यावत्क्षिपेदष्टगुणं पयः । प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम् ।।५।। अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम् । कल्कस्यांशं तव दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ।।६।। दुग्ध दध्नि रसे तक्र कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ।।७।। द्रवाणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि । तत्र स्नेहसमान्याहर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ।।८।। द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि । तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ।।९।। क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित् । क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ।।१०।। कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवलद्रवे । पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुगुर्णम् ।।११।। स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते । वर्तिवत्स्नेह कल्कः स्याद्यदांगुल्या विमर्दितः ।।१२।। शब्दहीनोऽग्निनिक्षिप्तः स्नेहः

सिद्धौ भवेत्तदा । यदा फेनोद्भवस्तैले फेनशांतिश्च सर्पिषि ॥१३॥ गन्धवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् । स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥१४॥ ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् । मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरसकोमलः ॥१५॥ ईषत्कठिनकल्कश्चस्नेहपाको भवेत्खरः । तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥१६॥ आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमान्द्यकरो गुरुः । नस्यार्थं स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥१७॥ अभ्यङ्गार्थं खरः प्रोक्तो युंज्यादेवं यथोचितम् । घृततैलगुडार्दाश्च साधयेन्नेकवासरे ॥१८॥ प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम् ।

अर्थ–कल्क की औषधियों से चौगुना घृत अथवा तेल लेवे तथा उस घृत तेल का चौगुना दूध गौ आदि का मूत्र इत्यादिक द्रव पदार्थ ले, सबको एकत्र कर अग्नि के संयोग से उस द्रव्यपदार्थ को जलाय के घृत तथा तेल शेष रखे। इस प्रकार सिद्ध किये हुए घृत और तेल की भक्षण करने की मात्रा वातादि रोगों पर १ पल की जाननी। काढ़े की औषधियों में चौगुना पानी डाल के औटावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार ले, उसमें घृत अथवा तैल डाल के औटावे। जब घृत तथा तेल मात्र बाकी रहे, तब सिद्ध हुआ जानना। यदि नरम गुडूच्यादि औषधि में हों तो उसमें चौगुना पानी डाले। अमलताज आदि कठिन औषधियोंमें तथा दशमूलादि जो मध्यम औषधि हैं उसमें काढ़े के वास्ते आठ गुना जल मिलावे, पद्माख आदि जो अत्यंत कठोर औषधि हैं उनमें जल सोलह गुना डालना चाहिये। कर्ष ले लेकर पलपर्यंत मान कही हुई औषधियों का यदि काढ़ा करना होय तो जल सोलहगुना डाले, पल से लेकर कुडवमान पर्यंत औषधियों का काढ़ा करना होय तो पानी आठगुना मिलावे। प्रस्थ में लेकर खारीमानपर्यन्त औषधियों का काढ़ा करना होय तो चौगुना जल डाले। केवल जल में स्नेह सिद्ध करना होय तो स्नेह का चतुर्थांश कल्क डाले। काढ़ में स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेह का षष्ठांश कल्म मिलावे। मांस के रस में सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेह का अष्टमांश कल्क डाले। दूध, दही अथवा धतूरे आदि के रस में स्नेह सिद्ध करना होय तो उसमें स्नेह का अष्टमांश कल्क मिलावे, कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते स्नेह का चौगुना जल मिलावे। स्नेह में दूध गोमूत्रादिक स्नेह के समान भाग लेवे। यदि द्रवपदार्थ डालने होंय तो दूध और गोमूत्रादि स्नेह के समान भाग लेवे। यदि द्रवपदार्थ पांच से न्यून होवे तो स्नेह के चौगुने ले। जिस ठिकाने केवल एक ही द्रव्य से स्नेह पाक साधन लिखा होय वहां कल्क द्रव्य को पानी में पीस कल्क कर स्नेह में डाल उसमें स्नेह का चौगुना जल डाले। अथवा किसी प्रयोग में काढ़े में स्नेह सिद्ध करना होय तो काढ़े की औषधियों का कल्क करके स्नेह में मिलाय उसमें पानी चौगुना डालकर औटावे, जब द्रवपदार्थ जल जावे तब स्नेह का चौगुना जल डाले। फूलों का लक स्नेह का अष्टमांश डालना। अब इसके उपरान्त उत्तम सिद्ध हुए स्नेह के लक्षणों को लिखते हैं–जो स्नेह ऊंगली के पोरुओं के लगाने से और मिलने से बत्तीसा हो जावे तथा उस कल्क को अग्नि पर गिरने से चटचटाहट न करे, तेल के पाक में झाग आने से तथा घृत के पाक में झाग आकर शांत हो जाने से तथा उस पाक को सुगन्ध करके रक्तादिवर्ण करके मधुरादि रसोंकरके युक्त होने से स्नेह सिद्ध हो गया इस प्रकार वैद्य जाने।

स्नेह का पाक तीन प्रकार का है। जैसे नम्र, मध्यम और कठिन। उनके लक्षण कहते हैं-जिस स्नेह में कल्क की कुछ २ आर्द्रता बनी रहे अर्थात् वह कल्क समग्र न जले उसको नम्रपाक हुआ जानना। जिस स्नेह में कल्क की मृदुता होने से जल का अंश सर्वथा न रहे उस पाक को मध्यम पाक जानना। और जिस स्नेह का पाक किंचित् अर्थात् कल्क सर्वथा जलकर भी कुछ तेल जल गया हो वह स्नेह दाहकारी और निष्प्रयोजक है अर्थात् कुछ काम का नहीं है। कच्चा पाक रहने से उसमें पराक्रम नहीं रहता अग्नि को मंद करता है तथा भारी होता है। स्नेह का पाक नरम होने से वह स्नेह नाक में नस्य देने के विषय में योग्य होता है। मध्यपाकवाला स्नेह सर्व कर्म में वर्तना चाहिये और कठिन पाक होने पर उस स्नेह को देह में मालिश करने में लेवे। घृत, तैल, गुड़ आदि बनाने होंय तो एक दिन में ही सिद्ध न करे इनके संपूर्ण द्रव्यों को एकत्र कर एक रात्रि भिगो देवे दूसरे दिन सिद्ध करै इस प्रकार स्नेह के साधने की क्रिया जाननी। इसमें भी प्रथम घृत और पश्चात् तैल बनाना इस अध्याय में कहा जावेगा॥१-१८॥

घृत का साधनप्रकार, तिनमें प्रथम क्षीरघृत प्लीहादिकोंपर

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः॥१९॥ ससैंधवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तत्सिद्धं प्लीहनाशनम्॥२०॥ विषमज्वरमंदाग्निहरं रुचिकरं परम् ।

अर्थ-१ पीपल, २ पीपरामूल, ३ चव्य, ४ चित्रक, ५ सोंठ, ६ सेंधानमक ये छः औषधि एक एक पल ले कल्क करके एक प्रस्थ गौ के घी में मिलावे। और घी से चौगुना जल मिलाकर फिर गौ का दूध उसमें मिलावे, कल्क का पाक उत्तम होने के वास्ते घृत से चौगुना पानी डाल के पाक करे। जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसके सेवन करने से पेट में बाई तरफ जो प्लीहा (तिल्ली) का रोग होता है वह और विषमज्वर, मन्दाग्नि ये दूर होवें मुख में उत्तम रुचि आवे॥१९-२०॥

चाङ्गेरीघृत अतिसारसंग्रहणीपर

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली॥२१॥ श्वदंष्ट्रानागरं धान्यं पाठा बिल्वं यवानिका । द्रव्यैश्च पलिकैरेतैश्चतुः षष्टिः पलं घृतम् ॥२२॥ घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चांगेरीस्वरसं बुधः । तथा चतुर्गुणं दत्त्वा दधिसर्पिर्विपाचयेत् ॥२३॥ शनैः शनैर्विपक्वं च चाङ्गेरीघृतमुत्तमम् । तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥२४॥ हन्त्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।

अर्थ-१ पीपल, २ पीपरामूल ३ चित्रक ४ गजपीपल, ५ गोखरू ६ सोंठ, ७ धनियां, ८ पाठ, ९ बेलगिरी, १० अजमोद ये दश औषधि एक एक पल लेवे। कल्क करके चौंसठ पल घी लेवे इसमें इस कल्क को मिलाके तथा घृत से चौगुना चूकेका रस और दही की छाल डाल के मन्दाग्नि से परिपक्व करे। जब घृतमात्र शेष रहे तब छानके धर रखें, इसको चागेरीघृत कहते हैं इसका सेवन करने से कफवायु, संग्रहणी, मूलव्याधि (बवासीर) मलबद्धता, कांच का निकलना, मूत्रकृच्छ्र और प्रवाहिका ये सम्पूर्ण रोग दूर होते हैं॥२१-२४॥

मसूरादिघृत अतिसार आदिपर

मसूराणां पलशतं नीरद्रोणे विपाचयेत् ।।२५।। पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम् । घृतप्रस्थं पचेत्तेन सर्वातीसारनाशनम् ।।२६।। ग्रहणीं भिन्नविट्कां च नाशयेच्च प्रवाहिकाम् ।।

अर्थ–सौ पल मसूर में एक द्रोण जल डाल के औटावे, जब चौथाई जल शेष रहे तब उतार के जल को छान लेवे। इसमें आठ पल बेलगिरी का बारीक चूर्ण करके डाले तथा घी एक प्रस्थ मिलाकर पाक करे जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार के घी को छान के किसी उत्तम पात्र में भर के रख देवे। इस घृत के सेवन करने से संपूर्ण अतीसार, संग्रहणी, मल के चिथड़े और टुकड़े २ गिरें वह और प्रवाहिका यें संपूर्ण रोग दूर होंय ।।२५।।२६।।

कामदेवघृत रक्तपित्तादिकोंपर

अश्वगन्धा तुलैका स्यात्तदर्धो गोक्षुरः स्मृतः ।।२७।। बालामृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी ।। पुनर्नवाऽश्वत्थशुण्ठी काश्मर्यास्तु फलान्यपि ।।२८।। पद्मबीजं माषबीजं दद्याद्दशपलं पृथक् ।। चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ।।२९।। जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचन्दनम् ।। पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा ।।३०।। नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा ।। पृथक्कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम् ।।३१।। रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकैकं समाचरेत् । घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाऽग्निना।।३२।। घृतमेतन्निहंत्याशु रक्तपित्तमुरः क्षतम् । हलीमकं पांडुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम् ।।३३।। वातरक्तं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम् ।। शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजः क्षयं तथा।।३४।। स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम् ।। कामदेवघृत नाम हृद्यं बल्यं रसायनम् ।।३५।।

अर्थ–असगन्ध १ तुला, दक्षिणी गोखरू अर्द्धतुला और १ चीते की छाल, २ गिलोय, ३ शालपर्णी, ४ विदारीकन्द, ५ शतावर, ६ पुनर्नवा (सांठ), ७ पीपरामूल, ८ सोंठ, ९ कंभारी के फल, १० कमलगट्टा और ११ उड़द ये ग्यारह औषधि दश दश पल लेकर एकत्र कूट इसमें चार द्रोण जल मिलाकर काढा करे, जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उतार के छान लेवे। फिर १० जीवनीयगण की औषधि, ११ कूट, १२ पद्माख, १३ लाल चन्दन, १४ तेजपात, १५ पीपल, १६ दाख, १७ कौंच के बीज, १८ नीलाकमल, १९ नागकेशर, २० कालीसारिवा, २१ सफेदसारिवा, २२ बला और २३ नागबला ये तेईस औषधि एक एक कर्ष ले कल्क करके पूर्वोक्त काढे में मिला देवे। खांड दो पल डाले। सफेद ईख का रस और घृत ये दोनों एक एक आढक लेके उस काढे में मिलाय देवे, फिर भट्टी पर चढाय मंदाग्नि से घृत का पाक करे। जब सब पदार्थ जल के घृतमात्र शेष रहे तब उतार के इसको छान लेवे। इसके सेवन से रक्तपित्त, उरःक्षत रोग, पांडुरोग का भेद, हलीमक रोग, स्वरभंग, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पीठ का दर्द, नेत्रों का पीला होना, धातुक्षय, उरः

(छाती) का दाह, कृशता, शरीर के तेज का क्षय, ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह घृत जिस स्त्री के संतान न होती हो उसके वास्ते देने से पुत्र देवे, पुरुषों के वीर्य प्रगट करें, हृदय को हितकारी और बल देता है। यह रसायन है, इसको कामदेव घृत कहते हैं।।२७–३५।।

पानीयकल्पनाघृत अपस्मारादिकोंपर

त्रिफला द्वे निशे कौन्ती सारिवे द्वे प्रियंगुका । शालिपर्णी पृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् । नतं विशाला दंती च दाडिमं नागकेशरम्।।३६।। नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा विडगं कुष्ठपद्मकम् । जातीपुष्पं चन्दनं च तालीसं बृहती तथा । एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम्।।३७।। घृतं प्रस्थं पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये । उन्मादे वातरक्ते च कासे मंदानले तथा ।।३८।। प्रतिश्याये कटीशूले तृतीयकचतुर्थके । मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कण्डूपाण्ड्वामये तथा ।।३९।। विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यत । वन्ध्यानां पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम् ।।४०।।

अर्थ–१ हरड, २ बहेड़ा, ३ आंवला, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ रेणुकाबीज, ७ काली सारिवा ८ सफेद सारिवा, ९ फूलप्रियंगु, १० शालपर्णी, ११ पृष्ठपर्णी, १२ देवदारु, १३ एलवालुक, १४ तगर, १५ इन्द्रायणकी जड़, १६ अनार की छाल, १७ दन्ती, १८ नागकेशर, १९ नीले कमल, २० इलायची, २१ मंजीठ, २२ वायविडंग, २३ कूठ, २४ पद्माख, २५ चमेली के फूल, २६ चन्दन २७ तालीसपत्र और २८ कटेरी, ये अट्ठाईस औषधि एक एक कर्ष लेवे। कल्क कर इसमें कल्क का चौगुना जल मिलाय दे। फिर १ प्रस्थ घी मिलाय के मन्दाग्नि से पचन करावे। जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार के छान ले और उत्तम पात्र में भरके रख देवे। इसके सेवन करने से मृगी, ज्वर, क्षयरोग, उन्माद, वातरक्त, खांसी, मन्दाग्नि, पीनस, कमर का शूल, तृतीयकज्वर, चातुर्थिक ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग, (जो पैरों में होता है) खुजली, पांडुरोग, सर्पादिकों के विष विकार, वच्छनाग आदि स्थावर विषों के विकार तथा प्रमेह ये सब रोग दूर हों। यह घृत बन्ध्या स्त्रियों को पुत्र देता है। इस घृत के सेवन करने से भूतबाधा भी दूर होती है।।३६–४०।।

अमृताघृत वातरक्तपर

अमृताक्वाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचेद् घृतम् ।
वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम् ।।४१।।

अर्थ–गिलोय के जौ कूटकर उसमें चौगुना पानी डाल के औटावे। जब चौथाई रहे तब उतार के छान लेवे। फिर इस काढे में काढे का चतुर्थांश घी मिलावे और घी का चतुर्थांश गिलोय का कल्क डाले। घृत से चौगुना दूध डाले। फिर अग्नि पर चढ़ायके सिद्ध करे, जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसके सेवन करने से वातरक्त और कुष्ठरोग बहुत जल्दी दूर होवें।।४१।।

महातिक्तकघृत वातरक्तकुष्ठादिकोंपर

सप्तच्छदः प्रतिविषा श्यामाकः कटुरोहिणी । पाठा मुस्तमुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा ।।४२।। मटोलनिम्बमंजिष्ठाः पिप्पलीपद्मकं शठी। चन्दनं धन्वयासश्च विशाले द्वे निशे तथा ।।४३।।

गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी । त्रायन्तीन्द्रयवाय-ष्टीभूनिम्बश्चाक्षभागिका॥४४॥ घृतं चतुर्गुणं दद्याद्घृतादाम-लकीरसः । द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जलमष्टगुणं भवेत् ॥४५॥ तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा । कुष्ठानि रक्तपित्तं च रक्तार्शांसि च पाण्डुताम् ॥४६॥ हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान् गण्डमालिकाम्। क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत् ॥४७॥

अर्थ—१ सतोना, २ अतीस, ३ अमलतासका गूदा, ४ कुटकी, ५ पाढ, ६ नागरमोथा, ७ खस, ८ हरड, ९ बहेडा, १० आंवला, ११ पित्तपापडा, १२ पटोलपत्र, १३ नीम की छाल, १४ मँजीठ, १५ पीपल, १६ पद्माख, १७ कचूर, १८ सफेद चन्दन, १९ धमासा, २० इंद्रायण की जड, २१ हलदी, २२ दारुहल्दी, २३ गिलोय, २४ काली सारिवा, २५ सफेद सारिवा, २६ मूर्वा, २७ अडूसा, २८ सतावर, २९ त्रायमाण, ३० इन्द्रजौ, ३१ मुलहठी और ३२ चिरायता ये बत्तीस औषधि एक एक कर्ष लेवे। कल्क कर कल्कका चौगुना घी लेकर उसमें कल्कको मिलाय दे और घी से दुगुना आंवलों का रस एवं आठ गुना जल डाल के मन्दाग्नि पर परिपक्व करे। घृतमात्र शेष रहे तब उतारके छान ले और उत्तम पात्र में भरके रख देवे। इसके सेवन करने से वातरक्त अवश्य दूर होवे तथा कुष्ठ, रक्तपित्त, रक्तमूलव्याधि अर्थात् खूनी बवासीर, पांडुरोग, हृदयरोग, गोला, विसर्परोग, प्रदररोग, गंडमाला, क्षुद्ररोग और ज्वर रोग दूर हों॥४२–४७॥

सूर्यपाकसिद्ध कासीसाद्यघृत कुष्ठदद्रुपामा इत्यादिकोंपर

कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनः शिलाम् । कंपिल्लकं गंधकं च विडङ्गं गुग्गुलुं तथा ॥४८॥ सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान् । रसाञ्जनं च सिन्दूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम् ॥४९॥ अरिमेदं निम्बपत्रं करञ्जं सारिवां वचाम् । मञ्जिष्ठां मधुकं मांसी शिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥५०॥ हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णयेत्कार्षिकान्पृथक् । ततश्च चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥५१॥ स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घर्मे सप्त दिनानि च । अस्याभ्यङ्गेन कुष्ठानि दद्रूपामाविचर्चिकाः ॥५२॥ शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः । शिरः स्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च॥५३॥ शोथो भगन्दरश्चैव लूताः शाम्यन्ति देहिनाम् । शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं घृतम् ॥५४॥

अर्थ—१ हीराकसीस, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ नागरमोथा, ५ हरताल, ६ मनसिल, ७ कबीला, ८ गंधक, ९ वायविडंग, १० गूगल, ११ मोम, १२ काली मिरच, १३ कूठ, १४ सफेद सरसों, १५ रसांजन, १६ सिंदूर, १७ गंधाविरोजा, १८ लालचन्दन, १९ खैर की छाल, २० नीम के पत्ते, २१ कंजा के बीज, २२ सारिवा, २३ वच, २४ मंजीठ, २५ मुलहटी, २६ जटामांसी, २७

सिरस की छाल, २८ लोध, २९ पद्माख, ३० जंगीहरड और ३१ पमार के बीजा ये एकतीस औषधि एक एक कर्ष लेवे। सबका चूर्ण कर तीस पल घी तांबे के पात्र में डाल चूर्ण मिलाकर सात दिन धूप में धरा रहने देवे। फिर इस घी को देह में लगावे तो सर्व कुष्ठ, दाह, खाज, जिससे पैर फट जाते हैं, ऐसी विचर्चिका, लिंगेन्द्रिय का शूकसंज्ञक रोग, विसर्परोग, वातरक्त से जो विस्फोटक रोग होता है वह मस्तक के फोड़े उपदंश (गरमी का रोग), नाड़ीव्रण (नासूर का घाव), दुष्टव्रण, सूजन, भगंदर और लूता ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह घृत व्रणादिकों का शोधन करके व्रण को भर लाता है तथा त्वचा की कांति जैसी प्रथम थी उसी प्रकार की करता है।।४८–५४।।

जात्यादिघृत व्रणपर

जातिनिम्बपटोलांश्च द्वे निशे कटुकी तथा । मञ्जिष्ठा मधुकं सिक्थं करञ्जोशीससारिवाः।।५५।। तुत्थं च विपचेत्सम्यक्कल्कै-रेभिर्घृतं बुधः । अस्य लेपात्प्ररोहन्ति सूक्ष्मनाडीव्रणाअपि ।।५६।। मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गंभीराः सरुजो व्रणाः ।

अर्थ–१ चमेली के पत्ते, २ नीम के पत्ते, ३ पटोलपत्र, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ कुटकी, ७ मंजीठ, ८ मुलहठी, ९ मोम, १० कंजा, ११ खस, १२ सारिवा और १३ नीलाथोथा ये तरह औषधि एक एक कर्ष प्रमाण लेनी। इसका कल्क करके उस कल्क का चौगुना घी ले, उसमें कल्क को मिलाकर धूप में एक दिन धरा रहने दे, फिर अग्नि पर धर के घृत को सिद्ध करे। इसका नाडीव्रण (नासूर के घाव) में लेप करे मर्मस्थल में जो घाव होय, और राध आदि करके गीले भंभीर और पीड़ायुक्त हो ऐसे व्रणों में इसका लेप करे तो व्रण भरके अच्छा होय।।५५।।५६।।

बिन्दुघृत उदरादिकोंपर

चित्रकः शंखिनी पथ्या कम्पिल्लस्त्रिवृतायुगम् ।।५७।। वृद्धदारुश्च शम्याको दन्ती दन्तीफलं तथा । कोशातकी देवदाली नीलिनी गिरिकर्णिका ।।५८।। सातला पिप्पलीमूलं विडङ्ग कटुकी तथा । हेमक्षीरी च विपचेत् कल्कैरेभिः पिचून्मितैः ।।५९।। घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरे षट्पले तु पलद्वयम् । अर्कक्षीरस्य मतिमांस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठनुत् ।।६०।। हन्ति शूलमुदावर्तं शोथाध्मानं भगन्दरम् । शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिन्दुसंख्यया ।।६१।। गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कौलत्थेन भृतेन वा । उष्णोदकेन वा पीत्वा बिन्दुवेगैर्विरिच्यते ।।६२।। एतद्बिन्दुघृतं नाम नाभिलेपाद्विरेचयेत् ।

अर्थ–१ चीते की छाल, २ शंखपुष्पी (शंखाहूली), ३ हरड, ४ कम्पिला, ५ सफेद निसोथ, ६ कालीनिसोथ, ७ विधायरा, ८ अमलतास का गूदा, ९ दंती की जड़, १० जमालगोटा, ११ कड़ुई तोरई, १२ बंदाल, १३ नील, १४ विष्णुक्रांता (कोयल), १५ पीले रंग की थूहर, १६ पीपरामूल, १७ वायविडंग, १८ कुटकी और १९ चूका ये उन्नीस औषधि एक एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका

कल्ककर एक प्रस्थ घी में उसको मिलाय थूहर का दूध छः पल और आक का दूध दो पल मिलावे। कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते उस घी का चौगुना जल डाल के मन्दाग्नि से घृत शेष रखे। इस प्रकार जब घृत सिद्ध हो जाय तब इसको छान के किसी उत्तम पात्र में भरके धर रखे, इसको बिंदघृत कहते हैं। इसके सेवन करने से गोला, कोढ, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगंदर, आठ प्रकार के उदररोग ये सम्पूर्ण रोग दूर होवें। इसका अनुपान गौ का अथवा ऊँटनी का दूध, कुलथी का काढा, अथवा गरम जल इतने अनुपानों से जैसा रोग का तारतम्य देखे उसी प्रकार देवे। इस घृत के जितने बिन्दु (बूँद) डाल के पीवे उतने ही दस्त होते हैं। इस घृत का नाभिपर लेप करने से भी दस्त होते हैं।।५७-६२।।

त्रिफलाघृत नेत्ररोगोंपर

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वासारसोद्भवम् ।।६३।। भृङ्गराज-रसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम् । दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कैः कर्षमितैः पृथक् ।।६४।। त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैन्धवं बला । काकोली क्षीरकाकोली मेदा मरिचनागरम् ।।६५।। शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा । निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरभिर्विपाचयेत् ।।६६।। नक्तान्ध्यं नकुलान्ध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च । नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं चाजकं जयेत् ।।६७।। अन्येऽपि प्रशमं यान्ति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ।। त्रिफलं घृतमेतद्धि पाने नस्यादि सूचितम् ।।६८।।

अर्थ-१ हरड, २ बहेडा और ३ आंवला इन तीनों का स्वरस पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ लेवे। यदि स्वरस न मिल सके तो इनको आठ गुने जल में डाल के चतुर्थांश शेष काढा लेवे। इसकी भी स्वरस संज्ञा है। यह एक एक प्रस्थ लेवे। अडूसे का स्वरस १ प्रस्थ, भांगरे का स्वरस १ प्रस्थ, बकरी का दूध १ प्रस्थ ये संपूर्ण रस और दूध को एकत्र करके इसमें घी एक प्रस्थ डाल के कल्क बनावे। इसमें डालने की जो औषधियां हैं उनको कहता हूं, जैसे-१ हरड, २ बहेडा, ३ आंवला, ४ पीपल, ५ दाख, ६ सफेद चन्दन, ७ सैंधानमक, ८ गंगेरन, ९ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनों के अभाव में असगन्ध लेवे), १० मेदा के अभाव में मुलंहटी, ११ कालीमिरच, १२ सौंठ, १३ खांड, १४ सफेद कमल, १५ कमल, १६ पुनर्नवा (सोंठ) १७ हल्दी, १८ दारुहल्दी और मुलहटी ये उन्नीस औषधि प्रत्येक २ कर्ष लेवे। कल्क करके इनको १ प्रस्थ घी में मिलाय मन्दाग्नि पर घी को सिद्ध करे। जब तैयार हो जावे तब उतार के छान लेवे, इसको त्रिफला घृत कहते हैं। घृत के सेवन करने से रतौंध तथा नौलाके से नेत्र चमके उसको नकुलांध्य कहते हैं, नेत्रों की खुजली, पिल्लरोग (नेत्रों से जल का गिरना), नेत्रों के पटल में सो तिमिररोग होता है वहां मोतियाबिन्दु, नेत्ररोग का भेद, अजक रोग ये सम्पूर्ण दूर होवें। इसके सिवाय और जो छोटे बड़े नेत्रों के रोग हैं वे भी दूर हों। यह घृत नाक में डालने के भी उपयोगी है।।६३-६८।।

मतान्तर से लिखते हैं कि, त्रिफले का रस १ प्रस्थ भांगरे का रस १ प्रस्थ अडूसे का रस १ प्रस्थ सतावर का रस १ प्रस्थ बकरी का दूध १ प्रस्थ, गिलोय का रस १ प्रस्थ और आंवलों का रस १ प्रस्थ इन सब रसों को एकत्र कर १ प्रस्थ घी डाल के पक्व करे। यह बंगसेन ग्रन्थ में लिखा है। इसे भी पूर्वोक्त नेत्र रोगों पर देवे।

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम् । मधुपर्णी च मधुकं पद्मकेसरपद्मकम् ॥६९॥ उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफलापञ्चव-ल्कलैः ॥ कल्कः कर्षमितैरतैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥७०॥ विसर्पलूताविस्फोट विषकीटव्रणापहम् । गौर्याद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम् ॥७१॥

गौर्याद्यघृत व्रणादिकोंपर

अर्थ–१ हल्दी, २ दारुहल्दी ३ शालपर्णी, ४ मूर्वा, ५ सारिवा, ६ सफेद, चन्दन ७ लालचन्दन, ८ माषपर्णी, ९ मुलहटी १० कमल के भीतर की केशर ११ पद्माख, १२ कमल, १३ खस, १४ मेदा के अभाव में मुलहठी, १५ हरड, १६ बहेडा १७ आंवला १८ वड की छाल १९ गूलर की छाल, २० पीपल की छाल २१ पाखर की छाल और २२ वेत ये बाईस औषधि प्रत्येक एक एक कर्ष लेवे, सबका कल्क करके इसका चौगुना इसमें जल मिलावे फिर इसमें १ प्रस्थ घी डाल के शेष रहने पर्यन्त पचन करे। जब सिद्ध हो जावे तब उतार के घी को छान लेय। इस घृत के सेवन करने से विसर्प रोग, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्र, कुष्ठ, व्रण ये रोग दूर होवें। इस घृत के सेवन से प्रायः विषबाधा दूर होती है।।६९–७१।।

मयूरघृत शिरोरोगादिकोंपर.

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः । पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोण नीरेण पाचयेत् ॥७२॥ मयूरं पक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्यवर्जितम् । पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीरं दत्त्वा च तत्समम् ॥७३॥ घृतप्रस्थं पचेत्सम्यग्जीवनीयैः पिचून्मितैः । तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्याग्रीवाग्रहं तथा ॥७४॥ अर्दितं कर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजो जयेत् । पाने नस्ये तथाऽभ्यङ्गेकर्णपूरेषु युज्यते ॥७५॥ हेमन्तकालशिशिरबसन्तेषु च शस्यते ।

अर्थ–१ गंगेरन की छाल, २ मुलहठी, ३ रास्ना १० मूलों की जड़, ३ त्रिफला इस प्रकार सब मिलायके १६ औषधि दो दो पल लेकर जौकुट करके एक द्रोण जल में डाल देवे। फिर एक मोर को मारके उसके पंख दूर करके कलेजे में पित्त होता है वह आंतडे और दहनी तरफ जो यकृत (कलेजा) पैर और मुख ये सब दूर करके उस मोर का शुद्ध मांस लेवे। तथा दूध काढे के समान ले घी एक प्रस्थ ले एवं जीवनीयगणकी औषधियों का कल्क करके उसमें डाल देवे फिर घृतमात्र शेष रहें इस प्रकार मन्दाग्नि पर पाचन कर उतारके छान लेवे। फिर पीने में नाक को डालने के विषय में देह में लगाने और कान में डालने में इनमें रोग का तारतम्य देखकर इसकी योजना करे। इसका सेवन हेमंत काल में, शिशिर काल में, तथा वसन्तकाल में करे तो मस्तक की पीड़ा दूर होय। मर्दन और गला इनका स्तंभ, तथा टेडा मुख हो जावे ऐसी अर्दित वायु, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गला इनकी पीड़ा को दूर करे। इसे मयुरघृत कहते हैं।।७३–७५।।

फलघृत वन्ध्यारोगपर

त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥७६॥ विडङ्ग पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा । द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ

सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥७७॥ शतपुष्पा हिंगु रास्ना चन्दनं रक्तचन्दनम् । जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा ॥७८॥ अजमोदा च दंती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः । जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतप्रस्थं च गोः क्षिपेत् ॥७९॥ चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः । सुतिथौ पुष्यनक्षत्रे मृद्भाण्डे ताम्रजे तथा ॥८०॥ ततः पिबेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोऽथवा । एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥८१॥ पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्वन्ध्याऽपि लभते सुतम् । अनायुषं या जनयेद् या च सूता पुनः स्थिता ॥८२॥ पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमन्तं शतायुषम् । एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम् ॥८३॥ अनुक्तं लक्षणामूलं क्षिपेत् तत्र चिकित्सकः ॥

अर्थ–१ हरड २ बहेडा ३ आंवला ४ मुलहटी ५ कूट ६ हल्दी ७ दारुहल्दी ८ कुटकी, ९ वायविडंग १० पीपल, ११ नागरमोथा, १२ इन्द्रायण की जड़, १३ कायफल, १४ वच, १५ मेदा और महामेदा (इन दोनों के अभाव में मुलहटी) १६ काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनों के अभाव में असगंध) १७ सफेद सारिवा १८ काली सारिवा १९ फूलप्रियंगु २० सौंफ २१ भुनी हीग २२ रास्ना २३ सफेदचंदन २४ लालचंदन २५ जावित्री २६ वंशलोचन २७ कमल २८ खांड २९ अजमोद ३० दन्ती ये तीस औषधि एक कर्ष प्रमाण लेवे सबका कल्क कर जिसके बछड़ा होवे तथा एककर्णवाली गौ का घी एक प्रस्थ लेवे उसमें उस कल्क को मिलावे, और कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते घी से चौगुना गौ का दूध डाले। फिर सबको एक तांबे के पात्र में भरके अथवा मिट्टी के वासन में भरके जिस दिन पुष्यनक्षत्र होवे अथवा शुभदिन होय उस दिन आरने उपला की मन्द २ अग्नि देवे। जब घृत शेष रहे तव उसको उतार के छान लेवे इसको फलघृत कहते हैं। यह घृत भारद्वाज ऋषि ने कहा है इसको उत्तम दिन में पुरुषों को अथवा स्त्रियों को देवे, पुरुषों को देने से उनका काम बढ़कर स्त्री के साथ नित्य रमण करे। उनके पुत्र बुद्धिमान् होवे। बाँझ स्त्री इसका सेवन करे, तो पुत्र प्रगट करे, जिस स्त्री के बालक होकर मर जावे ऐसी स्त्री को इसके सेवन करने से बालक होवे वह सौ वर्ष जीवे, तथा बुद्धिमान होय। इस घृत में तो लक्ष्मणामूल कहा नहीं है परन्तु ये गर्भदाता है, इस वास्ते इसको भी डाले, (कोई सफेद कंटेली को लक्ष्मणा कहते हैं)॥७६–८३॥

पञ्चतिक्तघृत विषमज्वरादिकोंपर

वृषनिम्बाऽमृताव्याघ्रीपटोलानां शृतेन च ॥८४॥ कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान् । पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत् ॥८५॥

अर्थ–१ अडूसा, २ नीम के पत्ते, ३ गिलोय, ४ कटेरी, ५ पटोलपत्र इन पांच औषधियों का क्वाथ कर उसमें चौगुना घी लेवे। उसमें उसी कल्क को मिलावे, फिर भट्टी पर चढ़ाय के मन्द मन्द अग्नि से घृत सिद्ध करे। फिर इसको छान के धर लेवे। इसके सेवन करने से विषमज्वर, पाण्डुरोग, कोढ, विसर्प, कृमिरोग और बवासीर ये सब रोग दूर होवे॥८४॥८५॥

लघुफलघृत योनिरोगपर

सहाचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।। शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ।।८६।। कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत् क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्नारी योनिशूलनिपीडिताम् ।।८७।। पीडिता चलिता या च निःसृता विवृता च या । पित्तयोनिश्च विभ्रान्ता षण्ढयोनिश्च या स्मृता ।।८८।। प्रपद्यन्ते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् । एतत् फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ।।८९।।

अर्थ–१ पियाबांसा, २ कालेफूल का पियाबांसा, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ गिलोय, ७ पुनर्नवा, ८ टेंटू, ९ हल्दी, १० दारुहल्दी, ११ रास्ना, १२ मेदा (मेदा के अभाव में मुलहटी) तथा १३ सतावर इन तेरह औषधियों का कल्क कर एक प्रस्थ प्रमाण घी लेवे उसमें पूर्वोक्त कल्क मिलावे। गौ का दूध घी से चौगुना लेवे, तथा कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते घी से चौगुना जल मिलावे, फिर चूल्हे पर चढ़ाय मन्द अग्नि देवे, जब सब वस्तु जल के केवल घृतमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको जिस स्त्री के योनिशूल हो उसको देवे। मैथुनादिक करके जिसकी योनि पीडित है, जिस स्त्री की योनि चलकर पुष्प स्थान से भ्रष्ट हुई तथा योनि का मुख बड़ा हो गया हो उसको देवे। पित्तयोनि, विभ्रांतयोनि तथा षंढयोनि (जो गर्भधारण न करे) ऐसी स्त्री को यह घृत देने से संपूर्ण योनि के रोग दूर होकर ठिकाने पर आवें और गर्भ धारण करे। घृत को लघुफलघृत कहते हैं, यह घृत योनि के दोष हरण करने में श्रेष्ठ हैं।।८६–८९।।

अथ तैलसाधनप्रकारो लिख्यते

लाक्षादितैल

लाक्षदिकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः । चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थे विनिक्षिपेत् ।।९०।। मस्त्वाढकं च गोदधनस्तत्रैव विनियोजयेत् । शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च ।।९१।। कटुकां रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम् । चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः ।।९२।। चूर्णयेत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना। अस्याभ्यङ्गात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषम ज्वराः ।।९३।। कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा । वातं पित्तमपस्मारमुन्मादं यक्षराक्षसान् ।।९४।। कण्डूं शूलं च दौर्गंध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत् । पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यंगतो भृशम् ।।९५।।

अर्थ–बेर की अथवा कुडा की लाख १ आढक लेके उसमें चार आढक जल डाल के औटावे जब सेरभर जल रहे तब उतार के छान लेवे। उसमें तिल्ली का तेल १ प्रस्थ डाले तथा दही का तोड़ आढक मिलावे। फिर चूर्ण करके डालने की औषधि इस प्रकार डाले–१ सोंफ, २ असगंध, ३ हल्दी, ४ देवदारु, ५ कुटकी, ६ रेणुकाबीज, ७ मूर्वा, ८ कूठ, ९ मुलहठी, १० सफेद चंदन, ११ नागरमोथा और रास्ना ये बारह औषधि एक एक कर्ष लेवे। सबका चूर्ण करके उस तेल में डाल के

मन्दाग्नि से पचन करावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेल को छान लेवे। इससे देह में मालिश करने से सम्पूर्ण विषमज्वर, खांसी, श्वास, पीनस व कमर का तथा पीठ का शूल, वादी का प्रकोप, पित्त का कोप, मृगी, उन्माद रोग, क्षयरोग, राक्षसादिक की पीड़ा, खुजली, देह में दुर्गंध का आना, शूल, अंगस्फुरण ये संपूर्ण रोग दूर होंय। गर्भवती स्त्री भी इसे मर्दन कर सकती है, क्योंकि इससे गर्भ पुष्ट होता है।।९०-९५।।

मूर्वा लाक्षा हारद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी । बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ।।९६।। आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् । तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरावमोक्षणम् ।।९७।।

अङ्गारतैल सर्वज्वरपर

अर्थ-१ मूर्वा, २ लाख, ३ हल्दी, ४ दारुहल्दी, ५ मंजीठ, ६ इन्द्रायण की जड़, ७ कटेरी, ८ सेंधानमक, ९ कूठ, १० रास्ना, ११ जटामांसी और १२ शतावर ये बारह औषधि समान भाग अर्थात् एक एक कर्ष प्रमाण लेवे, इसका चूर्ण करे चार सेर कांजी तथा एक प्रस्थ तिल का तेल, इनमें पूर्वोक्त चूर्ण को मिलाय के औटावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार ले, इस तेल को अंगारतैल कहते हैं। इसके मालिश करने से भी सभी ज्वर दूर होवें।।९६।।९७।।

नारायणतैल सर्ववातपर

अश्वगन्धां बलां बिल्वं पाटलां बृहतीद्वयम् । श्वदंष्ट्राऽतिबले निम्बं स्योनाकं च पुनर्नवाम् ।।९८।। प्रसारिणीमग्निमन्थं कुर्याद्दशपलं पृथक् । चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत्।।९९।। तैलाढकेन संयोज्यं शतावर्या रसाढकम् । क्षिपेत्तत्र च गोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम्।।१००।। शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्विपलिकैः पृथक् । कुष्ठैलाचंदनं मूर्वावचा मांसीससैंधवैः ।।१०१।। अश्वगन्धाबलारास्नाशतपुष्पेन्द्रदारुभिः।पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण प्रसाधयेत् ।।१०२।। तत्तैलं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् । पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् ।।१०३।। खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभंगं गलग्रहम्। गादशीर्षेन्द्रियध्वंसावसृक्छुक्रज्वरक्षयान् ।।१०४।। अण्डवृद्धिं कुरण्डं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् । पार्श्वशूलं च पांगुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम् ।।१०५।। अन्यांश्च विषमान् वाताञ्जयेत् सर्वाङ्गसंश्रयान् । अस्य प्रभावाद्वंध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ।।१०६।। मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलाभ्यङ्गात्सुखी भवेत् । यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ।।१०७।। तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ।

अर्थ-१ असंगध, २ गंगेनर की छाल, ३ बेलगिरी, ४ पाठ, ५ कटेरी, ६ बडी कटेरी, ७, गोखरू, ८ अतिबल, ९ नीम की छाल, १० टेंटू, ११ पुनर्नवा, १२, प्रसारणी और १३ अरनी ये तेरह औषधि दश २ पल लेवे। इनको जौकुट करके चार द्रोण जल में डाल के काढा करे। जब चतुर्थांश

रहे तब उतार के काढे को छान लेवे। इसमें तिल्ली का तैल १ आढक डाले, शतावरी का रस १ आढक तथा गौ का दूध ४ आढक उस तेल में मिलाय लेवे। आगे कल्क करके डालने की औषधि लिखते हैं, जैसे–१ कूठ, २ इलायची, ३ सफेद चन्दन, ४ मूर्वा, ५ वच, ६ जटामांसी, ७ सैंधानमक, ८ असगंध, ९ गंगेरन की छाल, १० रास्ना, ११ सौंफ, १२ देवदारु, १३ सालपर्णी, १४ पृष्ठपर्णी, १५ पृश्निपर्णी, १६ मुद्गपर्णी और १७ तगर ये औषधि दो दो पल लेकर सबका कल्क करके उस तेल में मिला देवे फिर इस तेल को चूल्हे पर चढ़ाकर मंद मंद अग्नि पर रखके परिपाक करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार कर छान लेवे। इस तेल को नारायणतेल कहते हैं इस तेल को नाक में डालना, देह में लगाना, पीना तथा वस्तिकर्म विषय में योजना करे। इस तैल से पक्षाघात कहिये अर्धांगवायु, हनुस्तंभ मन्यास्तंभ, कटिग्रहवायु, खल्लंत्व, बहरापन, पैरों की वायु, बालग्रह, कमर की वायु, हाथ पैर आदि गात्रों का शोषणकर्ता वायु, चक्षुरादि इन्द्रिय को नाशकर्ता वायु, रुधिर विकार, धातुक्षय रोग, अंत्रवृद्धि, कुरंड (जिससे अण्डकोश बढ़ जावे) दंतरोग, मस्तक का वायु, पार्श्वशूल जिससे पांगुरापना होय वह वायु, बुद्धिभ्रंश और कमर से लेकर पैर पर्यंत गृध्रसी इस नाम की जो वायु होती है वह, ये संपूर्ण वादी के विकार दूर हों। तथा इसके सिवाय दूसरे विषमवायु छोटे बड़े सर्वांग अथवा अर्धांग में जो हों वे भी दूर हों। इस तेल के प्रभाव से वंध्या स्त्रियों को पुत्र होय। यह तेल अंग में लगाने से मनुष्यों को सुख होता है, हाथी के तथा घोड़ों के अंग में लगाने से उसके भी वादी के रोग दूर होते हैं। इसमें दृष्टान्त है कि जैसे नारायण दैत्यों का नाश करते हैं उसी प्रकार यह नारायण तैल संपूर्ण वातरोगों का नाश करता है।।९८–१०७।।

वारुण्यादितैल कम्पवायुपर

वारुण्या ह्यौत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम् ।।१०८।। पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम् । निष्कत्रयं भक्तयुतं सेवेतास्माद्विनश्यति ।।१०९।। हस्तकंपः शिरः कंपः कंपो मन्याशिराभवः ।

अर्थ–इन्द्रायण की उत्तर दिशा के तरफ होनेवाली जड़ ३ पल ले जौ कूट करके फिर बारह पल तिलों के तेल में इस कल्क को मिलाकर औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके छान लेवे, यह तेल बलाबल विचारके तोले तोले भात के साथ खाय तो हस्तकंप, शिरकंप, गर्दन का हिलना इत्यादि वातरोग दूर हों।।१०८।।१०९।।

बलातैल वातादिकोपर

बलामूलकषायेण दशमूलभृतेन च।।११०।।कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा । अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम् ।।१११।। गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रदारुणा मञ्जिष्ठा कुष्ठशैलेयतगरागरुसैन्धवैः ।।११२।। वचापुनर्नवामांसीसारिवाद्वयपत्रकैः । शतपुष्पाऽश्वगन्धाश्यामेलया च विपाचयेत् ।।११३।। गर्भार्थिनीनां नारीणां पुंसां च क्षीणरेतसाम् । व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते ।।११४।।

राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः । बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥११५॥

अर्थ-खरेंटी की जड़ ८ प्रस्थ ले बत्तीस प्रस्थ जल डाले। फिर चूल्हे पर चढ़ाके चौथाई शेष रहे इस प्रकार काढ़ा करे। इसको छानके धर देवे तथा दशमूल की दश औषधि आठ प्रस्थ लेकर उनमें ३२ प्रस्थ जल डालके काढ़ा करे, जब चौथाई रहे तब उतार के छान लेवे तथा १ कुलथी, २ जौ और ३ बेर के भीतर का बीज ये तीन औषधि पृथक् पृथक् आठ आठ प्रस्थ लेके बत्तीस प्रस्थ जल डालके चतुर्थांविशेष काढ़ा करे और पृथक् पृथक् छान के धर लेवे, फिर इन पांचो काढ़ों को मिलाकर, इसमें गौ का दूध आठ प्रस्थ डाले और तिल्ली का तेल एक प्रस्थ मिलावे। फिर चूर्ण करके डालने की औषधि इस प्रकार ले। जैसा ७ जीवनीयगण की औषधि, ८ सतावर, ९ देवदारु, १० मञ्जीठ, ११ कूठ, १२ पत्थर का फूल, १३ तगर, १४ अगर, १५ सैंधानमक, १६ वच, १७ पुनर्नवा, १८ जटामांसी, १९ सफेद सारिबा, २० कालीसारिवा, २१ पत्रज, २२ सौंफ, २३ असगन्ध और २४ इलायची। ये चौबीस औषधि तेल से चतुर्थांश लेकर कल्क करके उस तेल में डाल देवे, फिर अग्नि पर चढ़ा के तेल शेष रहे पर्यन्त औटावे, फिर इसको छान लेवे इसको बला तेल कहते हैं। यह तेल जिस स्त्री के गर्भ की इच्छा हो उसके देह में लगावे तथा जिस पुरुष की धातु क्षीण है उसके तथा बहुत दूर जाने आने के परिश्रम करके क्षीण है देह जिसका उसके तथा प्रसूता स्त्रियों के लगावे। यह तेल विशेष करके राजाओं और सुखी मनुष्य सेठ साहुकारों के योग्य है। इसी से सम्पूर्ण वादी के विकार दूर होते हैं॥११०-११५॥

प्रसीरिणीतैल वातकफजन्यविकार तथा वादीपर

प्रसारिणीं पलशतं जलद्रोणेन पाचयेत् । पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम् ॥११६॥ काञ्जिकं च समं तैलात् क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम् । तैलात्तथाऽष्टमांशेन सर्वकल्कानि योजयेत् ॥११७॥ मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकं सैन्धवं वचा । प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥११८॥ भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत् । एतत्तैलवरं पक्वं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥११९॥ कौब्जं खञ्जत्वपङ्गुत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तम्भं च नाशयेत् ॥१२०॥ अन्यांश्च विषमान्वातान् सर्वानाशु व्यपोहति ।

अर्थ-प्रसारिणी औषधि १०० पल ले उसमें १ द्रोण जल डाल के काढ़ा करे, जब चौथाई जल रहे तब उतारके छान लेवे। इसमें तेल दही और कांजी, ये काढ़े के समान पृथक् पृथक् तेल मिलावे। फिर तेल से चौगुना गौ का दूध डाले, तथा कल्क करके डालने की औषधि इस प्रकार लेनी, जैसे १ मुलहटी, २ पीपरामूल, ३ चीते की छाल, ४ सेंधानमक, ५ वच, ६ प्रसारिणी, ७ देवदारु, ८ रास्ना, ९ गजपीपल, १० भिलावे, ११ सौंफ और १२ जटामांसी। ये बारह औषधि तेल के अष्टमांश लेके कल्क करके तेल में मिलाय देवे फिर अग्नि पर चढ़ाय के तेलमात्र शेष रखे, इसको छान के धर ले। इसकी देह में मालिश करे तो वात कफ के विकार जिससे मनुष्य कुबड़ा होता है वह खञ्जवायु, जिससे मनुष्य पांगुला होय, सो पांगवायु, गृध्रसीवायु, हनु (टोढ़ी), पृष्ठ (पीठ), शिर गर्दन और

कमर इनका जकड़ना, ये सब वायु दूर होवें, इसके सिवाय दूसरे विषम वायु जो छोटे हैं वे इस तेल के लगाने से दूर होवें।।११६-१२०।।

माषादितैल ग्रीवास्तंभादिकोपर

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरण्टकः ॥१२१॥ गोकण्टष्टुटुकश्चैषां कुर्यात्सप्तपलं पृथक् । चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥१२२॥ कार्पासास्थीनि बदरं शणबीजं कुलत्थकम् । पृथक् चतुर्दशपलं चतुर्गुणजले पचेत् । चतुर्थांशावशिष्टं च गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम् ॥१२३॥ प्रस्थैकं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले । निक्षिप्य पाचयेद्धीमान् पादशेषं रसं नयेत् ॥१२४॥ तैलप्रस्थे ततः क्वाथान् सर्वानितान् विनिक्षिपेत् । कल्कैरेमिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥१२५॥ रास्नापुनर्नवैरण्डैः पिप्पल्या शतपुष्पया । बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा॥१२६॥पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना । हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तम्भापबाहुकौ ॥१२७॥ अर्धाङ्गशोषमाक्षेपमूरुस्तम्भापतानकौ ॥ शाखाकम्पं शिरः कम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥१२८॥ माषादिकमिदं तैलं सर्ववातविकारनुत् ।

अर्थ—१ उड़द, २ जब, ३ अलसी के बीज, ४ कटेरी, ५ कौंच के बीज, ६ पियावांसा, ७ गोखरू और ८ टेंटु ये आठ औषधि सात सात पल लेवे। सबको जौकुट कर सब औषधियों से चौगुना जल डाल के औटावे। जब चौथाई शेष रहे तब उतार के छान लेवे। १ कपास के बिनोले, २ बेर की गुठली, ३ सन के बीज, ४ कुलथी। ये चार औषधि चौदह चौदह पल लेवे। इसमें चौगुना जल मिलाय के चौथाई जल रहने पर्यन्त काढ़ा करे, फिर छान के इसको धर लेवे, पश्चात् बकरे का मांस १ प्रस्थ ले, इसमें चौसठ पल जल डाल के औटावे। चौथाई शेष रहे तब उतार के छान लेवे, फिर तिल्ली का तेल १ प्रस्थ ले और पूर्वोक्त संपूर्ण काढ़े को एकत्र करके उसमें तेल को मिलाय देवे। इसमें कल्क करके डालने की औषधि इस प्रकार लेनी—१ गिलोय, २ कूट, ३ सोंठ, ४ रास्ना, ५ पुनर्नवा, ६ अरण्ड की जड़, ७ पीपल, ८ सौंफ, ९ खरेंक्षी की छाल, १० प्रसारणी, ११ जटामांसी और १२ कुटकी ये बारह औषधि आधे आधे पल लेकर सबका कल्क करके तेल में मिलाय देवे, फिर उसको चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पाचन करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको माषादितैल कहते हैं, यह तेल देह में लगाने से ग्रीवास्तंभ वायु, अपबाहुकवायु, अर्धांगवायु, आक्षेपक वायु, ऊरुस्तभ वायु, अपतानक, वायु, हस्तपादादि शाखाओं को कंपानेवाला वायु, मस्तक कंपानेवाला वायु, विश्वाची वायु, अर्दित वायु, ये संपूर्ण रोग दूर होवें।।१२१-१२८।।

शतावरी तैल शूलादि वाय्वादिकोपर

शतावरी बलायुग्मं पर्ण्यो गन्धर्वहस्तकः ॥१२९॥ अश्वगन्धा श्वदंष्ट्रा च बिल्वः काशः कुरण्टकः । एतान् सार्धपलान् भागान्

कल्कयेच्च विपाचयेत् ॥१३०॥ चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं भृतं नयेत् । नियोज्य तैलप्रस्थं च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥१३१॥ शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत् । शतावरी देवदारु मांसी तगरचन्दनम्॥१३२॥शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शैलेयमुत्पलम् । ऋद्धिमेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा ॥१३३॥ एषां कर्षसमैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना । पचेत्तेनैव तैलेन स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥१३४॥ नारी च लभते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति । अङ्गशूलं शिरःशूलं कामलां पाण्डुतां गरम् ॥१३५॥ गृध्रसीं प्लीहशोषांश्च मेहान् दण्डापतानकम् । सहाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम् ॥१३६॥ असृग्दरं तथाध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति । शतावरीतैलमिदं कृष्णाऽऽत्रेयेण भाषितम् ॥१३७॥ "ॐ नारायणाय स्वाहा ।" उत्तारभिमुखो भूत्वा खनेत्खदिरशङ्कुना "सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा ।" इति उत्पाटन मन्त्रः । "ॐ कुमारजीवन्यै स्वाहा" इति पाचनमन्त्रः।

अर्थ–१ शतावर, २ खरेंटी की जड़, ३ गंगरेन, ४ शालपर्णी, ५ पृष्ठपर्णी, ६ अरण्ड की जड़, ७ असगंध, ८ गोखरू, ९ बेल की जड़, १० कास की जड़, ११ पियाबांसा ये ग्यारह औषधि डेढ़ डेढ़ पल लेवे, उनमें चौगुना जल डालके औटावे, जब चौथाई जल रहे तब उतार के छान लेवे। इसमें तिल का तेल १ प्रस्थ, गौ का दूध १ प्रस्थ, शतावर का रस १ प्रस्थ और जल १ प्रस्थ सबको मिलाय के एकत्र करे। फिर १ शतावर, २ देवदारु, ३ जटामांसी, ४ तगर, ५ सफेदचन्दन, ६ सौंफ, ७ खरेंटी की जड़, ८ कूट, ९ इलायची १० पत्थर का फल, ११ कमल, १२ ऋद्धि (ऋद्धि के अभाव में वाराहीकन्द), १३ मेदा (मेदा के अभाव में मुलहटी), १४ मुलहटी, १५ काकोली (काकोली के अभाव में असगन्ध) १६ जीवक (जीव के अभाव में विदारीकंद) ये सोलह औषधि एक एक कर्ष ले, सबका कल्क करके उस तेल में डाल के गौ के आरने उपलों की मन्दाग्नि से तेल को सिद्ध करे जब तेलमात्र शेष रहे, तब उतार के छान लेवे। इसको शतावरी तेल कहते हैं। यह तेल कृष्णात्रेय ऋषि ने कहा है। इसकी मालिश करने से पुरुष स्त्रियों को नित्य अत्यंत प्रीति के साथ भोगे तथा स्त्रियों के देह में लगाने से पुत्र की प्राप्ति होय और योनिशूल, अङ्गशूल, मस्तकशूल, पांडुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दंडापतानक वायु, दाहयुक्त तथा वातपित्तज्वर करके उत्पन्न स्त्रियों का प्रदर, पेट का फूलना और रक्तपित्त ये संपूर्ण रोग दूर हों॥१२९-१३७॥

अब वन में से शतावर लाने का प्रकार कहते हैं कि 'नारायणाय स्वाहा' इस प्रकार कहके और नमस्कार कर उत्तर की तरफ मुख करके खैर की कील के समान लकड़ी से शतावरों को खोदे तथा "सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा' इस प्रकार कहके और नमस्कार करके उसको उखाड़े और "कुमारजीवन्ये स्वाहा" ऐसे कहके और नमस्कार करके इसका पाक करे। इति शतावरीतैलम् ।

कासीसादितैल बवासीरपर

कासीसं लाङ्गली कुष्ठं शुण्ठी कृष्णा च सैन्धवम् ॥१३८॥ मनःशिलाश्वमारश्च विडङ्गं चित्रको वृषः । दन्ती कोशातकी बीजं हेमाह्वा हरितालकम् ॥१३९॥ कल्कैः कर्षमितैरेतैस्तैल-प्रस्थं विपाचयेत् । सुधार्कपयसी दद्यात्पृथगद्विपलसंमिते ॥१४०॥ चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक्प्रसाधयेत् । कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम् ॥१४१॥ क्षारवत्पातयत्येत-दर्शांस्यभ्यंगतो भृशम् । वलीर्न दूषयत्येतत् क्षारकर्मकरं स्मृतम् ॥१४२॥

अर्थ–१ हीराकसीस, २ कलयारी, ३ कूठ, ४ सोंठ, पीपल, ६ सैंधानमक, ७ मनशिल, ८ सफेद कनेर, ९ वायविडंग, १० चीते की छाल, ११ अडूसा, १२ दन्ती, १३ कडुई तोरई के बीज, १४ चौक और १५ हरताल, ये १५ औषधि एक कर्ष भर ले सबका कल्क करके तिल के १ प्रस्थ तेल में मिलाय देवे। थूहर का दूध तथा आक का दूध, ये दोनों दो दो पल ले, सबको तेल में मिलाय देवे और चौगुना गौ का मूत्र ले, इसको भी तेल में मिलाकर अग्नि पर चढ़ाय के पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे, यह तेल खरनाद ऋषि ने कहा है। इसे बवासीर के मस्सों पर क्षार लगाने के समान लगावें। इसके लेप से गुदा के भीतर के मस्से बिना उपद्रव के जड़ से उखड़ के गिर जावें और यह क्षार के समान गुदा की वलीको नहीं बिगाड़ता है।।१३८–१४२।।

पिण्डतल वातरक्तपर

मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः ।
पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमैरण्डं वातरक्तनुत् ॥१४३॥

अर्थ–१ मंजीठा, २ सारिबा, ३ रार, ४ मुलहटी, और ५ मोम इनको एक एक पल लेकर कल्क करे, चौगुना अरंडी का तेल लेकर पूर्वोक्त कल्क में मिलाय दे और पाक होने के वास्ते कल्क से चौगुना जल डाले। फिर अग्नि पर रख के तेल सिद्ध करे तथा इसमें मोम डाले, जब तेल मात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे, यह मल्हम जिस मनुष्य के वातरक्त रोग होय उसके लगावे तो वातरक्त रोग दूर होवें।।१४३।।

अर्क तेल खुजली और फोड़ा आदि पर

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ।
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विवर्चिकाम् ॥१४४॥

अर्थ–हल्दी का कल्क करके उस कल्क का चौगुना सरसों का तेल लेवे। उसमें कल्क को मिलाकर तथा तेल से चौगुना आक के पत्तों का रस डाल के तेल को परिपक्व करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे, इसको देह में लगाने से खुजली, कच्छू, दाद, फूटकर दरा पड़ जावें और विचर्चिका रोग दूर होयँ।।१४४।।

मरिचादितैल कुष्ठादिकोंपर

मरिचं हरितालं च त्रिवृतं रक्तचन्दनम् ॥१४५॥ मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च । विशाला करवीरं च

कुष्ठमर्कपयस्तथा ।।१४६।। तथैव गोमयरसं कुर्यात्कर्षमिता-न्पृथक् । विषं चार्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतैलकम् ।।१४७।। गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्जलं च द्विगुणं भवेत् । मरिचाद्यमिदं तैलं सिध्मकुष्ठहरं परम् ।।१४८।। जयेत् कुष्ठानि सर्वाणि पुण्डरीकं विचर्चिकाम् । पामां सिध्मानि रक्तं च कण्डूं कच्छूं प्रणाशयेत् ।।१४९।।

अर्थ–कालीमिरच, २ हरताल, ३ निशोथ, ४ लालचन्दन, ५ नागरमोथा, ६ मैनसिल, ७ जटमांसी, ८ हल्दी, ९ दारुहल्दी, १० देवदारु, ११ इन्द्रायन की जड़, १२ कनेर की जड़, १३ कूट, १४ आक का दूध, १५ गौ का गोबर का रस, ये पंद्रह औषधि एक एक कर्ष लेवे तथा शुद्ध किया हुआ वच्छनागविष आधा पल लेवे। सबको एकत्र पीस कल्क करके सरसों के १ प्रस्थ तेल में मिला दे। तथा तेल से दुगुना गोमूत्र और पानी डाल के औटावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसकी देह में मालिस करने से सिध्म, कुष्ठ आदि सम्पूर्ण कुष्ठ दूर हों। पुण्डरीकनामक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ और फोडा ये संपूर्ण रोग दूर होवें।।१४५-१४९।।

त्रिफलातैल व्रणपर

त्रिफलारिष्टभूनिम्बं द्वे निशे रक्तचन्दनम् ।
एतैः सिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यञ्जने हितम् ।।१५०।।

अर्थ–१ हरड़, २ बहेड़ा, ३ आंवला, ४ नीम की छाल, ५ चिरायता, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी और ८ लालचंदन इनका कल्क करके तथा कल्क से चौगुना तिल का तैल लेवे, इसमें कल्क को डाले। कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते कल्क से चौगुना जल डाल के औटावे, जब केवल तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जिस मनुष्य के अंग पर बहुत व्रण (फोड़े) हों तथा मुंडे में फोड़ा होवें, उसमें लगावे तो सब व्रण दूर हों।।१५०।।

निम्बबीजतैल पलितरोगपर

भावयेन्निम्बबीजानि भृङ्गराजरसेन हि । तथासनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः ।।१५१।। अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम् ।

अर्थ–नीम के बीजों में भांगरे के रस का पुट दे तथा विजयसार की छाल के रस की पुट देवे। फिर उनका यंत्र द्वारा तेल निकाल लेवे। इस तेल की नस्य लेवे और पथ्यमें गौ का दूध और भात देवे तो जिस जिस मनुष्य के अकाल में सफेद बाल हो गये वे तत्काल काले भौरे के समान हो जावें।।५१।।

मधुयष्टीतेल बाल आने पर

यष्टीमधुकक्षीराभ्यां नवधात्रीफलैः भृतम् ।।१५२।।
तैलं नस्यकृतं कुयात्केशाञ्श्मश्रूणि सर्वशः ।

अर्थ–मुलहटी और नवीन गीले आंवले इन दोनों को कल्क करें, तथा कल्क से चौगुने तिलों का तेल लेवे, कल्क को मिलाके तैल चौगुना गौ का दूध तथा कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तैल

से चौगुना डाले, सबको एकत्र कर अग्नि पर चढ़ाय कर पाक करे, जब तेल शेष रहे तब उतार कर तेल को छान ले। इसकी नस्य देने से इस प्राणी के मस्तक के तथा मूंछ डाढ़ी के बाल जो उड़ गये हैं वे जम ज़ावें।।५२।।

करञ्जादितैल इन्द्रलुप्तपर

करञ्जश्चित्रको जाती करवीरश्च पाचितम् ।।१५३।।
तैलमेभिर्द्रुतं हन्यादभ्याङ्गादिन्द्रलुप्तकम् ।

अर्थ–१ करंज की छाल, २ चीते की छाल, ३ चमेली के पत्ते, ४ कनेर की जड़, ये चार औषधि लेकर कल्क करे, तथा कल्क से चौगुना तिली का तेल ले, उसमें कल्क को मिलावे और कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तैल से चौगुना जल डाल के औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब छान के धर रखे। यह तेल जिस मनुष्य के मस्तक के अथवा डाढ़ी मूँछ के बाल जाते रहें (उस रोग को इन्द्रलुप्त कहते हैं) उस पर लगाने से तत्काल बाल जम जावें।।१५३।।

नीलकादितैल पलितदारुण आदि रोगोंपर

नीलिका केतकीकन्दं भृंगराजः कुरण्टकः ।।१५४।। तथाऽर्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात्कुसुमान्यपि । कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा ।।१५५।। अयोरजः प्रियंगुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका । त्रिफला पद्मपङ्कश्च कल्कैरेभिः पृथक्पृथक् ।।१५६।। कर्षमात्रं पचेत्तैलं त्रिफलाक्वाथसंयुतम् । भृंगराजरसेनैव सिद्धंकेशस्थिरीकृतम् ।।१५७।। अकालपलितं हन्ति दारुणं चोपजिह्विकाम् ।

अर्थ–१ नील के पत्ते, २ केतकी का कंद, ३ भांगरा, ४ पियावांसा, ५ कोहवृक्ष के फूल, ६ विजयासार, ७ काले तिल, ८ तगर, ९ कंदसहित कमल, १० लोहचूर्ण, ११ फूलप्रियंगु, १२ अनार की छाल, १३ गिलोय, १४ हरड, १५ बहेडा, १६ आंवला और १७ कमलसम्बन्धी कीच ये सत्रह औषधि एक एक प्रमाण लेवे। कल्क करके कल्क का चौगुना तिल का तेल लेवे। उसमें वह कल्क डाल के तेल से चौगुना त्रिफला का काढ़ा तथा भांगरे का रस मिलाय के औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको बालों में लगावे तो जमकर दृढ़ होवे। जिस प्राणी के बाल कुसमय मेंसफेद हो गये हों वह इस तेल के लगाने से काले हो जावें और मस्तक में जो दारुण रोग होता है वह उपजिह्व रोग ये दूर होवे। यह बालों में लगाने से कल्प के समान चमत्कार दिखाता है।।१५४-१५७।।

भृङ्गराजतैल पलितादिरोगों पर

भृंगराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् ।।१५८।।
सारिवां च पचेत्कल्कस्तैलं दारुणनाशनम् ।
अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत् ।।१५९।।

अर्थ–१ लोह की कीट, अर्थात् मल, २ हरड, ३ बहेड़ा, ४ आंवला और ५ सारिवा, इनका कल्क करे। इस कल्क से चौगुना तिल का तेल लेकर उसमें कल्क को मिलाकर भांगरे का रस डाल के पकावे। जब तेलमात्र शेष रहे, तब उतार के छान लेवे। इस तेल को मस्तक में लगाने से दारुण रोग दूर हो तथा जिस मनुष्य के छोटी अवस्था में सफेद बाल हो गये हों वे इस तेल को लगाने से काले हों, कंडुरोग दूर हों, मस्तक के, दाढ़ी के और मूँछों के बाल जो झड़ गये हों, जिस ठौर

चिकनी हो गई हों, उस जगह पर भी बाल जम जावें, वही यह कल्प है।।१५८।।१५९।।

अरिमेदादितैल मुखदन्तादिरोगोंपर

अरिमेदत्वचं क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् । जले द्रोणे ततः क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ।।१६०।। तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैकर्षामितैः पचेत् ।। अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः ।।१६१।। मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः । त्वग्जातिफलकर्पूर कंकोलखदिरैस्तथा ।।१६२।। पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः । कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ।।१६३।। प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम् । शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदंतकम् ।।१६४।। दंतस्पुरणदौर्गन्ध्ये, जिह्वाताल्वोष्ठजां रुजम् ।

अर्थ–काले खैर की छाल १०० पल को जौकुट करके १ द्रोण जल डाल के औटावे, जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार के छान ले उसमें तिल का तेल आधा आढ़क डाले इसमें चूर्ण करके डालने की औषधि इस प्रकार ले १ काले खैरकी छाल, २ लौंग, ३ गेरू, ४ अगर, ५ पद्माख, ६ मंजीठ, ७ लोध, ८ मुलहटी, ९ लाख, १० नागरमोथा, ११ वड की छाल, १२ दालचीनी, १३ जायफल, १४ कपूर, १५ कंकोल, १६ सफेद खैर की छाल, १७ पतंग, १८ धाय के फूल, १९ इलायची, २० नागकेशर और २१ कायफल, ये इक्कीस औषधियां एक एक कर्ष लेवे। इनका कल्क करके उनको १ प्रस्थ तेल में मिलाय के औटावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको मुखसम्बन्धी पीड़ा पर, दातों की सूजन होने से लाल हो जावें, उस पर श्यावदन्तरोग, दातों से शीतल रूखा खट्टा पदार्थ तथा घोर वायु न सही जावे, ऐसा प्रहर्ष नामक दंतरोग है, उस पर तथा दंतविद्रधिपर, दंतसबंधी, रक्तकृमिरोग, इनके दुष्ट होने से डाढ़ों में काले छिद्र होकर उनसे राध आदि निकलना, उस पर कृमिदन्त के रोग पर, दन्तस्फुटन रोग, दांतो में दुर्गन्ध का आना तथा जीभ तालु होंठ इनके रोग पर भी लगावे तो ये संपूर्ण विकार दूर होवें।।१६०-१६४।।

जात्यादितैल नाडीव्रणादिकोंपर

जातिनितम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः ।।१६५।। सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी । मंजिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम् ।।१६६।। तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य दापयेत् । एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।।१६७।। नाडीव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु । सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धेषु चैव हि ।।१६८।। नखदन्तक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते ।

अर्थ–चमेली, नीम, परवल, और कंजा इनके कोमल कोमल पत्ते और मोम, मुलहटी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मञ्जीठ, पद्माख, लोध, हरड, नीलकमल, सारिवा, अमलतास बीज ये सब एक एक तोला लेवे। सबका चूर्ण करके १ प्रस्थ तिलों के तेल में इनको पूर्वोक्त विधि से पचावे।

इस तेल की मालिश से नाड़ीव्रण (नासूर), फोड़ा, जखम, शस्त्रप्रहारजन्य, घाव, दग्ध, व्रण, नखदन्तादिक से हुआ व्रण इत्यादि सब होवें॥१६५-१६८॥

हिंग्वादितैल कर्णशूलपर

हिङ्गुतुम्बरुशुण्ठीभिः कटुतैलं विपाचयेत् ॥१६९॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति ।

अर्थ–१ हींग, २ धनियां, ३ सोंठ। इनका कल्क करके उस कल्क से चौगुना सरसों का तेल लेकर उसमें कल्क को मिलावे और कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तेल से चौगुना जल डाले। सबको मिलाय के पाक करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको कान में डाले तो कर्णशूल दूर होय॥१६९॥

बिल्वादितैल बधिरतापर

बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥१७०॥
साजक्षीरं च नीरं बाधिर्यं हन्ति पूरणात् ।

अर्थ–कोमल २ बेल के फलों को गोमूत्र में पीसकर कल्क करे, उस कल्क का चौगुना तिलों का तेल ले, उसमें बेलफल के कल्क को मिलावे। तथा तेल से चौगुना बकरी का दूध, एवं कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तेल से चौगुना जल डाले। फिर चूल्हे पर चढ़ाय के परिपाक करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको कान में डाले तो बहरापन दूर होवे॥१७०॥

क्षारतैल कर्णस्रावादिकोंपर

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारः क्षारयुतं तथा ॥१७१॥ लवणानि च पञ्चैव हिङ्गु शिग्रु महौषधम् । देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पा रसाञ्जनम् ॥१७२॥ ग्रन्थिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक् । तैलं प्रस्थं च विपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥१७३॥ रसाभ्यां मधुसूक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च। पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन् ॥१७४॥ अन्यांश्च कर्णजान् रोगान् मुखरोगांश्च नाशयेत् ।

अर्थ–१ कोमल मूलियों का खार, २ सज्जीखार, ३ जवाखार, ४ सेंधानमक, ५ संचरनमक, ६ समुद्र का नमक, ७ विडनोन, ८ बांगडा का खार, ९ हीग, १० सहँजने की छाल, ११ सोंठ, १२ देवदारु, १३ सौंफ, १४ वच, १५ रसोता, १६ पीपरामूल, १७ नागरमोथा ये सत्रह औषधि एक एक कर्ष लेकर सबका कल्क करे। उस कल्क का चौगुना तिल का तेल लेकर इसमें कल्क को मिलावे और तेल से चौगुना केला के कंद का रस तथा विजोरे का रस, एवं मधुसूक्त ये उस तेल में मिलाकर चूल्हे पर चढ़ाय के पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसको कान में डालने से कान से राध का बहना दूर होय तथा कर्णनाद, कर्णशूल और बधिरता (बहरापन) दूर होय। इसके सिवाय और जो अनेक प्रकार के कर्णरोग उत्पन्न होते हैं वे तथा मुख के रोग इससे दूर होते हैं॥१७१-१७४॥

पाठादितैल पीनसरोगपर

पाठा द्वे च निशे मूर्वा पिप्पली जातिपल्लवैः ।।१७५।।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद्दुष्टपीनसे ।

अर्थ–१ पाठे की जड़, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ मूर्वा, ५ पीपल, ६ चमेली के पत्ते, ७ दंती की जड़, ये सात औषधि समान भाग ले कल्क करे। उस कल्क का चौगुना तिलों का तेल लेके कल्क मिलाय देवे। तथा कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तैल से चौगुना जल मिलावे फिर चूल्हे पर चढ़ाय के मन्दाग्नि से पचावे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इसकी नस्य देवे तो घोर दुर्धर पीनस का रोग दूर होवे।।१७५।।

व्याघ्रीतैल पूय और पीनसरोगपर

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैन्धवैः ।।१७६।।
कल्कैश्च पाचितं तैलं पूतिनासागदापहम् ।

अर्थ–१ कटेरी, २ दन्ती की जड़, ३ वच, ४ सहँजने की छाल, ५ तुलसी के पत्ते, ६ सोंठ, ७ काली मिरच, ८ पीपर और ९ सैंधानमक। इनको समान भाग ले कल्क करे। कल्क से चौगुना तिल्ली का तेल लेवे उसमें कल्क को मिला देवे। तथा कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तेल से चौगुना जल मिलावे। फिर उसका मंदाग्नि पर पचन करे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जिस मनुष्य के नाक में पीनस रोग होने से राध बहती होय उसको इसकी नस्य देवे तो पीनस का रोग दूर होय।।१७६।।

कुष्ठतैल छींक आनेपर

बिल्वकणाशुण्ठीद्राक्षाकल्ककषायवत् ।।१७७।।
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ।

अर्थ–१ कूठ, २ कोमल, बेलफल, ३ पीपल, ४ सोंठ, ५ दाख, ये पांच औषधि समान भाग ले कल्क करके उस कल्क के चौगुना तिलों का तेल अथवा घी ले उसमें कल्क को मिला दे, कल्क का उत्तम पाक हांने के वास्ते तेल से चौगुना जल मिलावे। फिर उसको मंधरी अग्नि से सिद्ध करे। जब तेल मात्र शेष रहे तब उतार कर छान लेवे। इस तेल को जिस प्राणी को अत्यंत छींक आती होय उसकी नाक में डालने से बहुत छींक का आना बन्द होय।।१७७।।

गृहधूमादितैल नासार्शपर

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।।१७८।।
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ।

अर्थ–१ चूल्हे के ऊपर का धूआं, २ पीपल, ३ देवदारु, ४ जवाखार, ५ करंज की छाल, ६ सेंधानमक और ७ ओंगा के बीज ये सात औषधि समान भाग ले कल्क करे। कल्क का चौगुना तिल का तेल लेके उसमें कल्क को मिलाय देवे, तथा कल्क का उत्तम पाक होने के वास्ते तेल से चौगुना जल डाले। फिर मधुरी अग्नि से सिद्ध करे। जब केवल तेलमात्र शेष रहे तव उतारके छान लेवे। इसका जिस मनुष्य की नाक में मांस का मस्सा होय उसको नस्य देवे तो मस्सा टूटके गिर जावे। इस नाक के मस्से को नासार्श अर्थात् नाक की ववासीर कहते हैं।।१७८।।

वज्रीतैल सर्वकुष्ठोंपर

वज्रीक्षीरं रविक्षीरं दलं [illegible]कम्॥१७९॥ महिषीविट्-

भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम् । पचेत्तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे ॥१८०॥ तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम् । गन्धकाग्निशिलातालं विडङ्गातिविषाविषम्॥१८१॥ तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचामांसीकटुत्रयम् । पीतदारु च यष्टयाह्वं सर्जिकाक्षारजीरकम् ॥१८२॥ देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत् । वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यङ्गात्सर्वकुष्ठनुत् ॥१८३॥

अर्थ—थूहर का दूध, आक का दूध, धतूरे का रस, चीते का रस, भैंस के गोबर का रस, ये संपूर्ण रस समान भाग, तथा तिलों का तेल सब रसों के समान ले इसमें पूर्वोक्त रसों का शेष मिलायके मंदाग्निपर पचन करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब तेल से चौगुना गोमूत्र डालके औटावे। जब तेलमात्र रहे तब उतारके छान लेय। फिर इसमें १ गन्धक, २ चीते की छाल, ३ मैनसिल, ४ हरताल, ५ वायविडंग, ६ अतीस, ७ शुद्ध किया हुआ सिंगिया विष, ८ कडुई तोरई, ९ कूट, १० वच, ११ जटामांसी, १२ सोंठ, १३ कालीमिरच, १४ पीपल, १५ दारुहल्दी, १६ मुलहटी, १७ सज्जीखार, १८ जीरा, १९ देवदारु ये उन्नीस औषधि एक एक कर्ष ले सबका चूर्ण करके उस तेल में मिलाय के तेल की मालिश करे तो संपूर्ण कुष्ठ दूर होवे।।१७९–१८३।।

करवीरादितैल लोमशातनपर

करवीरशिखादंती त्रिवृत्कोशांतकीफलम् ।
रंभाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥१८४॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने तैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥

अर्थ—१ कनेर की जड़, २ दंतीकी जड़, ३ निसोथ और ४ कडुई तोरई इनका कल्क करके उसमें चौगुना तिलों का तेल मिलाय दे फिर केलाके कंद की राख करके उसका क्षार निकाल लेवे। उस क्षार को तेल से चौगुना जल डाल के औटावे, जब तेलमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। इस तेल को जिस जगह के बाल दूर करने हों उस जगह लगावे तो बाल उखड़कर गिर जावें।।१८४।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिकाहिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः १०

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्सन्धितं भवेत् । आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम् ॥१॥ यदपक्वौषधाम्बुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः । अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम् ॥२॥ अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलां गुडम् । क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम् ॥३॥ ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः ।

सिद्धः पक्वरसः सीधुः सम्पक्वमधुरद्रवैः ॥४॥ परिपक्वान्नसंधानसमुत्पन्नां सुरां जगुः । सुरामण्डः प्रसन्नः स्यात्ततः कादम्बरी घनः ॥५॥ तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्धनः । पुक्कसो हृतसारः स्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ॥६॥ यत्तालखर्जूररसैः सन्धिता सा हि वारुणी । कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥७॥ यत्र द्रवेऽभिषूयन्ते तच्छूक्तमभिधीयते । विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवेः ॥८॥ विनष्टः सन्धितो यस्तु तच्चुक्रममिधीयते । गुडांबुना सतैलेन कन्दमूलफलैस्तथा ॥९॥ सन्धितं चाम्लतां यातं गुडसूक्तं तदुच्यते । एवमेवेक्षुसूक्तं स्यान्मृद्वीकासम्भवं तथा ॥१०॥ तुषाम्बु सन्धितं ज्ञेयमामैर्विदालितैर्यवैः । यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं सन्धितं भवेत् ॥११॥कुल्माषधान्यमण्डादि सन्धितं कांजिकं बिदुः । शण्डाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥१२॥

अर्थ–जल आदि द्रव (पतले) पदार्थों में औषध को भिगो देवे। फिर उसके मुख को बंद कर मुद्रा देकर १ महीने या १५ दिन तक उसी रीति से धरा देवे तो उत्कृष्ट औषध हो। वह आसव अरिष्ट इत्यादि भेदों से प्रसिद्ध है, ये सब भेद इस प्रकार जानने–१ जल और औषध इनका बिना पाक किये ही पूर्वोक्त रीति से सिद्ध करे उसको 'आसव' कहते हैं। २ काढा करके उसमें औषधि को डाल के पूर्वोक्त रीति से सिद्ध किया जावे उसको 'अरिष्ट' कहते हैं। इनकी मात्रा १ पलप्रमाण। जिस अरिष्ट के प्रयोग में जलादिकों का मान (तोल) नहीं कहा, उसमें जलादिक सब पदार्थ एक द्रोण डालने चाहिये, और उसमें गुड १ तुला (१००) पल डालके तथा शहद अर्ध तुला (५०) पल डाले। एवं यदि औषधियों का चूर्ण डालना होय तो गुड के दशमांश डाल के अरिष्ट को सिद्ध करे। ३ अपक्व ईख के रस आदि मधुर पदार्थों से सिद्ध किये हुए मद्य को 'शीतरस सीधु' कहते हैं। ४ ईख आदि सधुर द्रव पदार्थों को पकाय के जो मद्य बनाते हैं उसको 'पक्वरसं–सीधु' कहते हैं। ५ तंडुल (चावल) आदि धान्य को उबालके अग्नि-संयोग करके यंत्र द्वारा जो मद्य बनाते हैं उसको शास्त्र में 'सुरा' (दारु) कहते हैं। ६ उस सुरा के घन (संघट्ट) भाग को 'कादंबरी' कहते हैं। और ७ उस सुरा के नीचे भाग में जो द्रव (पतला) पदार्थ है उसको 'जगल' कहते हैं। ८ उस जगल में जो घन (गाढा) भाग है उसको 'मेदक' कहते हैं। ९ मेदक का सार (सत्त्व) निकले हुए भाग को 'पुक्कस' कहते हैं। १० सुराबीज को 'किण्वक' कहते हैं। ११ ताड अथवा खजूर के रस से अग्निसंयोग यन्त्र द्वारा जो रस खींचते हैं उसको 'मद्य' और 'वारुणी' कहते हैं। लौकिक में इसको 'ताडी' और 'खिजूरी दारू' कहते हैं। १२ कन्दमूल फलादिको उबाल के तैलादिक स्नेह करके मिश्रित कर जल अथवा सिरका आदि में डालते हैं उसको 'सूक्त' कहते हैं और लौकिक में इसको 'आचारसंधान' कहते हैं। १३ जो मद्य विना खटाई के आये अथवा विना खट्टे हुए मधुर द्रव पदार्थों को पात्र में भरके उनका मुख बंद कर उस पर मुद्रा देकर १ महीने या पंद्रह दिन धरा रहने से सिद्ध हुई उस मद्य को 'चुक्र' कहते हैं। १४ गुड, जल, तेल, कंद, मूल और फल इन सबको किसी पात्र में भरके उसके मुख को बन्द कर मुद्रा देकर महीने या पक्ष मात्र धरा रहने देवे। जब खट्टा हो

जाय तब अपने कार्य में लावे, उसे 'गुडसूक्त' कहते हैं। इसी प्रकार ईख और दाख का सूक्त बनाना चाहिये। १५ कच्चे जवों को भूनके किसी पात्र में भरके उसमें पानी डाल के उस पात्र के मुखपर मुद्रा देकर कुछ दिन धरा रहने दे उसको 'तुषांबु' कहते हैं। १६ जवों के तुष दूर करके उसको अग्नि पर पकावे। फिर उनमें पानी डाल के उस पात्र का मुख बन्दकर मुद्रा कर कुछ दिन धरा रहने देवे उसको 'सौवीर' कहते हैं। १७ कुलथी अथवा चावलों में पानी डाल के सिवाय उसका मंड (मांड) काढ़ा उसमें सोंठ, राई, जीरा, हींग, सैंधानमक, हल्दी इत्यादिक पदार्थ डालके मुख मूँद के मुद्रा लगाकर तीन दिन या चार दिन धरा रहने दे उसको 'कांजी' कहते हैं। १८ मूली को कतर के उसमें पानी डाल के हल्दी, हींग, राई, सेंधानमक, जीरा, सोंठ इत्यादिकों का चूर्ण डाल पात्र का मुख बन्द कर ३-४ दिन धरा रहने दे, उसको 'शंडाकी' कहते हैं। इस प्रकार आसव और अरिष्टादिकों की कल्पना जाननी।।३–१२।।

उशीरासव रक्तपित्तादिकोंपर

उशीरं बालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम् । प्रियंगु पद्मकं लोध्रं मञ्जिष्ठां धन्वयासकम् ।।१३।। पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुम्बरं शठीम् । पर्पटं पुण्डरीकं च पटोलं काञ्चनारकम् ।।१४।। जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसंमितान् । भागान्सुचूर्णितान् कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ।।१५।। धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् । शर्करायास्तुलां पक्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ।।१६।। मासं च स्थापयेद्भाण्डे मांसीमरिचधूपिते । उशीरासव इत्येष रक्तपित्तनिवारणः ।।१७।। पाण्डुकुष्ठप्रमेहार्शः कृमिशोथहरस्तथा ।

अर्थ–१ खस, २ नेत्रवाला, ३ लाल कमल, ४ कंभारी, ५ नीले कमल, ६ फूलप्रियंगु, ७ पद्माख, ८ लोध, ९ मंजीठ, १० धमासा, ११ पाठ, १२ चिरायता, १३ कुटकी, १४ बडकी छाल, १५ गूलर की छाल, १६ कचूर, १७ पित्तपापडा, १८ सफेद कमल, १९ पटोलपत्र, २० कचनार की छाल, २१ जामुन की छाल, २२ सेमर का गोंद ये बाईस औषध एक एक पल दाख बीस पल और धाय के फूल १६ पल इन सबका चूर्ण कर दो द्रोण जल में भिगो देवे, और खांड १ तुला डाले। एवं शहद १ तुला डाल के प्रथम उस पात्र में जटामांसी और काली मिरच की धूनी देकर सब वस्तु भरके मुख को खांम दे। उसको एक महीने पर्यन्त रहने देवे, पश्चात् मुद्रा को खोलके उस रस को छान के निकाल लेवे। इसको 'उशीरासव' कहते हैं। इसको पीवे तो रक्तपित्त, पांडुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग और सूजन ये सब रोग दूर होवें।।१६–१७।।

कुमार्यासव क्षयादिकोंपर

सुपक्वरससंशुद्धे कुमार्याः पत्रमाहरेत् ।।१८।। यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये । द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभांडे निधापयेत् ।।१९।। माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नेवतुलां क्षिपेत् । कटुत्रिकं लवङ्गं च चातुर्जातकमेव च ।।२०।। चित्रकं पिप्पलीमूलं विडंगं गजपिप्पली । चव्यकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी ।।२१।।

मुस्ताफलं त्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम् । मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलं पुष्करसम्भवम् ॥२२॥ बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम् । शतपुष्पा हिंगुपत्री ह्याकल्ल कमुटिङ्गणम् ॥२३॥ पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च ॥ एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम् ॥२४॥ पलंचार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम् । वपुर्वयं प्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम् ॥२५॥ बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम् । अष्टावुदरजान्रोगान् क्षयमुग्रं च नाशयेत् ॥२६॥ विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम् । मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥२७॥ कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः ।

अर्थ–पुराने घीगुवार के पट्ठे का रस १ द्रोण, पुराना गुड़ १०० पल, शहद और लोहचूर्ण ये दोनों औषध आधे तोले, १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, ४ लौंग, ५ दालचीनी, ६ पत्रज, ७ इलायची के दाने, ८ नागकेशर, ९ चित्रक, १० पीपरामूल, ११ वायविडंग, १२ गजपीपल, १३ चव्य, १४ ह्रीबेर (हाऊबेर), १५ धनियां, १६ सुपारी, १७ कुटकी, १८ नागरमोथा, १९ हरड, २० बहेड़ा, २१ आंवला, २२ देवदारु, २३ हल्दी, २४ दारुहल्दी, २५ मूर्वा, २६ प्रसारणी, २७ दन्ती, २८ पुहकरमूल, २९ खरेंटी, ३० नागबला, ३१ कौंच के बीज, ३२ गोखरू, ३३ सौंफ, ३४ हिंगुपत्री, ३५ अकरकरा, ३६ उटंगन के बीज, ३७ सफेद सोंठ (विषखपरा), ३८ सोंठ, ३९ सुवर्णमाक्षिक की भस्म, ये उन्तालीस औषध दो दो तोले लेवे। माक्षिकभस्म के सिवाय सबका चूर्ण करे। फिर ऊपर कही हुई औषधि तथा धाय के फूल ८ पल इनको एकत्र करके घी के चिकने बर्तन में भरके (१ महीने पर्यंत या पन्द्रह दिन) धरा रहने दे तो यह कुमार्यासव बन के तैयार होवे। इसको बलाबल विचार के १ पल अथवा आधा पल रोगी को देवे तो यह आसव रोगी को बल, वर्ण और अग्नि को बढ़ावे, शरीर को पुष्ट करे, पक्ति (परिणाम) शूल, सब प्रकार के उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग और रक्तपित्त इनको भी दूर करे॥१८-२७॥

पिप्पल्यासव क्षयादिरोगोंपर

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ॥२८॥ विडंगं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलवालुकम् । उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवङ्गं तगरं तथा ॥२९॥ मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियंगुर्नागकेशरम् । एषामर्धपलान् भागान् सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥३०॥ जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् । मूलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥३१॥ एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् । ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाययेदग्र्यपेक्षया ॥३२॥ क्षयगुल्मोदरे कार्श्यं ग्रहणीं

पाण्डुतां तथा । अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्या-सवस्त्वयम् ॥३३॥

अर्थ–१ पीपल, २ काली मिरच, ३ चव्य, ४ हलदी, ५ चीते की छाल, ६ नागरमोथा, ७ वायविडंग, ८ सुपारी, ९ लोध, १० पाढ़, ११ आंवले, १२ एलवालुक, १३ खस, १४ सफेद चन्दन, १५ कूट, १६ लौंग, १७ तगर, १८ जटामांसी, १९ दालचीनी, २० इलायची के दाने, २१ पत्रज, २२ फूलप्रियंगु और २३ नगकेशर ये तेईस औषध आधे पल लेवे। सबका बारीक चूर्ण करके द्रोण जल में डाल देवे और गुड़ तीन तुला डाले तथा धाय के फूल दश पल और दाख साठ पल इन दोनों को बारीक कूट के उसी जल में डाल देवे। फिर उस पात्र के मुख को बन्द करके एक महीने में धरा रहने दे, फिर उस मुद्रा को खोल के रस को निकाल लेवे। इसको पिप्पल्यासव कहते हैं, इसको जठराग्नि का बलाबल विचार के पीवे तो क्षट, गोला, उदर, शरीर की कृशता, संग्रहणी, पांडुरोग और बवासीर ये सब रोग दूर हों॥२८-३३॥

लोहासव पांडुरोगादिपर

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम्। विडंगं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यापलं पृथक् ॥३४॥ धातकी कुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् । चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥३५॥ दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा । घृत भाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्माषमात्रकम् ॥३६॥ लोहासवममुं मर्त्यः पिबेदग्निकरं परम् । पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ॥३७॥ कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम् । अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत् ॥३८॥

अर्थ–१ लोहभस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ हरड, ६ बहेड़ा, ७ आंवला, ८ अजमोदा, ९ वायविडंग, १० नागरमोथा, ११ चीते की छाल। ये ग्यारह औषध चार चार पल लेवे तथा धाय के फूल बीस पल लेकर सबका चूर्ण करे। ६४ पल शहद तथा गुड़ एक तुला (१०० पल) इन सबको एकत्र करके पूर्वोक्त औषधियों के चूर्ण को उसमें मिलाकर २ द्रोण जल में डालके किसी घी के चिकने पात्र में भरके मुख बन्द कर मुद्रा देकर १ महीने पर्यंत रखा रहने दे। पश्चात् मुद्रा खोल के निकाल लेवे। इसको लोहासव कहते हैं। इस आसव के सेवन करने से गुल्म (गोले का रोग), बवासीर, कोढ़ तथा पेट में जो बांई तरफ प्लीहा रोग होता है, वह खुजली, खांसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, संग्रहणी, हृदय रोग ये सब दूर होवें॥३४-३८॥

मृद्वीकासव ग्रहण्यादिरोगोंपर

मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् । द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ॥३९॥ तुले द्वे क्षौद्रखण्डाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च । कंकोलकं लवङ्गं च फलं जात्यास्तथैव च ॥४०॥ पलांशकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसराः । पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥४१॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य चन्दनागरु-धूपिते । कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्यां दीपनः परः ॥४२॥

अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्तस्य गुल्मनुत् । जठरकृमिकुष्ठानि व्रणानि विविधानि च । अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥४३॥

अर्थ-१०० पल मुनक्का (दाख) ले चार द्रोण जल मे औटावे। जब १ द्रोण शेष रहे तब उतार लेवे। जब शीतल हो जावे तब छान ले। फिर आगे लिखी हुई औषध इसमें डाले शहद और खाड प्रत्येक सौ सौ पल, धाय के फूल १ प्रस्थ और १ कंकोल, २ लौंग, ३ जायफल, ४ काली मिरच, ५ दालचीनी, ६ इलायची के बीज, ७ पत्रज, ८ नागकेशर, ९ पीपल, १० चीते की छाल, ११ चव्य, १२ पीपरामूल, १३ रेणुकाय। ये तेरह औषध एक एक पल लेवे। सबका चूर्ण करके चन्दन की धूनी दिये हुए घी के चिकने बासन में सबको भर देवे। मुख पर मुद्रा देकर पन्द्रह दिन धरा रहने दे तो यह द्राक्षासव बनके तैयार हो। इसको शुद्ध कपूर करके बासित करने से संग्रहणीवाले की अग्नि प्रदीप्त हो। उसी प्रकार बवासीर, उदावर्त्त, गोला, उदर, कृमिरोग, कोढ़, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग और गले के रोग दूर होवें॥३९-४३॥

लोध्रासव प्रमेहादिकोंपर

लोध्रं शठी पुष्करमूलमेला मूर्वा विडङ्गं त्रिफला यवानी । चव्यं प्रियङ्गुं क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणी च ॥४४॥ भार्ङ्गी नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं च कुष्ठातिविषां च पाठाम् । कलिङ्गकं केसरमिन्द्रसाह्वानंतासिपत्रं मरिचप्लवं च ॥४५॥ द्रोणेऽभसः कर्षसमांश्च पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे । रसार्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥४६॥ लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रंनिहन्याद्द्विपलप्रयोगात् । पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं बलासं विविधं च कुष्ठम् ॥४७॥

अर्थ-१ लोध, २ कचूर, ३ पुहकरमूल, ४ इलायची, ५ मूर्वा, वायविडंग, ७ त्रिफला, ८ अजवायन, ९ चव्य, १० फूलप्रियंगु, ११ सुपारी, १२ इन्द्रायन, १३ चिरायता, १४ कुटकी, १५ भारंगी, १६ तगर, १७ चीते की छाल, १८ पीपरामूल, १९ कूट, २० अतीस, २१ पाढ़, २२ इन्द्रजव, २३ नागकेशर, २४ कोह की छाल, २५ धमासा, २६ ईख, २७ काली मिरच और २८ क्षुद्रमोथा। ये अट्ठाईस औषध प्रत्येक एक एक तोला लेवे। सबका चूर्ण करके एक द्रोण जल में डाल के पकावे, फिर चतुर्थांश शेष रहने पर छाने, शीतल होने पर काढ़ के आधा भाग शहद मिलावे। पश्चात् घी के चिकने बासन में उसको भर के बासन में मुख पर मुद्रा देकर १५ दिन पर्यंत धरा रहने देवे तो यह लोध्रासव तैयार होवे। इसको देह का बलाबल विचार के दो पर्यंत देवे तो कफपित्त के विकार, प्रमेह पांडुरोग, बवासीर, अरुचि, संग्रहणी आदि अनेक प्रकार के कफ और सर्व प्रकार के कुष्ठरोग दूर होवें॥४४-४७॥

कुटजारिष्ट सर्वज्वरोंपर

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा ॥४८॥ मधुकं पुष्पकाश्मर्यो भागान् दशपलोन्मितान् । चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा

क्वाथे द्रोणावशेषिते ॥४९॥ धातक्या विंशतिपलं गुडस्य चतुलां क्षिपेत् । माषमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ॥५०॥ ज्वरान् प्रशमयेत्सर्वान् कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम् ।

अर्थ—कुड़े की जड़ १ तुला, १ दाख आधा तुला, महुए के फूल और कंभारी की जड़ दश दश पल लेवे। सबको जौ कूट करके ४ द्रौण जल में डाल के औटावे। जब १ द्रोण जल शेष रहे तब उतार के कपड़े से छान लेवे। उस जल में धाय के फूलों का चूर्ण २० पल डाले तथा गुड़ एक तुला डाल के सबको मिलाकर चिकने पात्रो में भर के मुख को बन्द कर मुद्रा देकर एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर मुद्रा को दूर करके इसको निकाल लेवे। इसे 'कुटजारिष्ट' कहते हैं। इस अरिष्ट के पीने से सर्वप्रकार के ज्वर दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होवे॥४८-५०॥

विडङ्गं ग्रंथिकं रास्नाकुटजत्वक्फलानि च ॥५१॥ पाठैलवालुकं धात्रीभागान् पञ्चपलान् पृथक् । अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥५२॥ पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम् । धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा ॥५३॥ प्रियंगुकाञ्चनाराणां सलोध्राणां पलं पलम् । व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥५४॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत् । ततः पिबेद्यर्थार्हं तु जयेद्विद्रधिमूर्ज्जितम् ॥५५॥ ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान् प्रत्यष्ठी-लाभगन्दरान् । गण्डमालां हनुस्तम्भं विडङ्गारिष्ट-संज्ञितः ॥५६॥

अर्थ—१ वायविडंग, २ पीपरामूल, ३ रास्ना, ४ कुड़े की छाल, ५ इन्द्रजौ, ६ पाढ़, ७ एलवालुक और ८ आमले। या आठ औषध पांच पांच पल लेवे, जौ कुट करके इसमें आठ द्रोण जल डाल के औटावे। जल एक द्रोण जब शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब ३०० तीन सौ पल शहद, बीस पल धाय के फूल, १ दालचीनी, २ छोटी इलायची के दाने, ३ पत्रज, ये तीन औषधि एक एक पल लेवे तथा १ सोंठ, २ काली मिरच, ३ पीपल, इन तीन औषधियों को मिलाय के आठ पल लेवे। इस प्रमाण से सब औषधियों को लेकर चूर्ण करे फिर उस काढ़े में मिलाकर इनको घी के चिकने बरतन में भरके वासन को मुख बन्द करे, फिर मुद्रा देकर १ महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर मुद्रा को दूर कर निकाल लेवे। इसको विडंगारिष्ट कहते हैं। इस अरिष्ट के पीने से विद्रधिरोग, उरुस्तम्भ रोग, पथरी का रोग, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, वादी का रोग, गंडमाला तथा हनुस्तंभ (वादी का रोग) इन सबको यह दूर करता है॥५१-५६॥

देवदार्वरिष्ट प्रमेहादिकोंपर

तुलार्धं देवदारुः स्याद्वासा च पलविंशतिः । मञ्जिष्ठेन्द्रयवा-दन्तीतगरं रजनीद्वयम् ॥५७॥ रास्नाकृमिघ्नमुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ । भागान् दश पलान् दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च ॥५८॥ चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च । भागानष्ट पलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥५९॥ द्रोणशेषे कषाये च पूते

शीते प्रदापयेत् । धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम् ॥६०॥ व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातस्य चतुष्पलम् । चतुष्पलं प्रियंगुश्च द्विपलं नागकेशरम् ॥६१॥ सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् । मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम् ॥६२॥ वातरोगान् ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत् । देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥६३॥

अर्थ–देवदारु ५० पल, अडूसा २० पल और १ मञ्जीठ, २ इन्द्रजौ, ३ दन्ती, ४ तगर, ५ हल्दी, ६ दारुहल्दी, ७ रास्ना, ८ वायविडंग, ९ नागरमोथा, १० शिरस, ११ खर की छाल, १२ कोह की छाल, ये बारह औषध दश दश पल लेवे। १ अजमोद, २ कुडे की छाल, ३ सफेद चन्दन, ४ गिलोय, ५ कुटकी, ६ चीते की छाल, ये छः औषधि आठ आठ पल लेवे। फिर सब औषधियों को कूट करके उसमें आठ द्रोण जल डाल के औटावे। जब एक द्रोणमात्र शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब आगे लिखी औषधियों को डाले। धाय के फूल १५ पल, शहद तीन तुला और सोंठ, मिर्च, पीपल, ये तीनों औषध मिलायकर दो पल लेवे। दालचीनी, इलाचयी के दाने, पत्रज, ये तीन औषध चार पल लेवे। फूलप्रियंगू और नागकेशर दो दो पल लेवे। सब औषधियों का चूर्ण करके उस काढ़ में डाल देवे। सहत को मिलाय के एकत्र कर घी के चिकने बासन में भर मुख बन्द कर मुद्रा देके रख दे, जब एक महीना हो जावे तब मुद्रा को खोलकर रस निकाल ले, इसको 'देवदार्वरिष्ट' कहते हैं, इसको पीवे तो घोर प्रमेह का रोग दूर हो तथा यह वादी का रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाह और कोढ़ के रोग को नष्ट करे ॥५९-६३॥

खदिरारिष्ट कुष्ठादिकोंपर

खादिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम् । बाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥६४॥ त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् । कषाये द्रोणशेषे च पूतशीते विनिक्षिपेत् ॥६४॥ तुलाद्वयं माक्षिकस्य पलैका शर्करा मता । धातुक्या विंशतिपलं कंकोलं नागकेशरम् ॥६६॥ जातीफलं लवङ्गैलात्वक्पत्राणि पृथक्पृथक् । पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात् पलचतुष्टयम् ॥६७॥ घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिबेत्ततः । महाकुष्ठानि हृद्रोगं पांडुरोगार्बुदे तथा ॥६८॥ गुल्मं ग्रन्थिं कृमीञ्श्वासं कासं प्लीहोदरं तथा । एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥६९॥

अर्थ–खैर की छाल ५० पल, देवदारु ५० पल, बावची १२ पल दारुहल्दी २० पल, हरड बहेड़ा और आमला ये तीनों मिला के २० पल। इस प्रकार सम्पूर्ण औषध लेकर जौकुट करके आठ द्रोण जल में डाल काढ़ा करे, जब एक द्रोणमात्र जल शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब इसमें से २०० पल शहद डाले। खांड १०० पल ले। धाय के फूल २० पल और १ कंकोल,

२ नागकेशर, ३ जायफल, ४ लौंग, ५ इलाचयी, ६ दालचीनी, ७ पत्रज, ये सात औषध एक एक पल और पीपल ४ पल, इस प्रकार सबको एकत्र करके चूर्ण कर उसको पूर्वोक्त काढ़ में मिलाय दे। फिर सबको घी के चिकने पात्र में भर मुख पर मुद्रा दे। १ महीने पर्यंत धरा रहने दे फिर बाद १ महीने के निकाल के पीवे तो इस खदिरारिष्ट से महाकुष्ठ, हृदयरोग, अर्बुदरोग, गोले का रोग, ग्रन्थी (गांठ) कृमिरोग, श्वास, खांसी, पेट में बाई तरफ होनेवाला फिया का रोग, ये सब दूर हों।।६४-६९।।

बब्बूलारिष्ट क्षयादिकोंपर

तुलाद्वयं च बब्बूल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत् । द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत् ।।७०।। धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा । जातीफलानि कंकोलमेलात्वक्प केशरम् ।।७१।। लवङ्गं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत् । मांसभाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत् ।।७२।। क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहं श्वासकासनुत् ।

अर्थ–बबूल (कीकर) की छाल दो तुला (२० पल) लेवे। इसको जौकुट करके ४ द्रोण पानी डाल के काढ़ा करे। जब एक द्रोण शेष रहे तब उतार के छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब गुड़ ३०० तीन सौ पल मिलावे। धाय के फूल सोलह पल डाले। पीपल २ पल और १ जायफल, २ कंकोल, ३ इलायची के दाने, ४ दालचीनी, ५ पत्रज, ६ नागकेशर, ७ लौंग, ८ काली मिरच एक एक पल प्रमाण लेवे। सबका चूर्ण कर उस काढ़े में डाल के सबको घी के चिकने बासन में भर के मुख पर मुद्रा दे १ महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर मुद्रा को दूर कर रस को छान के निकाल लेवे। इसको "बब्बूलारिष्ट" कहते हैं। इसको पीवे तो क्षय, कुष्ठ, अतिसार, प्रमेह, खांसी, श्वास इन सब रोगों को दूर करे।।७०-७२।।

द्राक्षारिष्ट उरःक्षतादिकोंपर

द्राक्षातुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत् सुधीः ।।७३।। पादशेषे कषाये च पूते शीते विनिक्षिपेत् । गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगलापत्रकेशरम् ।।७४।। प्रियंगुमरिचं कृष्णां विडङ्गं चेति चूर्णयेत् । पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भाण्डे निधापयेत् ।।७५।। स्थापयित्वा ततो मांसं ततो जातरसं पिबेत् । उरःक्षतं क्षयं हंति कासश्वासगलामयान् ।।७६।। द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः ।

अर्थ–मुनक्का (दाख) ५० पल लेवे। उसमें दो द्रोण पानी डाल के औटावे। जब चौथाई जल रहे तब उतार के कपडे से छान लेवे। जब शीतल हो जावे तब गुड़ दो तोला डाले। और एक दालचीनी, २ इलायची के दाने ३ पत्रज, ४ नागकेशर, ५ फूलप्रियंगू, ६ काली मिरच, ७ पीपल, ८ वायडिंग। ये आठ औषधि एक एक पल ले, सबका चूर्ण करे उस काढ़ में मिला देवे। फिर सबको एक चिकने पात्र में भर के मुख बन्द कर मुद्रा लेवे और उसको १ महीने (अथवा एक पखवारे) धरा रहने दे। सिद्ध होने के पश्चात् मुद्रा को दूर करके रस को छान के निकाल ले। इसको "द्राक्षारिष्ट" कहते हैं। इस अरिष्ट के पीने से उराक्षरोग, क्षयरोग, खांसी, श्वास और कंठ का रोग

दूर होय। यह बल बढ़ाता और मल को साफ करता है।।७३-७६।।

रोहितारिष्ट अर्शादिरोगोंपर

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।।७७।। पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम् । दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता ।।७८।। पञ्चकोलत्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत् । चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत् ।।७९।। मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति संक्षयम् । ग्रहणीं पांडुहृद्रोगप्लीह-गुल्मोदराणि च । कुष्ठशोफारुचिहरो रोहिता-रिष्टसंज्ञकः ।।८०।।

अर्थ–लाल रोहिडा १ तुला लेकर जौकुट करके चार द्रोण जल में डाल के काढ़ा करे। जब एक द्रोण जल शेष रहे तब उतारके छान लेवे। शीतल हो जाव तब इसमें गुड़ २०० पल मिलावे । धाय के फूल १६ पल, एवं १ पीपल, २ पीपरामूल, ३ चव्य, ४ चीते की छाल, ५ सोंठ, ६ दालचीनी, ७ इलायची के बीज, ८ पत्रज, ९ हरड, १० बहेडा और ११ आंवला ये ग्यारह औषधि एक एक पल ले, सबका चूर्ण करके पूर्वोक्त काढे में डाल के उसको किसी चिकने पात्र में भर मुखपर मुद्रा देकर एक महीने धरा रहने दे पश्चात् दूर करे इसको 'रोहितारिष्ट' कहते हैं। इसके पीने से बवासीर, संग्रहणी, पांडुरोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोले का रोग, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचिरोग ये सब दूर रोग होवें।।७७–८०।।

दशमूलारिष्ट क्षयप्रमेहादिकोंपर

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः । ।।८०।। पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते ।।८१।। दशमूलानि कुर्वीत भागैः पञ्चपलैः पृथक् । पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा ।।८२।। कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत् । पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा ।।८३।। खदिरो बीज सारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः । अष्टभिर्गुणितं कुष्ठं मञ्जिष्ठा देवदारु च।।८४।। विडङ्गं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा । चव्यं मांसी प्रियंगुश्च सारिवा कृष्णजीरकः ।।८५।। त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शठी । हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम्।।८६।। मुस्तामिन्द्रयवः शृङ्गी जीवकर्षभकौ तथा । मेदा चान्या महाभेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके ।।८७।। कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान् पचेदष्टगुणे जले । चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत् ।।८८।। चतुः षष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे । त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत् ।।८९।।

द्वात्रिंशत्पलकं क्षौद्रं दद्याद्गुडचतुः शतम् । त्रिंशत्पलानि धातक्याः कंकोलं जलचन्दनम् ॥९०॥ जातीफलं लवङ्गं च त्वगेलापत्रकेशरम् । पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक् ॥९१॥ शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निक्षिपेत् । भूमौ निखातयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिवेत् ॥९२॥ कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत् । ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम्॥९३॥ वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् । कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मंदाग्निमुदराणि च॥९४॥ शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत् । कृशानां पुष्टिजननो वंध्यानां गर्भदः परः । अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजः शुक्रबलप्रदः ॥९५॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
आसवारिष्टकल्पनानाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अर्थ–दशमूल प्रत्येक पांच २ पल, चीते की चाल २५ पल, पुहकरमूल २५ पल, लोध २० पल, गिलोय २० पल, आंवले १६ पल, धमासा १२ पल, खैर की छाल आठ पल, विजयसार ८ पल और हरड ८ पल। एवं १ कूठ, २ मंजीठ, ३ देवदारु, ४ वायविडंग, ५ मुलहठी, ६ भारंगी, ७ कैथ, ८ बहेडा, ९ पुनर्नवा, १० चव्य, ११ जटामांसी, १२ प्रियंगु, १३ सारिवा, १४ कालाजीरा, १५ निसोथ, १६ रेणुकबीज, १७ रास्ना, १८ पीपल, १९ सुपारी, २० कचूर, २१ हल्दी, २२ सौंफ, २३ पद्माख, २४ नागकेशर, २५ नागरमोथा, २६ इन्द्रजौ, २७ काकड़ासिंगी और २८ जीवक ऋषभक (इन दोनों के अभाव में विदारकन्द लेवे) २९ मेदा और महामेदा (इन दोनों के अभाव में मुलहटी लेवे), ३० काकोली और क्षीरकाकोली (इन दोनों के अभाव में असगन्ध लेवे) तथा ३१ ऋद्धि और वृद्धि (इनके अभाव में वारीहीकन्द लेवे। ये इकतीस औषधि दो दो पल लेवे। फिर सबको जौकूट करके सब औषधियों का आठ गुना जल मिलायके काढ़ा करे। जब चौथाई रहे तब उतार के छान ले और इसको किसी घी के चिकने पात्र में भर देवे। फिर दाख ६४ पल ले उसमें चौगुना पानी डाल के औटावे, जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे, तब उतार के छान लेवे। इसको भी पहले काढे में मिलाय देवै, पश्चात् ३१ पल शहद और ४०० चारसों पल गुड एवं ३० तीस पल धायके फूल डालने चाहिये। १ कंकोल, २ नेत्रवाला, ३ सफेद चन्दन, ४ जायफल, ५ लौंग, ६ दालचीनी, ७ इलायची के दाने, ८ पत्रज, ९ नागकेशर और १० पीपल ये दश औषध दो दो पल लेकर चूर्ण करके पूर्वोक्त काढ़े में मिला दे, फिर उस पात्र का मुख बन्द कर मुद्रा दे। इसको एक महिना अथवा पन्द्रह दिन पर्यंत पृथ्वी में गड़ा रहने देवे। जब उन औषधियों का उत्तम रस हो जावे तब उसको बाहर निकाल के मुद्रा करे। फिर इसमें निर्मली के बीजों का चूर्ण कर थोड़ा सा डाल देवे तो रस निर्मल हो जावे। इसको 'दशमूलारिष्ट' कहते हैं इस अरिष्ट के पीने से संग्रहणी, अरुचि, श्वास, खांसी, गोला, भगन्दर, वादी का रोग, क्षयरोग, मवन, पांडुरोग, नेत्रों का कामला रोग, कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा (पथरी का भेद), मूत्रकृच्छ्र और धातुक्षय

ये संपूर्ण रोग दूर होवें। यह अरिष्ट दुर्बल मनुष्य को पुष्ट करे और वन्ध्या स्त्री को पुत्र देवे, तेज धातु (वीर्य) और बल देता है।।८१-९५।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका-हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे दशमोऽध्यायः ।।१०।।

अथैकादशोऽध्यायः ११

स्वर्णादिधातु और उनका शोधन

स्वर्णतारंताम्रमारं नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम् । धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्ताञ्छोधयेद् बुधः ।।१।। स्वर्णतारारताम्राणां पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्। निषिं-चेत्तप्ततप्तानितैले तक्रे च काञ्चिके ।।२।। गोमूत्रे च कुलत्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा । एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिःसम्प्रजायते।।३।। नागवङ्गौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत् । त्रिधात्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेन च त्रिधा ।।४।।

अर्थ-१ सुवर्ण, २ रूपा (चांदी), ३ तांबा, ४ जस्त[६९], अथवा पीतल, ५ शीशा, ६ रांग और ७ पोलाद लोह आदि इस सातों को धातु[७०] कहते हैं। ये सातों पर्वत से उत्पन्न होती हैं इससे उनमें थोड़ा बहुत मैल रहता है, इस वास्ते इनका बुद्धिमान् वैद्य शोधन इस प्रकार करे कि-सुवर्ण (सोना) रूपा जस्त ताम्र (तांबा) इनको बारीक कंटकवेधी पत्र कर अग्नि में बारंबार तपा तपाकर तेल, छाछ, कांजी[७१], गोमूत्र और कुलथी का काढा इन प्रत्येक में तीन २ बार बुझावे। इस प्रकार सुवर्णादि सात धातुओं की शुद्धि होती है। शीशा और रांगा ये दोनों धातु नरम हैं, इसलिये इनकी विशेष शुद्धि कहते हैं। शीशे और रांगे को अग्नि में तपावे। जब गल जावे तब तैलादिकोमें तीन २ बार बुझा (गेर) देवे। तथा आकके दूध में गलया २ के बुझावे तो इनकी शुद्धि[७२] हो जाती है।।१-४।।

सुवर्ण भस्म की प्रथम विधि

स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् । तद्गोलके समं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ।।५।। गोलकं च ततो रुन्ध्याच्छरावदृढसंपुटे। त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुभटान्येवं चतुर्दश ।।६।। निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ।

अर्थ-सुवर्ण का बारीक चूर्ण करके १ भाग और शुद्ध किया हुआ पारा २ भाग ले, दोनों को खरल में डालके कागदी नींबू के रस में खरल करे। जब सम्पूर्ण पारा सुवर्ण के बुरादेपर चढ़ जावे और उसको गोलासा बँध जावे तब गोला के समान भाग शुद्ध की हुई आंवलासार गन्धक का बारीक चूर्ण कर फिर मिट्टी के दो शराब ले, प्रथम शराब में आधी गन्धक को बिछाय के उस पर उस सुवर्ण और पारे के गोले को रख देवे फिर बाकी गन्धक जो बची है उसको उस गोले के ऊपर बुरकके दूसरे शराब से बंद कर देवे और इसके ऊपर सात कपड़ मिट्टी करे, फिर ३० आरने उपलों को आधे नीचे रखे और आधे ऊपर रखे बीच में सम्पुट रख फूंक देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब सम्पुट से उसको निकाल के फिर पारे में घोटे और फिर इसी प्रकार आंच देवे। इस प्रकार १४

चौदह आंच देवे तो सुवर्ण की निरुत्थ भस्म हो जायगी। अर्थात् फिर घृत सुहागे आदि डालने से भी नहीं जीवेंगी। यह सुवर्णमारण की प्रथम विधि कही है॥५॥६॥

सुवर्णमारण की दूसरी विधि

कांचनं गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् ॥७॥ चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा च गोलकम् । गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥८॥ शरावसम्पुटे धृत्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः । एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥९॥

अर्थ–सुवर्ण को अग्नि के संयोग से पिघलाकर उसमें सोलहवां हिस्सा शीशा डाल के ढाल देवे, फिर उसका रेती से चूर्ण करके नीबू के रस में खरलकर गोला बनावे। उस गोले के समान भाग शुद्ध गंधक लेकर चूर्ण करे। मिट्टी के दो शराब लेकर एक शरावे में आधा गन्धक नीचे बिछावे और आधा ऊपर बिछावे, बीच में उस गोले को रखके दूसरे शरावे से मुख बन्द करके कपड़मिट्टी कर तीस आरने उपलों की आंच में रखके फूंक देवे। इस प्रकार बारंबार घोटे और बारंबार अग्नि देवे। ऐसे सात अग्नि देने से सुवर्ण की उत्तम भस्म होती है और यह मित्रपंचक मिलाकर अग्नि देने से भी निरुत्थ भस्म रहती है॥७–९॥

सुवर्ण की तीसरी विधि

कांचनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगंधयोः। कज्जल्या हेमपत्राणि लेपयेत्सममात्रया ॥१०॥ कांचनारत्वचः कल्कं मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् । धृवा तत्संपुटे गोलं मृन्मुषासंपुटे च तत् ॥११॥ निधाय संधिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोमयैः । वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दद्यात्पुटत्रयम् ॥१२॥ निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत् । कांचनारप्रकारेण लांगली हंति कांचनम् ॥१३॥ ज्वालामुखी यथा हन्यात्तथा हन्ति मनःशिला ।

अर्थ–पारा और गंधक दोनों समान भाग लेवे, दोनों को खरल में डाल कचनार के रस में खरल करके कजली करे। उस कजली को समान भाग सुवर्ण के पत्रों पर लेप करे, फिर कचनार की छाल को पीस कल्क करके उसकी दो मूषा बनावे। उस एक मूषा में सोने के पत्र रख के उस पर दूसरी मूषा को रख दोनों की संधि मिलाकर गोला बनावे। उस गोले को मिट्टी के शरावे में रख दूसरे शराव से बंद करके कपड़ामिट्टी कर देवे। फिर धूप में सुखाय तीव्र आरने उपलों की अग्नि देवे। इस प्रकार तीन अग्नि के पुट देवे तो सुवर्ण की उत्तम निरुत्थ भस्म हो जाती है। यह भस्म संपूर्ण रोगों पर देनी चाहिये। इसी प्रकार कलयारी के रस में पारे गन्धक को खरल कर कजली करे और सुवर्ण के पत्रों पर लेप कर कलयारी की मूषा में रख शराव संपुट में धर के फूंक देवे तो सुवर्ण की भस्म होय जैसे ज्वालामुखी के रस में घोट पत्रों पर लेपकर मूषा में रख शराब संपुट में फूंके तो भस्म हो जाती है वैसे ही मनशिल में कजली कर लेप करे और मूषा द्वारा शरावसंपुट में फूंक देय तो भी सुवर्ण की उत्तम भस्म हो जाती है॥१०–१३॥

सुवर्णभस्म की अन्य विधि

शिलासिंदूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः ॥१४॥ सप्तैव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः । ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः ॥१५॥ पुनर्धमेदतितरां तथा कल्को विलीयते । एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत् ॥१६॥

अर्थ–मनसिल और सिंदूर समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके आक के दूध में खरल कर धूप में सुखा लेवे इस प्रकार सात भावना देवे। फिर सुवर्ण को गलाकर उस सुवर्ण के समान ऊपर लिखा मनशिल और सिन्दूर चूर्ण डाले जब यह चूर्ण मिलकर नष्ट हो जावे तब तक अग्नि में रख धौंकनी से अत्यन्त घुमावे। फिर समान भाग मनशिलादिकों का चूर्ण डाले और घुमावे। इस प्रकार तीन बार करने से सुवर्ण की उत्तम भस्म हो जाती है॥१४–१६॥

सुवर्णभस्म का प्रकारान्तर

पारावतमलैर्लिपेदथवाकुक्कुटोद्भवैः । हेमपत्राणि तेषांचप्रदद्यादधरोत्तरम्॥१७॥ गंधचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुग-संपुटे । प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पंचभिर्गोमयोपलैः॥१८॥ एवं नव पुटान्दद्याद्दशमं च महापुटम् । त्रिंशद्वनोपलर्दद्यं जायते हेमभस्मकम् ॥१९॥ सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमंगुरु। बुद्धिविद्यास्मृतिकरं

अर्थ–सुवर्ण के पत्र उन पर कबूतर अथवा मुरगे की बीट का लेप करके उन पत्रों के समान भाग गंधक का चूर्ण मिट्टी के शरावे में आधा बिछावे। उस पर सुवर्ण के पत्र रखकर फिर आधी गंधक ऊपर से डाल देवे, फिर दूसरे शराव से बंद करके कपड़मिट्टी कर धूप में सुखा ले फिर इसको गौ के गोबर के बड़े २ पांच उपले ले अग्नि देवे। ऐसे नौपुट देकर दशवीं बार तीस उपलों का महापुट देवे इस प्रकार महापुट देने से सुवर्ण की उत्तम भस्म हो जाती है। अब इस भस्म के गुण कहते हैं। यह मधुर, तिक्त, स्निग्ध, शीतल और भारी है। यह भस्म बुद्धिकर्ता, विद्याकर्ता, स्मरणशक्ति बढ़ानेवाली तथा विष बाधा का नाश करनेवाली और रसायन है॥१७–२०॥

रौप्य (चांदी) की भास्म

विषहारि रसायनम् ॥२०॥ भागैकं तालकं मर्द्यं याममम्लेन केनचित् । तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥२१॥ धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटेत्त्रिंशद्वनोपलैः । समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत्॥२२॥ एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते।

अर्थ–एक भाग हरताल लेकर नींबू के रस से १ प्रहर खरल करे। फिर हरताल से तीन गुणे रूपे के पत्र लेकर उन पर उस हरताल के कल्क का लेप करे फिर उनको एक के ऊपर एक रखके मिट्टी के सराव के पुट में रख कपडमिट्टी करके धूप में सुखा लेवे। फिर तीस आरने उपलों की बीच में उस सराव संपुट को रखके फूंक देवे। इस प्रकार चौदह अग्निपुट देवे तो रूप की उत्तम भस्म हो जाती है॥२१॥२२॥

रूपे की भस्म करने की दूसरी विधि

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् ॥२३॥ तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान् । पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारंभस्म प्रजा–

अर्थ–सुवर्णमाक्षिक एक भाग लेकर चूर्ण करे। फिर उसको थूहर के दूध में १ प्रहर खरल कर सुवर्णमाक्षिक से तिगुने चांदी के पत्र ले उन पर पूर्वोक्त सुवर्णमाक्षिक से कल्क का लेप करके मिट्टी के सराव संपुट में रख कपड़मिट्टी कर धूप में सुखा लेवे। पश्चात् उसको आरने उपलों की बीच में अग्नि देवे। इस प्रकार चौदह पुट देवे तो रूपे की भस्म हो जाती है॥२३॥२४॥

ताम्रभस्म की विधि

–यते ॥२४॥ सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद्बुधः ॥ वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वेकिनिक्षिपेत् ॥२५॥ पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत् । तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च ॥२६॥ गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम् । ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चाङ्गेरीं वा पुनर्नवाम् ॥२७॥ तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदंगुलोन्मितम् । धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥२८॥ वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणांबुभिः । दत्त्वा भांडमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥२९॥ क्रमवृद्धयाग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम् । स्वांगशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥३०॥ दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धं गन्धेन लेपयेत् । सघृतेन ततो मूषापुटे गजपुटे पचेत् ॥३१॥ स्वांगशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत् । वान्तिं भ्रांतिं क्लमं मूर्च्छां न करोति कदाचन ॥३२॥

अर्थ–तांबे के कंटकवेधी पत्रों के बहुत बारीक नख के समान छोटे २ टुकड़े कर उनको नीबू के रस में डाल के तीन दिन स्वेदन करे (पचावे) फिर उन पत्रों को और उन पत्रों का चतुर्थांश पारा लेकर दोनों को खरल में डाल के नीबू के रस से १ प्रहर घोटे। फिर उन तांबे के पत्रों को खरल से निकाल के उनकी दूनी गन्धक लेके उसको नीबू के रस से खरल करके उन तांबे के पत्रों पर लेप करके एक गोला बनावे। फिर मीनाक्षी (मछेछी) अथवा कट्वम्ल अथवा पुनर्नवा (सांठी) इन तीनों वनस्पतियों में जो मिले उसको पीस के उस ताम्रगोले के चारों तरफ एक एक अंगुल मोटा लेप करे। उस गोले को किसी पात्र में धरके उस पर मिट्टी का शराव उलटा ढकके उसके ऊपर मुखपर्यंत बालू भर देवे। फिर राख और नमक को जल में मिलाके उसकी उस पात्र के मुखपर मुद्रा देकर उस पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर क्रम से मंद, मध्य और तेज अग्नि चार प्रहर देवे जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल के सूरण (जमीकन्द) के रस से १ दिन खरल करे। फिर इसका गोला बनाकर उसकी आधी गन्धक को घी में पीस के उस गोले के चारों तरफ लेप करे, फिर मिट्टी के दो सरावे लेकर गोले को एक सरावे में दूसरे से बन्द करके कपड़मिट्टी करके आरने उपलों के गजपुट में रखके फूँक देवे। जब शीतल हो जावे तब उस सरावसंपुट को बाहर निकाल उसमें से ताम्रभस्म

को बुद्धिमानी से निकाल लेवे। यह भस्म परमोत्तम गुण देनेवाली है इससे वमन भ्रांति, श्रम और मूर्च्छा कदापि नहीं होती है।।२५-३२।।

पीतल की भस्म

अँर्कक्षीरेण संपिष्टो गंधकस्तेन लेपयेत् । समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ।।३३।। ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च । एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम् ।।३४।। आरवत्कांस्यमप्येवंभस्मतां याति निश्चितम् । अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डी क्षीरिका तथा ।।३५।। ताम्र रीति-ध्वनिवधे समगंधकयोगतः ।

अर्थ-पीतल के पत्र करके अग्नि में तपाकर सात वार अथवा तीन बार निम्बू के रस में बुझाके शुद्ध करे। फिर इन पत्रों के समान भाग गन्धक लेकर, आक के दूध में खरल कर उन तांबे के पत्रों पर लेप करे मिट्टी के प्याले में रखके दूसरे प्याले से उसका मुख बन्द कर देवे और कपड़मिट्टी करके आरने उपलों के गजपुट में धर के फूंक देवे। इस प्रकार दो अग्निपुट देने से पीतल की निश्चय भस्म होवे। इसी प्रकार कांसे की भस्म होती है।

तांबा, पीतल और कांसा इनके मारने की दूसरी विधि कहते हैं-तांबा पीतल और कांसे इनमें जिसकी भस्म करनी होवे उसके बराबर गन्धक लेकर आक के अथवा बड के अथवा गौ के दूध में खरल करे अथवा निर्गुडी के रस में या दुद्धी के रस में खरल करके उन पत्रों पर पृथक् लेप करे और सम्पुट में धर आरने उपलों की पुँट देवे तो उक्त ताम्र आदि धातुओं का भस्म होय।।३३-३५।।

शीशे की भस्म

तांबूलीरससंपिष्टःशिलालेपात्पुनः पुनः ।।३६।। द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ।

अर्थ-नागरवेल के पानों का रस निकाल के उसमें शीशे के समान भाग मनशिल को पीसे और शीशे के पत्रों पर उस (मनशिल) का लेप करे और मिट्टी के दो शरावे लेकर एकमें उन शीशे के पत्रों को रखके दूसरे से बन्द करके कपड़मिट्टी कर धूप में सुखाके फिर गढा खोदके आरने उपलों से भरके गजपुट की अग्नि देवे। इस प्रकार बत्तीस अग्नि देवे तो शीशे की भस्म होवे, फिर नहीं जीवे। इसको नागभस्म अथवा नागेश्वर कहते हैं।।३६।।

शीशे मारण का दूसरा प्रकार

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत्।।३७।। मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत् । यामकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनः शिलाम् ।।३८।। कांजिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद् दृढपुटेन च । स्वाङ्गशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया कांजिकेन च ।।३९।। पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः

अर्थ-मिट्टी के ठीकरे को चूल्हे पर चढ़ाय उसमें शीशा को डालकर पिघलावें जब रसरूप हो जावे तब पीपल की छाल इमली की छाल इन दोनों का चूर्ण शीशे का चौथाई भाग लेवे, उसको

शीशा के रस पर थोड़ा २ बुरकता जावे और लोहे की कडछी में चलाता जावे, इस प्रकार १ प्रहर करने से शीशे की भस्म होती है। उस भस्म के समान मनशिल लेकर दोनों को कांजी में खरल करे। फिर मिट्टी के दो शरावे ले एक में उस भस्म को रखे और दूसरे से उसका मुख बन्द कर कपड़मिट्टी करके गढ़ा खोद उसमें आरने उपले भरे और बीच में शराव सम्पुट रख के ऊपर से फिर आरने उपले भरे। इस प्रकार गजपुट की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल लेवे। फिर इसमें समान भाग मनशिल मिलाय के दोनों को कांजी में खरल कर मिट्टी के शरावसंपुट में डाल के कपडमिट्टी करके धूप में सुखाय आरने उपलों की अग्नि देवे। इस प्रकार ६० पुट देने से शीशे की उत्तम भस्म होता है।।३७-३९।।

रांगभस्मप्रकार

मृत्पात्रे द्राविते वङ्गे चिञ्चाश्वत्थत्वचोरजः ।।४०।। क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत् । ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते ।।४१।। अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत् । ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ।।४२।। तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत् । एवं दशपुटैः पक्वो वङ्गस्तु म्रियते ध्रुवम् ।।४३।।

अर्थ–मिट्टी के ठीकरे को चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें रांग को डाल के तपावे। जब रसरूप हो जाय इमली की छाल और पीपल की छाल इन दोनों का चूर्ण रांगे से चतुर्थांश लेकर उस गले हुए रांग पर थोड़ा थोड़ा डालता जावे और लोहे की कड़छी से चलाता जाय। इस प्रकार दो प्रहर करे तो रोगों की भस्म होती है। फिर भस्म के समान हरताल लेकर दोनों को नीबू के रस में खरल करके मिट्टी के शराव में भर करके ऊपर से कपड़मिट्टी कर देवे, गड्ढा खोदकर आरने उपलों के गजपुट में रख के फूंक देवे। जब स्वांगशीतल हो जावे तब बाहर निकाल के उस भस्म का दशवां हिस्सा हरताल का लेकर नीबू के रस में दोनों को खरल कर शरावसंपुट में रख कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा ले, फिर आरने उपलों के गजपुट में रख के फूंक देवे। इस प्रकार इसमें दश अग्निपुट देवे तो रांग की निश्चय उत्तम भस्म हो जावे। इसको वंगभस्म कहते हैं।।४०-४३।।

लोहभस्मप्रकार

शुद्धं लोहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः । मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुँटत्रयम् ।।४४।। पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्नका-रसैः । पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ।।४५।।

अर्थ–फौलाद अथवा खेरी लोह का रेती से चूरा करके पाताल गरुड़ी (छिलहिंटा) के रस में खरल कर शरावसंपुट में भरके के कपड़मिट्टी कर आरने उपलों के संपुट में रख के फूंक देवे। इस प्रकार तीन अग्निपुट देवे। तथा घीकुवार के रस की तीन अग्निपुट देवे। एवं वनतुलसी के (अथवा कसोंदी के) रस की तीन अग्निपुट देवे, इस प्रकार नव पुट देने से फौलाद आदि लोहों की उत्तम भस्म होय इसमें जो पुट कहे हैं उन्हें गजपुट जाननना।।४४-४५।।

लोहभस्म का दूसरा प्रकार

क्षिपेद्द्वादशकांशेन पारदं तीक्ष्णलोहतः।मर्दयेत्कन्य-काद्रावैयार्मयुग्मं ततः पुटेत् ।।४६।। एवं सप्तपुटैर्मृत्युं

लोहचूर्णमवाप्नुयात्। रसैः कुठांरच्छिन्नायाः पातालगरुडीरसैः ।।४७।।स्तन्येन चार्कदुग्धेन तीक्ष्णस्यैवं मृतिर्भवेत् ।

अर्थ–खेड़ी लोह को रेती से चूर्ण कर उस चूर्ण का बारहवां हिस्सा शिंग्रफ लेकर घीकुवार के रस में दो प्रहर खरल करे, फिर मिट्टी के शरावसंपुट में भरके कपड़मिट्टी कर आरने उपलों के बीच में रख के फूंक देवे। इस प्रकार सात पुट देय तो फौलाद और खेड़ी आदि लोह की उत्तम भस्म होती है। लोहभस्म करने का दूसरा प्रकार और कहते हैं–छिलहिंटा के रस अथवा स्त्री के दूध में तथा गौ के दूध में सिंगरफ मिलाय फौलाद लोहे के घोट के पृथक् सात अग्नि देवे तो तीक्ष्ण लोहे की उत्तम भस्म हो जाती है।।४६।।४७।।

लोहभस्म का तीसरा प्रकार

सूतकाद्द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ।।४८।। द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः । यामयुग्मं ततः पिंडं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके।।४९।। धर्मेधृत्वाऽऽरुबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्-बुधः । यामार्धेनोष्णता भूयाद्धान्यराशौ न्यसेत्ततः ।।५०।। तस्योपरि शरावं तु त्रिदिनांते समुद्धरेत् । पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ।।५१।। एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि गालयेत् । शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णाद्याः सर्वधातवः ।।५२।म्रियंते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा।

अर्थ–पारा एक भाग और गन्धक दो भाग लेकर दोनों की कजली करे। फिर उस कजली के समान भाग फौलाद का चूरा लेवे। सबको घीकुवार के रस में दो प्रहर पर्यंत खरल करके गोला बनावे, उसको तांबे के पात्र में रख के उसके ऊपर अरंड के पत्ते देकर चार घड़ी पर्यंत धूप में रख देवे, जब वह गोला गरम हो जावे तब मिट्टी के शरावे से उस तांबे के पात्र का मुख बन्द करके धान की राशि (अन्न की खती) में तीन दिन पर्यंत गाड देवे। फिर चौथे दिन बाहर निकालकर उस लोहे की भस्म को कपड़छान करके इसको पानी में डाले। यदि पानी में तरने लगे तो उस भस्म को उत्तम हुई जानना। इस प्रकार संपूर्ण लोह की भस्म कपड़े से छान के पानी में डाल के देखे, यदि पानी में तरने लगे तो उत्तम भस्म हुई जानना। अब दूसरे प्रकार से संपूर्ण धातुओं से भस्म करने की विधि कहते हैं–मनशिल और गन्धक इन दोनों को अर्क के दूध में पीस के सुवर्ण आदि संपूर्ण धातुओं पर लेप करके आरने उपलों की बारह गजपुट अग्नि देवे तो संपूर्ण धातुओं की भस्म होवे। इस विषय में दृष्टान्त है जैसे-गुरु का वचन सत्य होता है उसी प्रयोग करके संपूर्ण धातुओं की निश्चय भस्म हो जाती है।।४८-५२।।

सात उपधातु

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलाञ्जनशिलालकाः ।।५३।। रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः ।

अर्थ–१ सुवर्णमाक्षिक (सोनामक्खी), २ नीलाथोथा, ३ अभ्रक, ४ कालासुरमा, ५ मनशिल, ६ हरताल और ७ खपरिया ये सात उपधातु जाननी।।५३।।

सुवर्णमाक्षिक का शोधन और मारण

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च।।५४।।

मातुलुङ्गद्रवैवाथ जम्बीरोत्थद्रवैः पचेत्।चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम् ।।५५।। भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति । कुलत्थस्य कषायेण धृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत् ।।५६।। तक्रेण वाथ गोमूत्रैः म्रियते स्वर्णमाक्षिकम् ।

अर्थ–सुवर्णमाक्षिक तीन भाग और सैंधानमक एक भाग दोनों का चूर्ण कर दोनों को लोहे की कड़ाही में डाल के चूल्हे पर चढ़ाकर के नीचे अग्नि जलावे। फिर इसमें बिजोर का रस अथवा जंभीरी का रस डाल के लोहे की कड़छी से घोटे । जब कड़ाही लाल हो जावे तब नीचे उतार लेवे। जब शीतल हो जावे तब सुवर्ण माक्षिक की भस्म को उसमें से निकाल लेवे। इस प्रकार अथवा गोमूत्र में खरल कर शरावसंपुट में रखके कपड़मिट्टी कर आरने उपलों की अग्नि में फूंक देवे तो सुवर्णमाक्षिक की भस्म हो जाती है।।५४-५६।।

रौप्यमाक्षिक का शोधन और मारण

कर्कोटी मेषशृंग्युत्थद्रवैर्जंबरिजैर्दिनम् ।।५७।।
भावयेदांतपे तीव्रे विमला शुद्धयति ध्रुवम् ।

अर्थ–रूपामाखी का चूर्ण कर ककोड़ा, मेढासिंगी और जंभीरी इन तीनों के रस में एक एक दिन खरल कर धूप में धरने से रौप्यमाक्षिक (रूपामाखी) शुद्ध होती है। (इसका मारण सुवर्णमाक्षिक के समान जानना)।।५७।।

नीलेथोथे का शोधन

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थंमार्जारकंकपोतयोः ।।५८।। दशांशं टंकणंदत्त्वा पचेन्मृदुपुटे ततः । पुटं दध्ना पुटं क्षौद्रेर्देयं तुत्थविशुद्धये ।।५९।।

अर्थ–बिल्ली और कबूतर (अथवा पिंडुकिया) इनकी विष्ठा नीले थोथे के समान तथा नीलेथोथे का दशवां हिस्सा सुहागा लेकर सबको एकत्र करके खरल करे और मिट्टी के शरावसंपुट में भर कपडमिट्टी कर आरने उपलों की हलकी अग्नि देवे, फिर बाहर निकाल दही में खरल कर इसी प्रकार अग्नि देवे, फिर शहद में खरल करके अग्नि देवे तो नीलाथोथा शुद्ध हो जाता है।।५८-५९।।

अभ्रकका शोधन और मारण

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततःक्षीरे विनिक्षिपेत् । भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तंदुलीयाम्लयोद्रवैः ।।६०।। भावयेदष्टयामं तदेवं शुद्धयति चाभ्रकम् । कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाथ मर्दयेत् ।।६१।। अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत् । वेष्टयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् ।।६२।। पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं प्रयत्नतः । ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ।।६३।। म्रियते नात्र सन्देहः सर्वरोगेषु योजयेत् । मृतं त्वभ्रं हरेन्मृत्युं जरापलितनाशनम्।।६४।। अनुपानैश्च संयुक्तं तत्तद्रोगहरं परम् ।।

अर्थ–काली अभ्रक अर्थात् वज्राभ्रक को कोलों में डाल के धौंकनी से अथवा फूंकनी से फूंककर तपावे। जल लाल हो जावे तब निकाल के दूध में बुझाय दे फिर उसके पृथक् पृथक् पुत्र करके चौलाई का और नींबू का रस एकत्र करके उसमें उन पत्रों को आठ प्रहर पर्यंत भिगोय देवे तो अभ्रक शुद्ध हो जाता है। फिर उस अभ्रक को उस रस में निकाल कर उसका धान्याभ्रक कर उसको आक के दूध में एक प्रहर पर्यंत खरल कर गोल गोल चक्र के आकार की टिकियां बनावे। उनके चारों तरफ आक के पत्ते लपेट के मिट्टी के शराव सम्पुट में भर उस पर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा लेवे। फिर उसको आरने उपलों के गजपुट में रख के फूंक देवे। इस प्रकार आक के दूध में १ एक दिन खरल करे। रात्रि में पुट देवें, ऐसे सात पुट देवे। फिर बड़की जटा के काढ़ में उस अभ्रक को एक दिन खरल करे और अग्नि देवे। इस प्रकार तीन गजपुट देवे। ऐसी अग्नि देवे तो अभ्रक के उत्तम भस्म हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। इस अभ्रक से सम्पूर्ण रोग दूर होवें तथा अकाल मृत्यु का भी निवारण हो, बुढ़ापा दूर हो, सफेद बालों के काले बाल हों तथा इसको जैसे जैसे अनुपान के साथ जिस जिस रोग में दे तो यह वैसे गुणों को करता है।।६०-६४।।

दूसरी विधि

शुद्धं धान्याभ्रकं मुस्तं शुण्ठी षड्भागयोजितम् ।।६५।।
मर्दयेत्कांजिकेनैव दिनं चित्रकजरसैः। ततो गजपुटं दद्यात्तस्मा-
बुद्धृत्य मर्दयेत् ।।६६।। त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं
पुटैस्त्रिभिः । बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ।।६७।।
मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रित्रिवेलं व्रजेन्मृतिम् ।

अर्थ–जिस प्रकार प्रथम विधि में धान्याभ्रक करने की विधि कह आये हैं, उस प्रकार से शुद्ध किया हुआ धान्याभ्रक लेवे, उस धान्याभ्रक का छठा हिस्सा नागरमोथा और सोंठ इनका चूर्ण करके उसमें मिलावे। फिर उसको कांजी में १ दिन खरल करे। पश्चात् एक दिन चीते के रस में खरल करके मिट्टी के सरावसम्पुट में रख के कपड़मिट्टी कर आरने उपलों के गजपुट में रख के फूंक देवे। जब शीतल हों जावे तब उसको बाहर निकाल ले त्रिफले के काढ़ में नित्य प्रति मर्दन करे। इस प्रकार तीन दिन करे और तीन ही गजपुट की आंच देवे, पश्चात् खरेंटी का रस अथवा खरेंटी का काढ़ा, गोमूत्र, मुसली का काढ़ा, तुलसी के पत्तों का रस और जमीकन्द इन पांचों के रस में अभ्रक को पृथक् खरल करावे। एक एक के तीन तीन गजपुट देवे। इस प्रकार गजपुट की अग्नि देने से अभ्रक की परमोत्तम भस्म हो जाती है।।६५-६७।।

काला सुरमा और गैरिकादिकों का शोधन

नीलांजनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ।।६८।। दिनैकमातपे
शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत्।एवं गैरिक-काशीसं टंकणानि
वराटिका।।६९।।तुवरी शंखकं कुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम्।।

अर्थ–काले सुरमे का चूर्ण करके जम्भीरी के रस में खरल करके एक दिन धूप में रखे तो सुरमा शुद्ध हो जाता है। फिर इसको रोगादिकों पर देना चाहिये। इसी प्रकार गेरू, हीराकसीस, सुहागा, कौड़ी, फिटकरी, शंख और मुरदाशंख, इन सबकी शुद्धि करनी चाहिये।।६८।।६९।।

मनशिल का शोधन

पचेत् त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ।।७०।।
भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ।।

अर्थ—मनशिल को दोलायन्त्र में डाल के बकरी के मूत्र में तीन दिन पचावे। फिर बाहर निकाल के खरल में डाल सात पुट बकरी के पित्ते की देवे तो मनशिल शुद्ध हो जाती है॥७०॥

हरताल का शोधन

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं कांजिके क्षिपेत् ॥७१॥ दोलायंत्रेण यामैकं ततः कूष्मांडजैर्द्रवैः। तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजलैः ॥७२॥ एवं यन्त्रे चतुर्यामं पाच्यं शुद्ध्यति तालकम् ॥

अर्थ—हरताल के छोटे छोटे बारीक टुकड़े कर उनको कपड़े की पोटली में बाँध दोलायन्त्र द्वारा कांजी में १ प्रहर पेठे के रस में, १ प्रहर तिल के तेल में तथा त्रिफला के काढ़ में १ प्रहर पचावे। इस प्रकार दोलायन्त्र में हरताल को चार प्रहर पक्व करने से शुद्धि होती है॥७१॥७२॥

खपरिया का शोधन

नृमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं क्षिपेत् ॥७३॥
दोलायंत्रेण शुद्धिः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत्।

अर्थ—खपरियां को दोलायन्त्र में डाल के मनुष्य के मूत्र में सात दिन अथवा गोमूत्र में सात दिन पचाने से खपरिया शुद्ध हो तब इसको औषधों में मिलावे॥७३॥

अभ्रकहरतालआदि से सत्व निकालने की विधि

लाक्षामीनपयश्छागं टंकणं मृगशृङ्गकम् ॥७४॥ पिण्याकं सर्षपाः शिग्रुगुञ्जोर्णागुडसैन्धवाः। यवास्तिक्ता घृतं क्षौद्रं यथालाभं विचूर्णयेत् ॥७५॥ एभिर्विमिश्रिताः सर्वे धातवो गाढवह्निना। मूषाध्माताः प्रजायंते मुक्तसत्त्वा न संशयः ॥७६॥

अर्थ—१ लाख, २ छोटी मछली, ३ बकरी का दूध, ४ सुहाँगा, ५ हरिण का सीग, ६ तिलों की खल, ७ सरसों, ८ सहँजने के बीज, ९ घूंघची (चिरमिठी), १० मेढ़े के बाल (ऊन), ११ गुड़, १२ सैंधानिमक, १३ जौ, १४ कुटकी, १५ घी और १६ शहद, ये सोलह वस्तु उरताल आदि जिस वस्तु का सत्त्व निकालना होवे उस धातु का आठवां हिस्सा एक एक औषध लेकर सबका चूर्ण एकत्र गोलासा बनाकर मूषा के रख के कोलोंकी आँच में धौंकने से खूब धमाकर हरताल अथवा अभ्रक आदि उपधातुओं का सत्त्व निकाले। इस प्रकार जिस वस्तु का सत्त्व निकालना हो निकाल देवे॥७४-७६॥

हीरे का शोधन और मारण

कुलित्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायंत्रे विपाचयेत्। व्याघ्रीकंदगतं वज्रं त्रिदिनं शुद्धिमृच्छति ॥७७॥ तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रे निषेचयेत्॥ पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्त्रिसप्तधा ॥७८॥ मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा यावद्द्रवति गोलकम्। तद्गोले निहितं वज्रं तद्गोलं वह्निना धमेत् ॥७९॥ सेचयेदश्वमूत्रेण तद्गोलं च क्षिपेत्पुनः। रुद्ध्वा ध्मातं पुनः

सेच्यमेवं कुर्याच्च सप्तधा ॥८०॥एवं च म्रियते वज्रं चूर्णं सर्वत्र योजयेत् ॥

अर्थ–व्याघ्रीकन्द को कूट पीस लुगदी कर उसमें हीरे को रख के उसकी वस्त्र से पोटली बनाकर दोलायन्त्र में डाल के कुलथी के काढ़े में तीन तथा कोदोधान्य के काढ़े में तीन दिन पचावे तो हीरा शुद्ध होता है। फिर उस हीरे को अग्नि में तपा तपाकर गधे के मूत्र में बुझावे। इस प्रकार इक्कीस बार बुझावे। फिर खटमलों में मिलाकर हरताल को पीस उसका गोला करके उस गोले के बीच में हीरे को रख के उसको मूषा में रख के कीलों की तीव्र अग्नि से धमावे। जब अत्यन्त गरम हो जावे तब उसको घोड़े के मूत्र में मूत्र में बुझा देवे। फिर उस हीरे को निकाल ले और पूर्वोक्त विधि से हरताल को खटमलों के रुधिर में घोट गोला बनाकर उसमें हीरे को रखके उसी प्रकार कोलों में घुमावे। जब अत्यन्त गरम हो जाय तब घोड़े के मूत्र में बुझा देवे। इस प्रकार सात बार करे तो हीरे की उत्तम भस्म हो जाती है। फिर उस भस्म को सम्पूर्ण रोगों में देवे। (व्याध्रीकन्द को दक्षिण में गुहेरीकन्द कहते हैं और कोई कटेरी की जड़ को ही व्याध्रीकन्द कहते हैं) ॥७७-८०॥

हीरे की भस्म की दूसरी विधि

हिंगुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत् ॥८१॥
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ।

अर्थ–हींग, सेधानमक और कुलथी इन तीनों का काढ़ा कर उसमें हीरे को तपा तपाकर इक्कीस बार बुझावे तो हीरे की भस्म होवे॥८१॥

तीसरी विधि

मण्डूकं कांस्यजे पात्रे निगृहृच स्थापयेत्सुधीः ॥८२॥ स भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् । तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥८३॥

अर्थ–मेंढ़क को कांसी के पात्र में रखे जब वह डर के मारे मृते तब उस मूत्र में हीरे को तपा तपा कर अनेक बार बुझावे तो हीरे की भस्म हो जाती है॥८२॥८३॥

वैक्रांत का शोधन और मारण

वैक्रांतं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा । हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा॥८४॥ततस्तु मेषभृंग्युक्तपञ्चांगे-गोलके क्षिपेत् ॥ पुटेन्मूषापुटे रुद्धा कुयदिवं च सप्तधा ॥८५॥ वैक्रांतं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ।

अर्थ–वैक्रांत (कासुला) मणि नीलमणि तथा पद्मराग (लाल) मणि इनका शोधन हीरे के समान करे। फिर उस वैक्रान्तमणि को तपा तपा कर घोड़े के मूत्र में चौदह बार बुझावे। पश्चात् मेढ़ासिगी की पञ्चांग को कूट पीस उसकी लुगदी करके उसमें उस वैक्रान्तमणि को रख के सरावसम्पुट के धर.के कपड़मिट्‌टी कर आरने उपलों के गजपुट में रख के फूंक देवे। इस प्रकार सात अग्नि देवे तो वैक्रान्तमणि की भस्म हो जाती है। यह हीरे की भस्म अभाव में देनी चाहिये।॥८४॥८५॥

सम्पूर्ण रत्नों का शोधन और मारण

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च॥८६॥ मणिमुक्ताप्र-

वालानां यामैकं शोधनं भवेत् । कुमार्या तन्दुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ।।८७।। प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः । मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः।।८८।। क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियंते नात्र संशयः । उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत् ।।८९।। वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा ।

अर्थ—सूर्यकान्तमणि, मोती और मूगा इनको दोलायन्त्र में डाल के अरनी अथवा जाई के रस में एक प्रहर पचावे तो ये शुद्ध होवे। फिर इनका मारण इस प्रकार करे कि घीगुवार का रस, चौलाई का रस तथा स्त्री का दूध इन तीनों में उन मणि, मोती और मूँगा तथा और अन्य प्रकार के रत्नों को तपा तपा कर एक में सात सात बार बुझावे तो क्षणमात्र में सबकी भस्म होवें। इस विषय में सन्देह नहीं है। अब इनके मारण की दूसरी विधि कहते हैं कि सुवर्णमाक्षिक का जिस प्रकार मारण कहा है। उसी प्रकार मोतियों का, मूंगो का मारण करे। हीरा के शोधन और मारण के सदृश सम्पूर्ण रत्नों का शोधन मारण करना चाहिये।।८६-८९।।

शिलाजीत का शोधन

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ।।९०।। गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृंगद्रावैश्च[९२] मर्दयेत् । आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ।।९१।।

अर्थ—ग्रीष्म ऋतु में गरमी अधिक होती है, इससे पर्वत में जो बड़ी बड़ी शिलाएँ होती है, वे गरमी से अत्यन्त तपती हैं तब उनसे रस गलकर जम जाता है उसको शिलाजीत कहते हैं। उस शिलाजीत को लाकर गौ के दूध में, त्रिफले के काढ़े में तथा भांगरे के रस में पृथक् पृथक् एक एक दिन खरल कर धूप में धर के सूखा लेवे तो शिलाजीत शुद्ध हो जाती है।।९०।।९१।।

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम्। निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ।।९२।। मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् । स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ।।९३।। उपरिस्थं घनं च स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके । धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ।।९४।। एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु । भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिंगोपमं भवेत् ।।९५।। निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत् । अधःस्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत्।।९६।। विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत् ।

अर्थ—जिस पाषाण से शिलाजीत उत्पन्न होती है उस पाषाण को उत्तम देख के लेवे, उस पाषाण के बारीक बारीक टुकड़े करके खलबलाते हुए गरम पानी में एक प्रहर पर्यंत भिगोवे। पश्चात् उन टुकड़ों को उसी पानी में बारीक पीस के कपड़े में छान उन पानी को मिट्टी की नाद में डालते धूप में रख देवे। जब उस पानी पर मलाई आवे उसको उतार के दूसरे पात्र में डालता जाय। इस

प्रकार पृथक् पृथक् पात्र में बारंबार सब मलाई उतार के दूसरे पात्र में इकट्ठी करे। फिर उस दूसरे पात्र में भी गरम जल डाल के उस शिलाजीत की मलाई को मिलाय के उस दूसरे पात्र में भी गरम जल डाल के उस शिलाजीत की मलाई को मिलाय के धूप में धर देवे। जब उसमें मलाई पड़े तब उतार उतार के तीसरी नाद में डाले और उसमें भी गरम जल डाल के धूप में धर देवे। जब उसमें मलाई आवे तब फिर पहिली शुद्ध की हुई नाद में मलाई को इकट्ठी करे। इस क्रम के बराबर एक में से निकालकर दूसरे में एकत्र करे और पहली नांद में जो नीचे गरम बैठ जावे उसको जल में पीस के छान लेवे और इसी क्रम से उसको धूप में रख के मलाई उतार लिया करे। इस प्रकार दो महीने पर्यन्त करे तो शिलाजित की उत्तम शुद्धि होवे। इसकी परीक्षा इस प्रकार करे कि इसमें से थोड़ा सा टुकड़ा तोड़ के अग्नि में डाले तो उसका लिंग के समान धूमरहित आकार होता है। उसको शुद्ध शिलाजीत जानना चाहिये। इसको सर्व कार्य में देवे॥९२-९६॥

मण्डूर बनाने की विधि

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्गवां जलैः ॥९७॥ सेचयेत्तप्त-तप्तं तत्सप्तवारं पुनः पुनः। चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रि-फलाभवैः ॥९८॥ आलोड्य भर्जयेद्वह्नौ मण्डूरं जायते वरम्।

अर्थ–बहेड़े की लकड़ियों को कोले करके उसमें पुराने लोह की कीटी डाल के धो के जब लाल हो जावे तब उस कीटी को गोमूत्र में बुझा देवे। इस प्रकार सात सात बार तपा तपा कर गोमूत्र मे बुझावे। फिर उस कीटी का बारीक चूर्ण करके उसका दूना त्रिफले का काढ़ा हांडी में भर उसमें उस कीटि के चूर्ण को डाल के अच्छी रीति से हांडी कें मुख को ढ़क मुख पर कपड़मिट्टी कर देवे। पश्चात् उसको आरने उपलों की गजपुट में रख के फूंक देवे; जब शीतल हो जावे तब उस हांडी को बाहर निकाल उसमें उस कीट का जो शुद्ध मण्डूर बन के तैयार होवे उसको निकाल ले तो परमोत्तम मण्डूर बने। इसे सब योगों में मिलावे॥९७॥९८॥

क्षार बनाने की विधि

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि शुष्कान्यग्नौ प्रदीपयेत्॥९९॥ नीत्वा तद्भस्म मृत्पात्रे क्षिप्त्वा नीरे चतुर्गुणे विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातरक्षजलं नयेत् ॥१००॥ तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति। ततः पात्रात्समुल्लिख्य क्षारो गृह्यः सितप्रभः ॥१०१॥ चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात्पेयः स्यात्क्वाथव-त्स्थितः। इति क्षारद्वयं धीमान् युक्तकार्येषु योजयेत् ॥१०२॥

इति श्रीदामोदरसूनुना शार्ङ्गधरेण निर्मितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यखण्डे धातुशोधनमारणं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अर्थ–जिन वृक्षों से खार निकलता है इन वृक्षों की लकड़ी पञ्चांग लाकर सुखाकर जला लेवे। जब राख हो जाय तब उस राख को मिट्टी के पात्र में भर राख से चौगुना जल डाल के उस राख

को उस पानी में मिलाय के रख देवे। सुश्रुत में ६ गुना जल डालना लिखा है। इस प्रकार १ रात्रि भर धरी रहने दे। प्रातःकाल उस घड़े में ऊपर का नितरा हुआ जल लोहे की कड़ाही के निकाल लेवे, फिर उस कड़ाही को अग्नि पर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलाकर उस पानी को जला देवे। इस प्रकार करने से पानी जल जाने पर उस कड़ाही में चारों तरफ सफेद सफेद खारचूर्ण के समान लगा हुआ रह जावेगा। उसको निकाल लेवे। इस क्षार को प्रतिसार्य कहते हैं। इसको श्वासादि रोगों पर देवे तथा काढ़ के समान पतला जो क्षार रहता है उसको पेय कहते हैं। उस क्षार को गुल्मादिरोगों पर देवे। इस प्रकार पतला और चूर्ण के समान ऐसे दो प्रकार का क्षार जानना चाहिये।।९९-१०२।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका हिन्दीटीकाया द्वितीयखण्डे एकादशोऽध्यायः ।।११।।

अथ द्वादशोऽध्यायः १२

पारद के नाम तथा सूर्यादिनवग्रहों के नाम करके ताम्रादि नवधातुओं की संज्ञा

पारदः सर्वरोगाणां जेता[15] पुष्टिकरः स्मृतः । सुज्ञेन साधितं कुर्यात्संसिद्धि देहलोहयोः ।।१।। रसेन्द्रः पारदः सूतो हरजः सूतको रसः । मुकुंद[16]श्चेति नामानि ज्ञेयानि रसकर्मसु ।।२।। ताम्रतारा[17]रनागाश्च हेमवङ्गौ च तीक्ष्णकम् । कांस्यकं कांतलोहं च धातवो नव यैः स्मृताः ।।३।। सूर्या[18]दीनां ग्रहाणां ते कथिता नामभिः क्रमात् ।

अर्थ–पारा सम्पूर्ण रोगों का जीतनेवाला और देह को पुष्ट करनेवाला है, वह चतुर मनुष्य करके बनाया हुआ देह की और लोहे की तत्काल सिद्धि करता है अर्थात् खाने से देह को अजर अमर करे और लोह (तांबा,रांगा आदि) में डालने से सुवर्ण करता है। पारद के नाम–१ रसेंद्र, २ पारद, ३ सूत, ४ हरज, ५ सूतक, ६ रस और ७ मुकुन्द ये सात नाम रस कर्म में जहां जहां आवें वहां पारद के जानने। १ ताम्र, २ रूपा, ३ अस्त, ४ शीशा, ५ सुवर्ण, ६ रांग, ७ फौलाद, ८ कांसा और ९ कांतलोह ये नौ धातु क्रम से सूर्यादि नवग्रहों के नाम जानने। जैसे–जितने सूर्य के नाम हैं वे सब तांबे के जानने जितने चन्द्रमा के नाम हैं वे सब रूपे के नाम जानने, जितने मंगल के नाम हैं वे सब जस्त के अथवा पीतल के जानने। इसी क्रम से जो नवग्रहों के नाम हैं वे नौ धातुओं के जानने चाहिये।।१–३।।

पारे का शोधन

राजी रसोनं मूषायां रसं क्षिप्त्वा विबन्धयेत् ।।४।। वस्त्रेण पोलिकायन्त्रे स्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् । दिनैकं मर्दयेत्सूतं कुमारीसम्भवैर्द्रवैः।।५।।तथा चित्रकजैःक्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम्। काकमाचीरसस्तद्वद्दिनमेकं च मर्दयेत् ।।६।। त्रिफलायास्ततः

क्वाथै रसो मर्द्यः प्रयत्नतः । ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात्सूतं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥७॥ ततः क्षिप्त्वा रसं खल्वे रसा दर्धं च सैन्धवम् । मर्दयेन्निम्बुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥८॥ ततो राजी रसोनश्च मुख्यश्च नवसादरः । एतै रससमैस्तद्वत्सूतो मर्द्यस्तुषांबुना ॥९॥ ततः संशोष्य चक्राभं कृत्वा क्षिप्त्वा च हिंगुना । द्विस्थालीसम्पुटे धृत्वा पूरयेल्लवणेन च ॥१०॥ अथ स्थाल्यांततोमुद्रां दद्याद् दृढतरां बुधः । विशोष्याग्निं विधायाधो निषिञ्चेदंबु चोपरि ॥११॥ ततस्तु कुर्यात्तीव्राग्निं तदधः प्रहरत्रयम् । एवं निपातयेदूर्ध्वं रसो दोषविवर्जितः ॥१२॥अयोर्ध्वपिठरीमध्ये लग्नो ग्राह्यो रसोत्तमः।

अर्थ–प्रथम स्वेदन संस्कार कहते हैं–राई और लहसन दोनों को एकत्र पीस के उसकी मूषा बनावे । उसमें पारा डाल के कपड़े में पोटली बांध दोलायन्त्र करके कांजी में तीन दिन पचावे। फिर उस पारे को निकाल खरल में डाल के घीगुवार के रस में एक दिन खरल करे। फिर चीते के और कांगुनी के रस में त्रिफला के काढे में एक एक दिन खरल करे। अब मर्दन संस्कार कहते हैं–फिर कांजी में इस पारे को धोयकर उस औषधों के रस से पृथक् करके फिर खरल में डाल के उस पारे का आधा सैंधानमक मिलाकर दोनों को नींबू के रस में १ दिन खरल करे। अब मूर्छन संस्कार कहते हैं फिर राई लहसन और नौसादर ये तीन औषध पारे के समान भाग लेके उसमें पारे को मिलाकर धान के तुषों के काढ़े मे सबको खरल करे। अब पातनसंस्कार कहते हैं–जब शुष्क हो जावे तब उसकी गोल २ टिकियासी बनावे। उनके चारों तरफ हींग का लेप करके उन टिकियाओं को एक घड़े में रख के उसमें नमक डाल के घड़े के मुखपर दूसरा घड़ा उलटा जोड़कर कपड़ मिट्टी कर दृढ़ करके धूप में सुखा देवे। फिर इसको चूल्हेपर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे और ऊपर के घड़े पर गीले कपड़े का पोचा फेरता जावे कि जिससे ऊपर का घडा शीतल रहे और जमा हुआ पारा नीचे न गिरे अथवा उस पर शीतल जल भर देवें, उस नीचे के घड़े के नीचे ३ प्रहर तेज अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब घड़ों को अलग २ करके हलके हाथ से उस ऊपर के लगे हुए पारे को निकाल लेवे। यह पारा परम शुद्ध और दोषरहित होता है।।४–११।।

गन्धक का शोधन

लोहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत् ॥१३॥ तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गंधकजं रजः ॥ विद्रुतं गंधकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत्॥१४॥एवं गंधकशुद्धिः स्यात्सर्वकार्येषु योजयेत्।

अर्थ–लोहे के कडछे में घी डाल के मन्दाग्नि से तपाय उस घी की बराबर आमलासार गंधक का बारीक चूर्ण करके उस घी में डाल देवे फिर गन्धक घी में तपकर जब रसरूप हो जावे तब एक दूध के पात्र पर बारीक कपड़ा बांध के उसमें उस गन्धक को डाल देवे। जब शीतल हो जावें तब उस गन्धक को निकाल ले। यह शुद्ध गन्धक सर्व कार्यों में वर्तनी चाहिये।।१३।।१४।।

सिंगरफ से पारा निकालने की विधि

निंबूरसौर्निंबपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ॥१५॥ पिष्ट्वा दरद-

मूर्ध्वं च पातयेत्सूतयुक्तिवत् । ततः शुद्धरसं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत् ।।१६।।

अर्थ–नीबू के रस में अथवा नीम के पत्तों के रस में शिंगरफ को १ प्रहर खरल कर डमरूयंत्र में भर नीचे अग्नि जलावे। उसमें से पारा उड़कर ऊपर की हांडी में जाकर जम जावेगा, उसे धोकर पारा निकाल ले। इसे शुद्ध जान लो, इसको सर्व कार्य में वर्तना चाहिये।।१५।।१६।।

शिंगरफ का शोधन

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ।।१७।।

अर्थ–शिंगरफ को खरल में डाल के भेड़ के दूध की सात पुट देवे तथा नीबू के रस की सात पुट ऐसे चौदह पुट देवे तो शिंगरफ निश्चय शुद्ध हो जाती है।।१७।।

शुद्ध हुए पारे के मुख करने की विधि

कालकूटो वत्सनाभः शृङ्गकश्च प्रदीपकः । हलाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ।।१८।। सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव । अर्क–सेहुण्डऽधत्तुरलांगलीकरवीरकम् ।।१९।। गुञ्जाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ।। एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षः प्रजायते ।।२०।। मुखं च जायते तस्य धातूँश्च ग्रसते क्षणात् ।

अर्थ–१ कालकूट, २ वत्सनाभ (बच्छनाग), ३ शृङ्गाक (सिंगिया अथवा मीठा तेलिया) ४ प्रदीपक, ५ हलाहल, ६ ब्रह्मपुत्र, ७ हारिद्र, ८ सक्तुक और ९ सौराष्ट्रिक ये नौ महाविष हैं। १ आक, २ थूहर, ३ धतूरा, ४ क़लहारीर, ५ कनेर, ६ गुंजा और ७ अफीम ये सात उपविष हैं। ऐसे सब मिलाके १६ हुए। इनमें से एक एक विष में पारे को सात २ दिन एक के पीछे दूसरे में इस प्रकार पृथक् पृथक् खरल करके धो लेवे तो पारे को पक्ष (पर) कट जावेंगे। अर्थात् उड़ेगा नहीं तथा उसके मुख होकर सुवर्णादि धातुओं को तत्काल ग्रसे अर्थात् खा जावे।।१८–२०।।

यहां इन कालकूटादि महाविषों के लक्षण ग्रन्थांतर में जो लिखे हैं उनकी टीकाकार प्रसंगवश लिखते हैं :–

१ कालकूट–विष सफेद वर्ण का होता है तथा उस पर लाल २ बिंदु बहुत होते हैं कीचड़ के समान नरम होता है। यह विष देवता और दैत्यों के युद्ध में मालिंनामक दैत्य के रुधिर से उत्पन्न हुआ है। यह पीपल के वृक्ष के समान एक वृक्ष होता है उसका गोंद है। इसकी उत्पत्ति अहिच्छत्र मलब कोंकण और शृङ्गवेर इन पर्वतों पर अत्यंत होती है।

२ वत्सनाभ–विष के निर्गुडी के समान पत्र होते हैं और आकृति (स्वरूप) बचनाग के समान होती है इसके आसपास वृक्ष बेल घास ये बढ़ते नहीं है। यह विष द्रोणाचल पर्वत पर अत्यन्त उत्पन्न होता है।

३ शृंगकविष–गौ के सींग के समान होकर उसको दो भाग होते हैं। इस विष को गौ के सींग में बांधे तो गौ का दूध रुधिर के समान होता है इसके पत्ते अदरख के पत्ते के समान होते हैं। यह नदी के किनारे जिस जगह पर कीचड़ होती है उस जगह बहुधा प्रगट होता है।

४ प्रदीपक विष–दहकते हुए अंगारे के समान लाल रंग का कांतिवाला होता है और इसके पत्ते खजूर के समान होते हैं। इसके सूंघने से प्राणी के देह में दाह प्रकट होकर तत्काल मर जाता है। यह समुद्र के किनारे बहुत होता है।

५ हालाहल विष–ताड़ के पत्ते के समान होता है। इसके पत्ते नीले रंग के होते हैं और फल इसके गौ के स्तन के समान लंबे और सफेद होते हैं तथा इसका कंद भी गौ के थन के समान होता है। इसके आसपास वृक्षादिक नहीं होते। इसकी बांस सूघते ही मनुष्य तत्काल मर जाता है।

६ ब्रह्मपुत्र विष–ब्रह्मपुत्रनामक नदी के किनारे बहुत होता है। इसके पत्ते पलाश के समान होते हैं और फल भी पलाश (ढाक) के समान होते हैं। कंद इसका बड़ा तथा पांडु वर्ण का होता है। यह विष रोगहरण में और रसायन क्रिया में अत्युपयोगी होती है।

७ हारिद्र विष–हल्दी के खेतों में उत्पन्न होता है। इसके पत्ते हल्दी के समान होते हैं और गांठ भी हल्दी के समान होती हैं। यह विष रसायन विषय में समर्थ है।

८ सक्तुक विष–जौ के समान आकृति में होता है और भीतर से सफेद है। यह लोकपर्वत में बहुत उत्पन्न होता है।

९ सौराष्ट्रिक विष–सोरठ (गुजरात) देश में उत्पन्न होता है। इसका कंद कछुआ के मस्तक के समान मोटा होता है। तथा कृष्णागरु के समान काला वर्ण होता है और इसके पत्ते पलाश के समान होते हैं, इसका पराक्रम भी बड़ा उत्कट है।

मुख और पक्षच्छेदन का दूसरा प्रकार

अथवा त्रिकटुक्षारौ राजीलवणपञ्चकम् ॥२१॥ रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः । समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण द्रवेण वा॥२२॥निम्बुतोयैःकाञ्जिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत् । अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुचरं मुखम् ॥२३॥ अथवा बिन्दुलीकीटै रसो मर्द्यस्त्रिवासरम् । लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम् ॥२४॥

अर्थ–१ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल, ४ जवाखार, ५ सज्जीखार, ६ राई, ७ सैंधानमक, ८ सञ्चर नमक, ९ विडखार, १० समुद्रनमक, ११ रेह का खार, १२ लहसन १३ नौसादर और १४ सहँजने की छाल ये चौदह औषध समान भाग लेकर चूर्ण करके पारे के समान भाग ले, सबको तप्त खल्व में डालके जम्भीरी अथवा नींबू के रस से अथवा कांजी में तीन दिन रात खरल करे तो स्वर्णादिधातु भक्षण करनेवाला पारे का मुख हो जाता है। अथवा बीरबहूटी (जिसको इन्द्रवधू भी कहते हैं। इस नाम का कीड़ा चातुर्मास्य में होता है) को लाकर उसके साथ पारे को तीन दिन खरल करे फिर नींबू का रस और सैंधानमक दोनों को एकत्र करके पारा डाल तीनों को खरल करे तो भी स्वर्णादि धातुओं को खानेवाला पारे का मुख हो जाता है॥२१॥

कच्छपयन्त्र करके गन्धकजारण

मृत्कुण्डे निक्षिपेन्नीरं तन्मध्ये च शरावकम्। महत्कुण्डपिधानाभं मध्ये मेखलया युतम् ॥२५॥ लिप्त्वा च मेखलामध्यं चूर्णेनात्र रसं क्षिपेत् । रसस्योपरि गन्धस्य रजो

दद्यात्समांशकम् ॥२६॥दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत्। तस्योपरि पुटं दद्याच्चतुर्भिर्गोमयोपलैः ॥२७॥ एवं पुनः पुनर्गन्धं षड्गुणं जारयेद्बुधः । गन्धजीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मकृत् ॥२८॥

अर्थ–मिट्टी का एक पात्र कूँडे के समान ऊँचे मुख का लेकर उसमें जल भरके उस पर ढकने की ऐसी कूँडी लेवे जो उस पात्र के मुखपर आ जावे। उसको लेकर पानी से न लगे इस प्रकार अलग रखे। फिर उस कुंडी में मिट्टी का गोल एक अँगुल ऊंचा गढ़ा करके उसमें चूना बिछाकर पारा भर देवे। फिर पारे के समान भाग गन्धक का चूर्ण उस पारे पर डाले। फिर मिट्टी की दूसरी कुण्डी उलटी ढकके उसकी संधियों को नमक मिली हुई राख से बन्द कर मुद्रा दे देवे। उसके ऊपर गौ के गोबर के ४ उपले रख के अग्नि देवे। इस प्रकार उस पारे पर छः बार गन्धक डाल डाल के अग्नि देकर गन्धकजारण करे तो यह पारा देदीप्यमान अग्नि के समान सर्व कार्यकर्त्ता हो जाता है।२५–२८॥

पारामारण की विधि

धूमसारं रसं तोरी गन्धकं नवसादरम् । यामैकं मर्दयेदम्लैर्मागं कृत्वा समं समस् ॥२९॥ काचकुप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रिताम् । विलिप्य परितो वक्त्रं मुद्रां दत्त्वा च शोषयेत् ॥३०॥ अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत् । पिठरीं वालुकापुरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम् ॥३१॥ निवेश्यं चुल्ल्यां तदधः कुर्याद्वह्निं शनैः शनैः । तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्क्रमात्॥३२॥ एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते सूतकोत्तमः । स्फोटयेत्स्वांगशीतं च ऊर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत् ॥३३॥ अधः स्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत् ।

अर्थ–१ घर का धूआं, २ पारा, ३ फिटकरी, ४ गन्धक, ५ नौसादर ये पांच औषध समान भाग लेकर नीबू के रस में १ प्रहर खरल कर कांच की शीशी में भरके उस पर कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा ले फिर मुख पर डाट देकर बन्द कर देवे। फिर एक मिट्टी का बड़ा पात्र लेके उसकी पेंदी में छेद करके उसके बीच में एक ठीकरी रखके उसके ऊपर कांच की शीशी को रख के ऊपर मे शीशी के गले पर्यन्त वालू भर देवे, शीशी की नली को खाली रखे। इस यन्त्र को वालुकायन्त्र कहते हैं। फिर उस पात्र को चूल्हे पर रखके नीचे प्रथम हलकी, फिर मध्यम और अन्त में तेज इस प्रकार बारह प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशी को बाहर निकाल युक्ति से फोड़के उसके मुख पर जो गन्धक लगी हुई है उसको दूर करके नीचे पारे की भस्म जो रहती है उसको निकालके कार्य में लाना चाहिये।२९–३३॥

पारदभस्म करने का दूसरा प्रकार

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥३४॥ तत्संपुटे न्यसेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम् । द्रोणपुष्पीप्र-

सूनानि विडंगान्यरिमेदकः॥३५॥ एतच्चूर्णमधोर्ध्वं च दत्त्वा मुद्रां प्रदीयताम् । तं गोलं सन्धयेत्सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटे सुधीः ॥३६॥ मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत्। एवमेकपुटे-नैव जायते भस्म सूतकम् ॥३७॥

अर्थ–ओंगा (चिरचिटा) के बीजों को बारीक पीसके दो मूषा बनावे। फिर द्रोणपुष्पी (गोमा) के फूल वायविडंग और खैर की छाल इन औषधों का चूर्ण करके आधा चूर्ण कर मूष में भरे, उसके ऊपर कद्दू भर के मर्दन किये हुए पारे को रख के उस पारे के ऊपर आधे चूर्ण को रख देवे। फिर दूसरी मूष को उस पहली मूषपर रखके सन्धि को लेप कर अच्छी तरह बन्द कर देवे, फिर गोला बनाकर मिट्टी के सराव सम्पुट के रख के उस पर भी कपड़मिट्टी करके आरने उपलों के गजपुट में फूंक देवे तो एक ही पुट करके पारद की भस्म हो जाती है॥३४–३७॥

तीसरा प्रकार

काकोदुम्बरिकादुग्धे रसं किञ्चिद्विमर्दयेत् । तद्दुग्धघृष्ट-हिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥३८॥ क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत् । धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥३९॥ पचेन्मृदु पुटेनैव सूतको याति भस्मताम् ।

अर्थ–केमरी के दूध में पारे को थोड़ी देर खरल करे। फिर कठूमर के दूध में हींग को खरल करके दो मूष बनावे। एक मूष में पारे को रख के दूसरी मूष से उसका मुख बन्द करके अच्छी प्रकार संधियों को बन्द कर देवे। फिर ऊपर से पोत कर गोला बनाय ले, इस गोले को मिट्टी के शरावसम्पुट में रखके उस पर कपडमिट्टी कर आरने उपलों की हलकीसी अग्नि में रख के फूंक देवे तो पारे की भस्म हो जाती है॥३८॥३९॥

चौथा प्रकार

नागवल्लीरसैर्घृष्टःकर्कोटीकन्दगर्भितः॥४०॥
मृन्मूषासम्पुटे पक्त्वा सूतो यात्येव भस्मताम् ।

अर्थ–नागरबेल के पानों के रस में पारे को खरल कर ककोडे के कन्द में पारे को रख के उसके ही टुकड़े से बन्द करके संधि मिलाकर कपड़मिट्टी करे, फिर उसको धूप में सुखाकर मिट्टी के शरावसम्पुट में रख उस पर कपड़मिट्टी करके आरने उपलों में रख के हलकी अग्नि देवे तो पारे की अवश्य भस्म हो जावे, इसको कार्य में लावे॥४०॥

ज्वरांकुश रस

खण्डितं मृगश्रृङ्गं च ज्वालामुख्या रसैः समम् ॥४१॥ रुद्ध्वा भाण्डे पचेच्चुल्ल्यां यामयुग्मं ततो नयेत् । अष्टांशं त्रिकुटं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत् ॥४२॥ नागवल्ल्या रसैः सार्धं वातपित्तज्वरापहम् । अयं ज्वरांकुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः ॥४३॥

अर्थ–हरिण के सींग के बारीक टुकड़े करके पात्र में रख उसमें ज्वालामुखी का रस डाल के सेके

मुखपर सराव उकके कपड़मिट्टी करे। उसको चूल्हे पर रख के नीचे दो प्रहर पर्यंत अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब उन टुकड़ों की भस्म को बाहर निकालके उस भस्म का आठवां भाग सोंठ, मिरच और पीपल इनका चूर्ण करके उस भस्म में मिला दे। फिर इसमें से ४ मासे के अनुमान पान के रस में मिलाकर पीवे। इसको ज्वरांकुश कहते हैं। यह सम्पूर्ण ज्वरों को दूर करता है।।४१–४३।।

ज्वराररिस

पारदं रसकं तालं तुत्थं टंकणगन्धकैः । सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्ल्या रसैर्दिनम् ।।४४।। मर्दयेल्लेपयेत्तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक् । अंगुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम् ।।४५।। पचेत्तं वालुकायन्त्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे । यदा स्फुटन्ति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत्।।४६।। ततो नयेत्स्वांगशीतं ताम्रपात्रोदराद्भिषक् । रसं ज्वरारिनामानं विचूर्ण्य मरिचैःसमम् ।।४७।। माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम् त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम् ।।४८।।

अर्थ–१ पारा, २ खपरिया, ३ हरताल, ४ नीलाथोथा, ५ सुहागा, ६ गन्धक इन छः औषधों को शोधकर समान भाग लेवे। सबको खरल में डाल करेले के पत्तों के रस से १ दिन खरल करे फिर तांवे की डिब्बी में अर्द्ध अंगुल लेप करके उसपर ढ़कना देकर उसे वालुकायन्त्र में डाल के चूल्हेपर रखके नीचे अग्नि जलावे और उस पात्र के मुखपर धान रख देवे। जब वह भून के खील हो जावे तब जाने कि औषधि सिद्ध हो गई। फिर अग्नि को बन्द करे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल करके उस डिब्बी से औषधि को निकाल लेवे। इसको ज्वराररिस कहते हैं। इसके समान काली मिरच बारीक पीसकर मिला लेवे। इसमें से १ मासा पान में रखके तीन दिन नित्य खावे तो यव ज्वाराररिस ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक चातुर्थिक और दारुण विषम ज्वर को भी नष्ट करें।।४४–४८।।

शीतज्वरारि रस

तालकं तुत्थकं ताम्रं रसं गन्धं मनः शिलाम् । कर्ष कर्षं प्रयोक्तव्यं मर्दयेत्त्रिफलांबुभिः ।।४९।। गोल न्यसेत्संपुटके पुटं दद्यात्प्रयत्नतः । ततो नीत्वार्कदुग्धेन वज्रीदुग्धेन सप्तधा ।।५०।। क्वाथेन दंत्या श्यामाया भावयेत्सप्तधा पुनः । माषमात्रं रसं दिव्यं पञ्चाशन्मरिचैर्युतम् ।।५१।। गुडगद्याणकं चैव तुलसीदलयुग्मकम् । भक्षयेत्त्रिदिनं शक्त्या शीतारिर्दुर्लभः परः ।।५२।। पथ्यं दुग्धौदनं देयं विषमं शीतपूर्वकम् । दाहपूर्वं हरत्याशु तृतीयकचतुर्थकौ ।।५३।।द्व्याहिकं संततं चैव वैवर्ण्यं च नियच्छति।

अर्थ–१ हरताल, २ नीलाथोथा, ३ ताम्रभस्म, ४ पारा, ५ गन्धक, ६ मैनसिल ये छः औषधि एक एक कर्ष लेकर सबको त्रिफले के काढ़े में खरल कर गोला बनाकर मिट्टी के सरावसम्पुट में

भर के कपड़मिट्टी करके धूप में सुखा ले फिर इसका आरने उपलों के गजपुट में रखके फूंक देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल लेवे। फिर खरल में डाल के आंक के दूध की सातपुट देकर मासे मासे की गोली बना लेवे। पचास मिरच, गुड, छः मासे और तुलसी के पत्ते दो इन सबको एकत्र करके उसमें एक एक गोली बलाबल विचार के तीन दिन सेवन करे और पथ्य में भात खाने को देवे तो शीतपूर्वक विषमज्वर दाहपूर्वकज्वर, तृतीयक, चातुर्थिक और दिन रात्रि में दो बार आनेवाला द्व्याहिक ज्वर, तथा देह में एक सा रहनेवाला ज्वर और विलक्षण ज्वर ये सब दूर हो जाते हैं।।४९–५३।।

ज्वरघ्नी गुटिका

भागैकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलायः पिप्पली शिवा ।।५४।। आकारकरभो गन्धःकटुतैलेन शोधितः । फलानि चेन्द्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता ह्यमा ।।५५।। एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे । माषोन्मितां गुटीं कृत्वा द्यात्सर्वज्वरे बुधः ।।५६।। छिन्नारसानुपानेन ज्वरघ्नी गुटिका मता ।

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा एक भाग, १ एलुआ, २ पीपल, ३ जंगीहरड, ४ अकरकरा, ५ सरसों के तेल में शोधी हुई गन्धक और ६ इन्द्रायन के फल ये छः औषधि चार चार भाग लेवे। सबका चूर्ण करके पारा समेत खरल में डाल के इन्द्रायन के फल के रस में खरल करके एक एक मासे की गोली बनावे। एक गोली गिलोय के रस से सेवन करे तो सम्पूर्ण ज्वर दूर हो आवें।।५४–५६।।

लोकनाथरस क्षयादिरोगोंपर

शुद्धो बुभुक्षितः सूतो भागद्वयमितो भवेत् ।।५७।। तथा गंधस्य भागौ द्वौ कुर्यात्कज्जलिकां तयोः । सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषु विनिक्षिपेत् ।।५८।। भागैकं टंकणं दत्त्वा गोक्षीरेण विमर्दयेत् । तथा शंखस्य खण्डानां भागानष्टौ प्रकल्पयेत् ।।५९।। क्षिपेत्सर्वं पुटस्यान्तश्चूर्णं लिप्तशरावयोः । गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पचेद्गजपुटेन च ।।६०।। स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य पिष्ट्वा तत्सर्वमेकतः । षड्गुञ्जासंमितं चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ।।६१।। घृतेन वातजे दद्यान्नवनीतेन पित्तजे । क्षौद्रेण श्लेष्मजे दद्यादतीसारे क्षये तथा ।।६२।। अरुचौ ग्रहणीरोगे कार्श्ये मन्दानले तथा । कासे श्वासेषु गुल्मेषु लोकनाथो रसो हितः ।।६३।। तस्योपरि घृतान्नं च भुञ्जीत कवलत्रयम् । मञ्चे क्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके।।६४।। अनम्लमन्नं सघृतं भुञ्जीत मधुरं दधि । प्रायेण जांगलं मांसं प्रदेयं घृतपाचितम् ।।६५।। सदुग्धभक्तं दद्याच्च जातेऽग्नौ सान्ध्यभोजने। सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेव चारयत् ।।६६।। तिलामलक-

कल्केन स्नापयेत्सर्पिषाऽथवा।अभ्यञ्जयेत्सर्पिषा च स्नानं कोष्णोदकेन च ।।६७।। क्वचित्तैलं न गृह्णीयान्नबिल्वं कारवेल्लकम् । वातार्कं शफरीं चिंचां त्यजेद्वयायाममथुनम् ।।६८।। मद्यं संधानकं हिंगुशुंठीमाषान्मसूरकान् । कूष्मांडं राजिकां कोपं काञ्जिकं चैव वर्जयेत् ।।६९।। त्यजेदयुक्तनिद्रां च कांस्यपात्रे च भोजनम् । ककारादियुतं सर्वं त्यजेच्छाकफला-दिकम् ।।७०।। पथ्योऽयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवासरे । पूर्णातिथौ शुक्लपक्षे जाते चन्द्रबले तथा ।।७१।। पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेततः । दानं दद्याद्द्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः ।।७२।। रसात्संजायते तापस्तदा शर्करया युतम् । सत्त्वं गुडूच्या गृह्णीयाद्वंशरोचनया युतम् ।।७३।। खर्जूरं दाडिमं द्राक्षामिक्षुखंडानि चारयेत् । अरुचौ निस्तुषं धान्यं घृतंभृष्टं सशर्करम् ।।७४।। दद्यात्तथा ज्वरे धान्यं गुडूचीक्वाथ माहरेत् । उशीरवासकक्वाथं दद्यात्समधुशर्करम् ।।७५।। रक्तपित्ते कफे श्वासेकासे च स्वरसंक्षये । अग्निभृष्ट जया चूर्ण मधुना निशि दीयते।।७६।। निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां मन्दपावके । सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैः पिबेत् ।।७७।। शूलेऽजीर्णे तथा कृष्णा मधुयुक्ता ज्वरे हिता । प्लीहोदरे वातरक्ते छर्द्यां चैव गुदांकुरे ।।७८।। नासिकादि रक्तेषु रसं दाडिमपुष्पजम् । दूर्वायाः स्वरसं नस्ये प्रदद्याच्छर्करायुतम् ।।७९।। कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्म सशर्करम् । मधुना लेहयेच्छर्दिहिक्का–कोपस्य शांतये ।।८०।। विधिरेषप्रयोज्यस्तु सर्वस्मिन्पोटलीरसे । मृगांके हेमगर्भे च मौक्तिकाख्ये रसेषु च ।।८१।। इत्ययं लोकनाथाख्यो रसः सर्वरुजो जयेत् ।

अर्थ–शुद्ध और बुभुक्षित ऐसा पारा दो भाग तथा शुद्ध की हुई गन्धक दो भाग इन दोनों की एक जगह कजली करके पारे से चौगुनी कौड़ियों में उस कज्जली को भरे। फिर सुहागा एक भाग लेके गौ के दूध मे खरल कर उससे कौडियों के मुख को मूंद देवे, पश्चात् शंख के टुकड़े आठ भाग लेकर मिट्टी के दो शरावे लेकर एक में चूने का लेपकर उसमें शंख के टुकड़े आधे धरे और उनके ऊपर इन कौड़ियों को रखे। फिर बाकी रहे हुए आधे शंख के टुकडों को रख देवे। फिर इसके ऊपर दूसरा शराव ढक के कपड़मिट्टी कर एक हाथ गढा खोद के आरने उपलों के गजपुट में रखके अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल उस शराव में से औषधों को निकाल लेवे। फिर उसको खरल करके धर रखे। इसे लोकनाथरस कहते हैं। यह लोकनाथरस छः रत्ती उनतीस कालीमिरचों के चूर्ण में मिलाकर जिसको बादी का रोग होवे उसको घी के साथ देवे। पित्तरोग

होवे तो मक्खन के साथ देवे, कफरोग होवे तो शहद में देवे और अतिसार, क्षय, अरुचि, संग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, खांसी श्वास और गोले का रोग ये सब दूर होते हैं, यह लोकनाथरस परम प्रशस्त है। इसकी मात्रा सेवन करके इसके ऊपर की घी और भात के तीन ग्रास देने चाहिये। फिर शय्यापर बिना बिछौना के एक क्षणमात्र सीधा लेटे और खट्टे पदार्थो को त्याग के घृत के साथ भोजन करे। उत्तम मीठा घी भोजन में सेवन करे। जंगली जीवों में हरिणादिकों का मांस घी में तलके खाय। संध्या के समय भूख लगे तो दूधभात खाय तथा मूंग के बड़े घी में तलके खाय। तिल और आमलों का कल्क कर देह में मालिश करे, अथवा घी की मालिश करे स्नान का जल कुछ गरम होना चाहिये। तैल को किसी काम में न लावे। बेलफल, करैले, बैंगन, छोटी, मछली, इमली, श्रम, मैथुन, मद्य, संधान (संधाने), हींग, सोंठ, उड़द, मसूर, पेठा, राई, काँजी और कोप इनको लोकनाथ रस का सेवन करनेवाला त्याग देवे दिन में न सोवे। काँसे के पात्र में भोजन न करे, ककार जिनके आदि में है ऐसे शाक (जैसे करेला ककडी आदि) को तथा फलों को त्याग देवे। इस प्रकार लोकनाथरस का पथ्य कहा है। उत्तम दिन उत्तम वार पूर्णा तिथि (पंचम दशमी और पूर्णिमा) शुक्ल पक्ष तथा उत्तम चन्द्रमा का बल विचार के लोकनाथरस का पूजन करे फिर कुमारी (कन्याओं) को भोजन कराकर तथा यथाशक्ति सुवर्णादिक का दान देकर इस रस का सेवन करे। इस रस के सेवन करने से दो घड़ी देह में संताप होता है, उसके शांति करने को मिश्री गिलोय का सारतत्त्व और वंशलोचन इन तीनों को एकत्र करके सेवन करे तो सन्ताप दूर हो जावे। खजूर (छुहारे), विलातय अनार, दाख (अंगूर) और ईख के टुकडे ये पदार्थ थोड़े २ खाय तो इसका सन्ताप और अरुचि दूर हो। धनिये को कूट उसके तुषो को दूर करके घी में भरके उसमें मिश्री मिलायके उसमें इस लोकनाथरस को मिलाय के पीवे तो ज्वर दूर होवे। धनिया और गिलोय इनका काढा करके उसमें इस लोकनाथरस को मिलाय के पीवे तो ज्वर दूर होवे। नेत्रवाला और अड़ूसा इन दोनों का काढा करके शहद और मिश्री मिलाकर इसके साथ लोकनाथ रस पीवे तो रक्तपित्त कफ श्वास खांसी स्वरभंग ये रोग दूर हो जावें। थोड़ी भाँग को भून चूर्ण कर उसमें इस रस को मिलाकर इसको शहद में मिलाय रात्रि के समय सेवन करे तो गई हुई निद्रा आवे, अतिसार और संग्रहणी ये रोग दूर हों तथा अग्नि प्रदीप्त होय। काला नमक जंगी हरड और पीपल इन औषधों का चूर्ण करके इसमें लोकनाथ रस मिलाय के गरम पानी से सेवन करे तो शूल और अजीर्ण रोग दूर हों। शहद और पीपल के साथ लोकनाथरस सेवन करे तो पेट में बाई तरफ जो तिल्ली रोग होता है वह तथा वातरक्त, वमन, मूलव्याधि और नाक के रास्ते रुधिर का गिरना ये संपूर्ण रोंग दूर होंय। दूब के रस में मिश्री मिलाय के लोकनाथरस डाल नाक में नस्य देवे तो नाक से रुधिर का गिरना बंद हो जावे, बेर की गुठली पीपल और मोरपांख की भस्म इन तीन औषधों को एकत्र करके उसमें मिश्री और शहद मिलाकर लोकनाथरस को एकत्र कर सेवन करे तो उबकाई तथा हिचकी ये दूर हो जावें। इसी प्रकार संपूर्ण पोटली रस और मृगांक रस हेमगर्भ रस तथा मौक्तिकाख्य रसायन इनमें भी वही विधि करनी चाहिये। इस प्रकार लोकनाथ रस कहा है। यह लोकनाथरस संपूर्ण रोगों को दूर करता है।।५७-८१।।

लघुलोकनाथरस क्षयपर

वराटभस्म मण्डूरं चूर्णयित्वा घृते पचेत् ।।८२।। तत्समं मारिचं चूर्णं नागवल्ल्या विभावितम् । तच्चूर्णं मधुना लेह्यमथवा

नवनीतकः॥८३॥ माषमात्रं क्षयं हन्ति यामे यामे च भक्षितम्।
लोकनाथरसो ह्येष मण्डलाद्राजयक्ष्मनुत् ॥८४॥

अर्थ–कौडियो की भस्म एक भाग, मंडूर एक भाग इन दोनों औषधों को एकत्र कर घी में भून ले। और फिर दो भाग कालीमिर्च का चूर्ण मिलाकर नागरबेल के पानों के रस में खरल करके रख ले। इसको लघुलोकनाथरस कहते हैं। इसे शहद के साथ मक्खन के साथ एक एक प्रहर के अंतर से एक एक मासे खावे तो सामान्य क्षयरोग दूर हो। इस प्रकार मंडल पर्यंत सेवन करे तो राजयक्ष्मा को भी दूर करता है॥८२॥८४॥

मृगांकपोटलीरस क्षटादिरोगोंपर

भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत् । तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥८५॥ काञ्चनाररसेनैव ज्वालामुख्या रसेन वा । लाङ्गल्या वा रसस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका ॥८६॥ ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टंकणं चत्र निक्षिपेत् । पिष्टिमौक्तिकचूर्णं च हेमद्विगुणमावपेत् ॥८७॥ तेषु सर्वसमं गन्धं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत् । तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥८८॥ पश्चान्ममृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत् । शरावसंपुटस्यान्ते तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥८९॥ लवणापूरिते भाण्डे धारयेत्तं च संपुटम् । मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥९०॥ ततः शीते समाहृत्य गन्धं सूतसमं क्षिपेत् । घृष्ट्वा च पूर्ववत्खल्वे पुटेद्गजपुटेन च ॥९१॥ स्वाङ्गशीतं ततो नीत्वा गुञ्जायुग्मं प्रकल्पयेत् । अष्टभिर्मरिचैर्युक्तः कृष्णात्रययुतोऽथवा ॥९२॥ विलोक्य देयो दोषादीनेकका रसरक्तिका । सर्पिषा मधुना वापि दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥९३॥ लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः । श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ॥९४॥ मृगाङ्कोऽयं रसो हन्यात् कृशत्वं बलहीनताम् ।

अर्थ–सोने के भोजपत्र के समान पतले पत्र करके उसके समान भाग शुद्ध पारा लेकर दोनों को एक जगह कचनार के रस से अथवा कलहारी के रस से अथवा ज्वालामुखी के रस से जब तक मिलाकर मिट्टी के समान न होवे तब तक खरल करे। पश्चात् सोने का चतुर्थांश सुहागा तथा सोने का दूना मोतियों का चूरा और सब की बराबर गंधक ले सबको एक जगह खरल करके एक गोला बनावे। उसके चारों तरफ कपड़ा लपेटकर ऊपर से मिट्टी ल्हेस देवे। फिर इसको धूप में सुखाले। और मिट्टी के दो सरावे ले एक में इस गोले को रख के दूसरा उसके मुखपर रखके उस पर कपड़मिट्टी कर देवे। फिर एक हाँडी लेवे। इसको पिसे हुए नमक से आधी भरके बीच में इस संपुट को रख के उसको नमक से ही फिर भरके बन्द कर देवे और उसके मुख को बन्द कर मुख पर भी कपड़मिट्टी कर देवे। इसको गजपुट की अग्नि से कुछ अधिक अग्नि आरने उपलों की देवे। जब

स्वांग शीतल हो जावे तब बाहर निकाल औषधों को खरल में डाल के फिर पारे के समान गन्धक को लेके कचनार अथवा ज्वालामुखी के रस में खरल करे। पूर्वोक्तविधि से गजपुट की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल ले। इस रस को मृगांकपोटलीरस कहते हैं। यह पोटलीरस दो रत्ती प्रमाण आठ मिरचों के साथ अथवा तीन पीपलों के साथ देवे। दोषों का तारतम्य देखकर एक रत्ती देवे। दोषों की अपेक्षानुसार घी और शहद से देवे। इस रस का सेवन करनेवाले प्राणी अन्तःकरण को स्वस्थ करके पवित्र हो लोकनाथरस के समान पथ्य करे। इस प्रकार आचरण करने से इस रसायन के कफ के रोग, संग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षयरोग, अरुचि, शरीर की कृशता और बलहानि ये सम्पूर्ण रोग दूर हो जाते हैं।।८५-९४।।

हेमगर्भपोटलीरस कफक्षयादिकोपर

सूतात्पादप्रमाणेन हेम्नः पिष्टं प्रकल्पयेत् ।।९५।। तयोः स्याद्द्विगुणो गन्धो मर्दयेत्काञ्चनारिणा । कृत्वा गोलं क्षिपेन्मूषसंपुटे मुद्रयेत्ततः ।।९६।। पचेद्भूधरयन्त्रेण वासरत्रितयं बुधः । तत उद्धृत्य तत्सर्वं दद्याद् गन्धं च तत्समम् ।।९७।। मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकं स्वरसेन च । स्थूलपीतवराटांश्च पूरयेत्तेन युक्तितः ।।९८।। एतस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेन टङ्कणम् । टंकणार्धं विषं दत्त्वा पिष्ट्वा सेहुण्डदुग्धकैः ।।९९।। मुद्रयेत्तेन कल्केन वराटानां मुखानि च । भांडे चूर्णप्रलिप्तेऽथ धृत्वा मुद्रां प्रदापयेत् ।।१००।। गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च । स्वाङ्गशीतं रसं ज्ञात्वा प्रदद्याल्लोकनाथवत् ।।१०१।। पथ्यं मृगांकवज्ज्ञेयं त्रिदिनं लवणं त्यजेत् । यदा छर्दिर्भवेत्तस्या दद्याच्छिन्नाश्रृतं तदा ।।१०२।। मधुयुक्तं तथा श्लेष्मकोपे दद्याद् गुडार्द्रकम् । विरेके भर्जिता भङ्गा प्रदेया दधिसेयुता ।।१०३।। जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमरुचिं तथा । अग्निं च कुरुते दीप्तं कफवातं नियच्छति ।।१०४।। हेमगर्भः परोज्ञेयो रसः पोटलिकाभिधः ।

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग ले, उसका चतुर्थांश खरल किया हुआ सुवर्ण का चूरा अथवा सोने के बर्क लेवे एवं पारे और सुवर्ण दोनों से दूनी शुद्ध की हुई गंधक लेवे। तीनों को कचनार के रस में खरल कर उसको गोला करे मिट्टी के सरावसंपुट में रख के कपड़मिट्टी कर देवे। फिर एक हाथ का गड्ढ़ा खोद उसमें पूर्वोक्त शरावसम्पुट को रख के ऊपर मिट्टी बिछा के दाब देवे। फिर उसके चारों तरफ आरने उपलों के बारीक २ टुकड़े डाल के तीन दिन अग्नि देवे। (इस क्रिया को भूधरयन्त्र कहते हैं) जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल शरावे में से रस की समान भाग गन्धक मिलाय दोनों को अदरख के रस में खरल करके फिर चीते के रस में खरल करे। पश्चात् बड़ी बड़ी पीली कौड़ी लाकर उनमें इसी घुटी हुई दवा को भर देवे फिर सब औषधों का आठवां भाग सुहागे का आधा भाग विष ले दोनों को थूहर के दूध में खरल करके उन कौड़ियों के मुख को बन्द कर देवे। फिर एक हांड़ी में चूना लेप कर इन कौड़ियों को रख देवे। उस हाँड़ी के मुख पर

दूसरी हाँड़ी जोड़ के उसकी सन्धियों को कपड़मिट्टी करके हाथ भर के गड्ढे में आरने उपले भर के गजपुट की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल ले। इसको हेमगर्भपोटलीरस कहते हैं। हेमगर्भपोटलीरस लोकनाथसरण की विधि से सेवन करे और मृगांयकरसायन के समान पथ्य करे। इसमें भी विशेष पथ्य यह है कि तीन दिन नमक रहित भोजन करे। इस औषध के सेवन से यदि उलटी आवे तो छिन्नाश्रृत काढ़ा करके उसमें शहद डाल के पीवे तो ओकारियों का आना दूर हो जाता है। कफ के प्रकोप में गुड़ और और अदरख को एकत्र करके सेवन करे तो कफ दूर होवे। यदि इस रस के प्रभाव से दस्त होने लगे तो भाँग को थोड़ी भून के दही में मिलाय के खावे तो दस्तों का होना दूर हो। इस हेमगर्भपोटलीरस से खाँसी, क्षय, श्वास, संग्रहणी और अरुचि ये रोग दूर हों। अग्नि प्रदीप्त होवे तथा कफवायु का प्रकोप दूर हो जाता है।।९५-१०४।।

दूसरी विधि

रसस्य भागाश्चत्वारस्तावन्तः कनकस्य च ।।१०५।। तयोश्च पिष्टिकां कृत्वा गंधो द्वादशभागिकाः । कुर्यात्कज्जलिकां तेषां मुक्तभागाश्च षोडश ।।१०६।। चतुर्विंशश्च शंखस्य भागैकं टंकणस्य च । एकत्र मर्दयेत्सर्वं पक्वनिंबूकजै रसैः ।।१०७।। कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषासंपुटकं न्यसेत् । मुद्रां दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गर्ते च गोमयैः ।।१०८।। पुटेद्गजपुटेनैव स्वांगशीतलं समुद्धरेत् । पिष्ट्वा गुंजाचतुर्मानं दद्याद्द्रव्याज्यंसयुतम् ।।१०९।। एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सह दीयताम् । राजते मृन्मये पात्रे काचजे वावलेहयेत् ।।११०।। लोकनाथसमं पथ्यं कुर्याच्च स्वस्थमानसः कासे श्वासे क्षये वाते कफेग्रहणिकागदे ।।१११।। अतीसारे प्रयोक्तव्या पोटलीहेमगर्भिका ।

अर्थ–पार चार भाग तथा सुवर्ण का बारीक चूर्ण चार भाग दोनों को एक जगह उत्तम मिट्टी होने पर्यंत खरल करे। फिर बारह भाग गंधक लेके खरल कर कजली करे पश्चात् सोलह भाग मोती, चौबीस भाग शंख और एक भाग सुहागा लेके पूर्वोक्त कजली में मिलाकर पके हुए नींबू के रस में खरल करके उसका गोला बनाकर मिट्टी के शरावसंपुट में रख के उस पर कपड़मिट्टी कर देवे। १ हाथ का गहरा और लंबा चौड़ा गड्ढा खोद उसमें गौ के गोबर के उपले भर बीच में शरावसंपुट को रख के गजपुट की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल के उसमें से औषध को ले खरल करके धर रक्खे। इसको हेमगर्भपोटली रस कहते हैं। यह हेमगर्भ चार रत्ती लेकर उनतीस काली मिरच के चूर्ण के साथ रूपे के अथवा मिट्टी के अथवा कांच के प्याले में गौ का घी डाल के स्वस्थचित्त करके पीवे और इसके ऊपर लोकनाथ रसायन के समान पथ्य करे तो खाँसी, श्वास, क्षयरोग, कफ, ग्रहणी और अतिसार ये संपूर्ण रोग दूर हो जावें।।१०५-१११।।

महाज्वरांकुश विषमज्वर

शुद्धसूतो विषं गन्धः प्रत्येकं शाणसंमितम् ।।११२।। धूर्तबीजं त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत् । हेमाह्वा कारयेदेषां

सूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः ॥११३॥ दयं जम्बीरमज्जाभिश्चूर्णं गुञ्जद्वयोन्मितम् । आर्द्रकस्वरसैर्वापि ज्वरं हंति त्रिदोषजम् ॥११४॥ एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम् । विषमं च ज्वरं हन्याद्विख्यातोऽयं ज्वरांकुशः ॥११५॥

अर्थ–शुद्ध पारा तीन मासे, शुद्ध किया हुआ विष तीन मासे, गंधक तीन मासे, धतूरे के बीज नौ मासे, और चोक सब से दूना लेवे, सबको एकत्र कर बारीक चूर्ण करके जंभीरी के रस में अथवा अदरख के रस में दो रत्ती देवे तो त्रिदोषज्वर और नित्य आनेवाला दिनरात्रि में दो बार आनेवाला एकतर तिजोरी और चातुर्थिक ज्वर से ये सब दूर हो। यह ज्वरांकुश विषमज्वर दूर करने में विख्यात है॥११२-११५॥

आनन्दभैरवरस अतिसारादिकोंपर

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टंकणं कणा । चूर्णयेत् समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः ॥११६॥ गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत् । मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलत्वचम् ॥११७॥ चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारनुत । दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गोघृतं तक्रमेव च ।॥११८॥ पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि ।

अर्थ–१ सिंग्रफ, २ शुद्ध किया हुआ वत्सनाम विष ३ कालीमिरच, ४ सुहागा और ५ पीपल ये पांच औषधि समान भाग लेके एकत्र चूर्ण करे, इसको आनन्दभैरवरस कहते हैं। यह आनन्दभैरव रस इंद्रजौ और कूड़े की छाल, ये दोनों एक कर्ष प्रमाण लेकर चूर्ण करे। इस चूर्ण के साथ रोगों को बलाबल विचार के १ रत्ती प्रमार अथवा दो रत्ती प्रमाण शहद से देवे तो त्रिदोष से प्रकट अतिसार का रोग दूर होवे। पथ्य में गौ का दही और भात अथवा छाछ भात देवे। प्यास लगे तो शीतल जल पीवे। रात्रि में थोड़ी, भांग शुद्ध करके घोट के पीनी चाहिये॥११६-११८॥

लघुसूचिकामरणरस सन्निपातपर

विषं पलमितं सूतःशाणिकश्चूर्णयेद्द्वयम् ॥११९॥ तच्चूर्णसंपुटे क्षिप्त्वा काचलिप्तशरावयोः । मुद्रा दत्वा च संशोष्य ततश्चचुल्ल्यां निवेशयेत् ॥१२०॥ वह्निं शनैः शनैः कुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया । तत उद्घाटयेन्मुद्रामुपारस्थां शरावकात् ॥१२१॥ सँलग्नौ यो भवेत्सूतस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः वायुस्पर्शो यथा न स्यात्तथा कूप्यां निवेशयेत् ॥१२२॥ यावत्सूतच्या मुख लग्नः निर्याति भेषजम् । तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि ॥१२३॥ क्षुरेण प्रच्छिे मूर्ध्नि तत्रांगुल्या च धर्षयेत् । रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति ॥१२४॥ तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोऽपि जीवति । यदा तापो भवेत्तस्य मधुरं तत्र दीयते ॥१२५॥

अर्थ–बच्छनागाविष १ पल, शुद्ध किया हुआ पारा ३ मासे, दोनों को एकत्र खरल करके चूर्ण करे। फिर काच से लिपे (काच चढ़े) हुए दो मिट्टी के सकोरे ले, उनमें चूँ को रख दोनों को मिलाकर मुख बन्द कर ऊपर कपडमिट्टी कर देवे। फिर धूप में सुखा के चूल्हे पर रख के दो प्रहर तक मन्द मन्द अग्नि देवे तब उसको नीचे उतार के मुद्रा दूर कर ऊपर के शरावे में लगे हुए पारे को हलके हाथ से युक्ति से निकाल शीशी में भर के धर रखे, पश्चात् उस शीशी में सूई डाल के जितना रस सूई के अग्रभाग में लगे इतना बाहर निकाले जिस मनुष्य को सन्निपातक होने से मूर्च्छा आ रही हो उस मनुष्य के मस्तक में तालुए के स्थान में उस्तरे से बालों को मूँडकर फिर उस जगह की खालकी छीलके उस घाव में इस औषधियों को लगा कर उँगली से यहां तक मलता रहे कि जब तक वह औषध रुधिर से न मिले। जब रुधिर में यह औषध अच्छे मिल जावेगी। उसी समय उस प्राणी की मूर्च्छा जाती रहेगी और वह प्राणी होश में आ जावेगा। उसी प्रकार जिस प्राणी को सांप के काटने से मूर्च्छा आ गई हो मरा चाहता हो वह भी इस क्रिया के करने से बच जाता है। इस उपाय के करने से देह में दाह विशेष होती है, उसके दूर करने को गुलकन्द दाख इत्यादि मधुर पदार्थ भक्षण को देवे तो शान्त हो ॥११९-१२५॥

जलचूड़ामणिरस सन्निपातपर

सूतभस्मसमं गन्धं गन्धात्पादं मनःशिला । माक्षिकं पिप्पलीं व्योषं प्रत्येकं शिलया समम् ॥१२६॥चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्य-मायूरसंभवैः । सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुञ्जाद्वयं हितम् ॥१२७॥ तालपर्णी रसश्चानु पञ्चकोलभृतोऽथवा । जलचूड़ो रसो नाम सन्निपातं नियच्छति ॥१२८॥ जलयोगश्च कर्तव्यस्तेन वीर्यं भवेद्रसे ।

अर्थ–पारे की भस्म १ भाग और गन्धक १ भाग, गन्धक का चतुर्थांश मनशिल, १ सुवर्णमाक्षिक की भस्म, २ पीपल, २ सोंठ, ४ काली मिरच और ६ पीपल ये पांच औषध मनशिल के समान ले चूर्ण करे। फिर खरल में डाल के मछली के कलेजे मे जो पित्ता होता है उसके सात पुट देवे, फिर मोर के पित्ते के सात पुट देकर सुखा लेवे, इसको जलचूड़ामरिरस कहते हैं। यह जलचूड़ा मणिरस दो रत्ती के अनुमान मूसली के रस में अथवा पञ्चकाल के काढ़ में देवे। जब इसकी गरमी होवे तब उस रोगी के मस्तक पर शीतल जल का तड्डा देवे, दो रस में वीर्य बढ़े। इस प्रकार करने से सन्निपात दूर होवे।।१२६-१२८।।

पञ्चवक्त्ररस सन्निपातपर

शुद्धसूतं विषं गन्धं मरिचं टंकणं कणा ॥१२९॥ मर्दयेद्धूर्तजद्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत् । पञ्चवक्त्रो रसो नाम द्विगुञ्जसन्निपातहा ॥१३०॥ अर्कमूलकषायं तु सत्र्यूषमनु-पाययेत् । युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत् ॥१३१॥ रसेनानेन शाम्यन्ति सक्षौद्रेण कफादयः । मध्वार्द्रकरसं चानु पिबेदग्निविवृद्धये ॥१३२॥ यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः ।

अर्थ-१ शुद्ध किया हुआ पारा, २ शुद्ध किया हुआ बच्छनाग विष, ३ गन्धक, ४ काली मिरच, ५ सुहागा, ६ पीपल, इन छः औषधियों का धतूरे के रस में एक दिन खरल कर दो दो रत्ती की गोलियां बनावे और इनको धूप में सुखा ले। इसको पञ्चवक्त्ररस कहते हैं। इस रस को अर्क की जड़ का काढ़ा कर उसमें सोंठ, मिरच, पीपल का चूर्ण मिलाकर उसके साथ देवे और पथ्य दही भात देवे तथा रोगी को जब गरमी होवे तब शीतल जल का तरेड़ा देवे तो सन्निपात दूर हो जावे। इस रस को सहत के साथ सेवन करने से कफादिक रोग दूर हों, अदरख के रस में सहत मिलाकर सेवन करे तो जठराग्नि की वृद्धि होवे। घी और मांस यथेष्ट भोजन करने से पच जाते हैं॥१२९-१३२॥

उन्मत्तरस सन्निपातपर

सरगन्धौ समानांशौ धत्तूरफलजै रसैः ॥१२३॥ मर्दयेद्दिनमेकं च तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत् । उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्संनिपातजित् ॥१३४॥

अर्थ-शुद्ध किया पारा १ भाग, गन्धक १ भाग, १ सोंठ, २ कालीमिरच, ३ पीपल, ये तीन औषध पारा गन्धक दोनों के समान लेवे। सबका चूर्ण कर धतूरे के फल के रस में एक दिन खरल करे। फिर सुखाकर चूर्ण बनाकर धूप में सुखा ले। इसको उन्मत्तरस कहते हैं। जिसको सन्निपात होवे उसकी नाक में इसकी नस्य देवे तो रोगी का सन्निपात दूर होय ॥१३३॥१३४॥

सन्निपातपर अञ्जन

निस्त्वग्जेपालबीजं च दशनिष्क विचूर्णयेत् । मरिचं पिप्पलीं सूतंप्रतिनिष्कं विमिश्रयेत् ॥१३५॥ भाव्यो जम्बीरजैर्द्रावैः सप्ताहं सम्प्रयत्नतः । रसोऽयमञ्जने दत्तः सन्निपातं विनाशयेत् ॥१३६॥

अर्थ-छिलके रहित जमालगोटा के बीज १० टंक लेवे और कालीमिरच पीपल और पारा ये औषध एक एक टंक लेवे, इन चारों को जम्बीरी के रस में सात दिन खरल कर उसकी गोलियां बना लेवे। सन्निपातवाले रोगी के नेत्र में इस गोली को जल में घिस के लगाये तो सन्निपात दूर हो जाता है॥१३५॥१३६॥

नाराचरस शूलादिरोगोंपर

सूतटंकणके तुल्यं मरिचं सूततुल्यकम् । गन्धकम् पिप्पली शुंठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥१३७॥ सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषितं भिषक् । द्विगुंजं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥१३८॥ आध्मानं शूलविष्टंभानुदावर्त्तं च नाशयेत् ।

अर्थ-पारा, सुहागा और कालीमिरच ये समभाग ले। गन्धक, पीपल और सोंठ ये तीन औषध पारे से दूनी ले तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा सबकी बराबर लेय, सबको एकत्र कर चूर्ण कर लेवे। इसको नाराचरस कहते हैं। यह रस दस्त होने के वास्ते वास्ते रत्ती देवे तो (दस्त) होवे और पेट का फूलना शूलरोग मल का अवरोध और वायु की ऊर्ध्वगति ये सब रोग दूर होंय। इस नाराचरस को गरम जल के सथ वा तुलसी के रस में वा शहद तथा अदरख के रस के साथ देते हैं और जब दस्त बन्द करने होय तब शीतल जल पीवे तो दस्त बन्द हो जावें॥१३७॥१३८॥

इच्छाभेदीरस शूलादिकोंपर

दरदं टंकणं शुण्ठी पिप्पली चेति कार्षिकाः ॥१३९॥ हेमाह्वा पलमात्रा स्याद्दन्तीबीजं च तत्समम् । विशोष्यैकत्र सर्वाणि गोदुग्धेनैव पाययेत् ॥१४०॥ त्रिगुंजं रेचनं दद्याद्विष्टं-भाध्मानरोगिषु ।

अर्थ—सिंग्रफ, सुहागा, सोंठ और पीपल ये चार औषध एक एक तोला लेवे और चोक तथा शुद्ध किया हुआ जमालगोटा चार चार तोले लेवे। सब औषधों को कूट पीस चूर्ण करे। इसको इच्छाभेदीरस कहते हैं। यह रस दस्त होने के वास्ते गौ के दूध में तीन रत्ती देवे तो दस्त होकर मल का अवरोध तथा पेट का फूलना इत्यादि रोग दूर होते हैं। यह प्राणी को इच्छा के माफिक दस्त कराता है इससे इसे इच्छाभेदी रस कहते हैं॥१३९॥१४०॥

वसन्तकुसुमाकररस प्रमेहादिकोंपर

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम् ॥१४१॥ लोहभस्म त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मतः । वंगभस्म त्रिभागं सत्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥१४२॥ प्रवालं मौक्तिकं चैव रससाम्येन दापयेत् । भावना गव्यदुग्धेन रसैर्घृष्ट्वाटरूषकैः ॥१४३॥ हरिद्रावारिणा चैव मोचकन्दरसेन च । शतपत्ररसेनापि मालत्याःस्वरसेन च॥१४४॥ पश्चान्मृगमदश्च-न्द्रस्तुलसीरसभावितः । कुसुमाकर इत्येष वसन्तपदपूर्वकः ॥१४५॥ गुञ्जाद्वयं ददीतास्य मधुना सर्वमेहनुत् । सितचन्दनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित् ॥१४६॥

अर्थ—सुवर्ण की भस्म २ भाग, अभ्रक की भस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग, पारे की भस्म ४ भाग, वंगभस्म ३ भाग, मूंगे और मोती की भस्म ४ भाग, इनको गौ के दूध को १ अडूसे के घी के रस की १ हलदी के रस की १ सिंबल की जड़ के रस की १ गुलाबजल की १ मालती की ३ कस्तूरी की १, भीमसेनी कपूर की १ तुलसी के रस की एक एक भावना देकर गोल बना सुखाय लेवे, इसको वसन्तकुमार का रस कहते हैं। इसकी दो रत्ती मात्रा सर्व प्रमेहों पर देवे। मिश्री और सफेद चन्दन के चूर के साथ देने से सर्वपित्त रोग दूर होते हैं (यह रस शार्ङ्गधर नहीं है प्रक्षिप्त पाठ है)॥१४१॥१४६॥

राजमृगांकरस क्षयरोगपर

सूतभस्म त्रिभागं स्याद्भागैकं हेमभस्मकम् । मृताभ्रस्य च भागैकं शिलागन्धकतालकम् ॥१४७॥ प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकी-कृत्य विचूर्णयेत् । वराटान्पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥१४८॥ पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे तन्निरोधयेत् । शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत्स्वाङ्गशीतलम् ॥१४९॥ रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुञ्जः क्षयापहः। दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोन-

**त्रिंशदूषणैः॥१५०॥ सघृतं दापयेत्पथ्यं स्त्रीकोपाग्निश्रमांस्त्य-
जेत् । पथ्यं वा लघुमांसानि राजरोगप्रशान्तये ॥१५१॥**

अर्थ–पारे की भस्म ३ भाग, सुवर्ण की तथा अभ्रक की भस्म एक एक भाग, १ मनशिल, २ गन्धक और ३ हरिताल। ये तीनों शुद्ध की हुई दो दो भाग ले सबको एकत्र खरल कर चूर्ण कर लेवे। फिर बड़ी बड़ी पीली कौड़ी ले इनमें इस चूर्ण को भर के मुख को बकरी के दूध में पीसे हुए सुहागे से बंद कर देवे। फिर उन कौड़ियों को हांडी में रख के उस हांडी के मुख पर दूसरी छोटी हांडी रख के उसकी संधियों को कपड़मिट्टी से बंद कर देवे। धूप में सुखा ले आरने उपलों के गजगुट में धर के फूँक देवे, जब शीतल हो जावे तब उस सपुट में से रस निकाल के धर रखे। इसको राजमृगांक कहते हैं। यह राजमृगांक चार रत्ती दश पीपल और उन्तीस कालीमिरच इन दोनों के चूर्ण में मिलाकर शहद में चाटे तो क्षयरोग दूर हो जावे, इसके ऊपर घृतसहित पथ्य दे और राजरोग की शान्ति के लिये लघुमांसों का प्रयोग करे। स्त्रीसंग, क्रोध, अग्नि से नाप और परिश्रम छोड़ देवे॥१४७-१५१॥

स्वयमग्निरस क्षयादिकोपर

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं कुर्यात्खल्वेन कज्जलीम् । तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥१५२॥ द्वियामांते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् । आच्छाद्यैरण्डपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत् ॥१५३॥ धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् । संचूर्ण्य गोलायेद्वस्त्रे सत्यं वारितं भवेत् ॥१५४॥ भावयेत्कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृङ्गजैस्तथा । काकमाची-कुरण्टोत्थद्रवैर्मुंडचा पुनर्नवैः ॥१५५॥ सहदेव्यमृतानीली-निर्गुंडीचित्रजैस्तथा । सप्तधा तु पृथग्द्रावैर्भाव्यं शोष्यं तथाऽऽतपे ॥१५६॥ सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः । अनुभूतो मया 'सत्यं सर्वरोगगणापहः ॥१५७॥ स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत् । त्रिफलामधुसंयुक्तः सर्वरोगेषु योजयेत् ॥१५८॥ त्रिकटुत्रिफलैलांभिर्जातीफल-लवङ्गकैः । नवभागोन्मितैरत्तैः समः पूर्वरसो भवेत् ॥१५९॥ संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम् । स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृन्तनः ॥१६०॥

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गंधक दो भाग लेकर दोनों की कज्जली करके फिर इसमें समान भाग फौलाद लोह का चूर्ण मिलाकर घीगुवार के रस में दो प्रहर पर्यंत खरल करे। फिर इसका गाला बनाकर ताम्र के कटोरे में उस गोले को रख के उसके ऊपर अरंड के पत्ते ढ़क के चार घड़ी पर्यंत धूप में रख देवे। जब गोला अत्यंत गरम हो जावे तब उसको धान की राशि में गाड़ देवे। एक दिन रात्रि के पश्चात् उसको निकालकर उसको कपड़े में से छान लेय और पानी में डाले तो यह भस्म तरने लगे। इस भस्म को खरल में डाल के आगे कही हुई औषधों के रस की भावना देवे।

जैसे घीगुवार, भांगरा, मकोय, पियावांसा, मुंडी, पुनर्नवा, सहदेई, गिलोय, नीली, निर्गुंडी और चित्रक इनके पृथक् पृथक् सात पुट देवे (ऊपर कही हुई औषधों के रस में खरल कर धूप में सुखा ले, यह एक पुट हुई, इस प्रकार सात सात पुट देवे) तो यह रसायन सिद्ध हो जावे। इसको स्वयमग्निरस कहते हैं। यह रस सर्वत्र प्रसिद्ध बड़े बड़े पुरुषों ने कहा है। इस वास्ते मैंने अनुभव करके कहा है। यह स्वयं अग्निरस संपूर्ण रोग दूर करने को त्रिफले का चूर्ण और शहद इस अनुपात के साथ दो निष्कप्रमाण लेवे तो संपूर्ण रोग दूर हों। १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल, ४ हरड, ५ बहेड़ा, ६ आंवला, ७ इलायची, ८ जायफल और ९ लौंग, इन नौ औषधियों को समान भाग ले चूर्ण करे। इन चूर्ण के समान यह स्वयमग्निरस लेवे। दोनों को एकत्र कर शहद में मिलाय के दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो क्षयरोग और खाँसी का रोग, ये नष्ट हों। इस रसायन की रीति से स्वर्णादिक धातु का लोहे समान चूर्ण करके भस्म करे तो उनकी भी भस्म हो जावे।।१५२-१६०।।

सूर्यावर्त्तरस श्वासपर

सूताधों गन्धको मर्द्यो यामैकं कन्यकाद्रवैः । द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत् ।।१६१।। दिनैकं स्थालिकायन्त्रे पक्त्वा चादाय चूर्णयेत् । सूर्यावर्तो रसो ह्येष द्विगुञ्जः श्वासजिद्भवेत् ।।१६२।।

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग और गंधक पारे से आधी ले, दोनों को एकत्र करके घीगुवार के रस से एक प्रहर करके कल्क करावे। फिर दोनों के समान तांबे के पत्र लेकर उन पर उस कल्क का लेप करके इन पत्रों को मिट्टी के पात्र में रख के उस पात्र के मुख पर दूसरा पात्र औंधा रखकर उसकी संधियों को कपड़मिट्टी से बन्द कर देवे। फिर उसको धूप में सुखा के चूल्हे पर रख के एक दिन की अग्नि देवे। इसको स्थालियंत्र कहते हैं। फिर शीतल होने पर पत्रों को बाहर निकाल खरल करके बारीक चूर्ण कर लेवे। इसको सूर्यावर्त्तरस कहते हैं। यह दो रत्ती के अनुमान श्वासरोगवाले को देवे तो उसके श्वास का दूर करता है।।१६१।।१६२।।

स्वच्छन्दभैरवरस वातरोगपर

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम् । पथ्याग्निमंथनिर्गुंडी त्र्यूषणं टंकणं विषम् ।।१६३।। तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः । मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटिकीकृतम् ।।१६४।। भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः । रास्नामृतादेवदारुशुण्ठिवातारिजं शृतम् ।।१६५।। सगुग्गुलुं- पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम् ।

अर्थ–१ शुद्ध पारा,२ लोहभस्म, ३ स्वर्णमाक्षिक की भस्म, ४ गंधक,५ हरताल, ६ जंगीहरड, ७ अरनी, ८ निर्गुंडी, ९ सोंठ, १० कालीमिरच, ११ पीपल, १२ सुहागा, १३ शुद्ध वच्छनाग, विषय ये तेरह औषध समान भाग लेकर निर्गुंडी के रस में एक दिन खरल करे, पीछे मुंडी के रस में १ दिन घोट दो दो रत्ती की गोलियां बनावे। इसको स्वच्छंदभैरवरस कहते हैं। यह रस और १ रास्ना, २ गिलोय, ३ देवदारु, ४ सोंठ, ५ अरंड की जड़, इन पांच औषधों का काढ़ा करके उसमें गूगल मिलाय के सेवन करे तो वादी का रोग दूर हो जावे।।१६३-१६५।।

हंसपोटलीरस संग्रहणीपर

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंकणं विषम् ।।१६६।।
गन्धकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ।
मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ।।१६७।।
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रोदनं हितम् ।

अर्थ–१ कौड़ी की भस्म, २ सोंठ, ३ काली मिरच, ४ पीपल, ५ फूला हुआ, सुहागा ६ शुद्ध वच्छनाग, ७ गंधक और शुद्ध किया हुआ पारा। इन आठ औषधों को कूट पीस जंभीरी के रस में खरल कर एक एक मासे की गोली बनावे। इसको हंसपोटलीरस कहते हैं। इसको काली मिरच के चूर्ण से शहद मिलाय के भक्षण करे, इस पर छाछ और भात को खाना पथ्य है। यह संग्रहणी रोग को दूर करता है।।१६६।।१६७।।

त्रिविक्रमरस पथरीपर

मृतं ताम्रमजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये गतद्रवम् ।।१६८।। तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् । निर्गुण्डीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकं कृतम् ।।१६९।। यामैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् । बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् ।।१७०।। रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत् ।

अर्थ–ताम्रभस्म के समान बकरी का दूध ले, उमसें तांबे की भस्म को मिलाय के औटाय के गाढी करे। यह ताम्रभस्म, शुद्ध पारा और गंधक ये तीनों औषध समान भाग लेके निर्गुडी के रस से एक दिन खरल कर उसकी गोली करके उसको वालुकायन्त्र में डाल के एक प्रहर अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब वाहर निकाल के उस संपुट से औषधों को निकाल लेवे। इसको त्रिविक्रम रस कहते हैं। यह रस दो रत्ती के अनुमान बिजौरे की जड़ के रस में अथवा काढा करके उसके साथ सेवन करे तो पथरी का रोग एक महीनें में दूर हो जावे।।१६८–१७०।।

महातालेश्वररस कुष्ठादिकोंपर

तालं ताप्यं शिला सूतं शुद्धं सैन्धवटंकणे ।।१७१।। समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्द्विगुणगन्धकम् । गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरै र्दिनपञ्चकम् ।।१७२।। मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे । पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतच्च षट्पलम् । जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिन मर्द्यं पुटेल्लघु ।।१७४।। त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् । माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत्सदा ।।१७५।। मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु । सर्वकुष्ठान्निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ।।१७६।।

अर्थ–१ हरताल, २ सुवर्णमाक्षिक, ३ मनशिल, ४ शुद्ध किया हुआ पारा, ५ सैंधानमक और ६ सुहागा ये छः औषध समान भाग तथा पारे से दूनी गन्धक लेवे। तथा गन्धक के समान ताम्रभस्म

ले। सबको खरल कर जम्भीरी के रस में ५ दिन पर्यंत घोटे। फिर इसका गोला बनाकर उसको शरावसंपुट में रख के कपड़मिट्टी करके भूधरयन्त्र में उस शरावसम्पुट को धरके आरने उपलों की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल फिर जम्भीरी के रस में खरल कर पूर्वरीति से भूधरयन्त्र में धर के अग्नि देवे। इस प्रकार छः प्रकार भूधरयन्त्र में डाल के अग्नि देवे तो सिद्ध हो। इस प्रकार की हुई भस्म छः पल ताम्रभस्म दो पल और लोहभस्म चार पल इन तीनों भस्मों को एकत्र खरल कर जम्भीरी के रस में एक दिन खरल करे। मिट्टी के शरावसम्पुट में डाल के कपड़मिट्टी कर आरने उपलों की हल की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके इस भस्म का तीसवां हिस्सा शुद्ध किया बच्छनाग विष बारीक करके मिलावे। इसको महातालेश्वर रस कहते हैं। यह महातालेश्वर रस अर्द्धनिष्क प्रमाण लेके भैंस के घी के साथ सेवन करे और उसी समय घी और शहद दोनों विषम भाग ले एकत्र करे, उसमें बावची का चूर्ण एक कर्ष मिलायके इनके साथ सेवन करे तो यह सम्पूर्ण कुष्ठों को तत्काल दूर करता है।।१७१–१७६।।

कुष्ठकुठाररस कुष्ठरोगपर

सूतभस्म समो गन्धोमृतायस्ताम्रगुग्गुलू । त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ।।१७७।। इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात् प्रत्येकं शाणषोडशम् । चतुः षष्टि करंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ।।१७८।। चतुः षष्टि मृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् । स्निग्धभांडे घृतं खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ।।१७९।। रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिवारणः ।

अर्थ–१ पारे की भस्म, २ गन्धक, ३ लोहभस्म, ४ ताम्रभस्म, ५ गूगल, ६ हरड ७ बहेडा ८ आंवला ९ बकायन की छाल, १० चीते की छाल और ११ शिलाजीत ये ग्यारह औषध प्रत्येक सोलह २ शाण लेवे तथा करञ्जा के बीज ६४ शाण लेवे। सबका बारीक चूर्ण करके अभ्रक भस्म ६४ शाण लेके उस चूर्ण में मिला देवे। इसको कुष्ठकुठारस कहते हैं। यह रस दो निष्कप्रमाण सेवन करे तो सम्पूर्ण कुष्ठ और गलत्कुष्ठ ये सब दूर हों।।१७७–१७९।।

उदयादित्यरस श्वेतकुष्ठ आदिपर

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम् ।।१८०।। तद्गोलं पिठरी मध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत् । सूतकाद्द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन च ।।१८१।। पार्श्वे भस्म निधायाथ पात्रोर्ध्वे गोमयं जलम् । किञ्चित् किञ्चित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत् ।।१८२।। चण्डाग्निना तदुद्धृत्य स्वाङ्गशीतं विचूर्णयेत् । काकोदुम्बरिका वह्निं त्रिफला गजवृक्षकम् ।।१८३।। विडङ्गं बाकुचीबीजं क्वाथयेत्तेन भावयेत् । दिनैकमुदयादित्यो रसो देयो द्विगुञ्जकः ।।१८४।। विचर्चिकां दद्रुकुष्ठं वातरक्तं च नाशयेत् । अनुपानं च कर्तव्यं बाकुचीफलचूर्णकम् ।।१८५।। खादिरस्य कषायेण समेन परिपाचितम् । त्रिशाणं तद्गवां क्षीरैः क्वाथैर्वा त्रिफलैः पिबेत् ।।१८६।। त्रिदिनांते भवेत्स्फोटः

सप्ताहाद्वा किलासके । नीलीं गुञ्जांश्च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकम् ॥१८७॥ सूर्यभक्तां च चाङ्गेरीं पिष्ट्वा मूलात्प्रलेपयेत् । स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः ॥१८८॥ श्वेतकुष्ठान्निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः । अपरः श्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्र भिषग्वरैः ॥१८९॥ गुञ्जाफलाग्नि-चूर्णं च प्रलेपः श्वेतकुष्ठनुत् । शिलापामार्गभस्मानि लिङ्गं श्वित्रं विनाशयेत् ॥१९०॥

अर्थ–शुद्ध किया पारा ४ पल और गन्धक दो भाग लेके घीगुवार के रस में दोनों को खरल करके दोनों का गोला बनावे। उस गोले को घड़े में रख के पारे का तिगुना शुद्ध किया हुआ तांबा लेकर उसकी कटोरी बनाके उस पूर्वोक्त गोल के ऊपर ढक देवे और उसकी सन्धियों को उपलों की राख से बन्द कर देवे। गौ का गोबर और जल दोनों को मिलाय उस कटेरी के चारों तफर लेप कर देवे। उस घड़े को चूल्हे पर चढ़ाय के प्रचण्ड अग्नि दो प्रहर देवे। जब स्वांग-शीतल हो जावे तब संपुट में औषधों को निकालके खरल कर आगे लिखे औषधों के रस की पुट देवे। जैसे १ कठूमर, २ चित्रक, ३ हरड, ४ बहेडा, ५ आमला, ६ अमलतास का गूदा ७ वायविडंग और ८ बायची इन आठ औषधों का काढा करके उक्त रस में डाल के एक दिन खरल करे, फिर इसको गाढीकर गोली बना ले। इसे उदयादित्यरस कहते हैं। यह रस १ रत्ती लेकर खैरकी छाल के काढे में बावची का चूर्ण ३ शाण मिलाके उसके साथ लेवे अथवा गौ के दूध से अथवा त्रिफले के काढे से सेवन करे तो विचर्चि का रोग दाद कुष्ठ और वातरक्त ये रोग दूर हो जावें। इस उदयादित्यरस का तीन दिन सेवन करने से उस चित्रकुष्ठी मनुष्य के देह में चौथे दिन अथवा सातवें दिन फोड़े उत्पन्न होते हैं उनके दूर, होने का औषध कहते हैं॥१८०–१९०॥

१ नीलपुष्पी, २ घूँगची, ३ हीराकसीत, ४ धतूरा, ५ हंसपदी ६ हुलहुल खटूवम्ल इन सात औषधों का समान भाग लेके बारीक पीस लेवे। फिर इसको उन फोड़ों पर सात दिन लेप करे तो फोड़े अच्छे होकर सफेद कुष्ठसाध्य अथवा असाध्य होय तो भी दूर हो जावे इसमें संशय नहीं है।

दूसरा प्रयोग यह है कि घुंघुची (चिरमिठी) और चित्रक इनका बारीक चूर्ण करके पानी में मिला मालिश करे। उसी प्रकार मनशिल और ओंगे की राख इन दोनों को खरल करके देह में मालिश करे तो सफेद कुष्ठ दूर हो।

सर्वेश्वररस कुष्ठादिकोंपर

शुद्धं सूतं चतुर्गन्धं पलं यामां विचूर्णयेत् । मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं पलम् ॥१९१॥ सुवर्णरजतं चैव प्रत्येकं दश निष्ककम् । माषैकं मत्तवज्रं च तालं शुद्धं पलद्वयम् ॥१९२॥ जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः । मर्द्यं हयारिजै-द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम्॥१९३॥ एवं सप्तदिनं मद्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् । वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥१९४॥ आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् । द्विपलं

पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥१९५॥ द्विगुंजो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् । बाकुचीं देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ॥१९६॥ लिहेदेरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ।

अर्थ–शुद्ध किया हुआ पारा १ पल गन्धक ४ पल दोनों को एकत्र कर एक प्रहर पर्यन्त खरल करे। फिर तांबे की भस्म अभ्रकभस्म लोहभस्म और हिंगुल ये चार वस्तु एक एक पल ले सुवर्णभस्म और रूप की भस्म दोनों दश दश निष्क लेवे और हीरे के भस्म १ मासा तथा हरतालका सत्त्व दो २ पल ये सब औषध उस पारे गन्धक की कजली में मिलाय नीबू, धतूरा, अडूसा, बकायन और कनेर इनकी जड़ की रस में तथा थूहर और आक इनके दूध में पृथक् २ एक एक दिन खरल करके गोला करे, उसके चारों तरफ कपड़ा लपेट बालुकायन्त्र में रख के चूल्हे पर चढावे और उसके नीचे मन्द २ अग्नि तीन दिन देवे। जब शीतल हो जावे तब उस संपुट में से रस को निकाल के उसमें शुद्ध किया हुआ वच्छनाग विष का चूर्ण १ पल और पीपल का चूर्ण दो पल मिला देवे। इसे सर्वेश्वररस कहते हैं। यह रस २ रत्ती के अनुमान शहद के साथ सेवन करे और ऊपर तत्काल बावची और देवदारु इनका चूर्ण एक कर्ष अरण्डी में तेल में मिलाके सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ और मण्डलकुष्ठ दूर हों॥१९१–१९६॥

स्वर्णक्षीरीरस सुप्तिकुष्ठपर

हेमाह्वां पञ्चपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत् ॥१९७॥ तक्रे जीर्णे समाहृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत् । क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य शालयित्वा विशेषतः ॥२९८॥ तच्चूर्णं पञ्चपलिकं मरिचानां पलद्वयम् । पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत् ॥१९९॥ निष्कैकं सुप्तिकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीरिरसो ह्ययम् ॥

अर्थ–चोक ५ पल लेकर एक घडे में छाछ भरके उसमें उस चोक को डाल के औटावे जब छाछ सूख जाय तब चोक को निकाल लेवे फिर उसको दूध के घड़े में डाल के औटावे जब दूध भी सूख जावे तब उसको निकालकर धो लेवे। फिर उसका चूर्ण करके पांच पल ले तथा दो पल मिरच का चूर्ण और पारे की भस्म १ पल प्रमाण लेके तिन दोनों को एकत्र पीस लेवे। इसे स्वर्ण क्षीरीरस कहते हैं। यह रस १ निष्क नित्य सेवन करे तो सुप्तिकुष्ठ दूर हो जावे॥१९७–१९९॥

प्रमेहबद्धरस प्रमेहरोगपर

सूतभस्ममृतं कान्तं मुण्डभस्म शिलाजतु ॥२००॥ शुद्धं ताप्यं शिला व्योषं त्रिफलां कोलबीजकम् । कपित्थं रजनीचूर्णं भृङ्गराजेन भावयेत् ॥२०१॥ विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा । निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धरसो महान् ॥२०२॥ महानिंबस्य बीजानि पिष्ट्वा षट्संमितानि च । पलं तंदुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥२०३॥ एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम् ।

अर्थ–१ पारे की भस्म, २ कांतलोहे की भस्म ३ लोहभस्म, ४ शुद्ध किया हुआ शिलाजीत, ५

सुवर्णमाक्षिक की भस्म, ६ मनशिल, ७ सोंठ, ८ मिचर, ९ पीपल, १० हरड, ११ बहेड़ा, १२ अंकोल के बीज, १४ कैथ का गूदा और १५ हल्दी ये पंद्रह औषध समान भाग ले इनमें भस्म के सिवाय जो औषधी हैं उनका चूर्ण कर उसमें सब भस्मों को मिलाके फिर भांगरे के रस की २० पुट देवे। इसको मेहबद्धरस कहते हैं। यह रस १ निष्क प्रमाण शहद के साथ सेवन करे तो घोर प्रमेह का रोग नष्ट हो जावे। यदि बकायन के छः बीज का चूर्ण करके चावलों का धोवन एक पल लेके उसमें उस बकायन के चूर्ण को मिलावे और दो निष्क घी मिलाकर इस अनुपान के साथ इस मेहबद्धरस को भक्षण करे तो बहुत दिन का पुराना प्रमेह भी दूर हो जावे।।२००।।२०३।।

महावह्निरस सर्व उदररोगोंपर

चतुः सूतस्य गंधाष्टौ रजनी त्रिफला शिवा ।।२०४।। प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकाः । प्रत्येकं च त्रिभागं स्यात् त्र्यूषणं दन्ति जीरकम् ।।२०५।। प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत् । जयन्ती स्नुक्पयो भृङ्गवह्निवातारितैलकः ।।२०६।। प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक् । महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ।।२०७।। विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैन्धवम् । दिनान्ते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ।।२०८।। सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढवातहरः परः ।

अर्थ–पारा चार भाग, गन्धक ८ भाग, १ हल्दी, २ हरड, ३ बहेडा, ४ आंवला और ५ छोटी हरड ये पांच औषध दो दो भाग लेवे। १ निशोथ, २ शुद्ध किया हुआ जमालगोटा और ३ चित्रक ये औषध तीन २ भाग लेवे तथा १ सोंठ, २ मिरच, ३ पीपल, ४ दन्ती और ५ जीरा ये पांच औषध आठ २ भाग लेवे। सब औषधों का चूर्ण करके अरणी का रस, थूहर का दूध, भाँगरे का रस, चित्रक और अरंडी का तेल इन प्रत्येक की पृथक् २ सात २ भावना देवे। फिर एक एक निष्ककी गोलियां बांध लेवे। इनमे से १ गोली गरम जल के साथ सेवन करे तो इससे दस्त हो। जब दस्त हो चुके तब सायंकाल को पथ्य में छाछ और भात नमक डालकर देना चाहिये और जब २ जल पीवे तब तब गरम जल पीवे शीतल न पीवे इस रसायन से दस्त होकर सम्पूर्ण उदर के विकार तथा मूढवात दूर होवें।।२०४–२०८।।

विद्याधररस गुल्मप्लीहादिरोगोंपर

गंधकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ।।२०९।। शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् । पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ।।२१०।। निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् । रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ।।२११।।

अर्थ–१ गंधक, २ हरताल, ३ सुवर्णमाक्षिक की भस्म ४ ताम्रभस्त ५ मनशिल और ६ शुद्ध किया हुआ पारा ये छः औषध समान भाग लेकर खरल में डाल के पीपल के काढे से १ दिन खरल

करे। फिर १ दिन थूहर के दूध से खरल करे। इसको विद्याधररस कहते हैं। यह रस आधा निष्क लेकर शहद में मिलायके सेवन करे तो गुल्म (गोले का) रोग और प्लीहादिक रोग दूर होवें। और इसके ऊपर गोमूत्र का अनुपान करना चाहिये॥२०९-२११॥

त्रिनेत्ररस पक्ति (परिणाम) शूलादिकोंपर

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्बं मृतं रसम् । दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यरुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥२१२॥ त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् सैन्धवं । जीरकं हिंगु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥२१३॥ पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः ॥

अर्थ-१ सुहागा, २ हरिण का सींग, ३ सुवर्णभस्म, ४ ताम्रभस्म और ५ पारे की भस्म इन पांच औषधों को अदरख के रस में एक दिन खरलकर मिट्टी के शराव संपुट में रख के उस पर कपडमिट्टी करके गढा खोद उसमें आरने उपलों की हलकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके उसमें से औषध को निकाल ले। इसको त्रिनेत्र रस कहते हैं। यह रस एक मासे के अनुमान लेके शहद और घी दोनों को मिलाके इसको भक्षण करे और इसके ऊपर तत्काल १ सैंधानमक, २ जीरा, ३ भुनी हींग इन तीन औषधों का चूर्ण करके घी और शहद में मिलाके खावे तो पक्ति (परिणाम) शूल एक महीने में दूर हो जाता है॥२१२॥२१३॥

शूलगजकेसरीरस शूलादिकोंपर

शुद्धसूतं द्विधा यामकं मर्दयेद्दृढम् ॥२१४॥ द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् । ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ॥२१५॥ ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् । संपुटं चणयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुजंकम्॥२१६॥ भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगु शुंठी सजीरकम् । वचा मरिचजं चूर्णकर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥२१७॥ असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं राजकेशरी ।

अर्थ-शुद्ध किया हुआ पारा १ भाग, गन्धक २ भाग दोनों को मिलाके १ प्रहर पर्यन्त खरल करके दोनों के समान शुद्ध किया तांबा लेवे। उसकी कटोरी बनायके उसमें पारा गन्धक की कजली को रखके दूसरी कटोरी से ढकके मिट्टी की हांडी को आधी नमक से भर बीच में इस तांबे की कटोरी को रख ऊपर फिर पीसे हुए नमक से भर देवे, फिर उस हांडी के मुख पर दूसरी छोटी पारी ढक के उसकी संधियों को कपड़मिट्टी करके सुखा लेवे। फिर गड्ढा खोदके उसमें आरने उपले भरके बीच में संपुट को रख के ऊपर उपलें भर के गजपुट की अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब निकाल के उस कटोरी को बारीक पीसके चूर्ण करे। इसको शूलगजकेसरी रस कहते हैं। जिस मनुष्य को सर्व प्रकार का शूल हो उसको पान के बीडे में दो रत्ती यह खिलावे और इसके ऊपर तत्काल १ भूनी हींग, २ सोंठ, ३ जीरा, ४ वच और ५ कालीमिरच इन पांच औषधों का चूर्ण एक कर्ष प्रमाण ले पानी में मिलाके पिलावे तो असाध्य शूल भी दूर हो जाता है॥२१४-२१७॥

सूतादिवटी मन्दाग्नि आदिरोगोंपर

शुद्धसुतं विष गंधमजमोदां फलत्रयम् ॥२१८॥ सर्ज्जीक्षारं

यवक्षारं वह्निसैन्धवजीरकौ । सौवर्चलं विडङ्गानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ।।२१९।। विषमुष्टिं सर्वतुल्यां जंबीराम्लेन मर्दयेत् । मरिचाभां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ।।२२०।। पथ्या शुण्ठी गुडं चानु पलार्धं भक्षयेत्सदा । अग्नितुण्डीवटी ख्याता सर्वरोगकुलान्तका ।।२२१।।

अर्थ–१ शुद्ध किया पारा, २ शुद्ध किया बच्छनाग विष, ३ गन्धक, ४ अजमोद, ५ हरड, ६ बहेडा, ७ आंवला, ८ सज्जीखार, ९ जवाखार, १० चित्रक, ११ सैंधानमक, १२ जीरा, १३ काला नमक, १४ बिडनमक, १५ सामुद्रनमक, १६ सोंठ, १७ मिरच, १८ पीपल ये अठारह औषध समान भाग ले और शुद्ध कुचले के बीज सब औषधों के बराबर ले सबका चूर्ण कर जंबीरी के रस में खरल कर मिरच के समान गोली बांधे। इनमें से एक एक गोली नित्य खावे तो सर्व प्रकार के अजीर्ण दूर हो जावें। इसके ऊपर हरड सोंठ और गुड़ को कूटकर २ तोले नित्य खावे तो यह अग्नितुंडीवटी सब रोगों का नाश करे।।२१८–२२१।।

अजीर्णकंटकरस अजीर्णपर

शुद्धसूतं विषगंधं समं सर्वं विचूर्णयेत् । मरिचं सर्वतुल्यांशं कंटकार्याः फलद्रवैः ।।२२२।। मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् । वटीं गुञ्जात्रयं खात्सर्वाजीर्णप्रशांतये ।।२२३।। अजीर्णकंटकश्चायं रसो हंति विषूचिकाम् ।

अर्थ–१ शुद्ध किया पारा, २ शुद्ध वच्छनागविष और ३ गन्धक ये तीन औषध समान भाग लेवे और तीनों के समान काली मिरच लेवे। सबको खरल करके कटेरी के फलों के रस में इक्कीस भावना देके तीन तीन रत्ती की गोली बनावे। इसको अजीर्णकण्टकरस कहते हैं। इस रस की एक एक गोली सेवन करने से सर्व प्रकार के अजीर्ण तथा विपूचिका (हैजा) दूर होवें।।२२२–२२३।।

मथानभैरवरस कफरोगपर

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् ।।२२४।। सैन्धवं गन्धकं तालं कटुकीं चूर्णयेत्समम् । पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीयकैः ।।२२५।। तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद्दृढम् । माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रे रस मंथानभैरवम् ।।२२६।। कफ रोगप्रशांत्यर्थं निंबक्वाथं पिबेदनु ।

अर्थ–१ पारे की भस्म, २ तांबे की भस्म, ३ हींग, ४ पोहकरमूल, ५ सैंधानमक, ६ गन्धक, ७ हरताल और ८ कुटकी ये आठ औषध समान भाग ले। भस्म के विना सर्व औषधों के चूर्ण करके फिर पूर्वोक्त भस्म मिलाके पुनर्नवा (सांठी) के रस से एक दिन खरल करे। फिर बंदाल, निर्गुंडी, चौलाई और कडवी तोरई इन एक एक के रस में एक एक दिन खरल कर गोली बनावे। इसको मन्थानभैरव रस कहते हैं। रस १ मासा शहद में मिलाके सेवन करे ऊपर नीम की छाल का काढा पीवे तो कफ रोग दूर हो।।२२४–२२६।।

वातनाशकरस वातविकारपर

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ॥२२७॥ तालं नीलाञ्जनं तुत्थमहिफेनं समांशकम् । पञ्चानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ॥२२८॥ वज्रीक्षीरैर्दिनेकं तु रुद्ध्वाधो भूधरे पचेत् । माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ॥२२९॥ पिप्पलीमूलजक्वाथं सकृष्णमनुपाययेत्। सर्वान् वातविकारांस्तु निहन्त्याक्षेपकादिकान् ॥२३०॥

अर्थ–पारे की भस्म, २ सुवर्णभस्म, ३ हीरे की भस्म, ४ तांबे की भस्म, ५ लोहे की भस्म, ६ सुवर्णमाक्षिक की भस्म, ७ हरताल की भस्म, ८ शुद्ध सुरमा, ९ शुद्ध नीलाथोथा और १० अफीम ये दश औषध समान भाग ले, १ सैंधानमक, २ सञ्चरनमक, ३ विडनोन, ४ खारानोन और ५ समुद्र नमक ये पांच नमक मिलाकर एक भाग लेवे अर्थात् दश औषध दश तोले होयं तो पांचों नमक मिलाके १ तोला लेवे। सबको एकत्र करके थूहर के दूध से १ दिन खरल कर मिट्टी के शरावसम्पुट में भरके कपडमिट्टी कर भूधरयन्त्र में रख के अग्नि देवे, जव स्वांगशीतल हो जावे तव बाहर निकाल के उसमें से औषध को निकाल लेवे। इसको वातनाशकरस कहते हैं। यह रस एक मासे का अनुमान अदरख के रस से सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल पीपलामूल का काढा कर उसमें पीपल का चूर्ण डाल के पीवे तो सम्पूर्ण आक्षेपकादि वातरोग दूर हों॥२२७–२३०॥

कनकसुन्दररस सन्निपातपर

कनकस्याष्टशाणाः स्युः सूतो द्वादशभिर्मतः । गन्धोऽपि द्वादश प्रोक्तस्ताम्रं शाणद्वयोन्मितम् ॥२३१॥ अभ्रकस्य चतुःशाणं माक्षिकं च द्विशाणिकम् । वंगो द्विशाणः सौवीरं त्रिशाणं लोहमष्टकम् ॥२३२॥ विषं त्रिशाणिकं कुर्याल्लांगलीपलसंमिता । मर्दयेद्दिनमेकं च रसैरम्लफलोद्भवैः ॥२३३॥ दद्यान्मृदुपुटे वह्नौ ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत् । माषमात्रो रसो देयः सन्निपाते सुदारुणे ॥२३४॥ आर्द्रकस्वरसेनैव रसोनस्य रसेन वा । किलासं सर्वकुष्ठानि विसर्पं च भगन्दरम् ॥२३५॥ ज्वरं गरमजीर्णं च जयेद्रोगहरो रसः ।

अर्थ–धतूरे के बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गन्धक, बारह शाण, तांबे की भस्म दो शाण, अभ्रक भस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिकभस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शुद्ध सुरमा तीन शाण, लोहभस्म आठ शाण, शुद्ध वच्छनाग विष तीन शाण और कलयारी विष की जड एक पल इन सबको बारीक पीस के नींबू के रस से एक दिन पर्यंत खरल कर मिट्टी के शराब संपुट में रख के उस पर कपड़मिट्टी करके आरने उपलों की हलकी अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकालके बारीक पीसके धर रखे। इसको कनकसुन्दर रस कहते हैं। इसको एक मासा लेके अदरख के रस से खाय अथवा लहसुन के रस में मिलाय के खावे तो घोर दुर्घट सन्निपात दूर हो।

किलासकुष्ठ और अन्य प्रकार के सर्व कुष्ठ, विसर्प, भगन्दर, ज्वर विषदोष और अजीर्ण ये रोग दूर हों॥२३१-२३५॥

सन्निपातभैरव रस

रसगंधौ त्रिकर्षौ स्तः कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥२३६॥ ताराभ्रताम्रवंगाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः। शिग्रुज्वालामुखीशुंठीबिल्वेभ्यस्तुंदुलीयकात् ॥२३७॥प्रत्येकं स्वरसैःकुर्याद्यामैकैकं विमर्दनम् । कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत् ॥२३८॥ काचभाण्डे ततः स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत् । वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्नियामद्वयं भवेत् ॥२३९॥ तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत्। प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च ॥२४०॥ कृष्णसर्पस्य गरलैर्दिवसं भावयेत्तथा । तगरं मुसली मांसी हेमाह्वा वैतसः कणाः ॥२४१॥ नलिनी पत्रकं चैला चित्रकस्य कुठेरकः।शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः ॥२४२॥ मधूक-जातिमदना-रसैरेषां विमर्दयेत् । प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत् ॥२४३॥ बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैः षोडशोन्मितैः । रसो द्विगुञ्जाप्रमितः सन्निपातेषु दीयते ॥२४४॥ प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः ।

अर्थ-शुद्ध पारा ३ कर्ष और गन्धक तीन कर्ष दोनों को खरल करके कजली करे, फिर रूपे की भस्म, अभ्रकभस्म, ताम्रभस्म, नागभस्म, वंगभस्म और लोहभस्म ये छः भस्म एक एक कर्ष लेवे। सबको पूर्वोक्त पारे गंधक की कजली में मिलाय देवे। फिर सहँजने की छाल के रस में १ प्रहर खरल करे, पश्चात् ज्वालामुखी के रस में सोंठ के काढे में बेलफल के रस में और चौलाई के रस में पृथक् २ एक प्रहर खरल करके गोला बना ले। उस गोले के आसपास कपड़ा लपेट के उस गोले को कांच के प्याले में रख के उसके ऊपर दूसरा प्याला औंधा ढकके कपडमिट्टी कर देवे फिर एक हांडी ले उसमें पिसा हुआ नमक आधा भर के बीच में उस संपुट को रख ऊपर से फिर पिसा हुआ नमक उस हांडी के मुख पर्यन्त भर देवे। फिर उस हांडी को चूल्हे पर चढ़ाय नीचे दो प्रहर पर्यन्त अग्नि जलावे। फिर शीतल होने पर उस संपुट में से औषध को निकाल लेवे। तब उस गोले का चूर्ण करके उसमें मूंगे का चूरा एक कर्ष तथा शुद्ध बच्छनाग चूर्ण एक १ शाण मिला काले सर्प का विष डाल के एक दिन पर्यन्त खरल करे फिर इस रस को कांच की आतसी शीशी में भरके उस शीशी पर कपड़मिट्टी करके उस शीशी के मुखपर ईंट की डाट देकर कपड़मिट्टी कर दे। इसको धूप में सुखाके बालुकायन्त्र में रख के चूल्हे पर चढ़ाकर दो प्रहर पर्यन्त अग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब शीशी से औषध को बाहर निकाल खरल करके आगे लिखी हुई औषधों की पुट देवे। जैसे-१ तगर, २ मुसली, ३ जटामांसी, ४ चोक, ५ वेत, ६ पीपली, ७ नीलपुष्पी, ८ पत्रज, ९ इलायची, १० चित्रक, ११ वनतुलसी, १२ सौंफ, १३ बन्दाल १४ धतूरा. १५ अगस्त्यिा १६ मुडी, १७ महुआ, १८ चमेली और १९ मैनफल इन उन्नीस औषधों के स्वरस में घोटे। अर्थात् एक औषध का रस

निकालके घोटे जब वह सूख जावे तब दूसरी औषध का रस डाल के खरल करे, इस प्रकार पृथक् २ घोटे। जिन औषधों में से रस न निकलता होवे उनका काढा करके उस काढे में खरल करे, जब सूख जावे तब गोली बांध लेवे। इस रस को सन्निपातु भैरवरस कहते हैं इस रस को दो रत्ती प्रमाण बिजोरे के रस और अदरख के रस में मिला तथा उसमें १६ कालीमिरच का चूर्ण डाल के सन्निपातवाले मनुष्य को देवे तो इससे सन्निपात दूर हो॥२३६–२४४॥

ग्रहणीकपाटरस संग्रहणीपर

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिका ॥२४५॥ द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् । कपित्थस्वरसैर्गाढ़ं मृगश्रृङ्गे ततः क्षिपेत् ॥२४६॥ पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् । बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥२४७॥ लोध्रं प्रतिविषा मुस्तं धातकीन्द्रयवाः स्मृताः । प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा ॥२४८॥ माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा । हन्यात् सर्वानतीसारान् ग्रहणीं सर्वजामपि॥२४९॥कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः।

अर्थ–१ रूपे की भस्म २ मोती भस्म ३ सुवर्णभस्म और ४ लोहभस्म ये चार औषध एक एक भाग लेवे। गन्धक दो भाग और शुद्ध पारा तीन भाग सबको खरल करके कथके रस में घोट के हरिण के सींग में खूब दाब २ के भरे। फिर उस सींग पर कपड़मिट्टी करके आरने उपलों की मध्यमाग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर न निकालके खरल में डाल के खरैंटी के रस की ७ पुट देवे। फिर ओगा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धाय के फूल, इन्द्रजौ और गिलोय इनके पृथक् पृथक् स्वरस को निकालके एक दो न्यारी २ तीन २ भावना देवे। जिस औषध का स्वरस न निकले उसका काढा करके इस रस को घोटे। जब सूखने पर आवे तब एक एक मासे की गोलियां बनावे, इसको ग्रहणीकपाट रस कहते हैं। इस रस की गोली काली मिरच के चूर्ण के साथ शहद में मिलाय के सेवन करे तो संपूर्ण अतिसार तथा संग्रहणी के रोग दूर होवें और अग्नि प्रदीप्त होती है॥२४५–२४९॥

ग्रहणीवज्रकपाटरस संग्रहणीपर

मृतसूताभ्रके गन्धं यवक्षारं सटंकणम् ॥२५०॥ अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यानिमान् सुधीः। ततो जयन्तीजम्बीरभृङ्गद्रावैर्वि- मर्दयेत् ॥२५१॥ त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् । लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत् ॥२५२॥ अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत् । रसतुल्यां प्रतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा॥२५३॥कपित्थविजयाद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् । धातकीन्द्रयवामुस्ता लोध्रं बिल्वं गुडूचिका ॥२५४॥ एतद्रसैर्भावयित्वा वेलैकैकं च शोषयेत् । रसं वज्रकपाटाख्यं शाणैकं मधुना लिहेत् ॥२५५॥ वह्निशुण्ठी बिडं बिल्वं लवणं चूर्णयेत्समम् । पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥२५६॥

अर्थ-१ पारे की भस्म, २ अभ्रकभस्म, ३ गन्धक, ४ जवाखार, ५ सुहागा, ६ अरनी की जड और ७ वच ये सात औषध समान भाग लेवे। सबको पीसके अरनी के रस में एक दिन खरल करे। फिर जम्भीरी के रस में एक दिन तथा भांगरे के रस में एक दिन इस प्रकार इन तीनों के रस में तीन दिन खरल करके गोला बनावे। उसको सुखाके लोहे की कडाही में रख उसके ऊपर मिट्टी का सरावा ढक उसकी संधियों को मिट्टी की मुद्रा देके बन्द कर देवे। फिर उस कडाही को चूल्हे पर चढ़ाय के नीचे मन्द अग्नि चार घड़ी पर्यंत देवे, जब शीतल हो जावे तब गोले को बाहर निकाल लेवे। फिर इसके समान भाग अतीस का चूर्ण और मोचीरस का चूर्ण मिलाय के खरल में डाल कैथक रस की सात पुट देवे। पश्चात् धाय के फूल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लोध, बेलफल और गिलोय इन औषधों के पृथक् पृथक् रस में पृथक् २ घोटे, जब जाने कि कुछ थोड़ी गीली है तब एक एक शाण की गोली बनावे इसको ग्रहणीवज्रकपाट रस कहते हैं। जिसके संग्रहणीका विकार हो उसको मद्य के साथ यह गोली देवे और उसके ऊपर तत्काल चित्रक सोंठ बिडनमक बेलगिरी सैंधानमक इन पांच औषधों का चूर्ण करके गरम जल के साथ पीवे तो सर्व प्रकार की संग्रहणी दूर होवे।।२५०-२५६।।

मदनकामदेवरस वाजीकरणपर

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं सूतकगन्धकम् । लोहं क्रमविवृद्धानिकुर्यादितानि मात्रया।।२५७।। विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत् काचमये घटे । विमुच्यापठरीमध्ये धारयेत्सेन्धवावृते ।।२५८।। पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् । वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ।।२५९।। स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदकदुग्धकैः । अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा ।।२६०।। त्रित्रिवेलं रसैरेषां शातावर्याश्च भावयेत् । पद्मकन्दकसेरूणां रसैः काशस्य भावयेत् ।।२६१।। कस्तूरीव्योषकर्पूरकंकोललालवङ्गकम्। पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ।।२६२।। सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं पिबेत् । गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ।।२६३।। अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं स लभेन्नात्र संशयः । तरुणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ।।२६४।।

अर्थ-रूपे की भस्म १ भाग, हीरे की भस्म २ भाग, सुवर्ण की भस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, ५ शुद्ध पारा गन्धक ६ भाग और लोहभस्म ७ भाग इस प्रकार संपूर्ण औषध लेवे। सबको खरल में डाल के घीगुवार के रस में खरल करके कांच की आतसी शीशी में भर उस पर कपड़मिट्टी करे और मुख पर मुद्रा करके सूखने पर उस शीशी को हांडी में रख के शीशी के गले पर्यंत तपिसा हुआ नमक भर के ग़ला खुला रहने दे। फिर उस हांडी को परियाखे ढक के उसकी संधियों को कपड़मिट्टी से बन्द कर देवे। फिर धूप में सुखा चूल्हे पर रख के नीचे मन्द २ एक दिन तक अग्नि देवे जब शीतल हो जावे तब शीशी से औषध निकाल के खरल में डाल आक के दूध की तीन पुट

देवे। पश्चात् १ असगन्ध २ काकोली के अभाव में असगन्ध ३ कौंच के बीज, ४ मुसली, ५ तालमखाने, ६ शतावर, ७ कमलगट्टा, ८ कसेरू और ९ कसोंदी इन नौ औषधियों के पृथक् पृथक् रस निकाल के एक एक की तीन तीन भावना देवे तो यह रस सिद्ध हुआ ऐसा जानना। १ कस्तूरी, २ सोंठ, ३ कालीमिरच, ४ पीपल, ५ कपूर, ६ कंकोल, ७ इलायची, ८ लौंग इन आठ औषधों का चूर्ण करके इस रस का आठवां भाग लेके मिलावे। फिर इसमें से १ शाण रस लेके उसकी बराबरी की मिश्री मिलाकर दो पल (८ तोले) गौ के दूध से पीवे तो देह अत्यन्त सुन्दर होय, बलवान् तथा तेजस्वी होय एवं अनेक तरुण स्त्रियों से संभोग करने से भी वीर्य का क्षय नहीं हो। इस रस पर खटाई आदि को वर्जन करे और मिष्ट पदार्थ भोजन करे। इसे मदनकामदेवरस कहते हैं।।२५७–२६४।।

सूतो वज्रमहिर्मुक्ता तारं हेम सिताभ्रकम् । रसैः कर्षांशकानेतान् मर्दयेदिरिमेदजैः ।।२६५।। प्रवालचूर्णं गन्धश्च द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत् । ततोऽश्वगन्धास्वरसैर्विमर्द्य मृगशृंगके ।।२६६।। क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्धातकीरसैः । काकोली मधुकं मांसी बलात्रयविसेङ्गुदम् ।।२६७।। द्राक्षापिप्पलि-वन्दाकं वरीपर्णीचतुष्टयम् । परूषकं कसेरुश्च मधूकं वानरी तथा ।।२६८।। भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत् । एला त्वक्पत्रकं वशी लवंगागरुकेशरम् ।।२६९।। मुस्तं मृगमदः कृष्णा जलं चन्द्रश्च मिश्रयेत् । एतच्चूर्णैः शाणमिते रसं कंदर्पसुन्दरम् ।।२७०।। खादेच्छाणमितं रात्रो सिता धात्री विदारिका । एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिःकर्षे सुसंयुतम् ।।२७१।। तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत्सुस्थितमानसः । रमणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ।।२७२।।

अर्थ–१ पारे की भस्म, २ हीरे की भस्म, ३ नागभस्म, ४ मोतीभस्म, ५ रूपे की भस्म, ६ सुवर्ण की भस्म और ७ काले अभ्रक की भस्म, ये सात औषध एक एक कर्ष लेवे। सबको खरल में डाल के खैर की छाल के रस में खरल कर मूँगे का चूर्ण और गन्धक ये दो दो कर्ष लेकर उस औषध में मिलाय के असगन्ध के रस से खरल करे, फिर उसको हरिण के सींग में भर के उस पर कपड़मिट्टी कर आरने उपलों की मंदाग्नि देवे। जब शीतल हो जावे तब बाहर निकाल खरल में डाल के आगे लिखी औषधों की पुट देवे। जैसा १ धाय के फूल, २ कंकोल के अभाव में असगन्ध, ३ मुलहटी, ४ जटामांसी, ५ खरेंटी की छाल, ६ कंघी, ७ गंगेरन, ८ विस (कमल का कन्द), ९ इंगुदी (हिंगोट), १० दाख, ११ पीपल, १२ बांदा, १३ सतावर, १४ माषपर्णी, १५ मुद्गपर्णी, १६ पृष्ठपर्णी, १७ शालपर्णी, १८ फालसे, १९ कसेरू, २० महुआ, २१ कौंच के बीच इन इक्कीस औषधों का पृथक् पृथक् रस निकाल के इस रस में न्यारी न्यारी भावना देके सुखाय ले, इसको कन्दर्पसुन्दररस कहते हैं। पश्चात् १ इलायची, २ दालचीनी, ३ तमालपत्र, ४ वंशलोचन, ५ लौंग, ६ अगर, ७ केशर, ८ नागरमोथा, ९ कस्तूरी, १० पीपल, ११ नेत्रवाला और १२ भीमसेनी कपूर, इन बारह औषधों के एक शाण चूर्ण में इस कन्दर्पसुन्दररस को एक शाण मिलाके एकत्र करे,

इसको एक कर्ष घी में मिलाय के आँवला और विदारीकन्द इनका चूर्ण तथा मिश्री, ये एक एक कर्ष लेके उसे घी में मिलाकर रात्रि में पीवे और उसी समय प्रसन्न चित्त से दो पल गौ का औटा हुआ दूध पीवे तो अनेक स्त्री भोगने पर भी धातु क्षीण नहीं होता। अर्थात् अपार वीर्यवाला हो जाता है।।२६५-२७२।।

लोहरसायन क्षयादिरोगोंपर

शुद्धं रसेन्द्रं भागैकं द्विभागं शुद्धगन्धकम् । क्षिपत्कज्जलिकां कुर्यात्तत्र तीक्ष्णभवं रजः ।।२७३।। क्षिप्त्वा कज्जलिकातुल्यं प्रहरैकं विमर्दयेत् । तत्र कन्याद्रवैः खल्वे त्रिदिनं परिमर्दयेत् ।।२७४।। ततः संजायते तस्य सोष्णो धूमोद्‌गमो महान् । अत्यंतं पिण्डितं कृत्वा ताम्रपात्रे निधाय च ।।२७५।। मध्ये धान्यकुशूलस्य त्रिदिनं धारयेद्‌बुधः । उद्‌धृत्य तस्मात्खल्वे च क्षिप्त्वा घर्मे निधाय च ।।२७६।। रसैः कुठाराच्छिन्नायस्त्रिवेलं परिभावयेत् । संशोष्य घर्मे क्वाथैश्च भावयेत्त्रिकटोस्त्रिधा ।।२७७।। वासामृताचित्रकाणां रसैर्भाव्यं क्रमत्त्रिधा । लोहपात्रे ततः क्षिप्त्वा भावयेत्त्रिफलाजलैः ।।२७८।। निगुडीदाडिमत्वग्गिर्बिसभृंगकुरंटकैः । पलाशकदलीद्रावै-र्बीजकस्य शृतेन वा ।।२७९।। नीलिकालंबुषाद्रावैर्बब्बूल-फलिकारसैः । त्रित्रिवेलं यथालाभं भावयेदेभिरौषधैः ।।२८०।। ततः प्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यां कोलमात्रकम् । पलमात्रं वराक्वाथं पिबेदस्यानुपानकम् ।।२८१।। मासत्रयं शीलितं स्याद्वलीपलितनाशनम् । मन्दाग्निं श्वासकासौ च पांडुतां कफमारुतौ ।।२८२।। पिप्पलीमधुसंयुक्तं हन्यादेतन्न संशयः । वातास्रमूत्रदोषांश्च ग्रहणीं तोयजां रुजम् ।।२८३।। अंडवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम् । बलवर्णकरं वृष्यमायुष्यं परमं स्मृतम् ।।२८४।। जयेत्सर्वामयान् कालादिदं लोहरसायनम् । प्रलेपौषधमेतस्मिन् प्रदद्यात्कोलमात्रकम् ।।२८५।। कूष्मांडं च माषान्नं राजिका तथा । मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः ।।२८६।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थान मध्यमखण्डे रसकल्पनो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अर्थ–शुद्ध पारा १ भाग तथा शुद्ध गन्धक २ भाग ले दोनों को खरल में डाल के कजली करे, फिर इसके समान फौलाद लोहे का चूर्ण लेकर उस कजली म मिलाकर एक प्रहर पर्यंत खरल

करके घीगुवार के रस में तीन दिन पर्यन्त खरल करे पश्चात् उस औषध में से जब गरम अत्यंत धूँआ निकलने लगे तब उसको गोला करके तांबे के बासन में रख के उसको धान की राशि में गाड़ देवे। तीन दिन के बाद चौथे दिन निकाल के उस गोले का चूर्ण कर धूम में रख के बनतुलसी के रस की ३ पुट देवे। फिर सोंठ कालीमिरच और पीपल इनका पृथक् पृथक् काढ़ा करके एक एक की तीन तीन पुट देवे। पश्चात् अड़ूसा गिलोय और चित्रक इन तीनों का पृथक् पृथक् रस निकाल क्रम से तीन पुट देवे। पीछे इस रसायन को लोह की कड़ाही में डाल के आगे लिखी हुई औषधों की पुट देवे। जैसे १ हरड, २ बहड़ा, ३ आँवला, ४ निर्गुंडी, ५ अनार की छाल, ६ भसीड (कमलकन्द), ७ भांगरा, ८ पियावांसा, ९ पलांश, १० केले का कन्द, ११ विजयसार, १२ नीलापुष्पी, १३ मुण्डी और १४ बबूल की छाल, इन चौदह औषधों का पृथक् पृथक् रस निकाल क्रम से एक एक के रस को तीन पुट दे, पश्चात् इस रसायन को कोल प्रमाण सहत और घी एकत्र मिलाकर उसमें डाल के सेवन करे और इसके ऊपर तत्काल त्रिफले का काढ़ा १ पल पीवे। इस प्रकार इस रसायन को तीन महीने सेवन करे तो देह में अत्यन्त पुरुषार्थ हो, सफेद बाल काले होवें, शहद और पीपल के साथ लेवे तो मन्दाग्नि श्वास खाँसी पांडुरोग कफवायु, ये दूर होवें। गिलोय के सत्त्व के साथ मिलाय कर लेवे तो वातरक्त मूत्रदोष जल से उत्पन्न हुई संग्रहणी अण्डवृद्धि ये रोग दूर होवें। यह लोहरसायन बलकर्त्ता कांतिकर्त्ता स्त्रीगमनविषय में इच्छा बढ़ाता है तथा आयुष की वृद्धि करे और समयानुसार सब रोगों को नष्ट करता है। इस रसायन के सेवन करनेवाले को पेठा तिल्ली का तेल उड़द राई शहद खट्टे पदार्थ, ये सम्पूर्ण वस्तु खाना मना है।।२७३-२८६।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-शार्ङ्गधरसहितायां भावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां द्वितीयखण्डे द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अथ क्षेपकश्लोकाः

जैपालं रहितं त्वगंकुररसज्ञाभिर्मले माहिषे निक्षिप्तं त्र्यहमुष्णतोयविमलं खल्वे सवासोर्दितम् । लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसंनिभं निम्बूकांबुविभा वितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ।।१।।

अर्थ—जमालगोटे के बीज लेकर उनके ऊपर की छाल निकाल अंकुर के गीसर की जिह्वा को दूर कर कपड़े में पोटली बाँध के तीन दिन भैंसे के गोबर में रखे, चौथे दिन निकाल के उस जमालगोटे को गरम जल से धो डाले। फिर दूसरे उत्तम कपड़े में बांध के कपड़े सहित खरल करे। जब बारीक चूर्ण हो जावे तब निकाल के नये खिण्डे पर उसको पोत देवे तो वह चिकनाई रहित होकर धूल के समान हो जावेगा। फिर इसको नीबू के रस की दो पुट देवे तो यह शुद्ध जमालगोटा विशेष गुण करनेवाला होता है।।१।।

बच्छनाग वा सिंगीमुहराविष की शुद्धि

विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत् । गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ।।२।। गोमूत्रं च प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः । त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् ।।३।।

शुध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चातिजित् ।

अर्थ–बच्छनाग विष के टुकड़े करके उसकी कपड़े में पोटली बांध के एक घड़े में डूब जावे, इस माफिक कर गोमूत्र भर के उसको तीन दिन धूप में रख के धूप देवे और चौथे दिन गोमूत्र निकाल लिया करे। उसमें नवीन गोमूत्र भर दिया करे, फिर चौथे दिन उस वच्छनाग को बाहर निकाल के धूप में सुखा ले, फिर बारीक चूर्ण करे तो उत्तम शुद्ध रोग दूर कर्त्ता हो जाता है। बच्छनाग और सिंगिया विष में केवल नाम भेद है।।२।।३।।

विषशोधन का दूसरा प्रकार

खण्डीकृत्यं विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया ।।४।। अजापयसि संस्विन्नयामतः शुद्धिमाप्नुयात् । अजादुग्धाभावतस्तु गव्य-क्षीरेण शोधयेत् ।।५।।

अर्थ–बच्छनाग विष के टुकड़े करके कपड़े की पोटली में बांध के दोलायंत्र करके बकरी के दूध मे एक प्रहर पर्यंत औटावे। यदि बकरी का दूध न मिले तो गौ के दूध में एक प्रहर पर्यंत औटावे तो बच्छनाग शुद्ध होवे और यह भी याद रहे कि एक तोले बच्छनाग को सेरभर दूध में औटावे और मन्दाग्नि से पचन करावे।।४।।५।।

इति क्षेपकश्लोकाः

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहिताद्वितीयखण्डं संपूर्णम्

श्रीः

शार्ङ्गधरसंहिता

हिन्दीटीकासमेता

तृतीयः खण्डः ३

प्रथमोऽध्यायः १

प्रथम स्नेहपानविधि

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ।
मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ।।१।।

अर्थ–स्नेह चार प्रकार का है–जैसे घी तेलवसा (चरवी) मज्जा (हड्डी के भीतर का तेल) ये चार स्नेह यत्किंचित सूर्योदय होने पर पीने चाहिये।।१।।

स्थावरो जंगमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ।
तिलतैलं स्थावरेषु जंगमेषु घृत वरम् ।।२।।

अर्थ–फिर स्नेह दो प्रकार का है। एक स्थावर (जो वृक्षादिक से उत्पन्न हो) और दूसरा जङ्गम (जो पशु मनुष्यादिक से प्रगट होवे)। स्थावर पदार्थों के स्नेह अनेक हैं। तिन में तिलों का तेल श्रेष्ठ और जङ्गम पदार्थों में घृत आदि शब्द से वसादिक स्नेह अनेक हैं उनमें घी श्रेष्ठ है। इस प्रकार स्नेह के दो भेद जानने।।२।।

स्नेह का भेद

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ।

अर्थ–घी और तेल दोनों को एकत्र करने से उसकी यमक संज्ञा है। घी, तेल और वसा (मांस का तेल) ये तीन एकत्र होने से उसको त्रिवृत कहते हैं। और घी तेल मांसस्नेह तथा वसा ये चार स्नेह एकत्र होने से उसको महान् कहते हैं। इस प्रकार स्नेह के ये तीन भेद जानने चाहिये।

स्नेह पीने का काल

पिबेत्त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहं तथा ।।३।।

अर्थ–घी तीन दिन, तेल चार दिन, मासस्नेह पांच दिन और हड्डी का तेल छः दिन पीवे। इस प्रमाण क्रम से घृतादि स्नेह पीने का क्रम जानना।।३।।

स्नेह का सात्म्य कितने दिन में होता है

सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मीभवति सेवितः ।

अर्थ–सात दिन के पश्चात् घृतादिक स्नेह पीने से आहार के समान सात्म्य हो जाता है। फिर उससे गुण और अवगुण कुछ नहीं होता ।

स्नेहपान की मात्रा को कहते हैं

दोषकालाग्निवयसां बलां दृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥४॥
हीनां च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ।

अर्थ–वातादिक दोष काल अग्नि अवस्था इनका बलाबल विचार के घृतादिक स्नेह पीने की मात्रा हीन (दो कर्ष), मध्यम (तीन कर्ष) और ज्येष्ठ (एक पल) इनका तारतम्य देख के योजना करनी चाहिये॥४॥

स्नेह की मात्रा का प्रमाण त्याग के स्नेह पीने के दोष

अमात्रया तथाकाले मिथ्याहारविहारतः ॥५॥
स्नेहः करोति शोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञताः ।

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीने के कहे हुए परिणाम को त्यागकर न्यूनाधिक पीने से अथवा पान का काल त्याग के पहले या पीछे पीवे अथवा घृतादिक स्नेह पीकर मिथ्याहार और मिथ्याविहार करने से सूजन बवासीर तन्द्रा निद्रा और संज्ञाना होते हैं। इस वास्ते यथार्थ समय में ठीक ठीक स्नेह मात्रा का सेवन करे ॥५॥

दीप्ताग्नि मध्यामाग्नि और अल्पाग्नि में स्नेह की मात्रा देने का प्रमाण

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसंमिता ॥६॥
मध्यमाय त्रिकर्षा स्याज्जघन्याय द्विकार्षिकी ।

अर्थ–जिस मनुष्य की दीप्ताग्नि है उसको घृतादिक, स्नेह की एक पल मात्रा देवे, जिसकी मध्याग्नि है उस मनुष्य की तीन कर्ष प्रमाण देवे जिसकी मन्दाग्नि है उस मनुष्य को दो कर्ष प्रमाण स्नेह की मात्रा देनी चाहिये॥६॥

स्नेह की मात्राओं का भेद

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसंमताः ॥७॥ अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा । जीर्यत्यल्पा दिनार्धेन सा विज्ञेया सुखावहा ॥८॥

अर्थ–सम्पूर्ण वैद्यों को मान्य ऐसे घृतादिक स्नेह पीने की मात्रा तीन हैं, उनको कहते हैं–जो मात्रा आठ प्रहर में पचे उसको महती अर्थात् बड़ी मात्रा कहते हैं। इससे वह पलकी होती है। जो मात्रा एक दिन में पचे उसको मध्यम कहते हैं, यह तीन कर्ष की जाननी। और जो मात्रा दो प्रहर में पचे उसको अल्प अर्थात् छोटीमात्रा कहते हैं। यह दो कर्ष की मात्रा सुख की देनेवाली है॥७॥८॥

अल्पादिमात्राओं के गुण

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या वातदोषे सुपूजिता । मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी ॥९॥ ज्येष्ठा कुष्ठाविषोन्मादग्रहा-पस्मारनाशिनी ।

अर्थ–घृतादिक स्नेह पीने में जो कर्ष प्रमाण की अल्प मात्रा है वह जठराग्नि को प्रदीप्त करके स्त्री संग में इच्छा प्रकट करती है तथा वातादिक दोषों के अल्प प्रकोप का नाश करे। तीन कर्ष की जो मध्यम मात्रा है वह देह को पुष्ट करके धातु की वृद्धि करे तथा भ्रम को दूर करे और पल

प्रमाण की जो ज्येष्ठ मात्रा है वह कुष्ठरोग विषदोष उन्माद भूतादिक ग्रह तथा अपस्मार इन रोगों को दूर करती है।।९।।

दोषों में अनुपानविशेष

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।।१०।।
पेयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमन्वितम् ।

अर्थ–पित्त में केवल घी पीने को देवे। वादी का कोप होने से घी में सैंधा नमक मिलाय के दे। कफ का कोप हो तो व्योष (सोंठ, मिरच, पीपल) और जवाखार इनका चूर्ण कर घी में मिलाय के पिलावे।।१०।।

घी पिलाने योग्य प्राणी

रूक्षक्षतविषार्तानां वात-पित्त-विकारिणाम् ।।११।।
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिःपानं प्रशस्यते ।

अर्थ–रूक्ष उरःक्षतरोगी तथा विषदोष इन करके पीड़ित है शरीर जिनका ऐसे मनुष्यों को तथा जिन मनुष्यों को वात पित्त का विकार है उनको एवं हीन है धारणारूप और स्मरणरूप बुद्धि जिनकी, इतने मनुष्य को घृतपान उत्तम कहा है।।११।।

तैल पिलाने योग्य रोगी

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ।।१२।।
पिबेयुस्तैलसात्म्या ये तैलं दीप्ताग्नयस्तु ये ।

अर्थ–जिनके उदर में कृमिविकार है, वादी करके व्याप्त है शरीर जिनका, अत्यंत बढ़ा हुआ है कफ और मेद जिन्होंके, ऐसे मनुष्य को तेल पिलावे। एवं जिनकी प्रकृति को तेल रुचे अर्थात् झिलता हो उनको और प्रदीप्ताग्निवाले मनुष्यों को तेल पिलाना चाहिये।।१२।।

वसा (मांस स्नेह) पिलाने योग्य रोगी

व्यायामकर्शिताः शुष्क-रेतो-रक्त-महारुजः ।।१३।।
महाग्निमारुताःप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः ।

अर्थ–मल्लादि युद्ध (दण्ड कसरत कुस्ती आदि) तथा धनुष आदि का खीचना इन करके पीड़ित है शरीर जिन्होंका क्षीण है वीर्य तथा रक्त जिनका, देह में घोर है पीड़ा जिनके तथा अग्नि वायु तथा बल हो अधिक जिनके ऐसे मनुष्यों को वसा (मांस का स्नेह) पीने योग्य जानने चाहिये।।१३।।

मज्जा पिलाने योग्य रोगी

क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः ।।१४।।
मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ।

अर्थ–करडा है कोष्ठ जिनका, दुःख सहन करता, तथा जो वादी से पीडित है, एवं प्रदीप्त है अग्नि जिनकी ऐसे मनुष्यों को मज्जा (हड्डी का तेल) अथवा घी पिलाने से देह को सुख देता है।।१४।।

स्नेह पीने में कालनियम

शीतकाले दिवा स्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ।।१५।।
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ।

अर्थ-शीतलकाल में घृतादिक स्नेह दिन में पीवे, गरमी की ऋतु में वात, पित्त प्रबल होने से रात्रि के समय पीवे, तथा कफ और बादी जिनके प्रबल होवें वे घृतादिस्नेह दिन में ही पीवें। इस प्रकार स्नेहपान का क्रम जानना।।१५।।

स्थलविशेषमें स्नेहों की योजना

नस्याभ्यंजनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ।।१६।।
तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।

अर्थ-नस्य (नाक में डालना) अभ्यञ्जन (देह में मालिश करना) गण्डूष (कुरले करना) तथा मस्तक कर्ण और नेत्रों के तर्पण में वातादि दोषों का बलाबल विचार के वैद्य तेल अथवा घी की योजना करे।।१६।।

स्नेहों के पृथक् २ अनुपान

घृते कोष्णं जलं पेयं तैलं यूषः प्रशस्यते ।।१७।।
वसामज्जोः पिबेन्मंडमनुपानं सुखावहम् ।

अर्थ-घी पीकर उस पर गरम जल पीवे एवं तैल पीसकर उसके ऊपर यूष पीवे। मांसस्नेह तथा हड्डी का तेल पीकर उसके ऊपर मण्ड पीवे तो सुखकारी होता है। इस प्रकार स्नेहों के अनुपान जानने।।१७।।

भात के साथ स्नेह पिलाने योग्य

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ।।१८।।
तृष्णातुरानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ।

अर्थ-घृतादिक स्नेह से द्वेष है जिनको तथा बालक वृद्ध और सुकुमार (नाजुक) मनुष्य तथा तृषाकरके पीड़ित ऐसे मनुष्यों को गरमी की ऋतु में भात के साथ घृतादिक स्नेह पिलावे।।१८।।

स्नेह के विना यवागू से सद्यः स्नेहन होनेवाले

सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतंदुला ।।१९।।
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनकारिणी ।

अर्थ-तिलों को कूटकर उनमें थोड़े से चावल मिलाय घी और पानी डाल के चूल्हे पर चढ़ा के औटावे जब चावल सीज जावें और ल्हपसी के समान पतली हो जावे उसको यवागू कहते हैं। इस यवागू को सुहाती २ गरम २ पीने से सद्यःस्नेहन करनेवाली जाननी।।१९।।

धारोष्णदूध से तत्काल स्नेहन होता है।

शर्कराचूर्णसंभृष्टं दोहनस्थे घृते तु गाम् ।।२०।।
दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदुष्णं सद्यः स्नेहनमुच्यते ।।

अर्थ-मिश्री को पीस के घी में मिलावे। फिर इस घी को थोड़ा गरम कर दूध निकालने के बरतन में डाले। फिर बरतन में गौ का दूध निकालने के और उसी समय गरमागरम पीवे तो सद्यः स्नेहन होवे।।२०।।

मिथ्या आचार से न पचे स्नेह का यत्न

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ।।२१।।
विष्टभ्य वापि जीर्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ।

अर्थ—घृतादिक स्नेह पीकर उस पर व्यायामादिक परिश्रम होने से तथा कफकारी पदार्थ भोजन में आने से वह स्नेह नहीं पचता है, अत्यन्त पीने से नहीं पचता अथवा मल का अवरोध करके पचे, ऐसे मनुष्यों को गरम जल पिला के उलटी करावे तो स्नेहाजीर्ण का दोष दूर होवे।।२१।।

स्नेहजन्य अजीर्ण का यत्न

स्नेहस्याजीर्णशंकायां पिबेदुष्णोदकं नरः ।।२२।।
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुजिस्तथा ।

अर्थ—घृतादि स्नेह पीकर अजीर्ण होने की शंका होने से उस पर गरम जल पीवे तो शुद्ध उत्तम डकार आकर अन्न पर इच्छा जाने से अजीर्ण दूर हुआ ऐसा जाने।।२२।।

स्नेह अजीर्ण का द्वितीय यत्न

स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः ।।२३।।
तथास्योदीरयेत्तृणां विषमां तस्य पाययेत् ।
शीतं जलं वामयेच्च पिपासा तेन शाम्यति ।।२४।।

अर्थ—जिस मनुष्य की पित्त की प्रकृति होती है उस मनुष्य की अग्नि घृतादि स्नेह पीने से अत्यन्त तीक्ष्ण होकर तृषा को अत्यन्त बढ़ाती है। ऐसी अवस्था में शीतल जल पिलाना और वमन कराना चाहिये जिससे तृषा शांत होवे।।२३।।२४।।

स्नेहपान के अयोग्य मनुष्य

अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरो तरुणज्वरी ।
दुर्बलोऽरोचकीस्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ।।२५।।
दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च वांतितृष्णाश्रमान्वितः ।
अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ।।२६।।

अर्थ—अजीर्ण का विकार और उदररोग है जिसको, तथा तरुणज्वरी, दुर्बल, अरुचि, रोगी, स्थूल, मनुष्य, मूर्च्छा और मद इन करके पीडित, वस्तिकर्म किया हुआ, तथा जिसको दस्त होते हों या विरेचन लिया हो, वमन तथा प्यास इन करके युक्त, एवं प्रसूत होने के काल को छोड़कर अन्य काल के प्रसूता स्त्री इतने रोगियों को और दुर्दिन में कोईसा घृतादिक स्नेहपान नहीं करना चाहिये।।२५।।२६।।

स्नेहपान योग्य मनुष्य

स्वेद्य–संशोध्य–मद्य–स्त्री–व्यायामासक्तचिन्तकाः ।
वृद्धा बालाः कृशा रूक्षाः क्षीणास्नाः क्षीणरेतसः ।।२७।।
वातार्तितिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम् ।

अर्थ—औषधादि करके जिनका पसीना निकाला है ऐसे शोधन किये हुए मनुष्य, मद्य पीनेवाले, स्त्री में आसक्त, परिश्रम कर चुके हो, चिन्ता करके व्याप्त, वृद्ध, बालक, कृश, रूक्ष, क्षीण है रुधिर धातु (वीर्य) जिन्होंके वादी से पीडित और तिमिर रोग से व्याप्त ऐसे प्रकार के मनुष्य घृतादिक स्नेह पीने के योग्य हैं ऐसा जानना चाहिये।।२७।।

सम्यक्स्नेहपान के लक्षण

वातानुलोम्यं दीप्तोग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ।।२८।।

मृदुस्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहोद्वेगोऽङ्गलाघवम् ।
विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ।।२९।।

अर्थ-घृतादिक स्नेह पीने से अंग की रूक्षता दूर होकर मनुष्य उत्तम स्निग्ध होता है उसके लक्षण वायु का अनुलोमन होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, मल स्निग्ध तथा साफ हो, शरीर नम्र सचिक्कण और ग्लानिरहित होता है। घृतादि स्नेहों के सेवन करने की इच्छा का होना, शरीर हलका होवे तथा इन्द्रिय निर्मल होवें ये स्निग्ध के लक्षण हैं। एव रूक्ष मनुष्य ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत लक्षणवाला होता है अर्थात् शरीर में स्नेह करके स्नेह न होने से जो रूक्ष होता है उसके विपरीत लक्षण होते हैं।।२८।।२९।।

अत्यन्तस्नेहपान के लक्षण

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका ।
तन्द्रातिसारः पाण्डुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ।।३०।।

अर्थ-जो मनुष्य घृतादिक स्नेह बहुत पीता है, उसके लक्षण-भोजन में अप्रीति, मुख से लार का गिरना, गुदा में दाह होना, प्रवाहिका, नेत्रों में तन्द्रा, अतिसार और देह पीला पड़ जाये ये लक्षण बहुत स्नेहपान करने के जानने चाहिये।।३०।।

रूक्ष को स्निग्ध और स्निग्ध को रूक्ष करना

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः ।।३१।।

अर्थ-रूक्षमनुष्य को स्निग्ध पदार्थ जैसे-तत्काल मक्खन निकाली हुई छाछ, तिल का कल्क करके स्निग्ध करे। एवं स्निग्ध मनुष्य को रूक्ष पदार्थ जैसे-शामखिमा और चने आदि से रूक्ष करना चाहियें।।३१।।

स्नेहादिकसेवन के गुण

दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेन्द्रियः ।
निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ।।३२।।

अर्थ-घृतादिक स्नेहों के सेवन करने से मनुष्य की अग्नि प्रदीप्त होती है, कोठा शुद्ध होता है, शरीर की रसादिक धातु पुष्ट होती है। वह मनुष्य जितेन्द्रिय होवे, वृद्धावस्थारहित तथा बल कांति इन करके युक्त होता है। ये गुण स्नेह सेवन करने से होते हैं।।३२।।

स्नेहपान में वर्ज्य पदार्थ

स्नेहे व्यायाम-संशीत-वेगाघात-प्रजागरान् ।
दिवास्वप्नमभिष्यंदि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ।।३३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

अर्थ-स्नेह पीनेवाले मनुष्य को परिश्रम करना, अत्यन्त शीतल पदार्थ, मलमूत्रादि वेगों का धारण, जागना, दिन में सोना, कफकारी पदार्थ तथा रूक्षान्न इतनी वस्तु वर्जित हैं।।३३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत भाव-प्रकाशिकाहिन्दीटीकायां प्रथमोऽध्यायः ।।१।।

अथ द्वितीयोऽध्यायः २

स्नेहपानानन्तर पसीने निकालने की विधि और उसके भेद कहते हैं।

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मौ स्वेदसंज्ञितौ ।
उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ।।१।।

अर्थ–पसीने निकालने की विधि चार प्रकार की है जैसे–१ ताप, २ उष्म, ३ उपनाह, ४ द्रव्य ये चारो वादी की पीड़ा दूर करनेवाले हैं।।१।।

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ।
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसंगे द्रवो हितः ।।२।।

अर्थ–ताप और उष्म इन नामोंवाले जो स्वेद निकालने के प्रकार हैं वे दोनों कफ के नाशक हैं। उपनाहनामक जो स्वेद का प्रकार है वह वादी का नाश करता है और द्रवसंज्ञक स्वेद निकालने का जो प्रकार है वह पित्त और वादी को नष्ट करता है।।२।।

वादी की तारतम्यता के साथ न्यूनाधिक स्वेद की योजना

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः ।
दुर्बले दुर्बलेः स्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः ।।३।।

अर्थ–जिस प्राणी के देह में घोरवादी का रोग है उसके देह से शीतकाल में बहुत पसीने निकालने चाहिये। थोड़ा रोग हो तो देह से थोड़े पसीने निकाले। एवं देह में मध्यमरोग हो तो वैद्य उस रोगी के देह से मध्यम पसीने निकाले इसमें भी देश काल आदि का विचार वैद्य को करना मुख्य है।।३।।

रोगविशेषकरके स्वेदविशेष की योजना

बलासे रुक्षणः स्वेदो रूक्षः स्निग्धः कफानिले । कफमेदोवृते वाते कोष्णगेहं रवेः करान् ।।४।। नियुद्धं मार्गगमनं गुरुप्रावरणं ध्रुवम् । चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये ।।५।।

अर्थ–कफ का रोग होने से रूक्षपदार्थ जैसे वालुकादिक इनसे अंग का पसीना निकाले। एवं कफ वायु के रोग में स्निंग्ध तथा रूक्ष इन दोनों पदार्थों करके पसीने निकाले। कफमेदयुक्त वादी का रोग हो तो जिस घर में गरमी हो उस जगह बैठकर अंग को सहन हो ऐसी थोड़ी थोड़ी गरमी को सहन करे, तथा सूर्य की किरण (धूप) खाये, कुस्ती लड़े, कुछ थोड़ा मार्ग चले, केवल रजाई इत्यादिक ओढे, चिंता करे, प्रातःकाल बैठा न रहे, परिश्रम करे तथा किसी एक अंग पर बोझा धारण करे। इतने उपाय पसीने निकालने को करे तो कफ और मेदोयुक्त वादी का रोग दूर हो।।४।।५।।

जिनका प्रथम पसीना निकालना हो

येषां नस्यं विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् ।
शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ।।६।।

अर्थ–जो मनुष्य नस्यकर्म के योग्य है तथा वस्तिकर्मक योग्य है तथा देने योग्य है इतने मनुष्यों के अंगों में प्रथम पसीने देकर फिर नस्यादि यत्न करने चाहिये।।६।।

भगन्दरादिरोगमें स्वेदन की आज्ञा

स्वेद्याः पूर्वं त्रयः प्लीह[२२]भगंदर्यर्शसस्तथा ।

अश्मर्याश्चातुरो जन्तुः समये शस्त्रकर्मणः ।।७।।

अर्थ–जिस मनुष्य के भगंदर रोग हो तथा बवासीरवाला और पथरीरोग करके पीडित ऐसे तीन प्रकार के मनुष्यों के अंग का प्रथम पसीना निकालके फिर शस्त्रकर्म करके इन रोगों का शमन करे। अर्थात् इन रोगों में स्वेदन करने से वह नरम होकर शस्त्रकर्म के योग्य हो जाता है।।७।।

पश्चात् पसीने निकालने योग्य प्राणी

पश्चात् स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगदे तथा ।

काले प्रजाताऽकाले वा पश्चात्स्वेद्या नितंबिनी ।।८।।

अर्थ–जिस स्त्री के उदर में गर्भ का शूल होवे उसका पतन होने के पश्चात्, मूढगर्भ का पतन होने के पश्चात्, तथा नौ महीने के पश्चात् अथवा नौ महीने के पूर्व प्रसूत होने से उस स्त्री के देह से पसीने निकाले।।८।।

पसीने निकालने में देश और काल

सर्वान् स्वेदान्निवाते च जीर्णाहारे च कारयेत् ।

अर्थ–ये चारों प्रकार के पसीने मनुष्यों के आहार पचने के पश्चात् जिस स्थान में वायु का लेशमात्र भी न आता होवे उस जगह करने चाहिये।

पसीने निकालने पर किस मार्ग से दोष दूर होते हैं।

स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहस्निग्धस्य देहिनः ।।९।।

द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठांतर्गता यांति विरेकताम् ।

अर्थ–औषधादिकों करके मनुष्य के अंग से पसीने निकालने से तथा किसी बड़े बरतन में तेल[२३] भरके उसमें मनुष्य के बैठने से उसके रसादिक धातुओं में रहनेवाले वातादिक दोष कोष्ठ में जाकर पतले हो गुदा के द्वारा गिरते हैं।।९।।

पसीने निकालने से पश्चात् दस्त होने से उसकी चिकित्सा

स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ।।१०।।

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ।

अर्थ–मनुष्य के पसीने निकालने से उस रोगी के दोष पेट में पतले होकर गुदा के द्वारा निकाले जावे तब उसकी छाती में चन्दन का लेप करे तो प्रकृति स्वस्थ हो। तथा मनुष्य तेल में बैठा हो उसके दोष पतले होकर गुदा के द्वारा निकाले जावें तब नेत्रों पर कमल के पत्ते अथवा केला के पत्ते शीतल करने को रखे तो ग्लानि दूर होकर प्रकृति स्वस्थ होवे।।१०।।

स्वेद के अयोग्य मनुष्य

अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ।।११।। अतिसारी रक्तपित्ती पांडुरोगी तथोदरी । मदार्तो गर्भिणी चैव नहि स्वेद्या विजानता ।।१२।। एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ।

अर्थ–अजीर्ण दुर्बलता प्रमेह उरःक्षत अत्यन्त तृषा अतिसार रक्तपित्त पांडुरोग उदर और मद

इनमें से कोई सा विकार जिस मनुष्य के होवे वह तथा गर्भिणी स्त्री पसीने निकालने के योग्य नहीं है अर्थात् इनके देह से पसीने न निकाले। यदि ये रोगी पसीने निकालने से ही अच्छे होते दीखें तो हलका उपाय करके थोड़े पसीने निकाले।।११।।१२।।

अल्पपसीने निकालने के योग्य रोगी के अंग

मृदुस्वेदं प्रयुंजीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु ।।१३।।

अर्थ–हृदय, अंडकोश और नेत्र इनका पसीना निकालना हो तो थोड़ा निकालो।।१३।।

अत्यन्त पसीने निकालने के उपद्रव

अतिस्वेदात्संधिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः ।
पित्तासृक्पिटिका कोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत् ।।१४।।

अर्थ–देह से अत्यन्त पसीने निकालने से सर्व सन्धियों में पीड़ा हो, दाह, तृषा, ग्लानि, भ्रम और रक्तपित्त ये उपद्रव हों तथा देह पर फुन्सी प्रगट होवें। इनके नष्ट करने को शीतल उपाय करे तो स्वेद के उपद्रव दूर होवें।।१४।।

चार प्रकार के पसीनों में तापसंज्ञक पसीने के लक्षण

तेषु तापाभिघः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः ।
कपालकंदुकाङ्गारैर्यथायोग्यं प्रजायते ।।१५।।

अर्थ–चार प्रकार के पसीने हैं उनमें ताप इस नाम करके जो पंसीना है वह १ बालू, २ वस्त्र, ३ हाथ, ४ ठिकरा, ५ कपड़े की गेंद और ६ अंगार इन करके वालुकादिक में जैसी २ शक्ति है उसी प्रकार का उत्पन्न होता है।।१५।।

ऊष्मसंज्ञक पसीने के लक्षण

ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिंडैष्टकादिभिः । प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते ।।१६।। अथवा वातनिर्णाशिद्रव्य क्वाथरसादिभिः । उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च ।।१७।। विमृद्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठवंशजाम् । षडंगुलास्कां गोपुच्छां नलीं युंज्याद्द्विहस्तिकाम् ।।१८।। सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् । हस्तिशुंडिकया नाढचा स्वेदयेद्वातरोगिणम् ।।१९।। पुरुषायाममात्रां वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः। काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ।।२०।। वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् । एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानः स्वेदमाचरेत् ।।२१।।

अर्थ–ऊष्मा इस नामक जो पसीना है उसकी क्रिया लोह के गोला अथवा ईंट को तपाकर उस पर थोड़े खट्टे पदार्थ को छिड़ककर रोगी को केवल उढाके उस गोले से अथवा ईंट से उस रोगी के अंगों को सेंके तो पसीना निकले। यह एक प्रकार है । अथवा दशमूलादिक वातनाशक औषधोंके काढे से अथवा उन औषधों के रस को गरम कर मिट्टी की गागर में भरके उस गागर के मुखपर मुद्रा देकर मुख को बंद कर देवे, फिर उस गागर के कुक्ष में छिद्र कर धातु की अथवा लकड़ी की अथवा बांस की दो हाथ की नली बनावे, उस नली में तीन संधि करे उनका मुख छः अंगुल लंबा

और ऊँचा अथवा गौ की पूंछ के समान करे। इस नली का आकार हाथी की सूंड के सदृश होने से इसको हस्तिशुंडिका नाड़ी कहते हैं। फिर इस नली को गागरु की कूख में उस छिद्र के जड़ में फँसाकर संधियों को बंद कर देवे। फिर वादी से पीड़ित जो मनुष्य हो उसको स्वस्थ बैठाके देह में घी अथवा तेल की मालिश करके रजाई अथवा कंबल उढ़ाकर उस कपड़े के भीतर उस नली का मुख करके देह से पसीना निकाले। अथवा मनुष्य के साढ़े तीन हाथ अथवा चार हाथ लंबी जमीन खोद उसमें खैर की लकड़ी भरके जलावे। कोयला हो जावे तब उनको निकालके उस जमीन में दूध धान्योदक छाछ अथवा कांजी इनसे छिड़ककर तथा उस जमीन में वादीहरणकर्ता[२८] औषधों के पत्ते बिछाकर उस पर रोगी को सुलाके रोगी के देह में पसीने निकाले। इसी प्रकार उड़दों को लेकर उनको थोड़े से उबाले जब अधकच्चे हो जावें तब उनको तपी हुई पृथ्वी में फैलाके उनके ऊपर अंडे के पत्ते आदि वातहारक औषधों के पत्ते डाल के उस पर रोगी को सुलाके ऊपर से कंवल उढाके अंग के पसीने निकाले। इस प्रकार ऊष्मसंज्ञक पसीने के लक्षण जानने चाहिये।।१६-२१।।

उपनाहसंज्ञकस्वेद के लक्षण

अथोपनाहस्वेदं च कुर्याद्वातहरौषधैः ।
प्रदिह्य देहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः ।।२२।।
अम्लपिष्टः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतैः ।

अर्थ-अब उपनाह नामक स्वेद की क्रिया कहते हैं-दशमूलादि वायुहारक औषधों को कूटकर चूर्ण कर उसमें दूध और हरिणादिकों के मांस का स्नेह ये दोनों मिलाय के कुछ गरम कर वायु पीडित अंग, उस अंग को सहन होय ऐसा गाढा लेप करके वस्त्रादिकों के पट्टी से बाँध अंग पसीना निकाले। अथवा वातहर औषधों को कूटकर चूर्ण करे, उसको छाछ में अथवा काँजी में पीसके उसमें थोड़ा सेंधानमक और तिल का मिलाय कुछ गरम करे वादी से पीडित अंग पर सहता २ गाढा लेप करके वस्त्रादिक से बांधकर अङ्ग का पसीना निकाले। इसको उपानाहसंज्ञक[२९] क्रिया कहते हैं।।२२।।

दूसरा प्रकार महाशाल्वणप्रयोग

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च।।२३।। दधिसौवीरकक्षारै-र्वीरतर्वादिना तथा । कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ।।२४।।शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः। एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः।।२५।। मिशिकृष्णाकुठारैश्च लवणैरम्लसं-युतै। । प्रसारिण्यवश्वगंधाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ।।२६।। गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः । क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ।।२७।। महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिजित् ।

अर्थ-ग्राम्य[११]मांस आनूप[१२]मांस जीवनीयगण[१३]की औषधि, गौ का दही, सौवीर[१४] सज्जीखार जवाखार रेह का खार वीरतर्वादिगण[१५]की औषधि कुलथी उड़द गेहूँ अलसी तिल सरसों सौंफ देवदारु निर्गुंडी कलौंजी अंड की जड़ अंड के बीज रास्ना मूली सहँजना हालो पीपल वनतुलसी पांचों नमक अनारदाना प्रसारिणी असगन्ध गंगेरन की छाल दशमूल की सब औषधि गिलोय और कौंच के बीज इन सम्पूर्ण औषधियों में से जो मिले इन सबको लाके कूट डाले। फिर गरम करके कपड़े की

पोटली बांध के उस पोटली से रोगी के अंगों को सेंके तो सम्पूर्ण वादी की पीड़ा दूर हो तो इस प्रयोग को महाशाल्वण प्रयोग कहते हैं इस प्रकार उपनाहसंज्ञक स्वेद के लक्षण जानने।।२३–२७।।

द्रवसंज्ञकस्वेद के लक्षण

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नो द्रव्यक्वाथेन पूरिते ।।२८।। कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोवगाहयेत् । [[1]सौवर्णे राजते वापि ताम्र आयस–दारुज । कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षट्त्रिंशदंगुलम् । आयामेन तदेव स्याच्चतुष्टयसृणिं तथा ।।] नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नः क्वाथस्य धारया ।।२९।। कोष्ठके स्कन्धयोः सिक्त्वा तिष्ठत्स्निग्धतनुर्नरः । मृदुस्तोकं समारभ्य यावद्यामचतुष्टयम् ।।३०।। तावत्तदवगाहेत यावदारोग्यनिश्चयः। एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ।।३१।। एकांतरे द्व्यंतरे वा स्नेहो युक्तोऽवगाहने । शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् ।।३२।। शरीरबलमाधत्ते युक्तः स्नेहावगाहने । जलसिक्तस्य वर्धन्ते यथा मूलेऽङ्कुरास्तरोः ।।३३।। तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते । नातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः ।।३४।।

अर्थ–द्रव इस नाम करके जो स्वेद है उसकी क्रिया अर्थात् विधि कहते हैं–दशमूलादि वातहारक औषधों का काढा करके रोगी के देह में घी अथवा तेल की मालिश करे। उसको कडाही अथवा तांबे के बड़े पात्र में पाटव आदि में बैठाके पूर्वोक्त काढे में गरम गरम सुहाते २ की धार उस मनुष्य के कन्धोंपर डाले। यह धार टूँडी (नाभि) पर छः अंगुल पर्यंत चढे तहां तक डालता रहे। पहिले इस क्रिया को थोड़ी देर करे अथवा जब तक सह सके या आराम हो, इसकी अवधी ४ प्रहर की है। इस प्रकार तेल की, दूध की अथवा घी की धार डाले उसको और घर्मयुक्त करे। इस प्रकार एक दिन का बीच देकर अथवा दो दिन बीच में देकर करे तो शिराओं के मुखद्वारा रोमों के छिद्रों में होकर तथा नाड़ी के मार्गों में होकर ये स्नेहादि पदार्थ शरीर के अभ्यन्तर प्रविष्ट होकर शरीर में बल उत्पन्न करते हैं। इस विषय में दृष्टान्त है कि जैसे वृक्ष की जड़ में बारंबार जल सेचन करने से वृक्ष बढ़ता है उसी प्रकार तैलादिकों में बैठने से मनुष्य के रसादि सात धातु बढ़ती है। और वादी का नाश होता है। इस उपाय की अपेक्षा वायुनाशका दूसरा उपाय नहीं है।।२८–३४।।

पसीने निकालने की अवधि

शीतशूलाद्युपरमे स्तंभगौरवनिग्रहे ।
दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ।।३५।।

अर्थ–अंग से शरदी और शूल (दर्द) इनकी शांति होने पर अंग का स्तम्भ तथा भारीपन ये दूर होने से तथा अग्नि प्रदीप्त होने से अंगों में नम्रता आने पर रोगी की देह से पसीना निकलना बन्द करे।।३५।।

स्वेद निकालने के पश्चात् उपचार

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ।
भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च न कारयेत् ॥३६॥

अर्थ-जिस मनुष्य के अंग से पसीना निकालना है उसको और जिसके देह में तेल की मालिश की है उसको धीरे धीरे गरम जल से स्नान करावे। कफकारी पदार्थ खाने को न देवे तथा परिश्रम न करे। इस प्रकार द्रवसंज्ञक स्वेद के लक्षण जाननें॥३६॥

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहितायां भावप्रकाशिका-हिन्दीटीकायां तृतीयखण्डे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः ३

वमनविरेचनकाल

शरत्काल वसन्ते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।
वमनं रेचनं चैव कारयेत् कुशलो भिषक् ॥१॥

अर्थ-शरद काल में, वसन्त काल में और प्रावृट् काल में कुशल वैद्य मनुष्य को वमन का औषध देकर उलटी करावे और दस्त लानेवाली औषधि (जुलाब) देवे तो प्रकृति ठीक रहे। कुशल वैद्य के कहने से यह प्रयोजन है कि वमन और विरेचन मूढ वैद्य से न करावे। क्योंकि मूढ वैद्यद्वारा वमन विरेचन कराने से प्राण-बाधा का भय रहता है॥१॥

वमन कराने योग्य रोगी

बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम् । तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥२॥ विषदोषे स्तन्यरोगे मन्देऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे । हृद्रोगकुष्ठ-वीसर्प-मेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥३॥ विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु । अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥४॥ नासताल्वोष्ठपाकेषुकर्णस्रावे द्विजिह्वके । गलशुण्डचामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥५॥ मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ।

अर्थ-बलवान् मनुष्य जो कफ से व्याकुल है, जिसके मुख से लार बहती हो, जिसको वमन करना सहा जाता है, धीरचित्तवाला, विषदोष, स्तन्यरोग, मंदाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृद्रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गण्डमालाका भेद, अपचीरोग, खांसी, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातिसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्ण स्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतिसार, पित्त, श्लेष्म के रोग, मेदोरोग और अरुचि इनमें से जो रोग जिसके हों उस रोगी को वैद्य वमन करावे॥२-५॥

वमन में अयोग्य प्राणी

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥६॥ नातिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलः क्षतातुरः । मदार्तो बालको रूक्षः

क्षुधितश्च निरूहितः ॥७॥ उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिः केवलानिली । पांडुरोगीकृमिव्याप्तः पठनात्स्वरंघातकः ॥८॥ एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः । कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्वाथपाततः ॥९॥

अर्थ–तिमिर, गोला और उदर इन रोगवाले मनुष्य तथा अतिकृश, अतिवृद्ध, गर्भिणी स्त्री, बड़े स्थूल पुरुष, उरःक्षत करके तथा मद करके पीडित, बालक, रूक्ष, क्षुधित (भूखा) निरूहित (गुदा द्वारा पिचकारी दी है जिसके) उदावर्त रोग होय, ऊर्ध्वरक्ती[४२] जिसको वमन नही होती हो, जिसके केवल वादी का रोग हो, पांडुरोगी, कृमिरोगी, तथा वेदशास्त्र के अत्यन्त उच्चस्वर पढने से जिसका कण्ठ बैठ गया हो इतने रोगियों को वमन नहीं करना चाहिये। यदि ये रोगी अजीर्ण करके अथवा कफ करके व्याप्त होवें या जो विष से पीडित हों तो इनको मुलहठी की अथवा महुए की छाल का अथवा मधु मिले जल का काढ़ा पिलाके वमन करावे॥६–९॥

वमन के अयोग्य प्राणी

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत् ।

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) मनुष्य कृश[४३] बालक वृद्ध डरपोक, इन पांच मनुष्यों को वमनवाली औषधि नहीं देनी चाहिये।

वमन में विहित पदार्थों को कहते हैं

पीत्वा यवागूमाकण्ठं क्षीरतक्रदधीनि च ॥१०॥ असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्य देहिनः । स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥११॥

अर्थ–जिस मनुष्य को वमन कराना होवे उसको प्रथम पेट भरके यवागू[४४] दूध छाछ अथवा दही पीने को देवे। जो पदार्थ अपनी प्रकृति को न भासते हों वे पदार्थ तथा कफकारी पदार्थ खाने को देकर मनुष्यों के दोषों को उत्क्लशित करे तो उस मनुष्य को भले प्रकार वमन होवे। जिस मनुष्य ने घृतपान और स्वेदकर्म किया है उस मनुष्य को एक दिन बीच में देकर वमन करना उत्तम है अर्थात् इस प्रकार करने से उत्तम छर्दी होती है॥१०॥११॥

वमन में सहायक पदार्थ

वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम् ।
बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥१२॥

अर्थ–जितने वमनकारक प्रयोग हैं उन सबमें सैंधानमक अथवा शहद इनको मिलावे तो हितकारी है। वमन देवे तो वीभत्स[४५] (अरोचक वस्तु) देवे और विरेचन में रोचक पदार्थ (औषध) देवे॥१२॥

वमनप्रयोग में काढ़े करने का प्रमाण

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।
अर्धभागावशिष्टं[४६] च वमनेष्ववचारयेत् ॥१३॥

अर्थ–काढ़े की औषधि १ कुडव[४७] ले कुछ कूटक उसमें एक आढ़क[४८] जल डाल के औटावे। जब आधा जल रह जावे तब उतार छान के वमन के वास्ते पीने को देवे॥१३॥

वमन में काढ़ा पीने का प्रमाण

क्वाथपाने नवप्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता ।
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥१४॥

अर्थ–जिस मनुष्य को वमन करना है उसको नौ प्रस्थ काढ़ा पीना। बड़ी मात्रा जाननी। छः प्रस्थ काढ़ा पीना मध्यम मात्रा है और तीन प्रस्थ काढ़े की मात्रा लघुमात्रा जाननी चाहिये॥१४॥

वमन में कल्कादिकों का प्रमाण

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिफलं श्रेष्ठमात्रया ।
मध्यमं द्विपलं विद्यात् कनीयस्तु पलं भवेत् ॥१५॥

अर्थ–कल्क चूर्ण और अवलेह ये तीन पल लेना, बड़ी मात्रा कहलाती है। दो पल की मध्यम मात्रा जाननी तथा एक पल की छोटी मात्रा जाननी चाहिये॥१५॥

वमन में उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ वेगों का प्रमाण

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः।
षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरा मताः ॥१६॥

अर्थ–जिस प्राणी को वमनकारक औषधि देने से सात वेग पर्यंत सम्पूर्ण दोष निकलकर आठवें वेग में पित्त निकले तो उत्तम वेग जानने। उसी प्रकार पांच वेंग पर्यंत दोष निकलके छठे वेग में पित्त पड़ने से मध्यम वेग जानने। एवं तीन वेग पर्यंत दोष निकलके चतुर्थ वेग में पित्त निकले तो उस प्राणी के वमन को हीनवेग हुए, ऐसे जानना चाहिये॥१६॥

वमन के विषय प्रस्थ का प्रमाण

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।
सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥१७॥

अर्थ–वमन होने के विषय में तथा दस्त होने में जो औषध प्रस्थ प्रमाण लेनी कही है वहां पर ॥१३॥ साढ़ तेरह पल का प्रस्थ लेना चाहिये और फस्त खोलने में भी॥१३॥ साढ़े तेरह पल का प्रस्थ लेना ऐसी शास्त्राज्ञा है॥१७॥

वमन में औषधविशेषकरके कफादिक की जय

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुहिमैर्जयेत् ।
सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम् ॥१८॥

अर्थ–कटु और तीक्ष्ण औषधों से कफ को जीते, मधुर और शीतल औषधों से पित्त तथा मधुर क्षार अम्ल और उष्ण औषधों से वातमिश्रित कफ को जीते ॥१८॥

कफादिकों को वमन द्वारा निकालनेवाली औषध

कृष्णाराठफलं सिन्धुं कफे कोष्णजलं पिबेत् । पटोलवासा-निम्बैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत् ॥१९॥ सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत् । अजीर्णे कोष्णपानीयं सिन्धुं पीत्वा वमेत्सुधीः ॥२०॥

अर्थ–कफदोष में पीपल, मैनफल और सैंधानमक, इनका चूर्ण करके गरम जल के सात पिलावे

तो वमन के साथ कफ निकले। तथा पित्तदोष में पटोलपत्र, अडूसा और कटुनिंबक पत्तों का चूर्ण करके शीतल जल में मिलाके पीवे तो वमन में पित्त निकल तथा कफवायु की पीड़ा हो तो मैनफल के चूर्ण को दूध में डाल के पीवे तो वमन करने से कफवायु की पीड़ा दूर होवे। तथा अजीर्ण में गरम जल में सैंधानमक डाल के पीवे तो वमन होने से उस प्राणी का अजीर्ण दूर होवे।।१९।।२०।।

वमन करने में बाह्योपचार

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम् । कण्ठमेरंडनालेन स्पृशन्तं वामयेद्भिषक् ।।२१।। ललाटं वमतः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ।

अर्थ–मनुष्य को वमनकारक औषध देकर घुटने पर्यंत ऊंचे आसन पर बैठावे और अरंड की नाल को लेकर उसको मुख में डाल के हलके हाथ से जैसे कफ को स्पर्श करे, इस प्रकार कण्ठ में फेरे। इस प्रकार भीतर बाहर से कण्ठ को हिलाकर वैद्य मनुष्य को उल्टी करावे तथा उस उल्टी करनेवाले के मस्तक को तथा उसकी दोनों कूखों (पसलियां) को धीरे धीरे हाथ से मसलना चाहिये।।२१।।

उत्तम वमन न होने से उपद्रव

प्रसेकी हृद्ग्रहः कोढ़ः कण्डूर्दुश्छर्दितोद्भवेत् ।।२२।।

अर्थ–वमन का उत्तमयोग न होने से मुख से लार गिरे, हृदय में पीड़ा होवे देह में चकत्ते और खुजली होती है।।२२।।

अत्यन्तवमन होने के उपद्रव

अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञता । जिह्वानिः सर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंयतिः ।।२३।। रक्तच्छर्दिःष्ठीवनं च कण्ठे पीडा च जायते ।

अर्थ–मनुष्य को अत्यन्त वमन होने से अत्यन्त तृषा लगे, हिचकी डकार आना, संज्ञा का नाश, जीभ मुख से बाहर निकल पड़े, नेत्र फटे से होकर चञ्चल होवें, भ्रम, ठोडी का जकड़ना, अथवा पीड़ा का होना, मुख से रुधिर का गिरना, बारंबार थूकना तथा कण्ठ में पीड़ा, ये उपद्रव अत्यन्त वमन होने से होते हैं।।२३।।

अत्यन्त वमन होने की चिकित्सा

वमनस्यातियोगेन मृदु कुर्याद्विरेचनम् ।।२४।।

अर्थ–यदि मनुष्य को अत्यंत उल्टी होती हो तो उसको हलका सा जुल्लाब करावे।।२४।।

उल्टी करते करते जीभ भीतर चली गयी हो तो उसकी चिकित्सा

वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः । स्निग्धाम्ललवणै-र्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः ।।२५।। फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ।

अर्थ–अत्यन्त उलटी करते करते यदि मनुष्य की जीभ भीतर धँस गई हो तो मन को प्रसन्नताकारक खट्टे, चिकने, मीठे नमकीन पदार्थों का रस, घी, दूध, मुँह में धारण करे तथा उस

रोगी के सामने दूसरा मनुष्य नींबू अथवा नांगी को चूस चूस कर खावे तो मनुष्य की जीभ ठिकाने पर आकर प्रकृति स्वच्छ हो॥२५॥

उलटी करते करते जीभ बाहर निकल पड़ी हो तो उसका उपाय

निःसृतां तु तिल-द्राक्षा-कल्कैर्लिप्त्वा प्रवेशयेत् ॥२६॥

अर्थ–मनुष्य की जीभ उलटी करते करते यदि बाहर निकल आई हो तो उसको तिल और दाख इनका कल्क करके उसकी जीभ पर वैद्य लेप करके जीभ को भीतर प्रविष्ट करे॥२६॥

वमन से नेत्रों में विकार होने का उपचार

व्यावृत्तेऽक्षिण घृताभ्यक्ते पीडयेश्च शनैः शनैः ।

अर्थ–जिस मनुष्य के उल्टी करते करते नेत्र फटे से हो गये हों उसके नेत्रों में हलके हाथ से घी लगाकर ठिकाने पर करे।

उल्टी करते करते ठोडी रह गई हो उसका उपचार

हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातनुत् ॥२७॥

अर्थ–मनुष्य की उलटी करते करते ठोडी रह जावे तो उसके अंगो का पसीना निकाल तथा कफवायुनाशक औषध नाक में डाले तो ठोडी का स्तम्भ दूर होवे॥२७॥

उलटी करते करते रुधिर गिरने लगे उसका उपाय

रक्तपित्तपिधानेन रक्तच्छर्दिमुपाचरेत् ।

अर्थ–मनुष्य को अत्यन्त उल्टी होने से अन्त में रुधिर गिरने लगे तो जो रक्तपित्त रोग पर उपाय कहे हैं उन उपायों को करके रुधिर की उलटी को शान्त करे।

अत्यन्त वमन होने से अधिक तृषा लगने का यत्न

धात्री-रसांजनोशीर-लाजा-चंदन-वारिभिः ॥२८॥ मंथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् । शाम्यन्त्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवाः ॥२९॥

अर्थ–१ आंवले, २ रसोंतें, ३ खस, ४ शालि चावलों की खील, ५ लाल चन्दन और ६ नेत्रवाले, इन छः औषधों का मन्थें करके उसमें घी शहद और मिश्री डाल के पीवे तो वमन के कारण जो तृषादिक उपद्रव होते हैं वे दूर होते हैं॥२८॥२९॥

उत्तम वमन होने के लक्षण

हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिं दीप्ताग्नित्वं च लाघवम् ।
कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वांतस्य चेष्टितम् ॥३०॥

अर्थ–जो प्राणी उत्तम प्रकार की उलटी करता है उसके लक्षण कहते हैं कि हृदय, कंठ और मस्तक इनमें जो कफादिक दोष हैं, उनको दूर कर उनकी शुद्धि होवे, अग्नि प्रदीप्त हो, अंग हलके हों तथा कफदोष और पित्तदोष ये दोनों दूर होवें॥३०॥

ततोऽपराह्ले दीप्ताग्निं मुद्ग-षष्टिक-शालिभिः ।
हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥३१॥

अर्थ–जब मनुष्य भले प्रकार वमन कर चुके तब तीसरे प्रहर अग्नि प्रदीप्त होने पर मूंग और साँठी चावल मन को प्रियकर्ता ऐसे ऐसे वन के हरिणादिकों के मांस का रस और यूँष बनाके उनके साथ भोजन करे॥३१॥

उत्तम वमन का फल

तन्द्रानिद्रास्यदौर्गन्ध्यं कण्डूं च ग्रहणी विषम् ।
सुवान्तस्य न पीडायै भवन्त्येते कदाचन ।।३२।।

अर्थ–जिस मनुष्य ने उत्तम प्रकार वमन किया है उसके तंद्रा निद्रा मुख की दुर्गंधि खाज संग्रहणी रोग और विषदोष ये उपद्रव कदाचित् भी नहीं होते।।३२।।

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।
स्नेहाभ्यङ्गं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ।।३३।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायांमुत्तरखण्डे वमनविधिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अर्थ–अजीर्णकर्ता (भारी) पदार्थ, शीतल पानी, दंड कसरत, मैथुन, देह में तेल की मालिश करना तथा क्रोध करना, ये सब कर्म जिस दिन वमनकारी औषध लेवे, त्याग देना चाहिये।।३३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायांमुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां तृतीयोऽध्यायः ।।३।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः ४

वमन के पश्चात् विरेचन

स्निग्धस्विन्नस्य वान्तस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम् । अवांतस्य त्वधःस्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ।।१।। मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् । अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ।।२।।

अर्थ–प्रथम मनुष्य को स्निग्ध करे अर्थात् पूर्वोक्त विधि से स्नेहपान करावे फिर उसके देह से पसीना निकाले, पश्चात् वांति (उलटी) करावे, जब भले प्रकार वमन कर चुके तब उत्तम प्रकार से विरेचन कर देवे। इसका कारण यह है बिना वमन कराये दस्त करावे तो उसके अधोभाग में गया हुआ कफ वह ग्रहणी (छठवी पित्तधारा तथा अग्निधरा कला) का आच्छादन करता है कि जिससे मन्दाग्नि गौरव (देह में भारीपना) प्रवाहिका, ये रोग उत्पन्न होते हैं। अथवा अधोगत कफ और आम को सोंठ एरण्डमलादिक करके पचावे।।१।।२।।

दस्त की दूसरी विधि

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैःस्विन्नस्य रेचनम् ।

अर्थ–घृत दुग्धादिक स्नेहद्रव्यों करके स्निग्ध मनुष्य को और पिंडेष्टंवादि करके जिसकी देह का पसीना निकाला गया हो उसे दस्त कराने चाहिये।

दस्तों का सामान्य काल

शरदृतौ वसन्ते च देशशुद्धौ विरेचयेत् ।।३।।
अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ।

अर्थ–शरद् ऋतु में तथा वसन्तऋतु में मनुष्यों की शरीरशुद्धि के लिये जुलाब देवे तो देह की शुद्धि होकर देह उत्तम हो तथा उक्त काल के सिवाय दूसरे काल में यदि रोग उत्पन्न हो तो उस काल में भी वैद्य रोगी का विचार करके दस्तकारी औषध देवे।।३।।

विरेचनयोग्य रोगी

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा ।।४।।
उदरे च तथाऽऽध्माने कोष्ठाशुद्धौ विशेषतः ।

अर्थ–पित्तविकार आमवात उदररोग, अफरा और बद्धकोष्ठ इन रोगों में वैद्य विशेष करके विरेचन देवे।।४।।

दोष दूर करने में विरेचन की उत्कृष्टता

दोषाः कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ।।५।।
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ।

अर्थ–वातादिक दोष लंघन और पाचन करने पर शमन होकर कदाचित् फिर भी कुपित हो जाते हैं परन्तु जो संशोधन (वमनविरेचनादि) द्वारा शुद्ध हुए हैं उनका फिर उद्भव (उत्पत्ति) नही होता ।।५।।

दस्त कराने योग्य रोगी

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगन्दरी ।।६।। अर्शःपांडूदर-ग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः । योनिरोगप्रमेहार्तागुल्म-प्लीहव्रणा-र्दिताः ।।७।। विद्रधिच्छर्दि-विस्फोट-विषूची-कुष्ठ-संयुताः । कर्ण-नासा-शिरो-वक्त्र-गुद-मे-ड्रामयान्विताः ।।८।। यकृच्छो-थाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः । शूलिनो मूत्रघातार्ता विरकार्हा नरा मताः ।।९।।

अर्थ–जीर्णज्वर सिंगिया आदि विषदोष वातरक्त भगंदर बवासीर पांडुरोग उदररोग गांठ हृदय रोग अरुचि प्रमेह योनिरोग गोला प्लीहा व्रण विद्रधि वमन, विस्फोटक, विषूचिका, कोढ़, कर्णरोग, नासारोग, मस्तकरोग, मुखरोग, गुदा के रोग लिंगेन्द्रिय के (उपदंशादि रोग) यकृत् सूजन नेत्ररोग कृमिरोग सोमल तथा क्षारजन्य विकार वादी के रोग शूलरोग तथा मूत्राघातरोग इन रोगों से यदि प्राणी अत्यंत व्याप्त होवे तो उसको विरेचन (दस्त कराने की औषधि) दे दे।।६-९।।

दस्त कराने में अयोग्य

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणो भयान्वितः । श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ।।१०।। नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी । शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ।।११।।

अर्थ–बालक, वृद्ध, अतिस्निग्ध, उरःक्षत करके क्षीण, भय करके पीड़ित, थका हुआ, प्यासा, स्थूल पुरुष, गर्भिणी, नवज्वर करके पीड़ित, नवप्रसूता स्त्री, मंदाग्नि, मदात्यय रोग करके पीड़ित, शल्य करके पीड़ित और रूक्ष इतने मनुष्यों को विद्वान् वैद्य दस्त न करावे।।१०।।११।।

दस्तों में मृदु, मध्य और क्रूर कोष्ठ

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः। बहुवातःक्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्य स कथ्यते ।।१२।। मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा । करे तीक्ष्णा मता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यम-तीक्ष्णकैः ।।१३।।

अर्थ–जिस मनुष्य का कोठा अत्यन्त पित्तकरंके व्याप्त होवे उसे मृदुकोष्ठ जानना, एवं जिसके कोठे में अत्यंत कफ हो तो उसे मध्यम कोष्ठ एव जिसके कोठे में अत्यंत वादी है उसे क्रूर कोष्ठ जानना। जिस मनुष्य का क्रूर कोष्ठ है, ऐसे मनुष्य को दस्तकारी औषध देने से शीघ्र दस्त नही होते। जिस प्राणी का मृदु कोष्ठ है उसको मृदु औषध की मध्यम मात्रा देवे। तथा जिस प्राणी का अत्यंत क्रूर कोष्ठ है उसको औषध की तीक्ष्णमात्रा देनी चाहिये।।१२।।१३।।

मृदुमध्यमादि कोष्ठों में मृदुमध्यादिक औषध

मृदुर्द्राक्षा पयश्चंचुतैलैरपि विरिच्यते ।
मध्यमस्त्रिवृता तिक्ता राजवृक्षैर्विरिच्यते ।।१४।।
क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदन्तीफलादिभिः ।

अर्थ–जिनका मृदु (नरम) कोठा है। उनको दाख, दूध और अरंडी का तेल इनसे ही दस्त हो सकते हैं। मध्यम कोष्ठवाले को निशोथ, कुटकी और अमलतास का गूदा इनसे दस्त हो सकते हैं। तथा क्रूर कोठेवाले को थूहरकला दूध तथा चोक जमालगोटे के बीज आदि शब्द से इन्द्रायन की जड़ इत्यादिक देने से होता है।।१४।।

उत्तमादिभेद करके दस्तों के प्रमाण

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ।।१५।।
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका ।

अर्थ–तीस बार दस्त होकर अन्त में (आम) गिरे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी। और बीस वेग होकर कफ गिरने लगे तो उसे मध्यम मात्रा जाननी। तथा दश वेग के अन्त में कफ गिरने से हीन मात्रा जाननी। वेगनाम दस्तों का है।।१५।।

दस्त होने में कषायादि की मात्रा का प्रमाण

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ।।१६।।
पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ।

अर्थ–दो पल प्रमाण कषाय (काढ़ा) देसे जो दस्त होवें तो उत्तम जानना। एक पल प्रमाण काढ़ा देने से दस्त हो तो मध्यम जानना। एवं अर्ध पल के प्रमाण काढ़े से दस्त हो तो कनिष्ठ जानना चाहिये।।१६।।

दस्त होने में कल्कादिकों के प्रमाण

कल्ममोदकचूर्णानां कर्षं मध्वाज्यलेहतः ।।१७।।
कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ।

अर्थ–कल्क, मोदक और चूर्ण ये प्रत्येक कर्ष प्रमाण लेकर शहद और घी में मिलाकर दस्त होने के लिये देना चाहिये। अथवा अवस्था और रोग का तारतम्य देख के दो कर्ष अथवा एक पल देवे।।१७।।

दोषों के अनुकूल रेचन

पित्तोतर त्रिवृच्चूर्णं द्राक्षाक्वाथादिभिः पिबेत् ॥१८॥ त्रिफलाक्वाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः । त्रिवृत्सैन्धव-शुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥१९॥ वातार्दितो विरकाय जांगलानां रसेन वा ।

अर्थ–पित्त के आधिक्य में निसोथ का चूर्ण करके दाख के काढ़े में मिलाके देवे। आदि शब्द से गुलकंद, गुलाब के फूल और सौंफ इत्यादि के काढ़े में देवे। कफ का प्रकोप होने से त्रिफले का काढ़ा और गोमूत्र इन दोनों को एकत्र करके उसमें त्रिकटा (सोंठ, मिरच, पीपल) का चूर्ण मिलाके देवे। यदि मनुष्य वादी से पीड़ित हो तो उनको दस्त कराने के वास्ते निसोथ, सैंधानमक और सोंठ इनका चूर्ण करके इमली या नींबू के रस में देवे। अथवा जंगली जीवों के मांस"रस में देवे तो दस्त होवे॥१८॥१९॥

अन्य औषधों से दस्तों का विधान

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च ॥२०॥ युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ।

अर्थ–अंडी के तेल से दुगुना त्रिफले का काढ़ा कर उसमें अंडी का तेल डाल देवे, अथवा अंडी का तेल दूध में मिलाय के देवे तो तत्काल दस्त हो जाते हैं॥२०॥

ऋतुभेदकर के दस्त

त्रिवृता कौटबीजं च पिप्पली विश्वभेषजम् ॥२१॥ समृद्धीकारसः क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम् ।

अर्थ–निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोठ, दाखों का रस और शहद, ये औषध दस्त होने के वास्ते वर्षाकाल में देना चाहिये॥२१॥

शरदऋतु में दस्त

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करा दिव्यचन्दनम् ॥२२॥ द्राक्षांबुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ।

अर्थ–निसोथ, धमासा, नागरमोथा, मिसरी, उत्तम सफेद चन्दन और मुलहटी इन सब औषधों का चूर्ण कर दाख के पानी में मिला के शरद् ऋतु में देवे तो ऋतु में देवे तो दस्त होवे। यह दस्त की औषधि शीतल है॥२२॥

हेमन्तऋतु में दस्त

त्रिवृत्ता चित्रकं पाठा ह्यजाजी सरला वचा ॥२३॥ हेमक्षीरी च हेमन्ते चूर्णमुष्णांबुना पिबेत् ।

अर्थ–निसोथ, चीता, पाढ़ा, जीरा, देवदारु, वच और चोक इनका चूर्ण कर गरम जल में मिला के हेमन्तऋतु में देवे तो दस्त होवे॥२३॥

शिशिर वा वसंत ऋतु में दस्त

पिप्पली नागरं सिंधु श्यामात्रिवृतया सह ॥२४॥ लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम् ।

अर्थ–पीपल, सोंठ, सैंधानमक और काली निसोथ, इन औषधों का चूर्ण कर शहद में मिलाकर शिशिर तथा वसन्त ऋतु में चाटे तो दस्त हो। कोई श्यामा विधारे को भी कहते हैं।।२४।।

ग्रीष्मऋतु में दस्त

त्रिवृता शर्करातुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ।।२५।।

अर्थ–निसोत का चूर्ण करके उसमें मिश्री मिलाकर दस्त होने के वास्ते ग्रीष्म ऋतु (गरमियों) में देना चाहिये।।२५।।

सब ऋतुओं में दस्त

त्रिवृतां दन्ति-हपुषां सप्तलां कटुरोहिणीम् ।
स्वर्णक्षीरीं च संचूर्ण्य गोमूत्रे भावयेत् त्र्यहम् ।।
एष सर्वर्तुको योगः स्निग्धानां मलदोषहा ।।२६।।

अर्थ–निसोथ दन्ती हाउबेर सातला कुटकी चोक इनका चूर्ण कर गोमूत्र में ३ दिन भावना हर समय स्निग्धमनुष्य को विरेचनार्थ देना चाहिये।।२६।।

अभयामोदक

अभया मरिचं शुंठी विडंगामलकानि च । पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ।।२७।। एतानि समभागानि दंती च त्रिगुणा भवेत् । त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ।।२८।। मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः । एककं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ।।२९।। तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ।।३०।। पानाहारविहारेषु भवेन्निर्यंत्रणं सदा । विषमज्वरमन्दाग्निपांडु-कासभगन्दरम् ।।३१।। दुर्नाम कुष्ठगुल्मार्शो गलगण्ड-व्रणोदरान् । विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयम्।३२।। वातरोगं तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् । पृष्ठपार्श्वोरुजघनजङ्घोदररुजं जयेत् ।।३३।। सततं शीलनादेष पलितानि विनाशयेत् । अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ।।३४।।

अर्थ–१ हरड़, २ कालीमिरच, ३ सोंठ, ४ वायविडंग, ५ आँवले, ६ पीपल, ७ पिपरामूल, ८ दालचीनी, ९ पत्रज, १० नागरमोथा। ये दश औषध समान भाग लेवे। तथा दन्ती तीन भाग निशोथ आठ भाग तथा खाँड छः भाग। इस प्रकार भाग लेकर सबका चूर्ण कर शहद में मिलाकर एक एक कर्ष के मोदक (लड्डू) बनावे। इनमें से १ मोदक प्रातःकाल दस्त होने के वास्ते भक्षण करे और ऊपर से थोडा शीतल जल पीवे। फिर जब तक दस्त होते रहें तब तक गरम पदार्थ का सेवन न करे तथा पान और आहार एवं विहार (श्रमादिक) इनमें सर्वकाल नियमित रहे तो विषमज्वर, मन्दाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगन्दर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगण्ड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीह, प्रमेह, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, पेट का फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी रोग, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिंडरी और उदर इनमें पीड़ा का होना इत्यादि सर्व रोग दूर होवें। इस मोदक को

अभयादिमोदक कहते हैं। इस अभयादिमोदक का निरन्तर सेवन करने से पलित (सफेद बालों का हो जाना) दूर हो अर्थात् सफेद बाल काले हो जावें तथा यह मोदक उत्तम रसायन है।।२७-३४।।

दस्तों का सहायकर्ता उपचार

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ।
सुगन्धि किंचिदाघ्राय तांबूलं शीलयेन्नरः ।।३५।।

अर्थ–मनुष्य को दस्त की औषध देकर पश्चात् उस प्राणी के नेत्र में शीतल जल से छींटे देवे और अतर पुष्प आदि सुगन्धित वस्तु सुँघावे। तथा पान का बीड़ा बनाकर खावे। ये योग करने से उत्तम प्रकार के दस्त होते हैं।।३५।।

दस्त होने पर किस प्रकार रहना चाहिये

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा ।
शीताम्बु न स्पृशेत् क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ।।३६।।

अर्थ–दस्त होने के उपरान्त हवा में न बैठे, अधोवायु मल मूत्र इत्यादिकों के वेग (हाजत) को न रोके, सोवे नहीं, शीतल जल को छुवे नहीं तथा दस्तों में गरम जल बारम्बार पिया करे तो उत्तम जुलाब होवे। (परन्तु अभयादिमोदक पर गरम जल न पीवे)।।३६।।

दस्तों में जो पदार्थ निकलते हैं

बलासौषध-पित्तानि वायुर्वाति यथा व्रजेत् ।
रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ।।३७।।

अर्थ–वमन (ओंकारी) की औषध पीने से कफ और पी हुई औषध, पित्त और वादी ये पदार्थ जैसे वमन के होने से बाहर निकलते हैं, उसी प्रकार दस्तकारी औषध पीने से मल, पित्त, पी हुई औषध और कफ ये पदार्थ दस्त के गुदा के साथ मार्ग होकर बाहर निकलते हैं।।३७।।

उत्तम दस्त न होने से उपद्रव

दुर्विरक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता । पुरीषवातसंगश्च कण्डूमण्डलगौरवम्।।३८।। विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ।

अर्थ–दस्त उत्तम न होने से नाभि में स्तब्धता, पसलियों में शूल, मल और अधोवायु की अप्रवृत्ति, शरीर में खुजली तथा चकत्ते ये उत्पन्न हों और अंग का भारीपना, दाह, अरुचि, पेट फूलना, भ्रम तथा वमन ये उपद्रव होते हैं।।३८।।

उत्तम जुलाब न होने पर उपचार

तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ।।३९।।
तेनास्योपद्रवा यांति दीप्तोऽग्निर्लघुता भवेत् ।

अर्थ–जिस मनुष्य को उत्तमदस्त न हुए हों उसको आरग्वधादि क्वाथ का पाचन देकर आमको पचावे फिर उसको स्नेहपान करावे अर्थात् घी पिलाके उसके कोठे को स्निग्ध (चिकना करके फिर जुल्लाब देवे तो उसके सम्पूर्ण उपद्रव दूर होकर जठराग्नि प्रदीप्त हो और देह की हलकी होवे।।३९।।

अत्यन्त दस्त होने से उपद्रव

विरेकस्यातिरोगेण मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ।।४०।।
शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसंनिभम् ।
मेदोनिभं जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते ।।४१।।

अर्थ–मनुष्य को अत्यन्त दस्त होने से मूर्च्छा, गूदा में पीड़ा, शूल, कफ का अत्यन्त गिरनामांस के धोवन के जलसमान, मेद के समान तथा पानी के समान गुदा के रास्ते से रुधिर गिरे ये उपद्रव होते हैं।।४०–४१।।

अत्यन्तदस्तजन्य उपद्रवों का यत्न

तस्य शीतांबुभिः सिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ।
मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ।।४२।।

अर्थ–अत्यन्त दस्त होने से मनुष्य के देह पर शीतल जल को छिडके, उसी प्रकार शीतल चावलों के धोवन में शहद मिलाय के पीने को देवे अथवा हलकी वमन करावे।।४२।।

दस्त बन्द करने को औषधि

सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ।
पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ।।४३।।

अर्थ–आम की छाल को गौ के दही में अथवा सौबीरे में पीसके कल्क करे उस कल्क को नाभि के ऊपर लेप करे तो दस्त होते हुए बन्द होवे।।४३।।

दस्त रोकने के यत्न

अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैष्किरं हारिणं तथा । शालिभिः षष्टिकः
स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ।।४४।। शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः
कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ।

अर्थ–दस्त बन्द होने के वास्ते बकरी का दूध पीवे अथवा विष्किर पक्षियों का मांसरस तथा हरिण के मांस का रस सांठी के चावलों के साथ अथवा मसूर के साथ खावे। और विलायती अनार, आदिशब्द से शीतल और ग्राहक ऐसे पदार्थों का सेवन करे तो दस्तों का होना बन्द हो जावे।।४४।।

उत्तम दस्त होने के लक्षण

लाघवे मनसस्तुष्ट्यामनुलोमे गतेऽनिले ।
सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ।।४५।।

अर्थ–जिस प्राणी का देह दस्त होने से हलका हो गया हो चित्त में प्रसन्नता तथा वायु का स्वस्थानमें गमन इतने लक्षण होने से उस मनुष्य को उत्तम जुलाब हुआ जानना। इसको रात्रि के समय पाचन औषधि देनी चाहिये।।४५।।

विरेचन करने के गुण

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तता ।
धातुस्थैर्यं वयः स्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ।।४६।।

अर्थ–जुलाब लेने से इन्द्रियों में बल आवे, बुद्धि प्रसन्न रहे, जठराग्नि प्रदीप्त होवे, धातु और अवस्था इनमें स्थिरता हो।।४६।।

दस्त में वर्जित पदार्थ

प्रवातसेवा शीतांबु स्नेहाभ्यङ्गमजीर्णताम् ।
व्यायाममैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥४७॥

अर्थ–दस्त होने के बाद अत्यन्त पवन नहीं खानी चाहिये, शीतल जल, तेल की मालिश, अजीर्ण, परिश्रम और मैथुन इनका सेवन न करे॥४७॥

शालिषष्टिकमुद्‌गाद्यैर्यवागूं भोजयेत् कृताम् ।
जांगलैर्विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥४८॥

इति श्रीशाङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोध्यायः ॥४॥

अर्थ–दस्त होने के पश्चात् पथ्य में सांठी के चावल और मूंग आदि धान्यो की यवाँगू करके सेवन करे तथा जंगली हरिणादि जीवों के मांस का रस अथवा विष्किर पक्षी और मुरगा इत्यादिकों के मास का रस इसके साथ चावलों का भात खाना चाहिये॥४८॥

इति श्रीशाङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत-
भावप्रकाशिकाहिन्दीटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ५

वस्ति की विधि

वस्तिर्द्विधानुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् । वस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्वस्तिरिरिति स्मृतः ॥१॥ यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः । कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥२॥

अर्थ–अण्डकोशशादि करके जो गुदा में पिचकारी मारते हैं उस प्रयोग को वस्ति कहते हैं वह वस्ति अनुवासन और निरूह इन भेदों करके दो प्रकार की है। जिनमें घी और तेल इत्यादिक स्नेह करके जो पिचकारी मारते हैं उसको अनुवासन वस्ति कहते हैं और काढा दूध तेल इनको एकत्र करके जो पिचकारी मारते हैं उसको निरूहवस्ति कहते हैं॥२॥

अनुवासन वस्ति

तत्रानुवासनाख्यो हि वस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते । पूर्वमेव ततो वस्तिनिरूहाख्यो भविष्यति ॥३॥ निरुहादुत्तरं चैव वस्तिः स्यादुत्तराभिधः । अनुवासनभेदैश्च मात्रावस्तिरुदीरितः ॥४॥ पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्धापि वा भवेत् ।

अर्थ–अनुवासन और निरूह इन दोनों वस्तियों में प्रथम अनुवासन नामक वस्ति को कहकर फिर निरूहवस्ति तथा उत्तरवस्ति कहेंगे। तथा उस अनुवासनवस्तिया भेद मात्रावस्ति है, उस मात्रावस्ति के स्नेहादिककी मात्रा दो अथवा एक पल की जाननी। इस प्रकार वस्ति के चार भेद हैं॥३–४॥

अनुवासनवस्ति के योग्य रोगी

अनुवास्येस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥५॥

अर्थ–रूक्ष कहिये स्नेहपानरहित और प्रदीप्त है अग्नि जिसकी तथा केवल वातरोगी इस प्रकार के मनुष्य अनुवासनवस्ति के योग्य जानने चाहिये॥५॥

अनुवामन के अयोग्य

नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ।

अस्थाप्या नानुवास्या स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥६॥

शोक–मूर्च्छाऽरुचि–भय–श्वास–कास–क्षयातुराः ।

अर्थ–कुष्ठी, प्रमेही, स्थूल, उदरी अर्थात् उदररोगी ये अनुवासन के योग्य नहीं हैं। अजीर्ण उन्माद प्यास शोक मूर्च्छा अरुचि भय श्वास खांसी और क्षय इन रोगों करके पीडित मनुष्य निरूहवस्ति के योग्य हैं। उनकी अनुवासनवस्ति में योजना न करे॥६॥

वस्तिका मुख बनाने की सुवर्णादिकी नली

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥७॥

नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ।

अर्थ–नेत्र अर्थात गुदा में पिचकारी मारने की नली वह सुवर्णादि धातु वा नरसल हाथीदांत सींग के अग्रभाग विल्लोर अथवा सूर्यकान्तादि मणिकी बनानी चाहिये॥७॥

रोगी की अवस्थानुसार नली का प्रमाण

एकवर्षात्तु षडवर्षं यावन्मानं षडङ्गुलम् ॥८॥

ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतम् ।

ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥९॥

अर्थ–वस्ति की नली एक वर्ष से लेकर छः वर्ष पर्यन्त छः अंगुल लंबी तथा वर्ष से लेकर बारह वर्ष पर्यन्त आठ अगुल की नली बनवावे एवं बारह वर्ष से उपरान्त नली बारह अंगुल की लंबी बनाना चाहिये॥८॥९॥

नली के छिद्र का प्रमाण

मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिसन्निभम् । यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ॥१०॥ आतुरांगुष्ठमानेन मूलं स्थूलं विधीयते । कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥११॥ तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् । योजयेत्तत्र वस्तिं च बन्धद्वय–विधानतः ॥१२॥

अर्थ–छः अंगुलवाली नली का छिद्र (छेद) मूंग के दाने के प्रमाण करे और जो आठ अंगुल की नली है उसमें मटर के समान छिद्र करे। बारह अंगुलवाली नली में बेर की गुठली के समान छिद्र करना चाहिये। इस क्रम करके नली के छिद्र करने चाहिये। वह नली चिकनी होकर गौ की पुच्छ के समान अर्थात् ऊपर से नीचे से छोटी और बीच में मोटी बनावे। तथा उस नली का मूल रोगी के अँगूठे के प्रमाण मोटा करना चाहिये और अग्रभाग में कनिष्ठिका (छोटी उँगली) के प्रमाण मोटी होकर उसका मुख गोल करना चाहिये। उस नली के तीन भाग त्याग के चतुर्थ भाग की जड़ में दो

कर्णिका कमलपत्र के समान करके हरिणादिकों के अंड की वस्ति उस जगह लगाके उन कर्णिकाओं से वस्ति को बाँध के संधि मिला देवे।। १०-१२।।

वस्ति किसके अण्डे की होनी चाहिये

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।
मत्रकोशस्य वस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः ।।१३।।
कषायरक्तः सुमृदुर्वास्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

अर्थ-हरिण, बकरा, सूकर, बैल अथवा भैंसा इनके अंड की वस्ति बनानी चाहिये। यदि इनके अण्डकोश न मिले तो हरिणादिकों के चमड़े की बनावे और वह वस्ति बबूल इत्यादिक के छाल के काढे में रँगी हुई होकर नरम चिकनी तथा दृढ होनी चाहिये।। १३।।

व्रणवस्ति का प्रमाण

व्रणवस्तेस्तु नेत्र स्याच्छ्लक्ष्णमष्टाङ्गुलोन्मितम् ।।१४।।
मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च ।

अर्थ-व्रणविषय में जो नली लगाई जाती है उसकी नली आठ अंगुल प्रमाण लंबी चिकनी तथा उसका छिद्र मूँग के समान तथा गीध के पांख की जितनी नली होती है इतनी मोटी हो, इस प्रकार व्रणवस्ति की नली जाननी चाहिये।। १४।।

वस्ति के गुण

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ।
कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः ।।१५।।

अर्थ-वस्ति को उत्तम प्रकार से सेवन करने से शरीर की वृद्धि काति बल आरोग्य तथा आयुष्य की वृद्धि ये गुण उत्पन्न होते हैं।। १५।।

वस्ति के सेवन का काल

दिवसान्ते वसन्ते च स्नेहवस्तिः प्रदीयते ।।१६।। ग्रीष्मवर्षा-शरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् । न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासयेत् ।।१७।। मदं मूर्छां च जनयेद्द्विधा स्नेहः प्रयोजितः । रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हीयते ।।१८।।

अर्थ-वसंत ऋतु में स्नेहवस्ति सायंकाल में देवे, ग्रीष्मऋतु और वर्षाऋतु, शरद ऋतु इनमें रात्रि के समय देवे। रोगी को अत्यन्त स्निग्ध भोजन कराके अनुवासन वस्तिका प्रयोग न करे तो मद मूर्च्छा ये उत्पन्न होती हैं। एवं अत्यन्त रूक्ष भोजन कराके यदि वस्तिकर्म करे तो बल तथा कांति इनकी हानि होती है।। १६-१८।।

वस्ति में हीनमात्रा अतिमात्रा का फल

हीनमात्रावुभौ वस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ ।
अतिमात्रौ तथाऽऽनाहक्लमातीसारकारकौ ।।१९।।

अर्थ-अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति इनमें अल्पमात्रा होने से उसके द्वारा अत्यन्त कार्य नहीं होता अर्थात् रोग भले प्रकार दूर नहीं होता और यदि अनुवासन और निरूह की अतिमात्र

हो जावे तो आनाह, ग्लानि और अतिसार ये रोग उत्पन्न होते हैं।।१९।।

उत्तमादि मात्रा

उत्तमस्य पलैः षडभिर्मध्यमस्यपलैस्त्रिभिः ।
पलाद्यर्धेन हीनस्य युक्ता मात्राऽनुवासने ।।२०।।

अर्थ–उत्तम बलवाले प्राणियों को अनुवासनवस्ति में छः पल की मात्रा, मध्यमबली जो मनुष्य हैं उनकी तीन पल और हीनबल जो मनुष्य हैं उनको मात्रा १ पल की जाननी चाहिये।।२०।।

स्नेहादिक में सैंधवादिक का मान

शताह्वासैन्धवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ।
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याः षट्चतुर्द्वयमाषकैः ।।२१।।

अर्थ–सौंफ और सैंधानमक इनका चूर्ण अनुवासनवस्ति में देने की मात्रा छः मासे उत्तम है और चार मासे की मध्यम और दो मासे की कनिष्ठ मात्रा जाननी। इस प्रकार मात्रा का क्रम जानना।।२१।।

दस्त देने के पश्चात् अनुवासन वस्ति देने का प्रकार

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ।
भुक्तान्ना नवास्याय वस्तिर्देयोऽनुवासनः ।।२२।।

अर्थ–मनुष्य को दस्त करावे जब सात दिन व्यतीत हो जावें और देह में पुरुषार्थ आ जावे तब उसको भोजन कराके अनुवासन नामक वस्ति के योग्य प्राणी को अनुवासन वस्ति देवे।।२२।।

वस्ति देने की विधि

अथानुवास्यं स्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितं शनैः । भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ।।२३।। उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहवस्तिना । सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः ।।२४।। कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धगुदे न्यसेत् । बद्ध्वा वस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् ।।२५।। पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यवेगेन धीरधीः । जृम्भाकासक्षयादींश्च वस्तिकाले न कारयेत् ।।२६।।

अर्थ–अनुवासनवस्ति के योग्य मनुष्य के देह में तेल लगाकर गरम जल से देह से हलके पसीने निकालकर उसको यथाशास्त्र भोजन कराकर फिर उसको इधर उधर फिराके तथा मल मूत्र की इच्छा हो तो उससे निवृत करके, यदि अधोवायु त्यागने की इच्छा हो तो उसको त्याग कराके वस्तिकर्म करे उसको बाई करवट सुलाके बाँया पैर पसरवा देवे। और दाहिने पैरको सकोड़के फिर गुँदा को स्निग्धकर वस्ति के मुखपरे डोरे से बांध उस नली को गुदा के ऊपर धरे तथा कुशल वैद्य उस नली को बांये हाथ में रख के दहिने हाथ से मध्यम वेग करके उसमें पिचकारी देवे अर्थात् पिचकारी मारे तथा वस्ति के समय जंभाई, खांसना तथा छीकना आदि ये रोगी को नहीं करने चाहिये।।२३–२६।।

पिचकारी मारने में काल

शिशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो वस्तेस्तु पीडने ।
ततः प्राणिहितः स्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत् ।।२७।।

अर्थ-पिचकारी मारने में तीस मात्रा पर्यंत काल जानना। फिर स्नेह भीतर पहुँचने पर १०० अंक जितनी देर में बोले जावे इतनी देर तक उस रोगी को चित्त लेटे रहने देवे। मात्रा का प्रमाण आगे के श्लोक में लिखा है।।२७।।

कितनी काल की मात्रा होती है।

जानमण्डलमावेष्टच कुर्याच्छोटिकया युतम् ।
एकमात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष विनिश्चयः ।।२८।।

अर्थ-घुटने पर हाथ फिराकर चुटकी बजावे इतने काल की एक मात्रा जाननी। ऐसा निश्चय सर्वत्र जानना।।२८।।

पिचकारी मारने के अनन्तर क्रिया

प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीर्यं प्रसर्पति । तालयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारांश्च शनैः शनैः ।।९।। स्फिजोश्चैवं ततः श्रोणीं शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः । जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रांयथा सुखम् ।।३०।।

अर्थ-पिचकारी मारने पर रोगी के हाथ पैर संपूर्ण अंग ढीले छोड़ के लंबे करे, ऐसा करने से रसादिधातु अपने २ स्थान पर जाती है। तथा रोगी के हाथ पैर के तल में ती वार हलकी २ ताली मारे। उसी प्रकार कुल में तथा कटि के पश्चात् भाग में तीन बार ताली मारके उस रोगी को पलँग पर बैठा देवे। इस प्रकार की विधि होने के पश्चात् रोगी को स्वस्थतापूर्वक यथासुख शयन करावे।।२९।।३०।।

उत्तमवस्तिकर्म के गुण

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ।
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ।।३१।।

अर्थ-गुदा के भीतर गया हुआ तैल वायु और मल के साथ मिलकर उपद्रवरहित तत्काल बाहर निकले तो उस मनुष्य को वस्तिकर्म उत्तम हुआ जानना चाहिये।।३१।।

स्नेह का विकार दूर होने में यत्न

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः लघ्वन्नं भोजयेत् कामं दीप्ताग्निस्तु नरो यदि ।।३२।। अनुवासिताय देयं स्यादितरेऽह्नि सुखोदकम् । धान्यशुण्ठीकषायो वा स्नेहव्यापत्ति-नाशनम् ।।३३।।

अर्थ-गुदा के द्वारा स्नेह निःशेष बाहर आ जाने से उस मनुष्य की अग्नि यदि प्रदीप्त होवे तो उसको सायंकाल में पुराने अन्न नित्य के आहर की अपेक्षा न्यून भोजन को देवे और अनुवासित मनुष्य को दूसरे दिन सुखोदक दे अर्थात् गरम जल पीने को देवे अथवा धनिया और सोंठ इनका काढा करके दे तो स्नेह का विकार दूर होवे।।३२।।३३।।

वातादिक में पिचकारी मारने का प्रमाण

अनेन विधिना षड्वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ।
विधेया वस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥३४॥

अर्थ—पूर्वोक्त विधि करके वातादिक दोषों में छः बार सात बार आठ बार अथवा नौ बार पिचकारी मारे। फिर उस पिचकारी मारने के पश्चात् निरूहणवस्ति की योजना करे॥३४॥

वस्ति के क्रम से गुण

दत्तस्तु प्रथमो वस्तिः स्नेहयेद्वस्तिवंक्षणै: । सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥३५॥ बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः । चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥३६॥ षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च । अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥३७॥ एवं शुक्रगतान्दोषान् द्विगुणः साधु साधयेत् । अष्टादशाष्टदशकान्वस्तीनां यो निषेवते ॥३८॥ स कुञ्जरबलोऽप्यश्वं जयेत्तुल्योऽमरप्रभः ।

अर्थ—प्रथम पिचकारी मारने से वह वस्ति और वंक्षण अर्थात् अंडों की सन्धि द्वारा शरीर में स्नेहन करे अर्थात् धातु बढ़ावे। दूसरी पिचकारी देने से मस्तक की वायु दूर हो। तीसरी पिचकारी मारने से शरीर में बल और कांति आवे। चौथी और पांचवीं पिचकारी मारने से रस और रुधिर इनकी वृद्धि होवे। छठी और सातवीं पिचकारी मारने से मांस और मेदा में चिकनाई आवे और आठवीं और नौवी पिचकारी मारने से मज्जा तथा श्लोक में जो चकार है उस करके शुक्र धातु में स्निग्धता हो। इस प्रकार अठारह पिचकारी देने से शुक्रधातुगत जो दोष हो उनका नाश हो एवं जो प्राणी छत्तीस पिचकारी सेवन करता है उसमें हाथी के समान बल आकर वेग में घोड़े को जीतता है तथा देवता के समान कान्तिवाला होता है॥३५-३८॥

अनुवासनवस्ति तथा निरूहणवस्ति ये किसको देवे

रूक्षाय बहुवातायं स्नेहवस्तिर्दिने दिने ॥३९॥ दद्याद्वैद्यस्तथा-ऽन्येषामन्यां बाधामपाहरेत् । स्नेहोऽल्पमात्रो रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः ॥४०॥ तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते ।

अर्थ—रूक्ष होकर जो अत्यन्त वादी करके पीडित हो उसको वैद्य प्रतिदिन (नित्य) स्नेह वस्ति देवे, दूसरों को अर्थात् स्थूलादिक मनुष्यों को विरूहबस्ति नित्यप्रति देवे तो वादी का रोग दूर हो। रूक्ष पुरुष के स्नेह की हलकी पिचकारी मारनी चाहिये और इस क्रिया को निरन्तर करना ठीक है और स्निग्ध मनुष्य के निरूहण वति थोड़ी देवे॥३९॥४०॥

केवल तैल गुदा के बाहर आवे उसका यत्न

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः ॥४१॥
तस्यान्योऽल्पतरो देयो न हि स्निग्धस्य तिष्ठति ।

अर्थ—स्निग्ध मनुष्य के गुदा के द्वारा पिचकारी मारने के उपरान्त तत्काल ही स्नेह बाहर निकले

हैं ठहरे नहीं इस कारण स्नेहवस्ति देकर तत्काल निरूहवस्ति देवे। इस प्रकार पलट कर दोनों प्रकार की वस्ति देवे।।४१।।

तैल बाहर न निकले उसके उपद्रव और यत्न

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ।।४२।। तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते । पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ।।४३।। तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्तिर्हिता तथा । यथानुलोमनं वायुर्मलं स्नेहश्च जायते ।।४४।। तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं न शस्यते ।

अर्थ–वमन विरेचन इत्यादिक करके जिस मनुष्य की शुद्धि नहीं की उसकी गुदा के द्वारा यदि मलमिश्रित स्नेह बाहर नहीं आया होवे तो शरीर का शिथिलपना, पेट का फूलना, शूल, श्वास और पक्वाशय में भारीपना ये उपद्रव होते हैं। इनके दूर करने की तीक्ष्ण निरूहवस्ति देवे। इस प्रकार तीक्ष्ण औषधों करके मिली फलवर्ती जिससे वायु अधोगामी होकर मलमिश्रित स्नेह गुदा के द्वारा बाहर आवे इस प्रकार देवे। तथा तीक्ष्ण जुल्लाब तथा नस्य देनी चाहिये।।४२।।४४।।

स्नेहवस्ति जिसको उपद्रव न करे उसका विधान

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहवस्तिरनिस्सृतः ।।४५।।
सर्वोऽल्पो वाऽऽवृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्यः स विजानता ।

अर्थ–जिस मनुष्य के स्नेह की पिचकारी गुदा में मारने के पश्चात् गुदा का सम्पूर्ण भाग आवृत्त अर्थात् व्याप्त होकर रहने से अथवा मनुष्य के रूक्षता के कारण गुदा के एक देश में व्याप्त होकर रहने से शूलादिक उपद्रव नहीं करे उसको बहुतकाल पर्यन्त रहने देवे।।४५।।

अहोरात्र में भी जिसके तैल बाहर न निकले उसका यत्न

अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ।।४६।।
स्नेहवस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ।

अर्थ–जो स्नेह दिनरात्रि में भी बाहर न आवे उसको जुल्लाब देकर बाहर निकाले स्नेह की पिचकारी मारने से स्नेह बाहर न आवे तो उसके दो बार स्नेह की पिचकारी नहीं देने चाहिये।।४६।।

कुष्ठक्रमुककल्कं तु पाययेच्चाम्लसंयुतम् ।।४७।।
औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्च सात्म्याच्च वस्तिः सोऽस्यानुलोमयेत् ।
गोमूत्रेण त्रिवृत्पथ्याकल्कं मात्रानुलोमनम् ।।४८।।

अर्थ–उसे कुष्ठ क्रमुक इमली आदि पिलाने से अनुलोमन हो जाता है। अथवा गोमूत्र के साथ निसोथ या हरड के कल्क का प्रयोग हित है।।४७।।४८।।

अनुवासन तैल

गुडूच्येरंडपूतीकभार्ङ्गी वृषकरोहिषम् । शतावरी सहचरं काकनासा पलोन्मितम्।।४९।। यव–माषातसी–कोल–कुलित्थान्प्रसृतोन्मितान् । चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ।।५०।।पचेत्तैलाढके पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः । अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ।।५१।।

अर्थ–१ गिलोय, २ अरण्ड की जड़, ३ करंजकी छाल, ४ भारंगी, ५ अडूसा, ६ रोहिषतृण, ७ शतावर, ८ पियावासा और ९ काकनासा (कौआठोडी) ये नौ औषध एक एक पल प्रमाण लेवे। १ जौ, २ उडद, ३ अलसी, ४ बेर की गुठली तथा ५ कुलथी ये पांच औषध दो दो पल लेवे। इन सब औषधों को जवकूट करके उसमें जल ४ द्रोण डाल के औटावे। जब एक द्रोण मात्र जल शेष रहे तब उतारके छान ले। फिर इसमें तिल्ली का एक तल एक आढक डाल के तथा जीवनीयगण की औषध एक एक पल प्रमाण लेके बारीक चूर्ण करके उसे तेल में डाल के फिर औटावे। जब काढा जलकर तेलमात्र शेष रहे तब उतारके तेल को किसी पात्र में भरके धर रखे। इसको अनुवासन तेल कहते हैं। यह तेल संपूर्ण वादी के रोगों को दूर करता है।।४९–५१।।

अनुवासनवस्ति के विपरीत होने से जो रोग होवें उनकी चिकित्सा

षट्सप्ततिव्यापदस्तु जायन्ते वस्तिकर्मणः ।
दूषितात्समुदायेन ताश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ।।५२।।

अर्थ–वस्तिकर्म में दोषरूप कुछ भी विपरीतता होने से छिहत्तर प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं, उनकी चिकित्सा सुश्रुत ग्रन्थ में कही है उस क्रम से करनी चाहिये।।५२।।

वस्तिकर्म में पथ्य

पानाहारविहारश्च परिहारश्च कृत्स्नशः ।
स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ।।५३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिः पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अर्थ–अन्न पान और विहारादिक इनके आचरण जैसे स्नेहपान प्रकरण में कहे हैं उसी प्रकार संपूर्ण कार्य इस स्नेहवस्ति करे इसमें विचार न करे।।५३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभाव-
प्रकाशितहिन्दीटीकायां स्नेहविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ।।५।।

अथ षष्ठोऽध्यायः ६

निरूहवस्ती का विधान

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणान्तरैः ।
तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ।

अर्थ–निरूहवस्ति कारणभेद करके अनेक प्रकार की होती है और नेत्र से २ कारणों के नाम हैं उसी २ प्रकार से उसके नाम होते हैं। उदाहरण जैसे–उत्क्लेशनवस्ति, दोषहरवस्ति, दोषशमनवस्ति इत्यादिक ।।१।।

निरूहवस्ती का दूसरा नाम

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ।।२।।

अर्थ–निरूहवस्ती का दूसरा नाम आस्थापन जानना। दोष तथा रसादिक धातु इनको अपने

स्थान पर बसाती है इसीसे इसको आस्थापन कहते हैं। वातादिक दोष अथवा रोग इनको दूर करती है इसीसे इसको निरूह कहते हैं।।२।।

निरूहवस्ति में काढे आदि का प्रमाण

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थः पादोत्तरं मतम् ।
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ।।३।।

अर्थ–निरूहवस्ति देने में कषायादिकों का प्रमाण सवा प्रस्थ उत्तम, एक प्रस्थ मध्यम और तीन कुडव कनिष्ठ जानना चाहिये।।३।।

निरूह वस्ती में अयोग्य मनुष्य

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौ क्षतोरस्कः कृशस्तथा । आध्मानच्छ-र्दिहिक्कार्शः कासश्वासप्रपीडितः ।।४।। गुदशोफातिसारार्तो विषूची–कुष्ठसंयुतः । गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ।।५।।

अर्थ–अत्यंत स्निग्ध ऊर्ध्वगामी है, दोष जिसके वह और उरःक्षत करके पीड़ित, कृश, पेट का फूलना, उलटी, हिचकी, बवासीर, खांसी, श्वास इन करके पीडित, गुदा में पीड़ा, सूजन, अतिसार, विषूचिका और कुष्ठ इन करके पीडित, गर्भिणी स्त्री, मधुप्रमेहवाला, जलंधरवाला इतने रोगी आस्थापन (निरूहवस्ती) के योग्य नहीं है।।४।।५।।

निरूहवस्ती में योग्य प्राणी

वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे । मूर्च्छा तृष्णोदरानाह मूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च।।६।। वृद्धासुग्धरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम्। शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः ।।७।।

अर्थ–वातरोग, उदावर्तरोग, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्छा, प्यास, उदर आनाह रोग, मूत्रकृच्छ्र, पथरोग, बहुत दिन का रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग ये रोग निरूहवस्ती के योग्य जानने चाहिये।।६।।७।।

निरूहवस्ती के देने का प्रकार

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं स्निग्धस्विन्नमभोजितम् । मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ।।८।। स्नेहवस्ति विधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्।जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः ।।९।। तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं च निरूहगमनेच्छया । अनायातं मुहूर्ते तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ।।१०।।

अर्थ–जो मलमूत्रादिक त्याग चुका हो, स्निग्ध, जिसका पसीना निकाल चुका हो, जिसने भोजन न किया हो ऐसे मनुष्य को दुपहर के समय घर के बीच योग्यता विचार स्नेहवस्ती विधान के अनुसार निरूहवस्ती देवे। और निरूहणवस्तीक कर्म होने के अनन्तर वह निरूह बाहर आने के लिये एक मुहूर्त (दो घड़ी) पर्यन्त घुटने ऊंचे कर बैठा रखे। यदि एक मुहूर्त्त में भी निरूह बाहर नहीं निकले तो उसको शोधन करके बाहर निकालने का यत्न करे।।८–१०।।

निरूह बाहर न आने पर उसके शोधन की औषधि

निरूहैरेव मतिमान् क्षारमूत्राम्लसैन्धवैः ।

अर्थ–निरूहवस्ति बाहर न निकलने पर जवाखार गोमूत्र नींबू का रस अथवा जंभीरी का रस और सैंधा नमक इन चार औषधियों को एकत्र करके गुदा में फिर निरूहवस्ती देवे तो निरूहवस्ती बाहर निकले।।

उत्तम निरूहवस्ती होने के लक्षण

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ।।११।।
लाघवं चोपजायेत सुनिरूहं तमादिशेत् ।

अर्थ–जिस मनुष्य को निरूहवस्ती दी है उसका मल पित्त कफ और वायु ये क्रम करके गुदा के रास्ते बाहर आकर शरीर में हलकापन आने से निरूहवस्ती का क्रम उत्तम हुआ जानना।।११।।

जिसको निरूहवस्ती उत्तम न हुई हो उसके लक्षण

यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः ।।१२।।
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान् दुर्निरूहं तमादिशेत् ।

अर्थ–निरूहवस्ती दी हो और उस वस्ती के बाहर आने का वेग अल्प होवे इसीसे मल और वायु ये जितने बाहर आने चाहिये उतने नहीं आवें और मूत्र के स्थान पर पीड़ा, शरीर का भारी होना तथा अरुचि इतने लक्षण करके युक्त मनुष्य को निरूहवस्ती उत्तम नहीं हुई ऐसा जानना चाहिये।।१२।।

उत्तम निरूहवस्ती तथा स्नेहवस्ती के लक्षण

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।।१३।।
आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ।
अनेन विधिना युंज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ।।१४।।

अर्थ–रोगी के देह में हलकापन, मन की प्रसन्नता, चिकनापन तथा रोग का नाश ये उत्तम आस्थापन स्नेहवस्ती के लक्षण जानने। इसी विधि से वस्तीकर्म जाननेवाला वैद्य निरूहवस्ती देवे।।१३।।१४।।

निरूहवस्ती कितनी बार देवे उसका प्रकार

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् । सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ।।१५।। कषायकटुरूक्षाद्याः कफे कौष्णास्त्रयो मताः । पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ।।१६।। निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ।

अर्थ–दो बार तीन बार अथवा चार बार जैसा दोष हो उसके अनुसार वैद्य निरूहवस्ति देवे। वादी के रोग में स्नेहयुक्त वस्ति एक बार देवे, पित्तरोग हो तो दुग्धयुक्त निरूहवस्ति दो बार देवे। तथा कफरोग हो तो कषाय कटु और रूक्ष इत्यादि पदार्थ एकत्र कर कुछ गरम करके तीन वार निरूहवस्ती देवे अर्थात् इन औषधों की तीन बार पिचकारी मारे अथवा पित्त और कफ वादी इन करके पीडित मनुष्य हो तो दूध, यूष, मांसरस इनकी क्रम करके निरूहवस्ति देवे, फिर अनुवासन वस्ति दे अर्थात् स्नेह की पिचकारी मारे।।१५।।१६।।

सुकुमार आदि मनुष्यों को निरूहवस्ति देना

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ।।१७।।
वस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी ।

अर्थ–सुकुमार (नाजुक) मनुष्य वृद्ध और बालक इनके हलकी पिचकारी मारे तथा इनके तीक्ष्ण वस्ति देने से इनके बल का और आयु का नाश होता है इसी से सुकुमार आदि को तीक्ष्ण वस्ति न देवे।।१७।।

आदि, मध्य और अन्त में वस्ति का देना

दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ।।१८।।
पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ।

अर्थ–प्रथम दोषों को उत्क्लेशित करनेवाली औषधियों की वस्ति देवे तथा मध्य में दोषनाशक औषधों की वस्ति दे और अन्त में संशमनीय अर्थात् अपने २ स्वस्थान में दोष बैठ जावे ऐसी वस्ति दे अर्थात् ऐसी औषधों की पिचकारी मारे।।१८।।

उत्क्लेशन वस्ति

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैन्धवं वचा ।।१९।।
हपुषाफलकल्कश्च वस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः ।

अर्थ–१ अरंडी के बीज, २ महुआ के फल, ३ पीपल, ४ सैंधानमक, ५ वच और ६ हाऊबेर के पत्ते और मैनफल ये औषध समान भाग ले कुट के कल्क करे, फिर दोषों को उत्क्लेशित करने के लिये वह उत्क्लेशन वस्ति देवे।।१९।।

दोषहर वस्ति

शताह्वा मधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ।।२०।।
सकांजिकः सगोमूत्रो वस्तिर्दोषहरः स्मृतः ।

अर्थ–१ सौबा, २ मुलहटी, ३ बेलमिरी और ४ इन्द्रजौ ये चार औषध समान भाग लेकर कांजी में बारीक पीसकर और इसमें गोमूत्र मिलाकर गुदा में पिचकारी मारे तो वातादिक दोषों का शमन होवे। इसको दोषहर वस्ति कहते हैं।।२०।।

शोधनवस्ति

शोधनद्रव्यनिक्वाथैस्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः ।।२१।।
युक्त्या खजेन मथिता वस्तयः शोधनाः स्मृताः ।

अर्थ–निशोथादिक शोधन द्रव्यों के काढ़े करके और उन्हीं शोधनद्रव्यों का कल्क करे तथा सैंधानमक उस काढे में मिलाकर युक्ति से मथानी द्वारा मथ देवे, फिर दोषों के शोधन करने को इसकी वस्ति देवे।।२१।।

दोषशमनवस्ति

प्रियंगुर्मधुको मुस्ता तथैव च रसांजनम् ।।२२।।
सक्षीरः शस्यते वस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ।

अर्थ–१ फूलप्रियंगु, २ महुआ के फल, ३ नागरमोथा और ४ रसौत इन चार औषधों को समान भाग लेकर दूध में बारीक पीस दोष शमन होने के अर्थ वस्ति देवे अर्थात् पिचकारी मारे ।।२२।।

लेखनवस्ति

त्रिफलाक्वाथ–गोमूत्र–क्षौद्र–क्षारसमायुताः ॥२३॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ।

अर्थ–त्रिफले के काढे में गोमूत्र, शहद और जवाखार मिलावे तथा ऊषकादिक गण की औषधों का चूर्ण मिलाके वस्ति देने को लेखन (कहिये मेदोरोगादिकों का जो कृशीकरण) वस्ति कहते हैं॥२३॥

बृंहणवस्ति

बृंहणद्रव्यनिक्वाथः कल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥२४॥
सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणा मताः ।

अर्थ–मूसली गोखरू और कौंच के वीज इत्यादिक बृंहण अर्थात् धातुवर्धक द्रव्यों का काढा कर उसमें महुवे के पत्ते दाख और अनार इत्यादिक मधुर द्रव्यों का कल्क घी और मांसरस इन सबको डाल के बृंहण होने के वास्ते वस्ति कहते हैं॥२४॥

पिच्छिल वस्ति

बदर्यैरावती -शेलु–शाल्मली–धन्वनागराः ॥२५॥ क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः । अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः ॥२६॥ मात्रा पिच्छिलवस्तीनां पलैर्द्वा-दशभिर्मता ।

अर्थ–१ बैर की छाल, २ नारंगी, ३ गोदी की छाल, ४ सेमर की छाल, ५ धमासा और ६ सोंठ ये छः औषध समान भाग लेके दूध में पीस उसमें बकरा मेंढा और हरिण इनका रुधिर मिलाके कुशल वैद्य दोष पहले होने के वास्ते इसकी वस्ति देवे। इस वस्ति को पिच्छिलवस्ति कहते हैं। इस वस्ती की मात्रा का प्रमाण बारह पल है॥२५॥२६॥

निरूहणवस्ति

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुना प्रसृतिद्वयम् ॥२७॥ विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतिद्वयम् । एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् ॥२८॥ संमूर्च्छिते कषाये तु चतुःप्रसृतिसंमितम् । क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥२९॥ वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्पलम् । पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्य च पलत्रयम् ॥३०॥ कफे षट्पलिकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुष्पलम् ।

अर्थ–प्रथम सैंधानमक एक कर्ष प्रमाण तथा शहद दो प्रसृति अर्थात् चार पल इन दोनों का एकत्र मर्दन करे। फिर उसमें घी अथवा तेल छः पल डालके एकत्र मिला दे। तब उस कल्ककी जो औषधि कही हैं उनका कल्क करके उस पूर्वोक्त स्नेह में मिलावे अथवा उस कल्क की जो औषध औटाके काढाकर उस स्नेह में मिलावे। कुशल वैद्य इसकी निरूहवस्ति देवे अर्थात् गुदा में पिचकारी मारे। इसे निरूहवस्ति की साधारण विधि जाननी। विशेष विधि यदि वादी का रोग होवे तो चार पल शहद और स्नेह छः पल लेके एकत्र कर वस्ति देवे। पित्तरोग हो तो शहद ४ पल और स्नेह ३

पल एकत्र कर वस्ति देवे। तथा कफ रोग हो तो शहद छः पल तथा स्नेह चार पल इनको एकत्र करके वस्ति देवे॥२७॥३०॥

मधुतैलक वस्ति

एरण्डक्वाथतुल्यांशं मधुतैलं पलाष्टकम् ॥३१॥ शतपुष्पा-पलार्द्धेन सैन्धवार्धेन संयुतम् । मधुतैलकसंज्ञोऽयं वस्तिः खजविलोडितः ॥३२॥ मेदोगुल्मक्रिमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः । बलवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः ॥३३॥

अर्थ–अण्ड की जड़ का काढ़ा ८ पल और शहद तथा तेल ये चार चार पल एवं सौंफ और सैंधानमक आधे आधे पल ले, सबको एकत्र कर मथानी से मथ लेवे, इसको मधुतैलक वस्ति कहते हैं। यह बस्ति देने से मेदोरोग, गुल्मरोग, कृमिरोग, प्लीहा, मल और उदावर्त्त वायु इनका नाश हो। तथा यह बल कांति स्त्रीविषयप्रीति तथा धातुओं की वृद्धि इनको देती है और अग्नि को प्रदीप्त करती है॥३१॥३२॥

दीपनवस्ति

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतिर्भवेत् ।
हपुषा सैन्धवाक्षांशौ वस्तिः स्याद्दीपनः परः ॥३४॥

अर्थ–शहद, घी, तेल और दूध ये दो पल लेवे, हाऊबेर और सैंधानमक ये दोनों औषध कर्षमात्र ले बारीक पीस के उसे शहद, घी और दूध में भिगोके जठराग्नि प्रदीप्त होने के अर्थ वस्ति देवे॥३४॥

युक्तरथ वस्ति

एरंडमूलनिःक्वाथो मधुतैलं ससैन्धवम् ।
एष युक्तरथो वस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥३५॥

अर्थ–अरण्ड की जड़ का काढ़ा करके उसमें सहत और तेल डाले, तथा सैंधानमक वच, पीपल और मैनफल ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। उसको पूर्वोक्त काढ़े में मिला गुदा में पिचकारी देवे। इसको युक्तरथ बस्ति कहते हैं। यह वस्ति सर्व रोगों पर हित है॥३५॥

सिद्धवस्ति

पञ्चमूलस्य निःक्वाथस्तैलं मागधिका मधु ।
ससैन्धवः समधुकः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥३६॥

अर्थ–बृहत्पञ्चमूल का काढ़ा कर तेल पीपल का चूर्ण सहद सैंधानमक महुआ की लकड़ी के भीतर का गाभा अथवा मुलहटी ये सब उस काढ़े में डाल के वस्ति देवे। इसको सिद्धवस्ति कहते हैं। इसे सर्वरोगों पर देवे॥३६॥

वस्तिकर्म में पथ्यापथ्य

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नजीर्णताम् ।
वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहवस्तिवत् ॥३७॥

अर्थ–वस्तिकर्म किये हुए मनुष्य को गरम जल से स्नान करावे, दिन में सोने न दे, अजीर्ण न

होने देवें और आचरण स्नेह वस्ति के गरम जल से स्नेह वस्तिक समान करे, यह पथ्य है।।३७।।

इति श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतायां शार्ङ्गधरसंहिताया भावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां निरूहणवस्तिविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

उत्तरवस्तिका क्रम

अतः परं प्रवक्ष्यामि वस्तिमुत्तरसंज्ञितम् । द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ।।१।। मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ।

अर्थ–अब इसके उपरान्त उत्तरवस्ति का प्रमाण कहता हूं-बारह अंगुल लंबी नली हो, नली का मध्य भाग कमलपुत्र की कर्णिका के समान होना चाहिये और वह नली मालती के फूल के डंठर के समान मोटी हो, उसके छिद्र में एक सरसों चली जावे इतना बड़ा होना चाहिये।।१।।

उत्तरवस्ति की योजना कैसे करे

पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ।।२।।

तदूर्ध्वं पलमानं च स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ।

अर्थ–मनुष्य की अवस्था पच्चीस वर्ष होने पर्यन्त विचक्षण वैद्य वस्ति में स्नेह की मात्रा दो कर्ष योजना करे। पच्चीस वर्ष के पश्चात् १ पल देवे।।२।।

उत्तरवस्ति की योजना का प्रकार

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः ।।३।। स्थितस्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया । स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत् ।।४।। शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढरन्ध्रेऽङ्गुलानि षट् । ततोऽवपीडयेद्वस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ।।५।। ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ।

अर्थ–जो आस्थापन कहिये निरूहणवस्ति करके शुद्ध हुआ तथा स्नान और भोजन करके तृप्त हुआ है ऐसे मनुष्य को आसन पर घुटनों के बल बिठाकर यथायोग्य सचिक्कण सलाई देवे। उस नली पर घी लगाकर शिश्नमार्ग में योजना करके वस्ति का पीड़न करे अर्थात् पिचकारी मारे, फिर उस नली को धीरे धीरे बाहर निकाल लेवे। फिर उस स्नेह के बाहर आने से उत्तम वस्तिकर्म होता है। इस प्रकार स्नेहवस्ति का क्रम जानना चाहिये।।३-५।।

स्त्रियों के वस्ति देने की विधि

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् ।।६।।

मुद्गप्रवेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम् ।

द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ।।७।।

अर्थ–स्त्रियों के वस्ति देने के वास्ते नेत्र कहिये बस्ती की नली छोटी उँगली के बराबर मोटी

हो, वह दश अंगुल की लंबी तथा जिसमें मूँग चला जावे, इतना छिद्र होना चाहिये। उस नली को योनि के भीतर चार अंगुल प्रवेश करके फिर पिचकारी मारे। स्त्रियों के मूत्रमार्ग में बहुत बारीक नली लगाके उस नली के दो अंगुल मूत्रमार्ग में प्रवेश करके पिचकारी मारे।।६।।७।।

बालकों को वस्ति देने का प्रमाण

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निष्कंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रं विचक्षणैः ।।८।।

अर्थ–बालकों के मूत्रकृच्छ्रविकार होने से निष्कंप अर्थात् हाथ न हिले, इस प्रकार से बारीक नली की योजना करके धीरे धीरे उस नली को शिश्न के भीतर १ अंगुल प्रमाण प्रवेश करके पिचकारी मारे।।८।।

स्त्रियों के तथा बालक के वस्ति देने के स्नेह की मात्रा

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी । मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी ।।९।। उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वें विचक्षणः । अप्रत्यागच्छति भिषग्वस्तावुत्तर-संज्ञके ।।१०।।

अर्थ–स्त्रियों के योनिमार्ग में वस्ति देने में स्नेहमात्रा अर्थात् स्नेह का प्रमाण दो पल का जानना, स्त्रियों के मूत्रमार्ग में स्नेहमात्रा एक पल की जाननी। बालकों के दो कर्ष प्रमाण जाननी। उत्तरसंज्ञक वस्ति में कुशल वैद्य उस स्त्री को सीधी बैठाकर उसके घुटने के ऊपर को धर पिचकारी मारे, यदि स्नेह बाहर न आवे तो आगे लिखी विधि करे।।९।।१०।।

शोधनद्रव्यकरके वस्ति का विधान

भूयो वस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शरेधनैर्गुणैः । फलवर्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ।।११।। सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धा शोधनद्रव्यसंयुताम् । दह्यमाने तथा वस्तौ दद्याद्वस्तिं विचक्षणः ।।१२।। क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च । वस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः । हन्यादुत्तर-वस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित् ।।१३।।

अर्थ–फिर शोधन द्रव्य (एरंड दि तैलसमुदाथ) की योनिमार्ग में पिचकारी मारे अथवा एरंडबीजादिक जो औषधि हैं उनकी करडी बत्ती बनाके अथवा सूत की बत्ती कर उस बत्ती में अंडी आदि औषध लपेटकर योनि में योजना करे। वस्ति में दाह होने से गूलर बड (आदि शब्द से क्षीरवृक्ष) उसका काढ़ा करके वस्ति देवे अथवा शीतल दूध की वस्ति देवे तो वस्तिस्थान शुद्ध होवे। वह वस्ति शुक्रधातु सम्बन्धी जो पीड़ा होती है उसको तथा स्त्रियों के रजोदर्शन सम्बन्धी जो पीड़ा होती है उसको दूर करती है तथा जिन मनुष्यों के प्रमेह हैं उनको उत्तरवस्ति से कदाचित् लाभ नहीं होता।।११-१३।।

वस्तिकर्म के उत्तम होने के लक्षण

सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च ।
वस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहवस्तिना ।।१४।।

अर्थ–उत्तरसंज्ञक वस्ति उत्तम होने के लक्षण और दोष और उनकी शांति स्नेहवस्ति के समान जाननी चाहिये।।१४।।

गुदा में फलवर्त्ती की योजना

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसंनिभा ।
मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता ।।१५।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अर्थ–गुदा में घी लगाय के रोगी के अँगूठे के बराबर उत्तम करडी बत्ती करके एरंड बीजादिक रेचक औषधों को उस बत्ती पर लेप करके दस्त होने के वास्ते उसको गुदा में प्रवेश करे। इसको फलवर्त्ती कहते हैं।।१५।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृत भावप्रकाशिका
हिन्दीटीकायां सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अथ अष्टमोऽध्यायः ८

नस्यविधि

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् ।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ।।१।।

अर्थ–नाक में डालने की औषधों को नस्य कहते हैं। उस नस्य के नावन और नस्यकर्म ऐसे दो नाम हैं।।१।।

नस्य के भेद

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ।।२।।

अर्थ–इस नस्य के भेद दो हैं–एक रेचक और एक स्नेहन। तिनमें रेचक नस्य वातादि दोषों को छेदन करता है और जो स्नेहन है वह धातु वृद्धि करता है।।२।।

नस्य का काल

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ।
दिनस्य गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ।।३।।

अर्थ–कफ के नाश करने को नस्य प्रातःकाल देवे। पित्त के नाश करने को दो प्रहर दिन चढ़े नस्य देवे तथा वायु को नाश करने को सायंकाल में नस्य देना। यदि रोग अत्यन्त प्रबलता के साथ होवे तो रात्रि के समय नस्य देवे।।३।।

नस्य का निषेध

नस्यं त्यजेद्भोजनांते दुर्दिने चापतर्पणे । तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ।।४।। अजीर्णी दत्तवस्तिश्च पित्तस्नेहोद-कासवः ।। क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ ।।५।।

वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ।

अर्थ–भोजन करने के पश्चात् नस्य न लेवे। जिस दिन आकाश बादलोंसे घिरा होवे उस दिन नस्य न ले। लंघन करके जिसको नवीन पीनस का रोग होवे, गर्भिणी स्त्री, विष दोष करके और अजीर्ण करके पीड़ित मनुष्य, जिसके वस्ति प्रयोग किया हो, घी तेल इत्यादि स्नेह जल और मद्य इनका सेबन करनेवाला मनुष्य, क्रोध्र, शोक तथा तृषा से पीड़ित, वृद्ध, बालक, वातमूत्र और मूल इनका निरोध करनेवाला मनुष्य स्नान किया हुआ अथआा जिसकों स्नान करना है वह इतने मनुष्यों को नस्य नहीं देना चाहिये।।४।।५।।

नस्यकर्म में योग्यायोग्य रोगी

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ।
अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ।।६।।

अर्थ–आठ वर्ष के बालक के नस्य कर्म करे और अस्सी वर्ष के उपरान्त अवस्थावाले मनुष्य के नस्यकर्म नहीं करना।।६।।

अथ वैरेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ।
तीक्ष्णभेषजसिद्धैर्वा स्नेहैः क्वाथै रसैस्तथा ।।७।।

अर्थ–विरेचन नस्य, अजमायन, राई आदि का तीक्ष्ण तेल काढ़ के देना चाहिये। अथवा तीक्ष्ण औषधों के ही साथ तेल सिद्ध करके अथवा तीक्ष्ण औषधों को काढ़ा करके अथवा रस में स्नेह सिद्ध करके नस्य देवे।।७।।

रेचक नस्य का प्रमाण

नासिकारन्ध्रयोरष्टौ षट् चत्वारश्च बिंदवः ।।८।।
प्रत्येकं रेचने योज्या मुख्यमध्यांत्यमात्रया ।

अर्थ–रेचन में नाक के दोनों छिद्रो (नथुनों) में औषध की आठ बिंदु डालना उत्तम मात्रा है। छः बिंदु (बून्द) डालना मध्यम मात्रा जाननी और चार बिंदु डालना कनिष्ठ मात्रा कही जाती है।।८।।

नस्यकर्म में औषध का प्रमाण

नस्यकर्माणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ।।९।।हिंगुस्याद्यव-मात्रं तु माषैकं सैन्धवं स्मृतम् । क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात् पानीयं च त्रिकार्षिकम् ।।१०।। कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ।

अर्थ–नस्यकर्म में तीक्ष्ण औषध हो तो एक शाण डाले। हींग एक यवप्रमाण, सेंधानमक २ मासे, दूध आठ शाण, जल तीन कर्ष तथा खांड अनार इत्यादिक मधुर द्रव्य हों वे प्रत्येक एक कर्ष प्रमाण डालने चाहिये। इस प्रकार औषधों की योज़ना करे।।९।।१०।।

विरेचन नस्य के दूसरे दो भेद

अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ।।११।।
शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ।।

अर्थ–उस विरेचन नस्य के दो भेद हैं। एक अवपीड तथा एक प्रधमन। इन दोनों की मस्तक के रेचन करने में योजना करे।।११।।

अवपीडन और प्रधमन के लक्षण

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥१२॥
सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः।षडङ्गुला द्विवक्त्रा-
या नाडी चूर्णं तया धमेत् ॥१३॥ तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः
प्रधमनं हि तत् ।

अर्थ–तीक्ष्ण औषध को पीस के कल्क करके निचोड़ लेवे, उस निचुड़े हुए रस को अवपीड़ कहते हैं। छः अंगुल लंबी और दो मुख की नली बनाकर उसमें तीक्ष्ण चूर्ण १ कोल डाल के मुख की पवन से नाम में फूंक देवे। इसको प्रधमनसंज्ञक नस्य कहते हैं।।१२।।१३।।

रेचन और स्नेहयोग्य प्राणी

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये ॥१४॥ अरोचके
प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे । शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं
वैरेचनं हितम्॥१५॥भीरुस्त्रीकृशबालानां नस्य स्नेहे न दीयते

अर्थ–ऊर्ध्वजत्रगत रोग, कफसंबधी, स्वर का क्षय, अरुचि, प्रतिश्याय, मस्तकशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार और कुष्ठ इन रोगों में रेचक नस्य हितकारी जानना, डरा हुआ मनुष्य, स्त्री, कृश और बालक इनको स्नेहयुक्त नस्य देवे।।१४।।१५।।

अवपीडननस्ययोग्य प्राणी

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ॥१६॥
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ।

अर्थ–मलरोग, सन्निपात, अत्यन्त निद्रा, विषमज्वर, मन के विकार और कृमिरोग इनमें अवपीडन नस्य देना चाहिये।।१६।।

प्रधमननस्य योग्य प्राणी

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ॥१७॥
चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ।

अर्थ–अत्यन्त उत्कट दोष (मूर्छा अपस्मरादिक तथा संज्ञा नष्ट हुई हो ऐसे संन्यासादिक रोग) इनमें अत्यन्त तीक्ष्ण ऐसी प्रधमन चूर्ण नस्य देना चाहिये।।१७।।

रेचक संज्ञक नस्य

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैन्धवेन च ॥१८॥
जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाशिरो गदाः । हनुमन्यागलोद्भूता
नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥१९॥

अर्थ–सोंठ को गरम जल में औटाकर उसमें गुड़ मिलाय के नासिका में डाले। तथा पीपल और सैंधानमक इनको गरम जल में औटाकर नस्य देवे अर्थात् नाक में डाले तो नेत्र कान नाक मस्तक ठोडी गर्दन भुजा (हाथ) और पीठ इनकी पीड़ा को दूर करे।।१८।।१९।।

रेचन नस्य का दूसरा प्रकार

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैन्धवैः । नस्यं कोष्णजले पिष्टं
दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥२०॥ अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽ-
पतन्त्रके ।

अर्थ-महुआ की लकड़ी के भीतर के भाग पीपल वच काली मिरच और सैंधानमक इन सब औषधों को गरम जल में पीस नस्य देवे तो मृगी उन्माद सन्निपात और अपतन्त्रक वायु इनसे नष्ट हुई चेष्टा दूर होके मनुष्य सावधान हो जाता है।।२०।।

रेचननस्य का तीसरा प्रकार

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ।।२१।।
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ।

अर्थ-सैंधानमक सफेद मिरच सफेद सरसों और कूट ये औषध बकरे के मूत्र में पीस नस्य देवे तो तंद्रा (और पूर्वोक्त अपस्मरादिक रोग) दूर होवे।।२१।।

प्रधमनसंज्ञक नस्य

रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं सैन्धवं वचा ।।२२।।
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कंकोलं लशुनं पुरम् ।
कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ।।२३।।

अर्थ-सैंधानमक वच काली मिरच पीपल सोंठ कंकोल लहसुन गूगल और कायफर इनका चूर्ण कर रोहूमछली के पित्ते की इस चूर्ण में पुट देवे। जब सूख जावे तब पूर्वोक्त प्रधमननली में इस चूर्ण को भर के नस्य देवे तो पूर्वोक्त तंद्रादि दोष दूर होवें। इस चूर्ण को पधमन कहते हैं।।२२।।२३।।

बृंहणनस्य की कल्पना

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना । मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदौ स्नेहने मतौ ।।२४।। मर्शस्य तर्पणी मात्राः मुख्याशाणैः स्मृताऽष्टभिः । मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता स्मृता ।।२५।। एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः । मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् ।।२६।। एकांतरं द्व्यन्तरं वा नस्य दद्याद्विचक्षणः । त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितम् ।।२७।।

अर्थ-बृंहँण (धातु को बढ़ानेवाली) नस्य की कल्पना कहता हूं-बृंहण के नस्य के दो भेद हैं मर्श प्रतिमश, ये स्नेहन विषय में लेनी चाहिये। मर्शनस्य की तर्पणी मात्रा आठ शाण की मुख्य होती है। चार शाण की मध्यम तथा एक शाण की हीन मात्रा जाननी चाहिये। उस मात्रा को दोषों का बलाबल विचार कर देवे। मनुष्य को वस्त्रादिक से लपेटके एक एक पुड़िया नाक में दो अथवा तीन बार एक दिन बीच में देकर अथवा दो दिन तीन दिन को बीच देकर, पांचवें दिन अथवा सातवें दिन नस्य देवें।।२४-२७।।

नस्य अधिक होने का यत्न

मर्शे शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृता। । दोषोत्क्लेशात् क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम्।।२८।।दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युंज्याद्वमनशोधनम् । अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं मतम् ।।२९।।

अर्थ–मर्शनस्य की मात्रा धात्वादिकों की तृप्ति करनेवाली है, उसको आधिक्य होकर दोषों का कोप होने से तथा मस्तक के विरेचन विषय में विरेचनसंज्ञक नस्य की मात्रा के आधिक्य के कारण मस्तक में से मेदादिकों के क्षय होनें से अनेक प्रकार की पीड़ा होती है। तिनमें जिस दोष के उत्क्लेश निमित्त पीडा हो उसके दूर करने को वमनकर्ता अथवा दस्त करनेवाली औषध देवे और क्षय निमित्तवाली पीड़ा को दूर करने के लिये बृंहण औषध नाक में अथवा पेट में प्रयोग करे।।२८।।२९।।

बृंहणनस्ययोग्य प्राणी

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूयार्वर्तार्द्धभेदके । दन्तरोगे बले हीने मन्याबाह्वंसजे गदे ।।३०।। मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा । अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ।।३१।। युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ।

अर्थ–मस्तकरोग, नासारोग, नेत्ररोग, सूर्यावर्त्तरोग, अर्धावभेदक (आधाशीशी) दांतों का रोग, दुर्बल मनुष्य की गर्दन, कंधा और बाहु इनमें जो पीड़ा होती है वह मुखशोष कर्णनादरोग, वातपित्तसंबंधी विकार, बिना समय मनुष्य के सफेद बालों के होने को पलित रोग कहते हैं वह तथा मस्तक के बाल और डाढी मूछों के बाल झड़कर गिर पडें वह इंद्रलुप्त रोग, इन सर्व रोगों में घृत आदि स्निग्ध पदार्थ तथा खाँड आदि मधुर पदार्थ इन करके बृंहण नस्य की योजना करे।।३०।।३१।।

बृंहण नस्य

सशर्करं पयः पिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम् ।।३२।। नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः । भ्रूशंखाक्षिशिरः कर्णसूर्यावर्तार्ध-भेदकान् ।।३३।। नस्यं स्याद्रुबुतैलेन तथा नारायणेन वा ।। माषादिना वापिसर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ।।३४।। तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा । दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ।।३५।।

अर्थ–दूध में खाँड डाल के नस्य देवे। अथवा घी में केशर डाल के नस्य दे या केशर और खाँड को दूध में घिसकर घी में पका नस्य दे। इससे वातरक्त की पीडा दूर हो। अंडी के तेल करके अथवा नारायण तेल करके अथवा माषादि तेल करके अथवा उन २ औषधों करके सिद्ध किये हुए घृत की नस्य लेने से भ्रकुटी शंख (कनपटी) नेत्र मस्तक कान इनके सम्बंधी रोग, तथा सूर्यावर्त्तरोग और आधाशीशी ये रोग दूर होवें। कफरोग पर तेल की नस्य दे, वातरोगपर वसा (चरबी) की नस्य देवे। और केवल पित्तरोगपर घी और मज्जा इनकी नस्य देनी चाहिये।।३२–३५।।

पक्षाघातादिकरोगोंपर नस्य

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः । कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिंगुसैन्धवसंयुतः ।।३६।। कोष्णनस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम् । जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापहुकौ ।।३७।।

अर्थ–१ उडद, २ कौंच के बीज, ३ रास्ना, ४ गंगेरन की जड़, ५ अरंड की जड़, ६ रोहिष तृण और ७ असगन्ध इन सात औषधों का काढा करके उसमें भूनी हुई हींग और सैंधानमक डालकर

उस गरम २ जल की नस्य देवे तो कंपसहित पक्षाघात वायु, अर्दित (लकवा), वायु, गरदन की नस का जकड़ना और अपबाहुक ये सर्व दूर हों॥३६॥३७॥

प्रतिमर्शनस्य की दो बिन्दुरूप मात्रा

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिंदुमिता मता ।
प्रत्येकशो नयनयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥३८॥

अर्थ–घृत आदि शब्द से जो स्निग्ध पदार्थ हैं उनके दो दो बिन्दु एक एक नयन में डालते हैं उसे प्रतिमर्शनस्य की दो ब्रिन्दुरूप जाननी चाहिये॥३८॥

बिन्दुसंज्ञक मात्रा

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः । तर्जनीयं स्रवेद्बिन्दुं सा मात्रा बिंदुसंज्ञिता ॥३९॥ एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते । स देयो मर्शनस्य तु प्रतिमर्शो द्विबिंदुकः ॥४०॥

अर्थ–घृत तेल (आदिशब्द से जो स्निग्ध पदार्थ) उनमें दो पेरुआ डूबे इस प्रकार तर्जनी उँगली को डुबों के बाहर निकाले उस पेरुए से जो बिन्दु टपके उसको बिन्दुमात्रा कहते हैं। इस प्रकार बिन्दुसंज्ञक आठ मात्राओं का एक शाण होता है। वह एक शाण मात्रा मर्शनस्य में देवे और प्रतिमर्शनस्य में दो बिन्दु मात्रा देनी चाहिये॥३९॥४०॥

प्रतिमर्शनस्य के समय

समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश । प्रभाते दंतकाष्ठान्ते गृहान्निर्गमने तथा ॥४१॥ व्यायामाध्वव्यवायांते विण्मूत्रांतेऽञ्जने कृते । कवलांते भोजनांते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥४२॥ वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते ।

अर्थ–प्रतिमर्शनस्य के समय चौदह हैं, १ प्रातःकाल, २ मुख धोनेपर, ३ घर से बाहर निकलते समय, ४ परिश्रम के अन्त में, ५ मार्ग चलकर आनेपर, ६ मैथुन के अन्त में, ७ मल त्यागने के अन्त में, ८ मूत्रत्यागने के अन्त में, ९ नेत्रों में अञ्जन आजानेके पश्चात् उठकर, १० ग्रास के अन्त में, ११ भोजन के अन्त में, १२ दिन में सोने के पश्चात् उठकर, १३ वमन के अन्त में और १४ सायंकाल में। इतने समयों में प्रतिमर्श नस्य देनी चाहिए॥४१॥४२॥

प्रतिमर्शनस्य करके तृप्त के लक्षण

ईषदुच्छिङ्घनात्स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते ॥४३॥
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः ।
उच्छिन्दन्न पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥४४॥

अर्थ–नस्य देने पर अल्प छींक आकर उस स्नेह के मुख में उतनरे से वह मनुष्य प्रतिमर्श नस्य करके तृप्त हुआ ऐसा जानना। वह मनुष्य मुख से उतरे हुए स्नेह को निगले नहीं किन्तु खखार के द्वारा बाहर थूक देवे॥४३॥४४॥

प्रतिमर्श के योग्य रोगी

क्षीणे तुष्णास्यशोषार्ते बाले वृद्धे च युज्यते । प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥४५॥ बलीपलितनाशश्च बलमिन्द्रियजं भवेत् ।

अर्थ–धातुक्षीण मनुष्य तथा तृष्णा करके अथवा मुखशोष करके पीडित मनुष्य बाल और वृद्ध इनको प्रतिमर्श संज्ञक नस्य देवे। ऊर्ध्वजत्रु के रोग अर्थात् गरदन के ऊपर के रोग तथा त्वचा की शिथिलता एवं अकाल में बालों का सफेद होना अर्थात् पलित रोग ये सम्पूर्ण रोग प्रतिमर्शनस्य करके दूर होते हैं तथा चक्षुरादि इन्द्रियों में बल आता है।।४५।।

पलित होने में नस्य

बिभीतनिम्बगम्भारी शिवाशेलुश्च काकिनी ।।४६।।
एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ।

अर्थ–बहेडा नीम की छाल, कंभारी हरड गोंदी और कौआटोडी इनके बीजों के भीतर की मज्जा का तेल पृथक् २ निकाल के एक की पृथक् २ नस्य दे तो मनुष्य के अकाल में जो सफेद बाल हो जाते हैं सो तरुणावस्था के समान काले हो जावें।।४६।।

नस्य की विधि

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे ।।४७।। देशे वातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम् । विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालं गलं तथा ।।४८।। उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसं नरम् । आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् ।।४९।। समुन्नमितनासाग्रवैद्यो नस्येन योजयेत् । कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमताराादिशुक्तिभिः ।।५०।। शुक्त्या वा यन्त्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत्।

अर्थ–नस्य देने में नस्य की विधि कहते हैं–जिस स्थान में पवन तथा धूली न हो उसमें मनुष्य को दांतन और धूमपान कराके कपाल और गले को शुद्ध कर पसीने युक्त करे फिर चित्त लेटाके मस्तक को कुछ थोड़ा लंबा कर हाथ पैरों को लंबे पसार कपड़े से नेत्रों को ढक देवे। फिर वैद्य इस प्राणी की नाक को ऊँची करके उसमें नस्य की औषध को गरम २ सुहाती धार एकसी लगातार डाले। परन्तु वह नस्य सोने के पात्र में अथवा चांदी के पात्र में करके गेरे अथवा सीप और कौडी अथवा फोहे (कपड़े के टुकड़े) इत्यादि करके नाक में डाले।।४७–५०।।

नस्य के पश्चात् नियम

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ।।५१।। न कुप्येन्न प्रभाषेत् नोच्छिन्देन्न हसेत्तथा । ऐतैर्हि विहितः स्नेहो नैवान्तः सम्प्रपद्यते ।।५२।। ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ।

अर्थ–मनुष्य नस्य लेने के समय मस्तक को न हिलावे, क्रोध न करे, किसीसे बोले नहीं छींके नहीं और हँसे नहीं। यदि इस प्रकार आचरण करे तो वह स्नेह मस्तक के भीतर अच्छी तरह नहीं जाता, तथा उससे खांसी पीनस मस्तक तथा नेत्र इनमें पीड़ा इत्यादि उपद्रव होते हैं।।५१।।५२।।

नस्य सन्धारण का प्रकार

शृङ्गाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद्द्रवम् ।।५३।। पञ्चसप्तदशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे । उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासा

वक्त्रगतं द्रवम् ॥५४॥ वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्सुंमखे न हि ।

अर्थ-मनुष्य को नस्य देकर शृङ्गाटक कहिये नासावंश की पुट भूमध्य देश में चतुष्पद है उस जगह उस नस्य करके भिगोकर उस नस्य को रख देवे। उसका कारण पांच मात्रा सात मात्रा अथवा दश मात्रा काल पर्यंत करे पश्चात् बैठकर नाक से मुख में उतरे द्रव्य को खखारकर बाई तरफ अथवा दहनी तरफ थूक देवे सम्मुख न थूकना चाहिये।।५३।।५४।।

नस्यकर्म में त्याज्य कर्म

नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् ॥५५॥ शयीत निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्छतं नरः । तथा वैरेचनस्यान्ते धूमो वा कवलोऽहितः ॥५६॥

अर्थ-नस्यकर्म होने के पश्चात् मन को संताप न आने देवे, जहां धूल उड़ती हो वहां पर बैठे नहीं, क्रोध न करे, जिस प्रकार नींद न आवे इस प्रकार से सौ वाक् पर्यंत सीधा (चित्त) लेटे, विरेचन नस्य के अन्त में धूम और ग्रास नहीं देना चाहिये।।५५।।५६।।

नस्य में शुद्धादिक भेद

नस्ये त्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः ।
शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिन्तकः ॥५७॥

अर्थ-नस्य में शुद्धिलक्षण हीनयोग लक्षण और अतियोग लक्षण ये तीन लक्षण विशेष करके शास्त्रज्ञ वैद्यों ने कहे हैं वह वक्ष्यमाण संक्षेप करके कहता हूँ।।५७।।

उत्तम शुद्धि के लक्षण

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः ।
चित्तेन्द्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥५८॥

अर्थ-नस्य करके मस्तक की उत्तम शुद्धि होने से शरीर हलका मन्यानाडि की शुद्धि मुख नाक कान और गुदा इत्यादि स्रोतों (बाहर के छिद्रों) का शोधन हो शिरोरोगादिक दूर हों अन्तःकरण तथा चक्षुरादि इंद्रिये ये प्रसन्न रहैं।।५८।।

हीन शुद्धिक लक्षण

कण्डूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः ।
मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥५९॥

अर्थ-नस्य करके मस्तक की अल्प शुद्धि होने से देह में खुजली चले तथा देह का चिकट जाना ये लक्षण हो। एवं स्रोत (मुखनासिका आदि बाहर मार्ग) से कफ का स्राव हो।।५९।।

अतिशुद्धि के लक्षण

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः ।
शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥६०॥

अर्थ-नस्य द्वारा मस्तक की अत्यन्त शुद्धि होने से मस्तुलंग (मस्तक के भीतर का मगज) का नासिका आदि के द्वारा स्राव होने लगे, वायु की वृद्धि हो, इंद्रियों को विभ्रम हो तथा मस्तक में शून्यता हो।।६०।।

हीन शुद्ध्यादिकोमें चिकित्सा

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत् ।
सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्ये निषेचयेत् ।।६१।।

अर्थ–नस्य करके मस्तक की अल्प शुद्धि तथा अत्यंत शुद्धि होने से कफ वातनाशक नस्य देवे। तथा उत्तम शुद्धि होने से उसकी नाक में घृत की नस्य देनी चाहिये।।६१।।

अति स्निग्ध के लक्षण

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।
लक्षणं तदतिस्निग्धं रूक्षं तत्र प्रदापयेत् ।।६२।।

अर्थ–नस्य करके मनुष्य का मस्तक अत्यन्त स्निग्ध होने से कफ मिला श्वास निकले मस्तक में भारीपन और इन्द्रियों में भ्रांति ये लक्षण होते हैं। इसमें रूक्षपदार्थ की नस्य देनी ठीक है।।६२।।

नस्य में पथ्य

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचारिकमादिशेत् ।

अर्थ–अभिष्यन्दी पदार्थ कहिये भैंस का दही आदिशब्द से कफकारक पदार्थ ये भक्षण न करे। तथा नस्य में जैसे शिष्टजन आचरण करते हैं उसी प्रकार इस नस्य लेनेवाले रोगी को आचरण करने चाहिये।

पञ्च कर्म की संख्या

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।
एतानि पञ्चकर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ।।६३।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
स्नेहविधिर्नामाष्टोऽध्यायः ।।८।।

अर्थ–१ वमन, २ रेचन, ३ नस्य, ४ निरूहवस्ती और ५ अनुवासवस्ति इन पांचों को पंचकर्म ऐसा कहते हैं।।६३।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-
कृतभावप्रकाशिकाहिन्दीटीकायामष्टमोऽध्यायः ।।८।।

अथ नवमोध्यायः ९

धूमपान विधि

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ।।१।।

अर्थ–१ धूम छः प्रकार का है। १ शमन, २ बृंहण, ३ रेचन, ४ कासहा, ५ वामन और ६ व्रणधूपन इस प्रकार के धूमपान के प्रकार जानने चाहिये।।१।।

शमनादि धूमों के पर्याय

शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ।।२।।
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ।

अर्थ-शमन धूम के पर्यायशब्द मध्य और प्रायोगिक ऐसे दो जानने। बृंहण धूमक पर्याय शब्द स्नेहन और मृदु जानने। तथा रेचनधूम के पर्यायशब्द शोधन और तीक्ष्ण जानने।।२।।

धूमसेवन अयोग्य प्राणी

अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीरुश्च दुःखितः ।।३।। दत्तवस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा । पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ।।४।। शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः । क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पाण्डुरोगी च गर्भिणी ।।५।। रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः । भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ।।६।। अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान्।

अर्थ-थका हुआ, डरनेवाला, दुःखकरके पीड़ित, जिसके वस्ति प्रयोग किया है, जिसका कोठा दस्तों करके खाली हो, रात्रि में जागरण करनेवाला, तृषा करके पीडित तथा दाह करके पीडित तालुशोथी, उदरी, शिरोऽभिताप करके पीड़ित, तिमिर, तथा वमन आध्मान (वादी से पेट फूलता है वह रोग) उरः क्षत प्रमेह और पांडुरोग इन करके पीड़ित, गर्भिणी स्त्री, रूक्ष, क्षीण, दूध, शहद, घी आसव (मद्य) और अन्न दही तथा मछली इनको जो खा चुका हो बालक वृद्ध और दुर्बल मनुष्य इतने प्राणी धूमपान में अयोग्य जानने। अर्थात् इन सबको धूममान करना वर्जित है एवम् अकाल में और अत्यन्त धूमंपान करने से उपद्रव होते हैं।।३-६।।

धूमपान के उपद्रव में क्या देवे सो कहते हैं

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनाञ्जनतर्पणम् ।।७।।
सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्करांबु वा ।
मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत् ।।८।।

अर्थ-धूमपान के उपद्रव होने से उस मनुष्य को घी पीने को देवे। नाक में नस्य दे, नेत्रों में अञ्जन लगावे, तथा तर्पण (देह में तृप्तिकारी द्राक्षादिखण्ड) दे। घी, ईख का रस, दाख, दूध सरबत खांड और जल अथवा मधुर और खट्टे पदार्थ ये भक्षण करने को देवे जिनसे धूमसम्बन्धी उपद्रव दूर हों।।७।।८।।

धूमपान का समय और गुण

धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद् गृह्यतेऽशीतिकान्न च ।
कासश्वासप्रतिश्यायान् । मन्याहनुशिरोरुजः ।।९।।
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद् धूमः सुयोजितः ।

अर्थ-धूमपान बारह वर्ष की अवस्था से लेकर अस्सी वर्ष की अवस्था पर्यन्त करे पश्चात् नहीं करना चाहिये। तथा उस धूम की योजना उत्तम होने से श्वास खांसी पीनस गरदन ठोडी और

मस्तक इनकी पीडा और वातकसम्बन्धी विकार संपूर्ण दूर हो जाते हैं॥९॥

धूमप्रयोग से प्रकृति कैसी होती है

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः ॥१०॥

दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धवदनो भवेत् ।

अर्थ-धूम का उपयोग होने से मनुष्य चक्षुरादि इन्द्रिय वाणी और अन्तःकरण इन करके प्रसन्न रहे और केश दांत और श्मश्रु (मूँछ) तथा दाडी इनमें बल आवे और मुख सुगन्धित होता है॥१०॥

धूम में नली का विचार

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका॥११॥ कनिष्ठिकापरीणाहा राजमाषागमान्तरा । धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः ॥१२॥ चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता । तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितः ॥१३॥ दशांगुलैर्वामिनीये तथा स्याद्व्रणनाडिका । कलायमण्डलस्थूला कुलित्थागमरंध्रिका ॥१४॥

अर्थ-धूमसेवन में नली तीन खण्ड और तीन गांठों करके युक्त तथा कनिष्ठिका उँगली के बराबर मोटी तथा उसके छिद्र में चौरा का दाना भीतर चला जावे ऐसी हो। इसी प्रकार की धूमसेवन की नली रोगी को चालीस अंगुल लंबी लेनी चाहिये। मृदुसंज्ञक धूम के सेवन में बत्तीस अंगुल लंबी ले, तीक्ष्णसंज्ञक धूम के सेवन में दश अंगुल की काससंज्ञक धूमसेवन में सोलह अंगुल की, वाँमनीय संज्ञक धूम के सेवन में दश अंगुल की लंबी नली लेनी, इसी प्रकार व्रण के धूनी देने को नली दश अंगुल की लंबी होनी चाहिये। तथा वह नली मटर के प्रमाण मोटी तथा उसका छिद्र कुलथी का दाना भीतर चला जाय इतना बारीक करे इस प्रकार की नली व्रण की धूनी को वैद्य लेवे॥११-१४॥

धूमपान के अर्थ ईषि का विधान

अथेषिकां प्रलिंपेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम्। धूमद्रवस्य कल्लेन लेपश्चाष्टांगुलः स्मृतः ॥१५॥ कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् । ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात् ॥१६॥ अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके । वदनेन पिबेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥१७॥ नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः । शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमङ्गारदीपितम् ॥१८॥ छिद्रे नेत्रं सुवेश्याय व्रणं तेनैव धूपयेत् ।

अर्थ-ईषिका (नैडी) बारह अंगुल लंबी लेवे और जो धूमसेवन की औषधियां हैं उनका कल्क करके उस कल्क को एक कर्ष लेकर उस ईषिका अर्थात् नैडी पर आठ अंगुल पर्यन्त लेप करे। फिर उसको सुखाके सूखन पर ईषिका अलग निकाल लेवे। फिर उस कल्क के छिद्र में दूसरी स्नेहयुक्त बत्ती को रख उसके ऊपर अंगार रख जलाय के नली के छिद्र में धरे। पश्चात् उस नली करके मुख से

धुएँ को खींचकर मुखद्वारा ही त्याग देवे, फिर नाक के रास्ते से धूएँ को खींचके मुख के द्वारा छोड़े। तथा शरावसंपुट के ऊपर की तरफ छिद्र कर उसमें अंगारे रख के उनके ऊपर व्रणी धूदी की औषधों का कल्क किया हुआ डाल के उस शराव के छिद्र पर नली के छिद्र को रखके व्रण में धूनी देवे।।१५-१८।।

कौनसी औधका कल्क कौनसे धूप में देवें

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ ।।१९।। रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोषणम् । वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद्धूमस्य पानकम् ।।२०।। व्रणे निम्बवचाद्यं च धूमनं संप्रचक्षते ।

अर्थ-शमनसंज्ञक धूम में एलादिक औषधों का गण है उसका कल्क करके देवे। मृदुसंज्ञक धूम में स्निग्ध (घृतादिक स्नेह) पदार्थों में शिलारस डाल के कल्क करके देवे। रेचनसंज्ञक धूम में तीक्ष्ण औषधि (सरसों राई इत्यादिकों) का कल्क करके देवे। कासघ्नधूम में कटेरी, कालीमिरच इत्यादि औषधों का कल्क कर देवे। बावमधूम में (वमन लानेवाले धूम में स्नायु और चर्मादिक इनका कल्क करके धूमपानार्थ देवे तथा व्रण में नीम और वच का धूमपान करावे।।१९।।२०।।

बालग्रहनाशन धूनी

अग्न्येऽपि धूमा गेहेषु कर्तव्या रोगशान्तये ।।२१।। स यथा।। मायूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् । मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कर्पाससम्भवम् ।।२२।। छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा बैडालिकी तथा । गजदन्तश्च तच्चूर्णं किञ्चिद् घृतविमिश्रितम् ।।२३।। गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान् बालग्रहाञ्जयेत् । पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ।।२४।।

अर्थ-बालग्रह दूर होने को दूसरे प्रकार का धूम होता है तिसमें से मयूरपिच्छादि धूनी कहते हैं-१ मोर की चंद्रिका, २ नीम के पत्ते, ३ कटेरी का फल, ४ मिरच, ५ हींग, ६ जटामांसी, ७ कपास के बिनौले, ८ बकरे के बाल, ९ सांप की कांचली, १० बिल्ली की विष्ठा, ११ हाथी का दांत इन ग्यारह औषधों का चूर्ण कर उसमें थोड़ा से घी मिलाके इस चूर्ण की घर में धूनी देवे तो सम्पूर्ण बालग्रह, पिशाच और राक्षस इनका सर्व उपद्रव तथा सम्पूर्ण ज्वर दूर हों।।२१-२४।।

धूमपान में परिहार

परिहारस्तु धूमेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।
नेत्राणि धातु जान्याहुर्नलवंशादिजान्यपि ।।२५।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
धूमविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ।।९।।

अर्थ-रेचन संज्ञक नस्य के रोगों के परिहार विषय में जो उपाय कहा है सो इस धूमपान में करना चाहिये। नली का मुख सुवर्णादि अथवा बांस इत्यादिकोंका करना चाहिये।।२५।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-
कृतभावप्रकाशिकाहिन्दीटीकायां नवमोऽध्यायः ।।९।।

अथ दशमोऽध्यायः १०

गण्डूव और कवल तथा प्रतिसारण का विधि

चतुर्विधः स्याद्गण्डूषः स्नैहिकः शमनस्तथा ।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ।।१।।

अर्थ–गण्डूष चार प्रकार का है। १ स्नैहिक, २ शमन, ३ शोधन और ४ रोपण उसी प्रकार कवल भी इन्हीं भेदों करके चार प्रकार का है।।१।।

स्नैहिकादि गण्डूषों की दोषभेद करके योजना

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः । पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनः कफे ।।२।। कषायतिक्तमधुरैः कदुष्णो रोपणव्रते । चतुः प्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः ।।३।।

अर्थ–स्निग्ध और उष्ण इन पदार्थो करके कुरला (कुल्ला) करना उसे स्नैहिक गण्डूष जानना यह वायु रोग में करे। मधुर और शीतल पदार्थों करके प्रसादन कहिये शमनगण्डूष जानना यह पित्तरोग में देवे। तीक्ष्ण ख़ट्टे खारे उष्ण इन पदार्थों करके शोषण गंडूष जानना कफरोग में योजना करे। कषैले कडुए और मधुर इन पदार्थों करके रोपण गंडूष जानना। यह गरम गरम व्रण पर योजना करे। इसी प्रकार कमल भी चार प्रकार का जानना।।२।।३।।

गण्डूष और कवल में भेद

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः ।
तत्र द्रव्येण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ।।४।।

अर्थ–काढे आदि जो द्रव पदार्थ हैं उनसे मुख को भरके जैसे का तैसा ही रहने देवे। फिर थोड़ी देर के मुख से निकाल देने को गंडूष (कुल्ला) कहते हैं। एवं कल्कादिक पदार्थों को मुख में इधर उधर फिराके मुख में रखने को कवल कहते हैं।।४।।

गण्डूष और कवल की औषधों का प्रमाण

दद्याद्द्रवेषु चूर्णं च गंडूषे कोलमात्रकम् ।
कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवलो बुधैः ।।५।।

अर्थ–गंडूष में काढे आदि द्रव्य में चूर्ण एक कोल डाले तथा कवल में १ कर्ष प्रमाण कल्क की योजना करे।।५।।

कौनसी अवस्था में और कितने कुल्ले करे

धार्यन्ते पञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः ।
गण्डूषान् सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ।।
मनुष्यस्त्रींस्तथा पंच सप्त वा दोषनाशनात् ।।६।।

अर्थ–पांच वर्ष के पश्चात् अर्थात् पांच वर्ष की आयु के पीछे गंडूष और कवल ग्रहण करने चाहिये। मनुष्य स्वस्थचित्त होके बैठे। फिर रोग दूर होने को कपाल गला तथा आदि शब्द से मुख इनमें थोड़ा पसीना आने पर्यन्त तीन पांच अथवा सात गंडूष करे। अथवा दोष दूर होने पर्यंत करे।।६।।

गडूषधारण में दूसरा प्रमाण

कफपूर्णास्यता यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ।

नेत्रघ्राणस्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम् ।।७।।

अर्थ–कफ से मुख पूर्ण हो जावे तब तक अथवा दोषों का छेदन होने पर्यन्त अथवा नेत्र नाक इनमें स्राव छूटने पर्यन्त गंडूष धारण करे।।७।।

वादी के रोग में स्नैहिकगंडूष

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः ।।८।।

अर्थ–तिलों का कल्क और जल तथा दूध और तेल आदि चिकने पदार्थ इनको स्नैहिक गंडूष में योजना करनी चाहिये।।८।।

पित्तरोग में शमनसंज्ञक गंडूष

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।

सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गण्डूषो दाहनाशनः ।।९।।

अर्थ–तिल नीलाकमल घी खांड और दूध ये सब पदार्थ एकत्र कर इसमें शहद डाल के कुल्ले करे तो पित्त सम्बन्धी ठोडी और मुख इनमें जो दाह हो सो दूर हो जावे।।९।।

व्रणादिरोगों में मधुगण्डूष

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ।

दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ।।१०।।

अर्थ–शहद को जल में मिलाके कुल्ले करे तो मुख के घाव और छाले तथा दाह और तृषा ये रोग दूर होकर मुख में स्वच्छता आती है।।१०।।

विषादिकों पर गंडूष

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा ।

अर्थ–विषदोष, क्षारादिजन्य विकार, अग्निदाहजन्य विकार इनमें घी अथवा दूध के कुल्ले करे।

दांतों के हिलने पर गण्डूष

तैलसैन्धवगण्डूषी दन्तचाले प्रशस्यते ।।११।।

अर्थ–तिलों का तेल और सैंधानमक इनको एकत्र करके कुल्ले करे तो हिलते हुए दांत जमकर मजबूत होवें।।११।।

मुखशोषपर गण्डूष

शोषं मुखस्य वैरस्यं गण्डूषः कांजिको जयेत् ।

अर्थ–मुखशोष तथा मुख की विरसता इनमें कांजी के कुल्ले करे तो मुखशोष और विरसता दूर हो।

कफपर गण्डूष

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ।।१२।।

अर्थ–सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच और पीपल) तथा राई इनका चूर्ण कर अदरख के रस में मिलाके कुरले करे तो कफ का दोष दूर होवे।।१२।।

कफ और रक्तपित्तपर गण्डूष

त्रिफलामधुगण्डूषः कफासृक्पित्तनाशनः ।

अर्थ–त्रिफला के चूर्ण को शहद में मिलाकर कुल्ले करने से कफ और रक्तपित्त दूर हो जाते हैं।

मुखपाक (छाले) पर गण्डूष

दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवः ॥१३॥
यवासश्चेति तत्क्वाथः षष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः । शीतो मुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥१४॥

अर्थ–दारुहल्दी, गिलोय, त्रिफला, दाख, चमेली के पत्ते और जवासा ये सब औषध समान भाग लेकर काढा करे। इस काढे का छठा भाग शहद मिलाके उस काढे को शीतल करके कुल्ले करे तो त्रिदोषजन्य मुखपाक (मुख के छाले) दूर हो जावें।।१३।।१४।।

गण्डूष के सदृश प्रतिसारण और कवल

यस्यौषधस्य गंडूषस्तस्यैव प्रतिसारणम् ।
कवलश्चापि तस्यैव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः ॥१५॥

अर्थ–जिस औषध का गंडूष उसी औषध का प्रतिसारण (मञ्जन) जानना तथा उसी औषध का कवल भी कुशल वैद्य जाने।।१५।।

कवल का प्रकार

केशरं मातुलुङ्गस्य सैन्धवव्योषसंयुतम् ।
हन्यात्कवलतो जाडचमरुचिं कफवातजाम् ॥१६॥

अर्थ–बिजोरे की केशर सैंधानमक और त्रिकुटा (सोंठ, मिरच, पीपल) ये औषध एकत्र कर इनका कवल करने से मुख की जड़ता तथा कफवातजन्य अरुचि ये दूर हों।।१६।।

प्रतिसारण के भेद

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम् ।
अङ्गुल्यग्रगृहीतं च यथास्वं मुखरोगिणाम् ॥१७॥

अर्थ–कल्क, अवलेह और चूर्ण इन भेदों से प्रतिसारण तीन प्रकार का है उसको मुखरोगी मनुष्य के जैसा दोष हो उसीके अनुसार उँगली के आगे के पोरुए में भर के जीभ को तथा संपूर्ण मुख में लगावें।।१७।।

प्रतिसारण चूर्ण

कुष्ठं दार्वी समंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका ।
तेजनी मुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥१८॥
रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ।

अर्थ–१ कूठ, २ दारुहल्दी, ३ लजालू, ४ पाढ, ५ कुटकी, ६ मंजीठ, ७ हल्दी, ८ नागरमोथा और ९ लोध इन नौ औषधों का चूर्ण करके जीभ पर तथा संपूर्ण मुख में ऊँगली के पोरुए से रगड़े तो दांतों के मसूढों से रुधिर का गिरना, दांतों में पीडा का होना, सूजन, दाह ये रोग दूर हों। इस चूर्ण को प्रतिसारण अर्थात् मंजन कहते हैं।।१८।।

गण्डूषादिके हीनयोगादि होने के लक्षण

हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुची तथा ।
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत् ॥१९॥

अर्थ–गण्डूषादिकों का हीनयोग (अल्पयोग) होने से कफ का आधिक्य होता है। मधुरादि पदार्थों से रस का ज्ञान नहीं रहता और अन्नादिकों पर अरुचि होती है गंडूषादिकों का अत्यन्त योग होने से मुखपाक अर्थात् मुख में छाले हो जावें तथा शेष, प्यास और ग्लानि ये लक्षण होते हैं॥१९॥

शुद्धगंडूष के लक्षण

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ।
इन्द्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥२०॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे गंडूषादिविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अर्थ–गंडूषादिकों का उत्तम योग होने से व्याधिका नाश, अन्तःकरण में सन्तोष, मुख में निर्मलपन हलकापन रसनादिक इंद्रियों में प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं॥२०॥

इति शार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभाव-
प्रकाशिकाहिन्दीटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः ११

लेप की विधि

आलेपस्य च नामानि लिप्तो लेपश्च लेपनम् । दोषघ्नो विषहा वर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधा मतः ॥१॥ त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्धांगुलोन्नतः । आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयतिच्छविम् ॥२॥

अर्थ–लिप्त, लेप और लेपन ये तीन नाम लेप के हैं, उसी को आलेप कहते हैं। वह लेप दोषघ्न[100] विषघ्न[101] वर्ण्य[102] इन भेदों करके मुखलेप तीन प्रकार का है। उस लेप के प्रमाण तीन हैं, जैसे एक अंगुल ऊँचे को दोषघ्न जानना, पौन अंगुल के प्रमाण ऊँचे को विषघ्न जानना और जो आधे अंगुल ऊँचा होवे उसे वर्ण्य जानना, ऐसे तीन प्रमाण जानने। जो आर्द्र (गीला) लेप है उसे रोमहरणकर्त्ता जानना, जो शुष्क (करडा) लेप है उसे शरीर की कांति को दूषित करनेवाला जानना चाहिये॥१॥२॥

दोषघ्न लेप

पुनर्नवां दारुशुण्ठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च ।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथहा ॥३॥

अर्थ–१ पुनर्नवा (सोंठ), २ देवदारु, ३ सोंठ, ४ सफेद सरसों और ५ सहंजने की छाल ये पांच औषध समान भाग लेकर कांजी में पीस सूजन लेप करे तो नव प्रकार की सूजन दूर हो।।३।।

दाहशांति का लेप

विभीतफलमज्जाक्तलेपो दाहार्तिनाशनः ।

अर्थ–बहेडे के भीतर की गिरी को बारीक पीस देह पर लेप करे तो दाहसम्बन्धी पीडा दूर हो।

दशांग लेप

शिरीषं मधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम् ।।४।। एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं बालकमेव च । इति संचूर्ण्य लेपोऽयं पञ्चमांशघृतप्लुतः ।।५।। जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशांग इति संज्ञितः । विसर्पान्विस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत् ।।६।।

अर्थ–१ सिरस की छाल, २ मुलहटी, ३ तगर, ४ लालचन्दन, ५ इलायची, ६ जटामांसी, ७ हल्दी, ८ दारुहल्दी, ९ कूठ और १० नेत्रवाला इन दश औषधों को समान भाग ले बारीक पीस चूर्ण करे, फिर जल में सान के रोग के स्थान पर लेप करे तो विसर्परोग, विषदोष, विस्फोट, सूजन, दुष्टव्रण ये सर्व रोग दूर हों। इस लेप को दशांगलेप कहते हैं।।४–६।।

विषघ्न लेप

अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ।
शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमृत्तिकैः ।।७।।

अर्थ–बकरी के दूध में तिलों को पीसके उसमें मक्खन मिलाकर लेप करे। अथवा कालीमिट्टी और तिल इन दोनों को पीस इसमें मक्खन मिलाकर लेप करे तो भिलावें की सूजन दूर होवे।।७।।

दूसरा प्रकार

लाङ्गल्यतिविषालाबू जालिनी बीजमूलकः ।
लेपो धान्यांबुसंपिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ।।८।।

अर्थ–१ कलियारी, २ अतीस, ३ कडुई तूम्बी के बीज, ४ कडुई तोरई के बीज, ५ मूली के बीज इन पांच औषधों को समान भाग लेकर धान्यांबु (कांजी) में पीसके कीटविशेष के दंशपर लेप करे तथा विस्फोटक रोग पर लेप करे तो ये विकार दूर हों।।८।।

मुखकांतिकारक लेप

रक्तचन्दनमञ्जिष्ठा लोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः ।
वटांकुरा मसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः।।९।।

अर्थ–लालचन्दन, २ मँजीठ, ३ लोध, ४ कूठ, ५ फूलप्रियंगु, ६ बड़ के अंकुर, ७ मसूर ये सात औषध समभाग लेकर पानी में पीस लेप करे तो झाईं रोग दूर हो और यह लेप मुखपर कांति करता है।।९।।

दूसरा प्रकार

मातुलुंगजटा सर्पिः शिलागोशकृतो रसः ।
मुखकांतिकरो लेपः पिटिकाव्यंगकासजित् ॥१०॥

अर्थ-बिजोरे की जड़ घी मन शील और गौ के गोबर का रस ये ४ औषध एकत्र पीसकर मुखपर लेप करे तो यह लेप मुखपर कांति करे और मुँहासे, व्यंग और नीलिका ये रोग दूर हों॥१०॥

मुँहांसे नाशक लेप

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः । तद्वद् गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥११॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ।

अर्थ-लोध, धनियां और वच ये तीन औषध समान लेकर जल में पीस लेप करे अथवा गोरोचन और कालीमिरच इन दोनों का जल से बारीक पीस के लेप करे। अथवा सफेद सरसों बच लोध और सैंधानमक इन चार औषधों को जल से बारीक पीस के लेप करे। इस प्रकार वे तीन प्रकार के लेप मुख के मुँहांसे दूर करने वास्ते जानने चाहिये॥११॥

व्यंगरोगपर लेप

व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिकः ॥१२॥
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ।

अर्थ-कोहवृक्ष की छाल का चूर्ण अथवा मजीठ का चूर्ण अथवा सफेद घोडे के खुर सम्बन्धी हाड की राख ये तीन औषध पृथक् २ शहद और मक्खन में मिलाके पृथक् २ लेप करे तो व्यंग रोग दूर होवे॥१२॥

मुख की झाईंपर लेप

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात् ॥१३॥
मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ।

अर्थ-आक के दूध में हल्दी को पीस लेप करे तो मुख की बहुत दिन की काली (झाईं) दूर होवे॥१३॥

मुँहांसे आदिपर लेप

वटस्य पांडुपत्राणि मालती रक्तचंदनम् ॥१४॥ कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् । तारुण्यपिटिका-व्यंगनीलिकादि-विनाशनम् ॥१५॥

अर्थ-बड़ के पीले पत्ते, चमेली, लालचंदन, कूठ, दारुहल्दी और लोध इन सब औषधों को एकत्र पीस लेप करे तो जवानी के मुँहांसे और व्यंग नीलिकादिक रोग दूर होवें॥१४॥१५॥

अरुंषिकारोगपर लेप

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥१६॥

अर्थ-तिलों की पुरानी खल और मुरगे की बीठ इन दोनों को गोमूत्र में पीस लेप करे तो अरुंषि का दूर होवे॥१६॥

दूसरा प्रकार

खदिरारिष्टजंबूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः ।
कुटजत्वक्सैन्धवं वा लेपो हन्यादरुंषिकाम् ॥१७॥

अर्थ–खैर, नीम और जामुन इन तीनों की छाल का चूर्ण करके गोमूत्र से लेप करे अथवा कुडे की छाल और सैंधानमक ये दो औषध गोमूत्र में पीस लेप करे तो अरुंषि का रोग दूर होवे॥१७॥

दारुणरोगपर लेप

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥१८॥

अर्थ–१ चिरोंजी, २ मुलहटी, ३ कूठ, ४ उडद और ५ सैन्धानमक ये पांच औषध समान ले बारीक पीस शहद में मिलाय के मस्तक में दारुण (कहिये दारुणरोग) दूर होने के वास्ते लेप करे॥१८॥

दूसरी विधि

दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं जयेत् । आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम् । दुग्धपिष्टः प्रलेपोऽयं दारुणं हंति दारुणम् ॥१९॥

अर्थ–खसखस को दूध में पीस मस्तक पर लेप करे तथा आम की गुठली की गिरी और छोटी हरड इन दोनों का समान भाग चूर्ण ले दूध में पीस लेप करे तो घोर दुर्धर दारुण रोग दूर होवे॥१९॥

इन्द्रलुप्तपर लेप

रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात् ।
इन्द्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम् ॥२०॥

अर्थ–कडवे पटोल के पत्तों का रस निकाल कर उसका तीन दिन लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग निश्चय दूर हो॥२०॥

दूसरी विधि

इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः ।
गुञ्जामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा ॥२१॥

अर्थ–कदेरी का रस निकाल उसमें शहद मिलाके लेप करे अथवा घूंघची का जड़ का अथवा घूघची (चिरमिठी) के रस को शहद में मिलाके लेप करे। अथवा भिलावे के पत्तों का रस निकाल उसमें शहद मिला लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो॥२१॥

केशवृद्धि पर लेप

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी ।
शिरः प्रलेपनं तेन केशसंवर्धनं परम् ॥२२॥

अर्थ–गोखरू तिल के फूल इन दोनों को समान भाग लेके चूर्ण करे। और शहद तथा घी ये दोनों बराबर लेके इसमें चूर्ण को सानके मस्तकपर लेप करे तो केश बढ़ें॥२२॥

केश जमानेवाला लेप

हस्तिदंतमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसाञ्जनम् ।
रोमाण्यनेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ।।२३।।

अर्थ–हाथी के दांतो को जला के उसकी राख कर लेवे यह राख और रसोत इन दोनों को बकरी के दूध में पीस जिस स्थान के बाल उड़ गये हों उस जगह लेप करे तो बाल पैदा हों। यह लेप हाथों की हथेली पर करने से हथेली में भी बाल अवश्य ऊगें।।२३।।

इन्द्रलुप्तरोगपर लेप

यष्टीन्दीवरमृद्वीका तैलाज्यक्षीरलेपनैः ।
इन्द्रलुप्तः शमं याति केशाः स्युः सघना दृढाः ।।२४।।

अर्थ–मुलहटी, कमल और दाख इन तीन औषधों को तिलों का तेल, गौ का दूध और घी इनमें पीसके लेप करे तो इन्द्रलुप्तरोग दूर हो तथा बाल दृष और सघन होवें।।२४।।

केश आने पर दूसरा लेप

चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ।
तैलेन सह लेपोऽयं रोमसंजननः परः ।।२५।।

अर्थ–बकरी आदि चौपाये जीवों की त्वचा (चाम) बाल नख सींग और हाड़ इनकी भस्म कर तिल के तेल मिलाके लेप करे तो यह लेप नवीन केश (बाल) आने में अत्यन्त उत्तम है।।२५।।

केश काले करने का लेप

इन्द्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यङ्गमाचरेत् ।
प्रत्यहं तेन कालाभ्रसन्निभाः कुन्तला ह्यलम् ।।२६।।

अर्थ–इन्द्रायन के बीजों का तेल पातालयन्त्र करके निकालके फिर इसको सफेद बालों पर नित्य लेप करे तो बाल अत्यंत काले होवें।।२६।।

दूसरी विधि

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ।
स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ।।२७।।

अर्थ–१ लोहे का चूर्ण, २ भांगरा, ३ त्रिफला (हरड, बहेडा आंवला) ६ कालीमिट्टी ये छः औषध समान भाग ले चूर्ण कर ईख के रस में डाल के एक महीने पर्यंत धरा रहने दे। फिर अकाल में जो सफेद बाल हुए हों उन पर लेप करे तो काले बाल होवें।।२७।।

तीसरा प्रकार

धात्रीफलत्रयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् ।।२८।। पञ्चाम्रमज्जा लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते । पिष्ट्वा लोहमये भांडे स्थापयेदुषितं निशि ।।२९।। लेपोऽयं हंति न चिरादकालपलितं महत् ।

अर्थ–आमले तीन, हरड दो, बहेड़े का फल एक, आम की गुठली के भीतर की भिंगी पांच लोहचूर्ण एक कर्ष इन संपूर्ण औषधों को लोहे की कड़ाही में बारकी पीस सब रात्रि उसी प्रकार

धरी रहने दो। दूसरे दिन लेप करे तो जिस मनुष्य के थोड़ी अवस्था में सफेद बाल हो गये होवें इस लेप से तत्काल काले हो जाते हैं।।२८।।२९।।

चतुर्थ प्रकार

त्रिफला नीलिकापत्रं लोहं भृङ्गरजः समम् ।
अजामूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं स्मृतम् ।।३०।।

अर्थ–त्रिफला और नीकले पत्ते तथा लोह का चूर्ण एवं भांगरा इन सब औषधों को समान भाग लेके बकरी के मूत्र से पीस लेप करे तो यह लेप सफेद बालों को काले करने में परमोत्तम है।।३०।।

पांचवा प्रकार

त्रिफला लोहचूर्णं च दाडिमीत्वग्बिसं तथा ।।३१।। प्रत्येकं पंचपलिकं चूर्णं कुर्याद्विचक्षणः ।भृङ्गराजरसस्यापि प्रस्थषट्कं प्रदापयेत् ।।३२।। क्षिप्त्वा लोहमये पात्रे भूमिमध्ये निधापयेत् । मासमेकं ततः कुर्याच्छागीदुग्धेन लेपनम् ।।३३।। कूर्चे शिरसि रात्रौ च संवेष्टयैरण्डपत्रकैः । स्वपेत्प्रातस्ततः कुर्यात् स्नानं तेन च जायते।।३४।।पलितस्य विनाशश्च त्रिभिर्लेपैर्न संशयः।

अर्थ–त्रिफला लोहे का चूरा, अनार की छाल और कमल का कंद, ये प्रत्येक पांच पांच पल लेवे। सबको बारीक पीस चूर्ण करे फिर छः प्रस्थ भांगरे का रस निकाल के एक लोहे की कड़ाही में भरके पूर्वोक्त त्रिफला आदि का चूर्ण डाल के एक महीने पर्यन्त जमीन में गाड़ देवे। पश्चात् बाहर निकाल इसमें बकरी का दूध मिलाके मस्तक में रात्रि के समय लेप करे और उस लेप पर अंड के पत्ते बांधके सो जावे। प्रातःकाल उठके स्नान करे, इस प्रकार तीन लेप करे तो जिस मनुष्य के युवावस्था में सफेद बाल हो गये हों वे निश्चय बहुत जल्दी काले हो जाते हैं।।३१-३४।।

केशनाशक प्रयोग

शंखचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम् ।।३५।। मनःशिला चार्धभागा स्वर्जिका चैकभागिका । लेपोऽयं वारिपिष्टस्तु केशानुत्पाटच दीयते ।।३६।। अनया लेपयुक्त्या च सप्तवेलं प्रयुक्तया । निर्मूलकेशस्थानं सत्यात्क्षपणस्य शिरो यथा ।।३७।।

अर्थ–शंखचूर्णस्य दो भाग हरताल एक भाग मनशील, आधा भाग सज्जीखार एक भाग, इन सबको जल में पीस के जिस जगह के बाल निर्मूल करने हों उस जगह उस्तरे से बालों को दूर करके इस औषध का लेप करे। इस प्रकार युक्ति से लेप करे तो बाल के आने का स्थान निर्मूल होवे अर्थात् फिर उस जगह बाल नहीं आवे। और केशस्थान दुंडेरे साधु (पूज) के शिर के समान हो जाता है।।३५-३७।।

दूसरी विधि

तालकं शाणयुग्मं स्यात्षट्शाणं शंखचूर्णकम् । द्विशणिकं पलाशस्य क्षारं दत्वा प्रमर्दयेत् ।।३८।। कदलीदंडतोयेन

रविपत्ररसेन वा । अस्यापि सप्तभिर्लेपैर्लोम्नां शातन-
मुत्तमम् ॥३९॥

अर्थ-हरताल २ शाण और शंख का चूर्ण छः शाण तथा पलाश (ढ़ाक) का खार २ शाण इन सब औषधों को केला के दंडे के रस में अथवा आक के पत्तों के रस में खरलकर केश दूर करने की जगह सात बार लेप करे। यह लेप केश दूर करने के विषय में परमोत्तम है॥३८॥३९॥

सफेद कोढ़ दूर होने का औषध

सुवर्णपुष्पीकासीसं विडंगानि मनःशिला ।
रोचनासैन्धवं चैव लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥४०॥

अर्थ-१ पीली चमेली, २ हीराकसीस, ३ वायविडंग, ४ मनशिल, ५ गोरोचन, ६ सैंधानमक, ये छः औषध समान भाग ले गोमूत्र से पीस लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ (सफेद कोढ़) दूर हो॥४०॥

दूसरी विधि

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता । वस्तमूत्रेण संपिष्टा
प्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥४१॥ तालकं शाणमात्रं स्याच्चतुः
शाणा च वाकुची । गोमूत्रपिष्टं तच्चूर्णं लेपनाच्छ्वित्र-
नाशनम् ॥४२॥

अर्थ-१ काकतुंडी, २ परमा के बीज, ३ कूठ, ४ पीपल ये चार औषध समान भाग लेकर बकरे के मूत्र से लेप करे तो श्वित्रकुष्ठ दूर होवे। हड़ताल ४ मासे, बावची १६ मासे गोमूत्र से पीस लेप करे तो श्वेतकुष्ठ दूर हो॥४१॥४२॥

तीसरी विधि

बाकुंची वेतसो लाक्षा काकोदुम्बरिकाकणा । रसांजनमश्यचूर्णं
तिलाः कृष्णास्तदेकतः ॥४३॥ चूर्णयित्वा गवां पित्तैः पिष्ट्वा
च गुटिका कृता । अस्याः प्रलेपाच्छ्वित्राणि प्रणश्यंत्यति-
वेगतः ॥४४॥

अर्थ-१ बावची, २ अमलवेत, ३ लाख, ४ कठूभर, ५ पीपल, ६ सुरमा, ७ लोह का चूर्ण, ८ काले तिल, ये आठ औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे। फिर गौ के पित्त से इन सब औषधों को खरल करके गोली कर फिर लेप करे। इस लेप के प्रभाव से श्वित्रकुष्ठ बहुत जल्दी दूर होवे॥४३॥४४॥

विभूतपर लेपन

धात्रीसर्जरसश्चैव यवक्षारश्च चूर्णितैः ।
सौवीरेण प्रलेपोऽयं प्रयोज्यः सिध्मनाशने ॥४५॥

अर्थ-१ आंवले, २ राल, ३ जवाखार, इन तीन औषधों को सौवीर में अथवा कांजी में पीस के विभूत (बनरफ) रोग दूर करके को प्रयुक्त करे॥४५॥

दूसरा प्रकार

दार्वी मूलकबीजानि तालकं सुरदारु च । तांबूलपत्रं सर्वाणि

कार्षिकाणि पृथक्पृथक् ॥४६॥ शंखचूर्णं शाणमात्रं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् । लेपोऽयं वारिणा पिष्टः सिध्मानां नाशनः परः ॥४७॥

अर्थ–१ दारुहल्दी, २ मूली के बीज, ३ हरताल, ४ देवदारु, ५ नागरवेल के पान, ये पांच औषध एक एक कर्ष तथा शंख का चूर्ण १ शाण ले। इन सब औषधों का चूर्ण करके बल से पीस के लेप करे तो विभूत रोग दूर हो॥४६॥४७॥

नेत्ररोगपर लेप

हरीतकी सैन्धवं च गरिकं च रसाञ्जनम् ।
बिडालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः ॥४८॥

अर्थ–१ हरड, सैंधानमक, ३ गेरू और ४ रसोत ये चार औषध समान भाग ले जल से पीस के बिडालक अर्थात् नेत्रों के बाहर लेप करे। इसको बिडालक कहते हैं। इस लेप करके नेत्र के सर्व विकार दूर होवें॥४८॥

दूसरी विधि

रसाञ्जनं व्योषयुतं संपिष्टं वटकीकृतम् ।
कण्डूपाकान्वितां हंति लेपादंजननामिकाम् ॥४९॥

अर्थ–१ रसांजन, व्योष (२ सोंठ, ३ मिरच, ४ पीपल) ये चार औषध समान भाग लेकर पानी से पीस गोली करे। इसको जल में घिसके खुजलीयुक्त तथा पाकयुक्त अंजननामिका (गुहांजनी) गुहेरी जो नेत्रों के कोए पर होती हैं उसके दूर करने को लगावे तो गुहेरी दूर हो॥९॥

खुजली आदि पर लेप

प्रपुन्नाटस्य बीजानि बाकुची सर्षपास्तिलाः ।
कुष्ठं निशाद्वयं मुस्तं पिष्ट्वा तक्रेण चैकतः ॥५०॥
प्रलेपादस्य नश्यंति कंडूदद्रुविचर्चिकाः ।

अर्थ–१ पनवाढ के बीज, २ बावची, ३ सरसों, ४ नील, ५ कूठ, ६ हल्दी, ७ दारुहल्दी, ८ नागरमोथा, ये आठ औषध समान भाग ले चूर्ण करे। छाछ में पीस कै इसका लेप करे तो खुजली दाद और विचर्चिका (पैरों का फटना) रोग दूर होवें॥५०॥

हेमक्षीरी विडङ्गानि दरदं गन्धकस्तथा ॥५१॥ दद्रुघ्नः कुष्ठसिन्दूरं सर्वाण्येकत्र मर्दयेत् । धत्तूरनिम्बतांबूलीपत्राणां स्वरसैः पृथक् ॥५२॥ अस्य प्रलेपमात्रेण पामादद्रूविचर्चिकाः । कण्डूश्च रसकश्चैव प्रशमं याति वेगतः ॥५३॥

अर्थ–१ चोक, २ बायविडंग, ३ शिंग्रफ, ४ गन्धक, ५ पनवाढ़ के बीज, ६ कूठ, ७ सिंदूर ये सात औषध समान भाग लेकर धतूरे के पत्ते तथा नीम के पत्ते और नागरबेल के पत्तों का रस इनमें पृथक् पृथक् खरल कर एक एक का लेप करे तो खाज दाद और विचर्चिका कंडू और रकस (सूखी खाज) रोग (कुष्ठरोग का भेद) संपूर्ण दूर होवें॥५१-५३॥

दूसरा प्रकार

दूर्वाऽभया सैन्धवं च चक्रमर्दः कुठेरकः । एभिस्तक्रयुतो लेपः कण्डूदद्रूविनाशकः ॥५४॥ दूर्वानिशायुतो लेपः कण्डू-पामा विनाशनः । क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तापहः स्मृतः ॥५५॥

अर्थ–१ दूब, २ छोटी हरड, ३ सैंधानमक, ४ पनवाढ़ के बीज, ५ वन तुलसी, ये पांच औषध समान भाग ले छाछ में पीस लेप करे तो खुजली और दाद ये दूर हों। दूब और हल्दी पीसकर लेप करने से खाज पामा दाद शीतपित्त और क्रिमि दूर हों।।५४।।५५।।

रक्तपित्तादिकोंपर लेप

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥५६॥

अर्थ–१ लालचन्दन, २ खस, ३ मुलहटी, ४ गंगेरन की जड़, ५ वघनखी, ६ कमल, ये छः औषध समान भाग ले दूध में पीस लेप करे तो रक्तपित्त सम्बन्धी मस्तकपीड़ा दूर हो।।५६।।

उदर्दरोगपर लेप

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह ।
कटुतैलेन संमिश्रमुदर्दघ्नं प्रलेपनम् ॥५७॥

अर्थ–१ सफेद सरसों, २ हल्दी, ३ कूठ, ४ पमार के बीज, ५ तिल इन पांच औषधों को समान भाग ले बारीक चूर्ण करके सरसों के तेल में मिलाय के लेप करे तो शीतपित्त का भेद उदर्द रोग जो है वह दूर हो।।५७।।

वातविसर्परोगपर लेप

रास्ना नीलोत्पलं दारु चंदनं मधुकं बला ।
घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥५८॥

अर्थ–१ रास्ना और २ नीलाकमल, ३ देवदारु, ४ लालचन्दन, ५ मुलहटी, ६ गंगेरन की जड़, ये छः औषध समान भाग लेकर बारीक चूर्ण कर दूध में अथवा घी में पीसकर लेप करे तो वातविसर्प रोग दूर हों।।५८।।

पित्तविसर्परोगपर लेप

मृणालं चंदनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम् ।
सारिवामालकं पथ्या लेपः पित्तविसर्पनुत् ॥५९॥

अर्थ–१ कमल का डँठरा, २ लालचंदन, ३ लोघ्र, ४ खस, ५ कमल, ६ छोटा कमल, ७ सारिवा, ८ आंवले, ९ छोटी हरड, ये औषध समान भाग ले पानी से पीस लेप करे तो पित्त विसर्प दूर हो।।५९।।

कफविसर्प पर लेप

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगा करवीरकम् ।
नलमूलमनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥६०॥

अर्थ–त्रिफला (हरड २ बहेडा ३ आंवला) ४ पद्मास ५ खस ६ धाय के फूल ७ कनेर ८ नरसल की जड़ ९ धमासा ये नौ औषध समान भाग ले जल से पीस लेप करे तो कफविसर्प दूर हो।।६०।।

पित्तवातरक्तपर लेप

मूर्वा नीलोत्पलं पद्म शिरीषकुसुमैः सह ।
प्रलेपः पित्तवातास्रे शतधौतघृतप्लुतः ।।६१।।

अर्थ–१ मूर्वा, २ नीला कमल, ३ पद्माख और ४ सिरका का खूल, ये चार औषध समान भाग लेकर चूर्ण करे तथा सौ बार धुले हुए घी में इस चूर्ण को मिलाय के लेप करे तो पित्तवातरक्त दूर होवे।।६१।।

नाक से रुधिर पिरने पर लेप

आमलं घृतभृष्टं तु पिष्टं कांजीकवारिभिः ।
जयेन्मूर्ध्नि प्रलेपेन रक्तं नासिकया स्रुतम् ।।६२।।

अर्थ–आंवले को घी में भून कांजी में पीस मस्तक पर लेप करे तो नाक जो रुधिर गिरता है वह दूर होवे।।६२।।

वातकी मस्तकपीड़ा पर लेप

कुष्ठमेरंडतैलेन लेपात्कांजिकपेषितम् ।
शिरोर्तिं वातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ।।६३।।

अर्थ–कूठ अथवा मुकुन्द के फूलों को कांजी में पीस उसमें अरण्डी का तेल मिलाके वातमम्बन्धी मस्तकपीड़ा दूर होने को लेप करे।।६३।।

दूसरा प्रकार

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ।
सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोऽर्तिनुत् ।।६४।।

अर्थ–१ देवदारु, २ तगर, ३ कूट, ४ नेत्रवाला और ५ सोंठ ये पांच औषध समान भाग ले काजी से पीस उसमें अरण्डी का तेल मिलाय के लेप करे तो वातसंबधी मस्तकपीड़ा दूर हो।।६४।।

पित्तशिरोरोग पर लेप

धात्रीकसेरुह्रीबेरपद्मपद्मकचन्दनैः । दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम् ।। शिरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा ।।६५।।

अर्थ–१ आँवला, २ केसर, ३ नेत्रवाला, ४ कमल, ५ पद्माख, ६ रक्तचदन, ७ दूब की जड़, ८ खस और ९ नरसल की जड़, इन नौ औषधों को जल में पीस के लेप करे तो पित्तसंबधी मस्तकपीड़ा दूर होवे।।६५।।

कफसम्बन्धी मस्तकपीड़ा पर लेप

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ।
मांसीरास्नारुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् ।।६६।।

अर्थ–१रेणुका, २ तगर, ३ पत्थर का फूल, ४ नागरमोथा, ५ इलायची, ६ अगर, ७ देवदारु, ८ जटामांसी, ९ रास्ना, १० अंडकी जड़, ये दश औषध समान भाग ले गरम जल में पीस के कफसंबधी मस्तकपीड़ा पर लेप करे तो अच्छी हो।।६६।।

दूसरा प्रकार

शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः सरोहिषैः ।

मूत्रपिष्टैः सुखोष्णश्च लेपः श्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ।।६७।।

अर्थ–१ सोंठ, २ कूठ, ३ पनवाड़ के बीज, ४ देवदारु, ५ रोहितृण ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्र में पीस सुखोष्ण लेप करे तो कफसंबधी मस्तकपीड़ा दूर हो।।६७।।

सूर्यावर्त्त तथा अर्धभेद पर लेप

सारिवाकुष्ठमधुकं वचाकृष्णोत्पलैस्तथा ।

लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यावर्ताधभेदयोः ।।६८।।

अर्थ–१ सारिवा, २ कूठ, ३ मुलहटी, ४ वच, ५ पीपल तथा ६ नीला कमल, ये छः औषध समान भाग लेकर कांजी में पीस उसमें अंडी का तेल मिला के लेप करे तो सूर्यावर्त्त रोग, आंधासीसी ये रोग दूर हों।।६८।।

कनपटी अनंतवान तथा सर्वशिरोरोगों पर लेप

वरी नीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा ।

शंखकेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित् ।।६९।।

अर्थ–१ शतावर, २ नीला कमल, ३ दूब, ४ काला तिल और ५ पुनर्नवा, ये पांच औषध समान भाग लेकर पानी में पीस लेप करे तो कनपटी की पीड़ा, अनंतवान और सर्व मस्तक के रोग दूर हों।।६९।।

दूसरा प्रकार

अथ लेपविधिश्चान्यः प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ।

द्वौ तस्य कथितौ भेदौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ।।७०।।

अर्थ–इसके अनंतर बुद्धिमानों को मान्य ऐसे दूसरे लेप की विधि है तिसमें एक प्रलेपाख्य और दूसरी प्रदेहक इस प्रकार दो भेद जानने।।७०।।

उन दोनों लेपों के उच्चत्व में प्रमाण

चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोन्नतं समितिस्तयोः ।।

शीतस्तनु विशोषी च प्रलेपः परिकिर्तितः ।

आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा ।।७१।।

अर्थ–वे प्रलेपक और प्रदेहक ये दो लेप भैंस की गीली चाम जितनी मोटी होती है इतने मोटे होने चाहिये। तथा उसके गुण कहते हैं कि शीतवीर्य अर्थात् सूक्ष्मरूप स्रोतसों (छिद्रों) में प्रवेश करनेवाले तथा दोष को रोधन कर्ता ऐसा प्रलेपक जानना। आर्द्र (द्रवयुक्त) और सघन तथा उष्ण कफवायु को दूर करनेवाला ऐसा प्रदेहक लेप जानना चाहिये।।७१।।

दोनों प्रकार के लेप किस जगह देने

रोमाभिमुखमादेयौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ।

वीर्यं सम्यग्विशत्याशु रोगकूपैः शिरामुखैः ।।७२।।

अर्थ–प्रलेपाख्य और प्रदेहक ये दोनों लेप रोम सन्मुख करके देवे अर्थात् सब रोगों को खड़े करके लेप करे। इसका यह कारण है कि शिरारूप जो रोमरंध्र उनके द्वारा उस लेप का वीर्य उत्तम रीति से शरीर में प्रवेश करता है।।७२।।

साधारण लेपविषय में निषेध

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ।
शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेह पीडनं प्रति ।।७३।।

अर्थ–रात्रि में लेप न करे। उस लेप के सूखने पर उसको धारण न करे। कारण यह है कि लेप सूखने पर उसको लगा रहने से देह को अत्यंत पीड़ा होती है और पीडनार्थ प्रदेह की सूखने की अपेक्षा उपयुक्त है।।७३।।

रात्रि में निषेध का हेतु

तमसा पिहितो ह्यूष्मा,रोमकूपमुखे स्थितः ।
विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेत्ततः ।।७४।।

अर्थ–रात्रि में अन्धकार करके शरीर संबधी ऊष्मा आच्छादित हों रोमरंध्रमुखों में आकर रहती है और बिना लेप के वह बाहर निकलती है, इसी से रात्रि में लेप न करे।।७४।।

रात्रि में प्रलेपादिकों की विधि तथा योग्य प्राणी

रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः ।
अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे ।।७५।।

अर्थ–जिस सूजन का पाक नहीं हुआ हो उस पर तथा गंभीरसंज्ञक जो व्रण उसमें एवं रक्तकफ से उत्पन्न जो सूजन उसमें बुद्धिमान् वैद्य रात्रि में भी लेपादिकों की विधि करे।।७५।।

व्रण दूर होने पर लेप

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः । तृतीयश्चापनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः ।।७६।। पञ्चमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते । सप्तमो वर्णकरणो व्रणस्यैते क्रमा मताः ।।७७।।

अर्थ–प्रथम व्रण संबन्धी जो सूजन होती है उसके दूर करने को लेप करे। दूसरा लेप व्रण में जो रुधिर जमा रहता है वह पिघल जावे, ऐसा लेप करे। तीसरा लेप उपनाह कहिये, पसीने निकालने का प्रयोग है। चौथा लेप व्रण फूटे, ऐसा करे। पांचवाँ लेप राध आदि का शोधन हो, ऐसा करे। छटा लेप रोपण कहिये, व्रण भर आवे, ऐसा करे। सातवां लेप व्रणके स्थान पर कांति आवे, ऐसा करे। इस प्रकार व्रण अच्छा होने के विषय में सात क्रम जानने। वे औषध आगे कहते हैं।।७६।।७७।।

व्रणसम्बन्धी वायु की सूजन पर लेप

बीजपूरजटामांसी देवदारु महौषधम् ।
रास्नाग्निमन्थो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः ।।७८।।

अर्थ–१ विजोरे की जड़, २ जटामांसी, ३ देवदारु, ४ सोंठ, ५ रास्ना, ६ अरणी की जड़, ये छः औषध समान भाग लेकर पानी में पीस व्रणसंबधी जो वादी की सूजन है उसके दूर करने को लेप करे।।७८।।

पित्त की सूजन पर लेप

मधुकं चंदनं मूर्वा नलमूलं च पद्मकम् ।
उशीरं बालकं पद्मं पित्तशोथे प्रलेपनम् ।।७९।।

अर्थ–१ मुलहटी, २ लालचंदन, ३ मूर्वा, ४ नरसल की जड़, ५ पद्माख, ६ खस, ७ नेत्रवाला, ८ कमल, ये आठ औषधि समान भाग ले जल से पीस व्रणसम्बन्धी पित्त की सूजन पर लेप करे।।७९।।

कफजन्य व्रण की सूजन पर लेप

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा ।
मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहृत् ।।८०।।

अर्थ–१ पीपल, २ पुरानी खल, ३ सहँजने की छाल, ४ खांड और ५ हरडे, ये पांच औषध समान भाग ले गोमूत्र में पीस के थोड़ा गरम करके कफसंबधी सूजन दूर करने को यह गोमूत्र प्रदेह संज्ञक लेप करे।।८०।।

आगंतुक सूजन तथा रक्तजन्य सूजन पर ले

द्वे निशे चन्दने द्वे च शिवा दूर्वा पुनर्नवा । उशीरं पद्मकं लोध्रं गैरिकं च रसाञ्जनम् ।।८१।। आगंतुके रक्तजे च शोथे कुर्यात्प्रलेपनम् ।।८२।।

अर्थ–१ हल्दी, २ दारुहल्दी, ३ चंदन, ४ लालचंदन, ५ हरड, ६ दूब, ७ पुनर्नवा (सांठ), ८ खस, ९ पद्माख, १० लोध, ११ गेरू, १२ रसोंत, ये बारह औषध समान भाग ले, जल में बारीक पीस आगंतुक तथा रक्तजन्य सूजन दूर होने के वास्ते लेप करे।।८१।।८२।।

व्रण पकने का लेप

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ।
सक्तव[१०६]: किण्व[१०७]मतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ।।८३।।

अर्थ–१ सन के बीज, २ मूली के बीज, ३ सहँजने की बीज, ४ तिल, ५ सरसों, ६ जौं के सत्त, ७ लोह की कीटी, ८ अलसी के बीज, ये आठ औषध समान भाग ले व्रण पकने को यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे।।८३।।

पके व्रण फोड़ने का लेप

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः ।
भल्लातकश्च कासीसं सैन्धवं दारणे स्मृतः ।।८४।।

अर्थ–१ दंती की जड़, २ चीने की छाल, ३ थूहर का दूध, ४ आक का दूध, ५ गुड़, ६ भिलावे, ७ हीराकसीसी, ८ सैंधानमक। इन आठ औषधों में से छः औषधों का चूर्ण करके उसको थूहर के दूध और आके के दूध में मिलाके पके हुए व्रण पर लगावे तो वह फूट जावे।।८४।।

दूसरा प्रकार

चिरबिल्वोग्निको दंती चित्रको हयमारकः ।
कपोतकंकगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ।।८५।।

अर्थ–१ कारंज के बीज, २ कलहारी, ३ भिलावे, ४ दंती की जड़ा, ५ चीते की छाल, ६ कनेर की जड़ इन छः औषधों का चूर्ण करे। फिर कपोत (कबूतर वा पिंडुकिया) कंक (सफेद चील्ह) और गींध इन तीनों की बीठ समान भाग लेकर उस चूर्ण में मिलाके पके हुए फोड़े पर लेप करे तो वह फोड़ा तत्काल फूट जावे।।८५।।

तीसरा प्रकार

सर्जिका यावशूकाढ्याः क्षारा लेपेन दारणाः ।
हेमक्षीर्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥८६॥

अर्थ–सज्जीखार और जवाखार इनका लेप फोड़ा फोड़ने को करे, उसी प्रकार हमक्षीरा (चोक) का लेप फोड़े को उत्तम कहा है॥८६॥

व्रणशोधन लेप

तिल–सैन्धव–यष्टयाह्व–निम्बपत्र–निशायुगैः ।
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥८७॥

अर्थ–१ तिल, २ सैन्धानमक, ३ मुलहटी, ४ नीम के पत्ते, ५ हल्दी, ६ दारुहल्दी, ७ निसोथ। ये सात औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर घी में सानके लेप करे तो व्रण का शोधन होवे॥८७॥

व्रण के शोधन और रोपणविषयक लेप

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ।
तिलैश्च सह संयुक्तो लेपः शोधनरोपणः ॥८८॥

अर्थ–१ नीम के पत्ते, २ घी, ३ सहत, ४ मुलहटी, ५ तिल, इन पांच औषधों में से तीन औषधों का चूर्ण करके उसमें घी शहद मिलाके व्रण का शोधन और रोपण करने के वास्ते लेप करे॥८८॥

व्रणसम्बन्धी क्रमि दूर करने पर लेप

करंजारिष्टनिगुंडीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ।
लशुनस्याथ वा लेपो हिंगुनिंबभवोऽथवा ॥८९॥

अर्थ–१ करंज, २ नीम, ३ निर्गुंडी, इन तीन औषधों के पत्तों को पीस व्रणसंबंधी क्रमि दूर होने को लेप करे। अथवा केवल लहसन का लेप करे अथवा हींग और नीम के पत्ते दोनों को एकत्र पीस के लेप करे॥८९॥

व्रण के शोधन और रोपण पर दूसरा लेप

निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥९०॥

अर्थ–१ नीम के पत्ते, २ तिल, ३ दंती, ४ निशोथ, ५ सेंधानमक, ये पांच औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहत में सान के दुष्ट व्रण के शमन होने और शोधन तथा रोपण कहिये मरने के वास्ते लेप करे॥९०॥

उदरशूल में नाभि पर लेप

मदनस्य फलं तिक्तां पिष्ट्वा कांजिकवारिणा ॥
कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशांतिर्भवेत्ततः ॥९१॥

अर्थ–१ मैनफल, २ कुट की इन दोनों औषधों को समान भाग ले कांजी से पीस कुछ गरम करके वागी पर लेप करे तो पेट का शूल (दर्द) दूर हो॥९१॥

वातविद्रधि पर लेप

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्‌गकैः ।
सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ।।९२।।

अर्थ–१ सहँजने की छाल, २ निर्गुंडी के पत्ते, ३ अरंड की जड़, ४ जौ, ५ गेहूँ, ६ मूँग, ये छः औषध भाग लेकर पानी में पीस वातद्रिधि रोग दूर होने के वास्ते सहन हो, ऐसा गरम करके गाढ़ा लेप लगावे।।९२।।

पित्तविद्रधिपर लेप

पैत्तिके सर्पिषा लाजमधुकैः शर्करान्वितैः ।
प्रलिम्पेत्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ।।९३।।

अर्थ–शालि चावल की खील, मुलहठी इन दोनों का चूर्ण और खांड इन दोनों को घी में सान के लेप करे। अथवा पयस्या (क्षीरकाकोली) उसके अभाव में असगंध खस और लाल चंदन ये तीन औषध दूध में पीस के लेप करे तो पित्तविद्रधि दूर हो।।९३।।

कफविद्रधि लेप

इष्टका सिकता लोहकिट्टं गोशकृता सह ।
सुखोष्णश्च प्रदेहोऽयं मूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ ।।९४।।

अर्थ–१ ईंट, १ वालूरेत, ३ लोह की कीट, ४ गौ का गोबर, ये चार औषध समान भाग लेकर गोमूत्र में पीसकर वह प्रदेहसंज्ञक लेप कफविद्रधिपर करे तो कफ की बिद्रधि दूर हो।।९४।।

आगन्तुकविद्रधिपर लेप

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ।
क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागंतुनिमित्तजे ।।९५।।

अर्थ–१ लालचन्दन, २ मँजीठ, ३ हल्दी, ४ मुलहठी, ५ गेरू, ये पांच औषध समान भाग ले दूध में पीस अभिघातनिमित्त करके दुष्ट हुए रुधिर से उत्पन्न विद्रधि पर लेप करे।।९५।।

वातगल गण्ड पर लेप

निचुलः शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा ।
प्रदेहो वातगण्डेषु सुखोष्णः संप्रदीयते ।।९६।।

अर्थ–१ जलवेतस, २ सहँजने की बीज इन दोनों को जल से पीस वात गलगंड दूर होने के वास्ते यह प्रदेहसंज्ञक लेप सहन होवे, ऐसा थोड़ा गरम करके करे। अथवा दशमूल को पीस के लेप करे।।९६।।

कफ के गलगण्ड पर लेप

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रदेहकः ।।९७।।

अर्थ–१ देवदारु, २ इन्द्रायणी की जड़, इन दोनों औषधों को जल से पीस कफगलगण्ड दूर होने को यह प्रदेहसंज्ञक लेप करे।।९७।।

अपचीरोगपर लेप

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ।।९८।।

अर्थ–१ सरसों, २ नीम के पत्ते, ३ भिलावें ये तीन औषध समान भाग लेके जला डाले। जब राख हो जावे तब इस राख को बकरे के मूत्र में सान कर अपचीरोग जो गण्ड माला का भेद है उसके दूर करने को लेप करे॥९८॥

गण्डमाला, अर्बुद तथा गलगण्डपर लेप

सर्षपाः शिवबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥९९॥
गण्डमालार्बुदं गंडं लेपेनानेन शाम्यति ।

अर्थ–१ सरसों, २ सहँजने के बीज, ३ सनके बीज, ४ अलसी के बीज, ५ जौ, ६ मूली के बीज ये छः औषध समान भाग लेकर खट्टी छाछ में पीस गंडमाला अबुद और गलगंड के रोग दूर करने को लेप करे॥९९॥

अपबाहुकवातरोगपर लेप

तक्षयित्वा क्षुरेणाङ्गं केवलानिलपीडितम् ॥१००॥ तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्टं गुञ्जाफलैः कृतम् । तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा ॥१०१॥ अन्यापि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः ।

अर्थ–केवल बादीस पीडित मनुष्य के अंग में जिस जगह वादी का कोप होवे उस स्थान को छूरे से मूंड बाल दूर करके उस स्थान पर घुंघुची को जल में पीस के लेप करे तो अपबाहुक वाय, विश्वाची वायु (जो भुजा में होती है) तथा गृध्रसी वायु (जंघारोग) विशेष वायु दूर हों तथा और प्रकार के वायुसम्बन्धी रोग इस लेप करके तत्काल दूर हो॥१००–१०१॥

श्लीपदरोगपर लेप

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥१०२॥
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ।

अर्थ–१ धतूरे के पत्ते, २ अण्ड के पत्ते, ३ निर्गुडी के पत्ते, ४ पुनर्नवा जड़सहित, ५ सहँजने की छाल, ६ सरसों इन औषधों को पीस बहुत दिन का तथा दारुण श्लीपद रोग दूर होने के वास्ते वह लेप करे॥१०२॥

कुरण्डरोगपर लेप

अजाजी हपुषा कुष्ठमेरण्डबदरान्वितम् ॥१०३॥
कांजिकेन तु संपिष्टं कुरण्डघ्नं प्रलेपनम् ।

अर्थ–१ जीरा, २ हाऊबेर, ३ कूठ, ४ अण्ड की जड़, ५ बेर की छाल इन पांच औषधों को समान भाग लेकर कांजी में पीस कुरंड (अण्डवृद्धि) रोग दूर होने के लिये यह लेप करना चाहिये॥१०३॥

उपदंशरोगपर लेप

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा ॥१०४॥
असाध्यापि जरत्याशु लिङ्गोत्था रुक् प्रलेपनात् ।

अर्थ–कनेर की जड़ को जल में पीस के लेप करे तो लिंग में जो उपदंश सम्बन्धी पीडा वह असाध्य भी तत्काल दूर होवे॥१०४॥

उपदंशपर दूसरा लेप

दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता ।।१०५।।
उपदंशे प्रलेपोयं सद्यो रोपयति व्रणम् ।

अर्थ–त्रिफले को कडाही में जलाके उसको रात को शहद में मिलाय के लेप करे तो लिंग में जो उपदंश सम्बन्धी व्रण होते हैं उनका तत्काल रोपण हो अर्थात् वह घाव आदि भर जावे।।१०५।।

उपदंश पर तीसरा लेप

रसांजनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् ।।१०६।।
सक्षौद्रं लेपनं योज्यमुपदंशगदापहम् ।

अर्थ–१ रसोत, २ सिरस की छाछ, ३ हरड ये तीन औषध समान भाग चूर्ण कर शहद में मिलाय के लिंग पर लेप करे तो उपदंश सम्बन्धी जो लिङ्ग में घाव आदि उपद्रव होते हैं ये तत्काल नष्ट हों।।१०६।।

अग्निदग्धपर लेप

अग्निदग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ।।१०७।। सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् । तन्दुलीयकषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ।।१०८।।

अर्थ–१ वंशलोचन, २ पिलखन, ३ लाल चन्दन, ४ गेरू, ५ गिलोय इन पांच औषधों को समान भाग लेके चूर्ण करे। फिर घी में मिला जिस मनुष्य की देह अग्नि से जल गई हो उस पर लेप करे। अथवा चौलाई का काढा करके उसमें घी डाल के उसका लेप करे।।१०७।।१०८।।

दूसरा लेप

यवान् दग्ध्वा मसी कार्या तैलेन युतया तया ।
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषु प्रलेपो व्रणरोपणः ।।१०९।।

अर्थ–जवों को जलाकर राख करके तिल के तेल में मिलाकर मनुष्य के देह पर अग्नि से जले हुए स्थान पर लेप करे तो जलने से जो घाव हुआ हो वह भर के शरीर जैसे का तैसा हो जावे। अग्नि का जलना प्लुष्टादि भेद से चार प्रकार का है सो माधव निदान से जान लेना चाहिये।।१०९।।

योनी कठोर करने का लेप

पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ।
मधुना योनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ।।११०।।

अर्थ–१ पलास (ढाक) के फल, २ गूलर के फल इन दोनों का चूर्ण कर तिल के तेल में मिलाय के तथा उसमें शहद मिलायके योनी में लेप करे तो शिथिल हुई भी योनि इस लेप से कठोर अर्थात् तंग हो जावे।।११०।।

दूसरा लेप

माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ।
गतेऽपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढातिजायते ।।१११।।

अर्थ–आम की मज्जा तथा कपूर इन दोनों का चूर्ण कर शहद में मिला योनि में लेप करे तो

वृद्धा (बुड्ढी) स्त्री की भी योनि सुकड़ के अत्यंत तंग हो जावे।।१११।।

लिंग और स्तनादिक की वृद्धि करने का लेप

मरीचं सैन्धवं कृष्णा तगरं बृहतीफलम् ।अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं यवा माषाश्च सर्षपाः ।।११२।। अश्वगन्धा च तच्चूर्णं मधुना सह योजयेत् । अस्य सन्ततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते ।।११३।। लिङ्गवृद्धिः स्तनोत्सेधः संहतिर्भुजकर्णयोः ।

अर्थ–१ कालीमिरच, २ सैंधानमक, ३ पीपल, ४ तगर, ५ कटेरी के फल, ६ ओंगा के बीज, ७ काले तिल, ८ कूट, ९ सैंधानमक, १० उडद, ११ सरसों, १२ असगंध ये बारह औषध समान भाग लेकर चूर्ण कर शहद में मिला लिंग पर निरन्तर अर्थात् नित्यप्रति लेप कर मर्दन करे तो लिंग मोटा हो। इसी प्रकार स्त्रियों के स्तनों पर करे तथा भुजा और कर्ण (कान) पर लेप कर मर्दन करे तो इनकी वृद्धि होवे।।११२।।११३।।

लिंग वृद्धि पर दूसरा लेप

सिताश्वगंधा सिन्धूत्थं छागक्षीरैर्घृतं पचेत् ।।११४।।
तल्लेपान्मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिः सञ्जायते परा ।

अर्थ–सफेद फूल की असगंध और सैंधानमक ये दोनों औषध बारीक करके इस चूर्ण से चौगुना घी और घी से चौगुना भेड़ का दूध ले सबको एकत्र कर चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे। जब सब वस्तु जलकर केवल घी मात्र शेष रहे तब इस घी को लिंग पर लेप करके मर्दन करे तो लिंग स्थूल होवे।।११४।।

योनिद्रावणकारी लेप

इन्द्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत् ।।११५।। रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन च मुहुर्मुहुः । तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते ।।११६।।

अर्थ–इन्द्रायण के पत्तों का रस निकालके उस रस में पारा मिलायके लाल फूलके कनेर की लकड़ी से उसको खरल करे अर्थात् घोटे। इस प्रकार बारंबार अर्थात् जब जब रस सूख जावे तब २ और रस डालके पारे को घोटे। इस प्रकार पांच सात बार घोट के लिङ्ग पर लेप करें। पश्चात् शिश्न और संयोग होते ही पुरुषों की अपेक्षा स्त्री का वीर्य तत्काल पतन हो स्त्री हतवीर्य हो।।११५।।

दुर्गंध दूर करने का लेप

तांबूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम् ।
वारिणा लेपनं कुर्याद्गात्रदौर्गंध्यनाशनम् ।।११७।।

अर्थ–१ पान, २ कूठ, ३ हरड इन तीनों का चूर्ण कर जल में मिलाय के शरीर में लेप करे तो देहसम्बन्धी दुर्गंध दूर होवे।।११७।।

दूसरा लेप

कुलित्थसक्तवः कुष्ठं मांसी चन्दनजं रजः । सक्तवश्चणकस्यैव त्वक्चैवैकत्र कारयेत्।।११८।। स्वेददौर्गंध्यनाशश्च जायतेऽस्याद्धूलनात् ।

अर्थ–१ कुलथी का सत्त, २ कूठ, ३ जटामांसी, ४ सफेद चन्दन, ५ चने का भुना हुआ चून इन सबका चूर्ण करके शरीर में इस चूर्ण का अवधूलन (मालिश) करे तो देह में पसीनों का आना और देह की दुर्गंध दूर होवे॥११८॥

वशीकरण लेप

वचा सौवर्चलं कुष्ठं रजन्यो मरिचानि च ।
एतल्लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम् ॥११९॥

अर्थ–१ वच, २ संचरनमक, ३ कूठ, ४ हल्दी, ५ दारुहल्दी, ६ काली मिरच ये छः औषध समान भाग ले, जल से पीस शरीर में लेप करे। यह लेप वशीकरणकर्त्ता उत्तम प्रयोग है॥११९॥

मस्तक में तेल धारण करने के चार प्रकार

अभ्यङ्गः परिषेकश्च पिचुर्वस्तिरिति क्रमात् ।
मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद्बलवच्च यथोत्तरम् ॥१२०॥

अर्थ–अभ्यंग कहिये मस्तक में तेल का मर्दन, परिषेक कहिये मस्तक में तेल को चुपड़ना तथा पितु कहिये रुई के फोहे को अथवा कपड़े के टुकड़े को तेल में भिगो के मस्तक पर धारण करना। और वस्ति कहिये चमड़े की वस्ति बना के मस्तक पर तेल धारण करने का प्रयोग। वह आगे के श्लोक में कहा है इस प्रकार मूर्ध तैल के (मस्तक में तेल धारण करने के) चार भेद हैं सो क्रम से एक की अपेक्षा दूसरा बलवान् है॥१२०॥

शिरोवस्ति की विधि

त्रयोऽभ्यङ्गादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः ।
शिरोवस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ॥१२१॥

अर्थ–पिछले श्लोक में कहे हुए अभ्यंग परिषाकादिक तीन प्रकार सर्वत्र स्थलों में प्रसिद्ध हैं तथा शिरोवस्ति की विधि नहीं कही इस वास्ते बुद्धिमानों को मान्य ऐसी शिरोवस्ति की विधि कहता हूं॥१२१॥

शिरोवस्ति का प्रकार

शिरोवस्तिश्चर्मणः स्याद्द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥१२२॥
शिरः प्रमाणं तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टकैः ।
सन्धिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥१२३॥

अर्थ–मस्तक पर धारण करने की जो वस्ति है उसको शिरोवस्ति कहते हैं। वह हरिणादिकों के चमड़े की बनावे। उसका आकार बारह अंगुल ऊँची टोपी के समान बनाके दो मुख बनावे। तिसमें नीचे का मुख मस्तकपर आ जावे ऐसा करे और ऊपर का मुख छोटा करना चाहिये। उस टोपी को मनुष्य को पहनाके नीचे जो छिद्र रहते हैं उसके चारों तरफ उड़द के चून को जल में सान के सन्धियों को बन्द कर दे। पश्चात् स्नेह सहन हो ऐसा थोड़ा गरम करके वस्ति के ऊपर के भाग पर भर देवे॥१२२॥१२३॥

शिरोवस्तिधारण में प्रमाण

तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्त्रुतिः ।
वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम् ॥१२४॥

अर्थ–नाक, नेत्र और मुख इनमें जब तक स्राव न हो तब तक अथवा मस्तकसंबंधी पीड़ा दूर हो तब तक अथवा वस्ति के अध्याय में अनुवासनवस्ति की मात्रा का काल प्रमाण १००० एक हजार मात्रा पूर्ण होने पर्यन्त मस्तकपर वस्ति को धारण करे॥१२४॥

शिरोवस्तिधारण में काल

विना भोजनमेवात्र शिरोवस्तिः प्रशस्यते ।
प्रयोज्यस्तु शिरोवस्तिः पञ्चसप्ताहमेव वा ॥१२५॥

अर्थ–बिना भोजन किये हुए मनुष्य को शिरोवस्ति करना उत्तम है और यह शिरोवस्ति पांचवें दिन अथवा सातवें दिन करनी चाहिये॥१२५॥

शिरोवस्ति के कर्म होने के उपरांत क्रिया

विमोच्य शिरसो वस्तिं गृह्णीयाच्च समंततः ।
ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णनीरैः स्नानं समाचरेत् ॥१२६॥

अर्थ–मस्तक पर धारण की हुई वस्ति को चारों तरफ से एक साथ उतार देना चाहिये, ऐसा न करे कि कहीं तो वस्ति लगी हुई है और कहीं से उखाड़ी हुई। जब वस्ति को उखाड चुके तब ऊर्ध्वकाय (मस्तकपर) सुहाता २ गरम जल डाल के स्नान करे॥१३६॥

शिरोवस्ति देने से रोग दूर हों उनका कथन

अनेन दुर्जया रोगा वातजा यान्ति संक्षयम् ।
शिरः कंपादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते ॥१२७॥

अर्थ–दुर्जय (दूर करने को अशक्य) ऐसे शिरः कंपादिक जो वादी के रोग हैं वे इस वस्ति के देने से दूर होते हैं। इस वास्ते इनसे इस वस्ति की सर्वकाल में योजना करनी चाहिये॥१२७॥

कान में औषध डालने की विधि

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः ।
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्ततः कर्णं प्रपूरयेत् ॥१२८॥

अर्थ–मनुष्य को कुछ करवट की तरफ सुलाके कान के चारों तरफ पसीने युक्त करके पश्चात् गोमूत्रादिक तथा औषधों का रस सहन हो इस प्रकार थोड़ा २ गरम करके कान में डाले॥१२८॥

कान में औषध डाल के कितनी देर ठहरे

कर्णं तु पूरितं रक्षेच्छतं पञ्चशतानि वा ।
सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥१२९॥

अर्थ–कर्णरोग, कण्ठरोग और मस्तकरोग ये दूर होने के लिये कान में जो औषध डाली हो वह सौ मात्रा अथवा पांच सौ मात्रा अथवा एक हजार मात्रा होवे तावत्काल पर्यन्त कान में रखे, मात्रा का लक्षण आगे के श्लोक में कहते हैं॥१२९॥

मात्रा का प्रमाण

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ।
एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥१३०॥

अर्थ-अपने गोडे के चारों तरफ हाथ को फेरके चुटकी बजावे इतने काल की एक मात्रा होती है ऐसा निश्चय सर्वत्र है॥१३०॥

रसादिक तथा तैलादिक इनका कान में डालने का काल

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते ।

तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥१३१॥

अर्थ-रसादिक जो औषध कान में डालनी हो तो भोजन करने के पूर्व डाले तथा तैलादिक जो औषध कान में डाले वह दिन छिपने के पश्चात् रात्रि में डाले॥१३१॥

कर्णशूलपर औषध

पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तमग्नौ प्रतापयेत् ।

तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः ॥१३२॥

अर्थ-आक के पके हुए पत्तें में घी लगाकर अग्नि पर तपाकर उसका रस निकाल के कान में डाले तो कर्णशूल दूर हो॥१३२॥

कर्णशूल पर मूत्रप्रयोग

कर्णशूलातुरे कोष्णं बस्तमूत्रं ससैन्धवम् ।

निक्षिपेत्तेन शाम्यन्ति शूलपाकादिका रुजः ॥१३३॥

अर्थ-बकरे के मूत्र में सैन्धानमक डाल के कुछ थोड़ा गरम कर कान में डाले तो कर्णशूल और व्रणसंबन्धी पाकादिक उपद्रव दूर हों॥१३३॥

कर्णशूलपर तीसरा प्रयोग

शृङ्गवेरं च मधुकं मधु सैन्धवमामलम् । तिलपर्णीरसस्तैलं टंकणं निंबुकद्रवम् ॥१३४॥ कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ।

अर्थ-१ अदरख का रस, २ मुलहठी, ३ शहद, ४ सैंधानमक, ५ आंवले, ६ तिलपर्णी का रस, ७ सरसों का तेल, ८ सुहागा, ९ नीम का रस ये नौ औषध एकत्र कर कुछ गरम करके कान में डाले तो कर्णसंबंधी पीड़ा दूर हो॥१३४॥

कर्णशूलपर चतुर्थ प्रयोग

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥१३५॥

सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ।

अर्थ-१ कैथ के फल का रस, २ बिजोरे का रस, ३ अमलवेत[१०८] का रस, ४ अदरख का रस ये चार रस एकत्र कर कुछ २ गरम कर कर्णशूल दूर होने के वास्ते कान में डाले॥१३५॥

कर्णशूल पर पांचवां प्रयोग

अर्कांकुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥१३६॥ संनिदध्यात्स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते । पुटपाकक्रमं कृत्वा रसैस्तच्च प्रपूरयेत् ॥१३७॥ सुखोष्णैस्तेन शाम्यन्ति कर्णपीडाः सुदारुणाः ।

अर्थ-आक के अंकुर अर्थात् आगे के कोमल २ पत्ती इनको नीबू के रस में खरल कर उसमें

थोड़ा से तिल का तेल और सैंधानमक डाल गोला बनावे। फिर थूहर की गीली लकडी को भीतर से पोली करके उसमें उस गोले को रख के उसके चारों तरफ थूहर के पत्ते लपेटके बांध देवे, फिर उसके ऊपर गीली मिट्टी लपेटके पुटपाक की विधि से उस औषध का पाक हो ऐसी हलकी अग्नि देवे, पश्चात् उस गोले को बाहर निकालके पत्ते वगैरह को दूर करे फिर उस थूहर को लकड़ी सहित निचोड़ के रस निकाल लेवे। अग्नि पर सुखोष्ण करके कान में डाले तो कान में जो बड़ी भारी दारुण पीड़ा होती हो वह दूर हो॥१३६॥१३७॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि तु ॥१३८॥ क्षौमेणावेष्टच्य संसिच्य तैलेनापीडयेत्ततः। यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत् ॥१३९॥ ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् । एवं स्याद्दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा ॥१४०॥

अर्थ–बड़ा पंचमूल अर्थात् बेल आदि पांच औषधों की जड़ आठ २ अंगुल की ले उनको रेशमी वस्त्र में अथवा कपड़े में लपेट तेल में भिगोकर अग्नि से जलावे। तथा उन जड़ों को सीधी रखे जिससे कि तेल टपककर नीचे गिरे। उस तेल को कुछ थोड़ासा गरम करके कान में डाले तो कान की पीड़ा अर्थात् कान में टीस मारना तत्काल दूर हो। इसको दीपिका तेल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ अथवा देवदारु का तेल निकालके कान में डाले तो कर्णशूल दूर होवे॥१३८–१४०॥

कर्णशूल पर स्योनाक तैल

तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ परिपाचितम् ।
हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥१४१॥

अर्थ–टेंटू की जड को पीस कल्क करे तथा उस कल्क का चौगुना तिल का तेल लेकर दोनों को एकत्र करे तथा उस तेल के पाक होने के वास्ते उनमें कल्क का चौगुना जल डाल के चूल्हे पर रख के मन्द २ आंच से परिपक्व करे जब जल आदि सब जल के केवल तेलमात्र रहे तब उतार के तेल को छान किसी उत्तम शीशी आदि पात्र में भरके रख देवे। इसको कान मे डाले तो त्रिदोषजन्य कर्णशूल दूर होवे॥१४१॥

कर्णनादपर तैल

कल्कक्वाथेन यष्टचाह्व–काकोली–माषधान्यकैः ।
सूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिहारिणी ॥१४२॥

अर्थ–१ मुलहटी, २ काकोली के अभाव में असगंध, ३ उड़द, ४ धनिया इन चार औषधों का काढा करके उसमें इन्हीं औषधों का कल्क करके डाल देवे। तथा सूअर की वसा अर्थात् मांस का स्नेह उस काढे में डाल के चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि देकर स्नेहमात्र शेष रहे तब तक पाक करे। फिर इसको कान में डाले तो कर्णनाद (कानों में शब्द हुआ करे सो) दूर हों॥१४२॥

कर्णनादादिकोंपर तैल

सर्जिका मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णा–समन्वितम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तं चतुर्गुणम् ॥१४३॥
प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत् ।

अर्थ–१ सज्जीकार, २ सूखी मूली, ३ हींग, ४ पीपल, ५ सौंफ ये पांच औषध समान भाग ले पीस कल्क करे। उस कल्क का चौगुना तिल का तेल लेकर उस कल्क में मिलावे तथा उस कल्क का चौगुना सूक्त (सिरका) लेकर तेल में मिलावे। फिर इस तेल के पात्र को चूल्हे पर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे। जब तेल का पाक हो चुके तब उतार के तेल को छान के किसी उत्तम पात्र में भरके धर रखे। इस तेल को कान में डाले तो कर्णप्रसाद कर्णशूल बहिरापना तथा कान में पूय (राध) आदि का स्राव ये रोग दूर हों।।१४३।।

बहरेपन पर अपामार्गक्षार तैलं

अपामार्गक्षारजले तत्क्षारं कल्कितं क्षिपेत् ।।१४४।।
तेन पक्वं जयेत्तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम् ।

अर्थ–ओंगा की राख कर किसी मिट्टी के पात्र में धर उसमें उस राख से चौगुना जल डाल के रात्रि को चार प्रहर धरा रहने दे। प्रातःकाल ऊपर के पानी को लोहे की कडाही में निकाल उसमें उस जल से चौथाई तिल का तेल डाले। फिर चूल्हे पर चढ़ाके मंद २ अग्नि से पाक करे। जब तेलमात्र शेष रहे तब उतारके पात्र में धर रखे। इस तेल को कान में डाल तो कान का बहिरापन तथा कर्णनाद दूर हो।।१४४।।

कर्णनाड़ी पर शंबूक तैल

शम्बूकस्य तु मांसेन पचेत्तैलं तु सार्षपम् ।।१४५।।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ।

अर्थ–शंबूक छोटा शंख अथवा सीपी उसका मांस और उस मांस से चौगुना सरसों का तेल लेवे। उस तेल में मांस डाल के पकावे, जब एक हो जावे तब मांस को निकालके दूर करे और इस तेल को कान में डाले तो कर्णनाड़ी (कर्णसम्बन्धी फोड़ा) दूर हों।।१४५।।

कर्णस्राव पर औषधि

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरसमेव च ।।१४६।।
कर्णस्रावे प्रशंसंति पूरणं मधुना सह ।

अर्थ–पंचकषाय कहिये पंचकषायसंज्ञक पांच औषध (जिनके नाम आगे के श्लोक में कहे हैं) उनका चूर्ण करे। फिर कैथ के रसमें इस चूर्ण को और थोड़ा शहद मिलाके राध आदि स्राव दूर करने को कान में डाले।।१४६।।

पंचकषायसंज्ञक वृक्षों के नाम

तिन्दुकान्यभया लोध्रः समंगा चामलक्यपि ।।१४७।।
ज्ञेयाः पञ्चकषायास्तु कर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ।

अर्थ–१ तेंदू, २ हरड, ३ लोध, ४ मंजीठ, ५ आंवला ये कर्णस्राव दूर होने के वास्ते पंचकषायसंज्ञक वृक्ष जाननें। इनके फल लेने। यह विचार प्रथमखण्ड के परिभाषा अध्याय में कह आये हैं।।१४७।।

कर्णस्राव पर औषध

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ।
कर्णस्रावरुजो दाहाः प्रणश्यंति न संशयः ।।१४८।।

अर्थ–सज्जीखार के चूर्ण को विजोर के रस में मिलाय के कान में डाले तो कर्णस्राव सम्बन्धी

पीडा और दाह ये निश्चय करके दूर हों॥१४८॥

कान से राध बहे उस पर औषध

आम्रजंबुप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च ।
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशांतिकृत् ॥१४९॥

अर्थ–आम जामुन महुआ और बड़ इन चारों के कोमल पत्तों को पीस कल्क करके उसमें तिलों का तेल, उस कल्क का चौगुना डाल के अग्नि पर पाक करे। पश्चात् यह तेल कान में जो राध बहती है उसके दूर होने के लिये कान में डाले॥१४९॥

कर्ण के कीड़े दूर होने पर तैल

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ।
अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम् ॥१५०॥

अर्थ–हरताल को गोमूत्र में औटा के कान में डाले अथवा सरसों का तेल कान में डाले तो कान के कीड़े हरण करता है॥१५०॥

कान का कीड़ा दूर होने का दूसरा प्रयोग

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा ॥१५१॥
त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूरसं तथा ।
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम् ॥१५२॥

अर्थ–सहँजने की छाल का रस, हुलाहुल का रस, त्र्यूषण (सोंठ मिरच पीपल) और कौंच की जड़ का रस ये सब रस एकत्र करके उसमें पूर्वोक्त त्रिकुटे का रस मिलाके कान के कीड़े दूर करने को कान में डाले॥१५१॥१५२॥

तीसरा प्रयोग

सद्यो मद्यं निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ।
सद्यो हिंगु निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥१५३॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
चिकित्सास्थाने लेपविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

अर्थ–हींग और मद्य इन दोनों में से कोई सी एक वस्तु कान में डाले तो कान के कीडे मर जावें॥१५३॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसाद-
कृतभावप्रकाशिकाहिन्दीटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः १२

रक्तस्राव की विधि

शोणितं स्रावयेज्जन्तोरामयं प्रसमीक्ष्य च ।
प्रस्थं प्रस्थार्धकं वापि प्रस्थार्धार्धमथापि वा ॥१॥

अर्थ-मनुष्य के देह में रुधिरजन्य कुष्ठादिक रोगों को देखके रक्तस्राव करे अर्थात् देह से रुधिर निकाले उसका प्रमाण १ प्रस्थ अथवा अर्धप्रस्थ अथवा १ कुडव जानना चाहिये।।१।।

रक्तस्राव का सामान्यकाल

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ।
त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ।।२।।

अर्थ-देह से रुधिर काढने से त्वचासंबधी दोष व्रणादिक गाँठ और सूजन इत्यादिक रोग दूर होते हैं। इसी से शरत्काल में स्वभाव करके मनुष्यों का रुधिरस्राव करे अर्थात् फस्त खोले।।२।

रक्त का स्वरूप

मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु ।
शोणितं स्निग्धविस्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत् ।।३।।

अर्थ-रुधिर, रस करके मीठा है, वर्ण करके लाल और गुणों करके अशीतोष्ण कहिये मन्दोष्ण भारी चिकना तथा आमगंधि है। तथा उस रुधिर की दाहशक्ति पित्त के समान है। इस प्रकार रुधिर के रस, वर्ण और गुण आदि जानने।।३।।

रुधिर में पृथिव्यादिभूतों के गुण

विस्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ।
भूम्यादिपञ्चभूतानामेते रक्तगुणाः स्मृताः ।।४।।

अर्थ-विस्रता (आमगंधता) यह पृथ्वी का गुण है, द्रवता अर्थात् पतलापन जल का गुण है। लाली अग्नि का गुण है, चलन वायु का गुण और नीलता आकाश का गुण है। इस प्रकार पृथिव्यादि पांच भूतों के पांच गुण रुधिर में हैं।।४।।

दुष्टरुधिर के लक्षण

रक्ते दुष्टे वेदना स्यात् पाको दाहश्च जायते ।
रक्तमण्डलता कण्डूः शोथश्च पिटिकोद्गमः ।।५।।

अर्थ-मनुष्य का रुधिर दुष्ट होने से शरीर में पीडा हो, अंग पके के समान होकर दाह हो तथा देह में रुधिर के चकत्ते, खुजली, सूजन और फुन्सी हो।।५।।

रुधिरवृद्धिक लक्षण

वृद्धे रक्तांगनेत्रत्वं शिराणां पूरणं तथा ।
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ।।६।।

अर्थ-रुधिर के बढ़ने से शरीर और नेत्र ये लाल रंग के हों, धमन्यादि नाड़ी पूरित होवें, अर्थात् फूल आवे, तथा देह का भारी होना, निद्रा, मद ये उपद्रव होते हैं।।६।।

क्षीणरुधिर के लक्षण

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ।
शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वातादुन्मार्गगामिता।।७।।

अर्थ-मनुष्य का रुधिर क्षीण होने से खटाई और मिष्टपदार्थों के भोजन की इच्छा हो, मूर्च्छा आवे, त्वचा का रूखापन, नाड़ियों में शिथिलता, वायु ऊर्ध्वमार्ग होकर गमन करती है।।७।।

वादी से दूषित रुधिर के लक्षण

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ।
अस्कंदि सूचिनिस्तोदं रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥८॥

अर्थ–वादी से रुधिर के दूषित होने से वह लाल रंग का झाग के समान, रूक्ष, खर्दरा और हलका, शीघ्र गमनकर्त्ता और पतला होता है। तथा सुई के चुभोने के समान पीड़ा होती है॥८॥

पित्तदूषितरुधिर के लक्षण

पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम् ।
अस्कन्द्युष्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामविष्टकम् ॥९॥

अर्थ–पित्त करके रुधिर के दूषित होने से उसका रंग पीले रंग का, हरे रंग का, नीले रंग का अथवा श्याम रंग का होता है। वह आमगंधी उष्ण और चंचल होता है। तथा उसको चेंटी और मक्खी नहीं खाती॥९॥

कफदूषितरुधिर के लक्षण

शीतं च बहुलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम् ।
मांसपेशीप्रभं स्कंदि मंदगं कफदूषितम् ॥१०॥

अर्थ–कफ से दूषित हुआ रुधिर स्पर्श करने से अत्यन्त शीतल होता है, स्निग्ध होकर गेरु के समान रंगवाला होता है तथा मांसपेशी कहिये, मांस के छोटे छोटे टुकडों के समान हो, स्कंदि कहिये धन तथा मन्दगमन करनेवाला होता है॥१०॥

द्विदोष तथा त्रिदोष से दूषित रुधिर के लक्षण

द्विदोषंदुष्टसंसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं च जायते ॥११॥

अर्थ–दो दोषों से दूषित हुआ रुधिर दोनों दोषों के लक्षण करके युक्त होता है एवं त्रिदोष से दूषित हुए रुधिर में सड़ी हुई बास आवे और वह तीनों दोषों के लक्षण करके युक्त होकर कांजी के समान होता है॥११॥

विषदूषित रुधिर के लक्षण

विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मार्गगं तथा ।
विस्रं कांजिकसङ्काशं सर्वकुष्ठकरं बहु ॥१२॥

अर्थ–विष से दूषित हुआ रुधिर काले रंग का होता है। ऊपर के मार्ग होकर नासिका से गिरता है, आमगंधी होकर कांजी के समान दीखता है तथा अतिशय करके यह दूषित रुधिर संपूर्ण कुष्ठों को उत्पन्न करता है॥१२॥

शुद्धरुधिर के लक्षण

इन्द्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् ।

अर्थ–जिस रुधिर में कोई सा विकार नहीं हो अर्थात् शुद्ध रुधिर जो अपनी प्रकृति पर है वह इन्द्रगोप (बीरबहूटी इस नाम का कीड़ा लाल रंग का जो वर्षाऋतु में होता है) उसके समान रंगवाला और पतला होता है।

रुधिरस्रावयोग्य रोग

शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥१३॥ वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले । पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥१४॥ ग्रन्थ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु । विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥१५॥ रक्ताभिष्यं-दतंद्रायां पूति घ्राणस्य देहके । यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिटिकोद्गमे ॥१६॥ कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहे शिरोरुजि । उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥१७॥

अर्थ–दाह सूजन तथा जिसके अंग[११३] का पाक तथा शरीर लाल रंग का हो, ऐसा मनुष्य तथा जिसकी नासिका द्वारा रुधिर गिरा करे, वातरक्त, कोढ़ तथा पीडायुक्त हो, जीतने में अशक्य ऐसा वादी का रोग, हाथों का रोग, श्लीपदरोग तथा विष से दूषित रुधिर, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, गण्डमाला का भेद, अपची रोग, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमन्थ (नेत्रों का रोग), विदारीरोग, स्तनरोग, अंगों की शिथिलता, तथा शरीर का भारी होना, रकताभिष्यंद, तन्द्रा, दुर्गंधयुक्त है नाक मुख और देह जिसके, यकृत (जिगर), प्लीहा, विसर्प, विद्रधि तथा अंगों पर फुन्सी का होना, कान और होंठ नाक तथा मुख इनका पाक[११४], दाह, मस्तकपीड़ा, उपदंश, रक्तपित्त, ये विकार जिस मनुष्यों के देह में हो, उनका रुधिर वैद्य को निकालना चाहिये। ये रुधिर काढ़ने के योग्य हैं॥१३-१७॥

रुधिर निकालने के प्रकार

एषु रोगेषु शृंगैर्वा जलौकालाबुकरैपि ।
अथवापि शिरामोक्षैः कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ॥१८॥

अर्थ–पूर्वोक्त रोगों में वैद्य सींगी जोंक तूँबी अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले॥१८॥

फस्त खोलने के अयोग्य रोगी

न कुर्वीत शिरमोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः । क्लीबस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतिकापाण्डुरोगिणः ॥१९॥ पञ्चकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम् । सर्वाङ्गशोथमुक्तानामुदरश्वास-कासिनाम् ॥२०॥ छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि । ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्तिकस्य च ॥२१॥ आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते । एषां चात्यायिके योगे जलौकाभिस्तु निर्हरेत्॥२२॥तथा च विषयुक्तानां शिरामोक्षोऽपि शस्यते।

अर्थ–कृश (दुबला हुआ) मनुष्य, स्त्री का संग करने से अत्यंत आसक्त, नपुंसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, प्रसूता स्त्री, पांडुरोगी, वमनादि पञ्चकर्म करके शुद्ध हुआ मनुष्य, जिसने स्नेहपान किया हो, बवासीर रोग, जिसका सर्वांग सूज गया हो, उदररोग, श्वास, खांसी, वमन और अतिसार इत्यादि रोगों से पीड़ित तथा जिसके अंगो का पसीना निकाला हो जिस मनुष्य की अवस्था सोलह वर्ष से न्यून (कम) हो तथा जिसकी सत्तर वर्ष से ऊपर अवस्था (उमर) हो गई

हो, चोट लगने से नासिका द्वारा रुधिर गिरता हो, ऐसा मनुष्य इन सब रोगियों की फस्त नही खोलनी, यदि रुधिर निकालना ही ठीक समझा जावे तो जोंक लगा के रुधिर निकाले कदाचित् ये रोगी विषप्रयोग से व्याप्त होवें तो उनकी फस्त खोलकर रुधिर निकाले।।१९-२२।।

वातादिक से दूषितरक्त के निकालने का प्रकार

गोभृङ्गेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा ।।२३।। वातपित्त-कफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः । द्विदोषाभ्यां तु संसृष्टं त्रिदोषैरपि दूषितम् ।।२४।। शोणितं स्रावयेद्युक्त्या शिरमोक्षैः पदैस्तथा ।

अर्थ–वादी से दूषित हुआ जो रुधिर उसको गौ के सिंगी से अर्थात् सिंगी देकर निकाले। पित्त से दूषित रुधिर को जोंक लगा के निकाले। कफ से दूषित रुधिर को तुमड़ी लगाकर निकाले। और जो दो दोषों करके दूषित रुधिर है उसको युक्तिपूर्वक फस्त खोल के अथवा पछने से निकालना चाहिये।।२३।।२४।।

सींगी आदि का रुधिर ग्रहण में प्रमाण

गृह्णाति शोणितं शृङ्गं दशांगुलमितं बलात् ।।२५।।
जलौका हस्तमात्र च तुंबी द्वादशांगुलम् ।
पदमंगुलमात्रेण शिरा सर्वांगशोधिनी ।।२६।।

अर्थ–सींगी लगाने से सिंगी अपने बल से दशअंगुल के रुधिर को खींच लेती है, जोंक लगाने से एक हाथ से रुधिर को खींचे, तुंबी बारह अंगुल का, उस्तरा एक अंगुल के रुधिर को खींच के निकाले। एवं फस्त खोलने से सम्पूर्ण अंग का शोधन होता है।।२५।।२६।।

जिसके अंग से रुधिर नहीं निकले उसका कारण

शीते निरन्ने मूर्च्छातितन्द्राभीतिमदश्रमैः ।
युतानां न स्रवेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् ।।२७।।

अर्थ–शीतकाल में जिस मनुष्य ने उपवास किया हो, मूर्च्छा तंद्रा भयभीत मद और श्रम इन करके युक्त हो, मल और मूत्र, ये जिसने भले प्रकार न किये हों, ऐसे मनुष्यों को देह से रुधिर नही निकलता।।२७।।

रुधिर न निकलने में औषध

अप्रवर्तिनि रक्ते च कुष्ठचित्रकसैन्धवैः ।
मर्दयेद्व्रणवक्त्रं च तेन सम्यक् प्रवर्तते ।।२८।।

अर्थ–फस्त देने से यदि रुधिर बाहर न आवे तो कूठ, चित्रक और सेंधानमक इन तीन औषधों का चूर्ण करके व्रण के मुख पर चुपड़े तो रुधिर उत्तम प्रकार से निकलने लगे।।२८।।

रुधिर निकालने में काल

तस्मान्न शीते नात्युष्णे न स्विन्ने नातितापिते ।
पीत्वा यवागूं तृप्तस्य शोणितं स्रायेवद् बुधः ।।२९।।

अर्थ–शीतकाल तथा अत्यंत गरमी न हो, ऐसे समय में मनुष्य के अंग का पसीना बिना निकाले

और शरीर अत्यंत तृप्त होने पर जौ की यवागू पीकर तृप्त हुए मनुष्य का वैद्य रुधिर निकाले।।२९।।

अत्यन्त रुधिर निकालने में कारण

अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ।
अति प्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ।।३०।।

अर्थ–मनुष्य के अंग का अत्यंत पसीना निकालकर गरमी की ऋतु में रुधिर निकालने से तथा फस्त खोलते समय अधिक नस के कट जाने से देह से रुधिर अधिक निकलता है, उसके बंद करने का यत्न आगे के श्लोक में कहा है।।३०।।

अत्यन्त रुधिर निकलने पर उपाय

अतिप्रवृत्ते रक्ते च लोध्र सर्जरसांजनैः । यवगोधूमचूर्णैर्वाधव-धन्वनगैरिकैः ।।३१।। सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः । मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद्व्रणम् ।।३२।। विध्येदूर्ध्वं शिरांतां वा दहेत्क्षारेण वाग्निना । व्रणं कषायः संधत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ।।३३।। व्रणास्यं पाचयेत् क्षारो दाहः संकोचयेच्छिराम् ।

अर्थ–नसे में से रुधिर निकालने लगे तो उसके बन्द करने को बोध, दारु और रसोद इन तीनों का चूर्ण अथवा जौ और गेहूँ इनका चूर्ण अथवा धामिन जवासा औ गेरू इन तीनों का चूर्ण अथवा सांप की कांचली का चूर्ण अथवा रेशम और कपड़े की राख इन सब औषधों में जो समय पर मिल जावे उसको उस घाव के मुख पर भर के दाब देवे। फिर उस व्रण पर चन्दनादिक शीतल लेपादिक उपचार करे तो रुधिर अत्यन्त निकलना बंद होवे। यदि इतने उपाय करने पर भी रुधिर बन्द न हो तो उस नस के ऊपर फिर शस्त्र से फस्त खोले। अथवा उस व्रण के मुख को अग्नि से दाग देवे। इत्यादि उपायों करके रुधिर बन्द होता है इसमें हेतु कहते हैं, कि कषाय (लोध्रादिक चूर्ण) व्रण के मुख को पकड़ता है और शीतोपचार करके रुधिर थमता है। क्षार करके व्रण का पाचन होता है अथा अग्न्यादि दाह करके शिरा (नस) का संकोच होता है।।३१।।३२।।

दान देने से जो रोग दूर हों उनके नाम

वामांडशोथे दक्षस्य परस्यांगुष्ठमूलजाम् ।।३४।। देहच्छिरां व्यत्यये तु वामांगुष्ठशिरां दहेत् । शिरादाहप्रभावेण शुष्कशोथः प्रशाम्यति ।।३५।। विषूच्यां पाददाहेन जायतेऽग्नेः प्रदीपनम् ।। संकुचन्ति यतस्तेन रसश्लेष्मवहाः शिराः ।।३६।। यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोः शिशोः सञ्जायतेऽसृजः । तदा तत्स्थानदाहेन संकुचत्यसृजः शिराः ।।३७।।

अर्थ–मनुष्य के बायें तरफ अण्डकोश पर सूजन हो तो दाहिने हाथ के अँगूठे की जड़ में शिरा को दाग देवे और अण्डकोश पर सूजन हो तो बायें हाथ के अंगूठे की जड़ में दाग देवे तो अण्डकोश की सूजन दूर होवे। विषूचिक होने से लोह की पत्ती अथवा कड़छी को तपाकर पैरों के तलुवों को तपावे, ऐसा करने से रसवाहिनी शिरा तथा कफवाहिनी शिरा, संकोच होकर अग्नि प्रदीप्त तथा

विषूचिका (हैजा) दूर होती है। जिस बालक के पेट में दाहिने तरफ यकृत् (कलेजा) और बाईं तरफ प्लीहा इनकी वृद्धि हो तो उस काल में उस जगह पर दाग देवे तो यकृत् और प्लीहा ये सुकड़ जाते हैं।।३४-३७।।

दुष्टरुधिर निकालने पर जो अवशिष्ट रहे उसके गुण

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति । अतः स्राव्यं सावशेषं रक्ते नातिक्रमो हितः ।।३८।। आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरं शिरसो रुजम् । पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पाण्डुताम्।।३९।।कुरुते विस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ।

अर्थ–शरीर से दुष्ट रुधिर निकलकर थोड़ा अवशिष्ट रहने से रोगों का प्रकोप नहीं होता इससे जब जब रुधिर निकाले तब तब थोड़ा सा अवशिष्ट छोड़ देवे तो हितकारी होता है। सम्पूर्ण रुधिर निकालने से अन्धापन, आक्षेप वायु, प्यास, तिमिर, मस्तक पीड़ा, पक्षाघातवायु, श्वास, खांसी, हिचकी, दाह और पांडुरोग ये उपद्रव होते हैं तथा मनुष्य मरणावस्था को पहुँच जाता है। इसी वास्ते सम्पूर्ण रुधिर नहीं निकालना चाहिये।।३८-३९।।

रुधिर से देह की उत्पत्ति आदि का प्रकार

देहस्योत्पत्तिसृजा देहस्तेनैव धार्यते ।।४०।।
विना तेन ब्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः ।

अर्थ–रुधिर से देह की उत्पत्ति तथा रुधिर ही से देह का धारण होता है और रुधिर के बिना जीव रहता ही नहीं है अतः बुद्धिमान् वैद्य रुधिर का रक्षण करे।।४०।।

रुधिर निकालने पर दोष कुपित होने पर उपाय

शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते ।।४१।।
कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत् ।

अर्थ–रुधिर काढ़ने पर व्रणस्थान में पित्त का प्रकोप होने से चन्दनादिक शीतल उपचार करे। वादी का प्रकोप होने से यदि उस व्रण के स्थान में पीड़ायुक्त सूजन हो जावे तो उस स्थान में थोड़े घी को गरम करके लगावे।।४१।।

रुधिर निकलने पर पथ्य

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः ।।४२।।
रसः सभुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिताः ।

अर्थ– शरीर से रुधिर काढ़ने से जो मनुष्य क्षीण हो गया हो उसको हरिण तथा बकरा इनके मांस का रस सिद्ध करके पिलावे तथा सांठी चावलों को गौ के दूध में डाल के भोजन करना अथवा गौ का दूध पिलावे, सांठी चावल का भात खाने को दे। इस प्रकार ये पदार्थ सेवन करना हितकारी होता है।।४२।।

उत्तम प्रकार से रुधिर निकालने के लक्षण

पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयः ।।४३।।
मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते‌ऽसृजि ।

अर्थ–पीडा का नाश, देह मे हलकापन, रोगों के उत्कर्ष का भले प्रकार नाश, मन में प्रसन्नता, ये लक्षण उत्तम प्रकार रुधिर निकालने से होते हैं।।४३।।

रुधिर निकलने पर वर्जित वस्तु

व्यायाममैथुनक्रोध-शीतस्नान-प्रवातकान् ।।४४।।
एकाशनं[115] दिवानिद्रा क्षाराम्लकटुभोजनम् ।
शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात् ।।४५।।

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखंडे चिकित्सास्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अर्थ-परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जल में स्नान करना, बहुत हवा खाना, एक ही धान्य का भोजन करना, दिन में सोना, जवाखारादि स्वारे खट्टे तथा चरपरे पदार्थ भक्षण करना, शोक और वाद करना तथा बहुभोजनजन्य अजीर्ण, इस प्रकार ये सर्व कारण शरीर में जब तक पुरुषार्थ न आवे तब तक त्याग देने चाहिये।।४४।।४५।।

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे वैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः १३

नेत्र अच्छे होने के वास्ते उपचार

सेक आश्चोतनं पिण्डी बिडालस्तर्पणं तथा ।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः[116] कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ।।१।।

अर्थ-१ सेक, २ आश्चोतन, ३ पिंडी, ४ बिडाल, ५ तर्पण, ६ पुटपाक और ७ अञ्जन, ये सात प्रकार नेत्ररोग में कहे हैं। इनका कल्क करके जिस रीति से नेत्ररोग पर उपचार करना कहा है उसी प्रकार करे।।१।।

सेक के लक्षण

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलम् ।।२।।

अर्थ-मनुष्य के नेत्र बन्द कराके दूध घी रस इत्यादिकों की संपूर्ण नेत्र पर चार अंगुल के अन्तर से धार डालने को सेक कहते हैं।।२।।

उस सेक के स्नेहनादि भेद करके तीन प्रकार

स चापि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः ।
लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राधुनोच्यते ।।३।।

अर्थ-वातरोग होने से स्नेहन[117] करे। रक्तपित्त का कोप होने से रोपण[118] सेक करे तथा कफरोग होने से लेखन[119] सेकको योजना करे। अब उसकी मात्रा कहते हैं।।३।।

सेक की मात्रा

षड्वाक्छतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे ।
वाक्छतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ।।४।।

अर्थ–स्नेहनकर्म में छः सौ अंक पर्यंत नेत्रों पर जिस औषध की कही है, उसकी धार दे। रोपण कर्म हो तो चार सौ अंक तक धार डाले तथा लेख, न कर्म होने से तीन सौ अंक हो, तब तक धार डालनी चाहिये।।४।।

सेक करने का काल

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे ।

अर्थ–नेत्रों पर सेक करना हो तो दिन में करे। यदि रोग की आधिक्यता होवे तो रात्रि के समय करे।

वाताभिष्यंदरोगपर

एरण्डत्वक्पत्रमूलैः श्रृतमाजं पयो हितम् ।
सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदशानम् ।।५।।

अर्थ–अरंड की छाल पत्ते और जड़, ये संपूर्ण बकरी के दूध में औटावे पश्चात् सुखोष्ण करके गरम गरम की धार वाताभिष्यंदरोग दूर होने के वास्ते नेत्रों पर देनी चाहिये।।५।।

वाताभिष्यंद पर दूसरा सेक

परिषेको हितो नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम् । रजनीदारुसिद्धं वा
सैन्धवेन समन्वितम् ।।६।। वाताभिष्यंदशमनं हितं मारुतपर्यये
शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा ।।७।।

अर्थ–बकरी के दूध में सैन्धानमक डाल गरम करके सहन हो, ऐसी गरम दूध की धार नेत्रों पर दे। अथवा हल्दी देवदारु और सैन्धानमक इनका चूर्ण कर उसको दूध में डाल के गरम गरम नेत्रों पर धार डाले तो वातभिष्यंद रोग वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक ये रोग दूर हों।।६।।७।।

रक्तपित्त तथा अभिघात पर सेक

शाबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ।
छागक्षीरं घृतं सेकात्पित्तरक्ताभिघातजित् ।।८।।

अर्थ–लोध और मुलहठी ये दोनों औषध समान भाग ले घी में भून चूर्ण करके बकरी के दूध में डाल नेत्रों पर सेक करे। अर्थात् उस दूध की गरम गरम धार नेत्रों पर देवे तो पित्तविकार, रुधिरविकार और अभिघातजन्य विकार दूर होवें।।८।।

रक्ताभिष्यन्दपर सेक

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ।
पिष्टैः शीतांबुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ।।९।।

अर्थ–त्रिफला (हरड, बहेडा, आंवला) लोध, मुलहठी, खांड और नागरमोथा का भेद भद्रमोथा ये सब औषध समान भाग ले शीतल जल में पीस उस पानी का नेत्रों पर सेक करे तो रक्ताभिष्यंदरोग दूर हो। रक्ताभिष्यंद अर्थात् जिसके नेत्र रुधिरविकार से दूखें।।९।।

रक्ताभिष्यन्दपर दूसरा सेक

लाक्षा–मधुक–मञ्जिष्ठा–लोध्र–कालानुसारिवाः ।
पुण्डरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥१०॥

अर्थ–१ लाख, २ मुलहठी, ३ मञ्जीठ, ४ लोध, ५ सारिवा, ६ सफेद कमल इन छः औषधों को जल में पीस के उस पानी की नेत्रों पर धार डाले तो रक्ताभिष्यंद रोग दूर होवे॥१०॥

नेत्रशूलनाशक सेक

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम् ।
उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलघ्नमम्बके ॥११॥

अर्थ–सफेद लोध को घृत में भूनके चूर्ण कर लेवे फिर उसको कपड़छान करके गरम जल से पीस उस जल की नेत्रों पर धार डाले तो नेत्रों की पीड़ा दूर होवे॥११॥

आश्चोतन के लक्षण

अथ ह्याश्चोतनं कार्यं निशायां न कथंचन ॥१२॥
उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये बिंदुभिर्द्व्यंगुलाद्धितम् ।

अर्थ–मनुष्य के नेत्रों को उघाड़ नेत्रों में दो अंगुल के अन्तर से दूध काढा इत्यादिक की बून्द डालना, इसको आश्चोतन कहते हैं। यह आश्चोतन कर्म रात्रि में कदापि न करे॥१२॥

लेखनादि आश्चोतन में कितनी बिन्दु डाले उसका प्रमाण

बिंदवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः ॥१३॥
रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥१४॥

अर्थ–लेखनकर्म हो तो नेत्रों में आठ बूंद डाले। स्नेहकर्म में दश बिंदु, रोपणकर्म में बारह बिंदु डाले। वे बिंदु शीतकाल हो तो मन्दोष्ण करके डाले और गरमी की ऋतु हो तो शीतल डाले यह सर्वत्र निश्चय है॥१३॥१४॥

वातादिकों में देने की योजना

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम् ॥१५॥

अर्थ–वातरोग में कटु और स्निग्ध ऐसा आश्चोतन करे, पित्तरोग हो तो मधुर तथा शीतल ऐसा करे, कफरोग हो तो कटु और उष्ण तथा रूक्ष ऐसा आश्चोतन करे। इस प्रकार आश्चोतन योजना करने से हितकारी होता है॥१५॥

आश्चोतन की मात्रा के लक्षण

आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतं हितम् ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथ वा ॥१६॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।

अर्थ–मनुष्य के नेत्रों का निमेषोन्मेष कहिये पलकों का खुलना मूँदना अथवा चुटकी बजाना, गुरु कहिये दीर्घ अक्षर का उच्चारण करना अर्थात् एक अंक बोलना इतने काल को एक वाङ्मात्रा संपूर्ण आश्चोतन कर्मों में हितकारी होती है॥१६॥

वाताभिष्यन्दपर आश्च्योतन

बिल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिग्रुभिः ।।१७।।
क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ।

अर्थ–बिल्वादि पांच औषधों की जड़ कटेरी अरण्ड की जड़ तथा सहँजने की छाल इन सब औषधों का काढा करके उसको सुहाता सुहाता गरम करके नेत्रों में बन्द हाले तो वाताभिष्यंदरोग दूर होवे।।१७।।

वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य अभिष्यन्दपर आश्च्योतन

अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ।।१८।।
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ।।१९।।

अर्थ–नीम के पत्तों को जल में पीस के लोध की छालपर लेप कर देवे। फिर उस छाल को अग्नि पर तपाके पीस लेवे। फिर उसका रस निकालके नेत्रों में बून्द डाले तो वातजन्य तथा रक्तपित्तजन्य जो अभिष्यन्द होता है वह दूर होवे।।१८।।१९।।

सर्वप्रकार के अभिष्यन्दों पर आश्च्योतन

त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ।

अर्थ–त्रिफला के काढे की गरम २ बूंद नेत्रों में डाले तो सर्व प्रकार के अभिष्यन्द रोग दूर हों।

रक्तपित्तादिजन्य अभिष्यन्दों पर आश्च्योतन

स्त्रीस्तन्याश्च्योतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित् ।।२०।।
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ।

अर्थ–स्त्री के दूध के बूंद नेत्रों में डाले तो रक्तपित्त तथा वादी से होनेवाली पीड़ा दूर होवे। उसी प्रकार दूध, मलाई अथवा घी इसकी बिंदु नेत्रों में छोड़े तो वातरक्तसंबन्धी पीड़ा दूर होवे।

पिंडी के लक्षण

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पट्टवस्त्रकैः ।।२१।।
नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबध्यते ।

अर्थ–औषध को पीस टिकिया बनाकर नेत्रों पर रखके रेशमी कपड़े की पट्टी से बांधे, इसको पिण्डी अथवा कवलिका इस प्रकार कहते हैं। यह पिंडी नेत्राभिष्यन्द रोग पर हितकारी है तथा व्रणपर भी इसको बांधते हैं।।२१।।

कफाभिष्यन्दपर शिरोविरेचन

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्लेष्मसम्भवे ।।२२।।
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ।

अर्थ–कफसंबन्धी अभिष्यन्द तथा अधिमन्थ ये रोग जिस मनुष्य के होवें उसके मस्तक में तेल मलकर स्निग्ध करे अर्थात् मस्तक के पसीने निकाले। फिर मस्तक के शोधन होने के वास्ते तीक्ष्ण औषध की नाक में नस्य देवे।।२२।।

अधिमन्थरोग पर दूसरा उपचार

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम् ॥२३॥
अशान्ते सर्वथा मन्थे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत् ।

अर्थ–संपूर्ण अधिमन्थों में ललाटस्थ शिरा अर्थात् मस्तक की फस्त खोलके रुधिर निकाले तो सर्व प्रकार के अधिमन्थ शान्त होवें। यदि इस प्रकार करने पर भी रोग शांति न होवे तो भृकुटी में दाग देवे॥२३॥

अभिष्यन्द में क्रिया

अभिष्यन्देषु सर्वेषु बध्नीयात्पिण्डिकां बुधः ॥२४॥
वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत् ।

अर्थ–संपूर्ण अभिष्यन्द रोगों में नेत्रों में जो औषध कही है उसकी टिकिया करके बांधे और वातभिष्यन्द शमन होने को स्निग्ध (चिकनी) और गरम ऐसी टिकिया बांधे॥२४॥

वाताभिष्यन्द पर तथा पित्ताभिष्यन्द पर पिंडी

एरण्डपत्रमूलत्वङ् निर्मिता वातनाशिनी ॥२५॥
पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा ।

अर्थ–अरण्ड के पत्ते, जड़ और छाल इन सबको पीसके टिकिया बनावे। इस टिकिया को वाताभिष्यन्द नाश करने को बांधे। तथा पित्ताभिष्यन्द दूर करने को आंवलों को पीस टिकिया बनाके नेत्रों पर बांधे॥२५॥

पित्ताभिष्यन्द पर दूसरी पिंडी

महानिम्बफलोद्भूता पिण्डी पित्तविनाशिनी ॥२६॥

अर्थ–बकायन के फलों को पीस टिकिया बगाकर पित्ताभिष्यन्द नाश करने को नेत्रों पर बांधें॥२६॥

कफाभिष्यन्दपर पिण्डी

शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी ।

अर्थ–सहँजने के पत्तों को पीस टिकिया बनाकर कफाभिष्यन्द नाश करने को नेत्रों पर बाँधे।

कफपित्ताभिष्यन्दपर पिण्डी

निम्बपत्रकृता पिण्डी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ॥२७॥
त्रिफलापिण्डिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ।

अर्थ–कफपित्ताभिष्यन्द दूर करने को नीम के पत्ते पीस टिकिया बनाय नेत्रों पर बांधे अथवा त्रिफला को पीस टिकिया बना के नेत्रों पर बांधे तो कफ पित्ताभिष्यन्द रोग दूर हो॥२७॥

रक्ताभिष्यन्द पर पिण्डी

पिष्ट्वा कांजिकतोयेन घृतभृष्टा च पिण्डिका ॥२८॥
लोध्रस्य हरति क्षिप्रमभिष्यन्दमसृग्दरम् ॥

अर्थ–लोध्र को कांजी में पीस घी में भून के टिकिया बनावे। इसको नेत्रों पर बांधे तो रक्ताभिष्यन्दरोग नेत्ररोग दूर हो॥२८॥

सूजन खुलजी इत्यादिकों पर पिण्डी

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥२९॥
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा ।

अर्थ–सोंठ और नीम के पत्ते इनको एकत्र पीस उसमें थोड़ा सा सैंधानमक डालके टिकिया बनावें। इसको सूजन और खुजली दूर होने के वास्ते कुछ गरम करके नेत्रों पर बांधे॥२९॥

बिडालक के लक्षण

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥३०॥
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ।

अर्थ–नेत्रों को छोड़ पलकों के बारह के अङ्ग में नेत्रों के चारों तरफ लेप करने को बिडालक कहते हैं। इसके लेप की मात्रा मुख लेप के विधान में कही है उसी प्रकार जाननी॥३०॥

सर्वनेत्ररोगपर लेप

[120]यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वी[121]तार्क्ष्यैः समांशकैः ॥३१॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ।

अर्थ–१ मुलहठी, २ गेरू, ३ सैंधानमक, ४ दारुहल्दी, ५ रसौंत इन सबको समान भाग ले पानी में पीस नेत्रों के बाहर के भाग में चारों तरफ लेप करे तो सर्व अभिष्यन्द रोग दूर हों॥३१॥

सर्वनेत्ररोगपर दूसरा लेप

रसांजनेन वा लेपः पथ्याविश्व[122]दलैरपि ॥३२॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि ।
वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥३३॥

अर्थ–रसोंत को जल में पीस लेप करे अथवा हरड सोंठ और पत्रज ये तीन औषध जल में पीस के लेप करे। अथवा घीगुवार और चीते के पत्ते ये दो औषध जल में पीस के लेप करे अथवा अनार की पत्तियों को पीस के लेप करे। अथवा वच हल्दी और सोंठ ये तीन औषध जल में पीसके लेप करे। उसी प्रकार सोठ और गेरू ये दो औषध जल में पीसके लेप करे। ये छः प्रकार के लेप नेत्र के बाहर के भाग में चारों तरफ करने से सर्व प्रकार के नेत्ररोग दूर होवें॥३२॥३३॥

सर्वनेत्ररोगों पर तीसरा लेप

दग्धाग्नौ सैन्धव लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।
पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥३४॥

अर्थ–सैंधानमक और लोध इन दोनों औषधों को अग्नि में जला के मोम और घी में सान लेवे फिर खूब बारीक करके नेत्रों में अञ्जन करे और बाहर के भाग में उन औषधों का लेप करे तो नेत्रसम्बन्धी पीड़ा तत्काल दूर होवे॥३४॥

चौथा लेप

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।
किञ्चिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रबाधां व्यपोहति ॥३५॥

अर्थ-लोहे के पात्र में नींबू के रस को घोटे। जब कुछ गाढा हो जावे तब नेत्रों के बाहर के भाग में लेप करे तो नेत्र सम्बन्धी पीड़ा दूर हो॥३५॥

अर्मरोगपर लेप

संचूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात् ।
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥३६॥

अर्थ-काली मिरचों को भांगरे के रस में पीस के नेत्रों पर लेप कर तो शुक्लार्म तथा अधिमांसार्म इत्यादि नेत्ररोग में जो अर्मरोग हैं वह दूर होवें॥३६॥

अञ्जननामिका फुन्सी पर लेप

स्विन्ना भित्वा विनिष्पीडच भिन्नामञ्जननामिकाम् ।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥३७॥

अर्थ-नेत्र के कोयों में जो अञ्जननामिका फुन्सी होती है उसको स्वेदयुक्त करके अर्थात् बफार से पसीन निकाल के फोड़ डाल और चारों तरफ से दाब के मल निकाल डाले। फिर मनशिल इलायची तगर और सैंधानमक इन चार पदार्थों का चूर्ण कर शहद में मिलाकर फुन्सी में प्रतिसारण करे अर्थात् उस औषध को फुन्सी के ऊपर चुपड़े तो अञ्जनामिका फुन्सी (गुहेरी) दूर होवे॥३७॥

नेत्ररोगपर तर्पण

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम् । यद्रूक्ष परिशुष्कं च नैत्रं कुटिलमाविलम् ॥३८॥ शीर्णपक्ष्मं शिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलन-संयुतम् । तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥३९॥ शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः । तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥४०॥

अर्थ-नेत्रों को तृप्त ऐसा तर्पण कहता हूं। जिस नेत्रों में रूक्षता शुष्कता वा कोपन तथा गदलाहट होवे ऐसे प्रकार के नेत्ररोग तथा जिसमें पलकों के बाल जाते रहे हों, शिरोत्पातक, कृच्छ्रोन्वीलन, तिमिर, अर्जुन, शुक्र (फूला,) अभिष्यन्द, अधिमन्थ, शुक्राक्षिपाक, सूजन, वातविपर्यय इतने रोगों करके व्याप्त जो नेत्र उनमें वैद्य तर्पण करे अर्थात् नेत्रों की तृप्तिकारी औषध उनमें डाले॥३८-४०॥

तर्पण अयोग्य प्राणी

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिंतायासभ्रमेषु च ।
अशांतोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते ॥४१॥

अर्थ-दुर्दिन (मेघाच्छादित दिवस) अत्यन्त गरमी और शीतकाल होने से शरीर में चिन्ता परिश्रम और भ्रम ये उपद्रव होने से तथा नेत्र सम्बन्धी शूलादिक उपद्रव शान्त न होने से यह तर्पण मात्रा की योजना न करे॥४१॥

तर्पण का विधान

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः । आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥४२॥ समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ

नेत्रकोशयोः । पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥४३॥ अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा । निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥४४॥ पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ।

अर्थ–पवन गरमी तथा धूल ये जिस जगह न होवें उस स्थान में मनुष्य को चित्त लिटाके नेत्रकोश में अर्थात् नेत्र के चारों ओर भीगे हुए उड़दों के चून का दृढ तथा उत्तम गोल और समान मण्डल बनावे। फिर नेत्रों को वन्द करके उस मंडल में पतला घी भर देवे। अथवा मांड (विछुमंड) अथवा सुखोष्णजल अथवा सौ बार धुला घी अथवा दूध ये पदार्थ जहां तक नेत्रों के पलक न डूबें वहा तक भरे अर्थात् तब तक पतली २ धार डाले, फिर धीरे २ नेत्रों को खोले॥४२–४४॥

तर्पणमात्रा का प्रमाण

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥४५॥ स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम् । शुक्ले च षटशतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥४६॥ दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ॥ सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥४७॥

अर्थ–नेत्र सम्बन्धी पलकों के रोग में सौ वाडमात्रा होने पर्यंत तर्पणरूप नेत्रों में धारण करे, केवल कफरोग हो तो नेत्रों के संधिगत रोग होने से पांच सौ मात्रा धारण करे, नेत्रों के सफेद भाग में रोग होने से छः सौ मात्रा, काली पुतली में रोग होने से सात सौ मात्रा, दृष्टिरोग होने से आठ सौ मात्रा, अधिमन्थरोग होने से एक हजार मात्रा, तथा वातरोग होने से एक हजार मात्रा तर्पणरूप औषध की धारण करे। इस प्रकार मात्रा का प्रमाण जानना॥४५–४७॥

तर्पणद्वारा कफ की अधिकता होने में उपाय

स्विन्नेन यवपीष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।
यथास्वं धूमपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥४८॥

अर्थ–तर्पण के स्नेह वीर्य करके उत्पन्न हुए कफ को दूर करने के लिये जौ भिगोकर हुक्के में धरके पीवे। इस प्रकार कफ को शोधन करना चाहिये॥४८॥

तर्पणप्रयोग कितने दिन करे उसकी मर्यादा

एकाहं वा त्र्यहं वापि पञ्चाहं चेष्यते परम् ।

अर्थ–नेत्रों में तर्पणप्रयोग करना हो तो एक दिन अथवा तीन दिन अथवा पांच दिन पर्यन्त करे। यह उत्कृष्ट प्रमाण जानना।

तर्पण तृप्ति के लक्षण

तर्पणे तृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्येमानि भावयेत् ॥४९॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघवमेव च ॥५०॥

अर्थ–सुखपूर्वक निद्रा का आना, यथेष्ट जागना, नेत्रों की कांति उत्तम हो, दृष्टि (नजर) स्वच्छ (साफ) हो, रोगों का नाश और क्रियालाघव (नेत्रों का खुलना मूँदनारूप क्रिया का

हलकापन) हो। ये लक्षण तर्पण करके नेत्र तृप्त होने से होते हैं।।४९।।५०।।

तर्पण अधिक होने से-लक्षण

अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् ।

अर्थ–अति तर्पण करके नेत्र अत्यन्त तृप्त होने से जल आवे, नेत्रों को भारीपन तथा चिकनाहट होती है।

हीनतर्पण के लक्षण

रूक्षमस्रा[१२४]विलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ।।५१।।

अर्थ–हीन तर्पण करके नेत्र तृप्त होने से तेजरहित हों, लाल रंग के हों, दूखें तथा रोगों करके व्याप्त हों।।५१।।

तर्पण करके नेत्र अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होने में यत्न

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ।

अर्थ–तर्पण करके अतिस्निग्ध नेत्र को रूक्ष उपायों करके अच्छा करे। हीनस्निग्ध नेत्रों को स्निग्धोपचारों करके चिकित्सा करे अर्थात् रूक्षों को चिकने पदार्थों करके और चिकनों को रूक्ष पदार्थों करके अच्छा करना चाहिये।

पुटपाक

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम् ।।५२।। द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपोषितौ । द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ।।५३।। तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ।। पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ।।५४।। तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपचारयेत् ।

अर्थ–इसके उपरांत पुटपाक साधन की क्रिया कहते हैं :–हरिणादिकों का मांस दो बिल्व लेकर उसको घृतादिक स्नेह पदार्थ के साथ मिला के बारीक पीसे, सूखी औषध जो रही है वह एक बिल्व ले। तथा दूध जल इत्यादिक द्रवपदार्थ एक कुडब ले ये सब वस्तु उस मांस में मिलाय के उस मांस का गोला बनावे। फिर जामुन अथवा आम इत्यादिकों के पत्तों को उस मांस के गोले के चारों तरफ लपेटके उस पर मिट्टी के लेप करे। पश्चात् पुटपाक की विधि से उस गोले को अग्नि में सिद्ध करे, फिर उसकी मिट्टी और पत्तों को दूर करके उस गोले को निचोड़ के रस निकाल लेवे और तर्पण की विधि के अनुसार इस रस को नेत्रों में डाले (बिल्व नाम पल का है) मध्यखण्ड में स्वरसाध्य में पुटपाक की विधि कही है।।५२–५४।।

पुटपाक सम्बन्धी रस नेत्रों में डालने का विधान

दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ।

स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ।।५५।।

अर्थ–वह पु[१२५]टपाक सम्बन्धी रस स्नेहन, लखन और रोपण इन भेदों करके तीन प्रकार का है। उस मनुष्य को चित्त लिटाके नेत्रों में दृष्टि के मध्यभाग में नित्य डालना चाहिये।।५५।।

स्नेहादि भेदकर के पुटपाक की योजना

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः ।

दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ।।५६।।

अर्थ-रूक्षनेत्रों में स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रों में लेखन पुटपाक की योजना करे तथा दृष्टि में बल आने के लिये इतर कहिये रोपण पुटपाक की योजना करे। वह पुटपाक नेत्रसम्बन्धी दुष्ट हुए रुधिर व्रण और वायु इनको दूर करे। इनकी पृथक् २ योजना आगे के श्लोक में कही है।।५६।।

स्नेहनपुटपाक

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदः स्वाद्वौषधैः कृतः ।
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्छते दृशोः ।।५७।।

अर्थ-घी हरिणादिकों का मांस वसा मज्जा और मेदा ये सब घी में मिला के पीसे। तथा स्वादु औषध कहिये काकोल्यादिगण की औषधों का चूर्ण करके उस मांसादिक में मिलाके गोला करे। उस गोले के चारों तरफ जामुन आंब इत्यादिकों के पत्ते लपेट उस पर मिट्टी लगाके पुटपाक विधि से अग्नि देवे। पश्चात् उस गोले को बाहर निकाल मिट्टी और पत्तों को दूर करके रस निचोड़ लेवे। इस रस को नेत्रों में डाले और जब तक दो सौ मात्रा होवें तब तक इसको धारण करे। इसको स्नेहन पुटपाक कहते हैं।।५७।।

लेखनपुटपाक

जाङ्गलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ।।५८।। कृष्णलोहरज-
स्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः। समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः
।।५९।। लेखनो वाक्छतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ।

अर्थ-हरिणादिकों के कलेजे का मांस लोहचूर्ण तांबे का चूर्ण शंख मूंगा सैंधानमक समुद्रफेन हीराकसीस सुरमा तथा बकरी के दही का तोड ये नौ लेखन द्रव्य जानने। इनका चूर्ण करके उसी मांस में मिला दे तथा उसमें दही का तोड (दही का जल) मिलाके गोला करै। और इसको पुटपाक की विधि (जो पूर्व कह आये हैं उसी प्रकार) से सिद्ध करे। पश्चात् उसको बाहर निकाल निचोड़कर रस निकाल लेवे। इसको नेत्रों में डाल के सौ वाङ्मात्रा होने पर्यंत धारण करें। इसको लेखन पुटपाक कहते हैं।।५८।।५९।।

रोपण पुटपाक

स्तन्यजांगलमध्वाज्य—तिक्तकद्रव्यपाचितः ।।६०।।
लेखनात्त्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ।
वितरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ।।६१।।

अर्थ-स्त्री के स्तन का दूध हरिणादिकों का मांस शहद घी और कुटकी इन संपूर्ण औषधों को पूर्वोक्त हरिणादिक के मांस में मिलाके गोला बनावे। तथा इसको पुटपाक की विधि से परिपक्व करके बाहर निकाल पत्ते मिट्टी दूर करे रस निचोड़ लेवे इसको नेत्र में डाल के तीन सौ वाङ्मात्रा होने पर्यन्त धारण करे। इसको रोपणपुटपाक कहते हैं। यदि पुटपाक के अधिक अथवा न्यून होने में नेत्रों में भारीपना तथा निस्तेजता इत्यादिक होवें तो तर्पण में जैसी क्रिया लिखी है उसी प्रकार इस पुटपाक के हीनाधिक्य होने में करनी चाहिये।।६०।।६१।।

संपक्वदोष होने से अञ्जन तथा साधारण अञ्जन का विधान

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । हेमन्ते शिशिरे चैव
मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ।।६२।। पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे

शरदि चेष्यते । वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसंते च सदैव हि ।।६३।।

अर्थ-दोषों का परिपाक[१२६] होने पर अर्थात् पांच दिन के पश्चात् अंजनादिक करे। तथा अंजन की साधारण विधि कहते हैं कि, हेमन्तऋतु (मार्गशीर्ष और पौष) तथा शिशिरऋतु (माघ फाल्गुन) इनमें मध्याह्नकाल में (दो प्रहर दिन चढ़ने पर) नेत्रों में अंजन करे। ग्रीष्मऋतु (ज्येष्ठ आषाढ) और शरदऋतु (आश्विन कार्त्तिक) इनमें दो प्रहर दिन चढने के पूर्व और तीसरे प्रहर में अंजन करे। वर्षाऋतु (श्रावण भाद्रपद) और बादलों के होने पर तथा अत्यन्त गरमी में न अंजन करे। एवं वसंत ऋतु में सर्वकाल अंजन करना चाहिये।।६२।।६३।।

अंजन के भेद

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम्। लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लर-सैरञ्जनमिष्यते ।।६४।। कषायतिक्तरसयुक्सस्नेहं रोपणं मतम् । मधुरस्नेहसम्पन्नमञ्जनं च प्रसादनम् ।।६५।।

अर्थ-लेखन रोपण और स्नेहन इन भेदों करके अंजन तीन प्रकार का है। उनमें खारी तीक्ष्ण और खट्टा ये रस जिस अंजन में है वह लेखन अंजन कहाता है। कषाय (कसैला) तिक्त (कड़ुआ) इन दो रसों करके युक्त जो अंजन स्नेहयुक्त जो हो उस अंजन को प्रसादन (स्नेहनांजन) जानना चाहिये।।६४।।६५।।

गुटिकादिभेदकरके तीन भेद

गुटिका-रस-चूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि च । कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ।।६६।।

अर्थ-गुटिका (गोली) तथा रसरूप (द्रवपदार्थ युक्त) अंजन एवं चूर्ण इस प्रकार से अंजन तीन प्रकार के जानने। गुटिका की अपेक्षा (बनिस्वत) रस गुणों में न्यून है तथा रसाञ्जन की अपेक्षा चूर्णांजन गुणों में न्यून है, इस प्रकार उत्तरोत्तर गुणों में हलके हैं। तथा अंजनों को शलाका (सलाई) करके अथवा उँगलियों से नेत्रों में लगावे।।६६।।

अंजनविषय में अयोग्य

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे । अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रचक्षते ।।६७।।

अर्थ-श्रम से थका हुआ, रुदन करनेवाला, डरपोक, मद्यपान करनेवाला, नवीन ज्वरमाला और अजीर्ण होनेवाला, मूत्रादिकों का अवरोध करनेवाला ऐसे मनुष्य को अंजन नहीं करना चाहिये।।६७।।

अंजनवर्ती का प्रमाण

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक् । प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धा द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ।।६८।।

अर्थ-तीक्ष्ण अंजन (जो नेत्रों को अत्यन्त पीडा करे) की हरेणु (मटर) समान लम्बी बत्ती बनावे। उसी प्रकार मध्यम अंजन में हरेणु की डेढ बीज के बराबर लंबी गोली बनावे और मृदु अञ्जन में मटर के दो बीजों की बराबर गोली बत्ती के आकार करे।।६८।।

अञ्जन में रस का प्रमाण

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता हिता ।

मध्यमा द्विविडङ्गा स्याद्धीना त्वेकविडङ्गका ॥६९॥

अर्थ–रसक्रिया (द्रवरूप अञ्जन की मात्रा) तीन वायविडङ्ग के समान नेत्रों में डालने से उत्तम रसक्रिया जाननी। दो वायविडङ्ग के समान मात्रा नेत्रों में डालने को मध्यम रसक्रिया जाननी। एकवायविडङ्ग के प्रमाण की मात्रा हीनरसक्रिया अर्थात् कनिष्ठ जाननी॥६९॥

विरेचन अञ्जन में चूर्ण का प्रमाण

वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते ।

मृदौ तु त्रिशलाकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने ॥७०॥

अर्थ–वैरेचनिकचूर्ण (जिस चूर्ण से नेत्रों से अधिक जल गिरे) उसको द्विशलाक अर्थात् सलाई को दो बार चूर्ण में डाल के दो बार नेत्रों में फेरके निकाल लेवे, मृदु अञ्जन में औषधों के चूर्ण में तीन बार सलाई को डुबोके तीन बार नेत्रों में फेरके निकाल ले। घी आदि जो चिकने पदार्थ हैं उनसे मिले हुए अञ्जनों में सलाई को चार बार डुबो के चार बार नेत्रों में फेरके निकाल लेना चाहिये॥७०॥

सलाई का प्रमाण और वह किसकी बनावे

मुखयोः कुण्ठिता श्लक्ष्णा शलाकाऽष्टांगुलोन्मिता ।

अश्मजा धातुजा वा स्यात् कलायपरिमण्डला ॥७१॥

अर्थ–पाषाण (पत्थर) की अथवा सुवर्णादि धातुओं को ऐसी सलाई आठ अंगुली की करके उसका मुख गोल करे परन्तु बारीक न करे। तथा वह मटर के दाने के समान सुन्दर गोल होनी चाहिये॥७१॥

लेखनादिक में सलाई का प्रमाण

ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता।सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता ॥७२॥ अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ।

अर्थ–लेखन अञ्जन में तांबे की अथवा लोहे की अथवा पत्थर की सलाई की योजना करे। स्नेहन अञ्जन में सोने की अथवा रूपे (चांदी) की सलाई की योजना करे तथा उँगली में नम्रता है इसी वास्ते रोपण अञ्जन में उँगली की योजना करे अर्थात् उँगली ही से लगावे॥७२॥

कौनसे समय तथा कौनसे भाग में अञ्जन करे

सायं प्रातश्चाञ्जनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ॥७३॥

नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ।

कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥७४॥

अर्थ–सायंकाल और प्रातःकाल अञ्जन करे, सर्वकाल अञ्जन न करे। अत्यन्त शीतकाल अत्यंत उष्णकाल, वायु (अत्यंत हवा) चलने के समय और जिस समय बादल होवे उस समय अञ्जन न करे, नेत्र के काले भाग के नीचे के पलक में अञ्जन करना चाहिये।७३॥७४॥

चन्द्रोयावर्ती

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनः शिला । पिप्पली मरिचं

कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ।।७५।। छागीक्षीरेण संपिष्य वर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथाञ्जनम् ।।७६।। तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् । रात्र्यंध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ।।७७।।

अर्थ–१ शंख की नाभी, २ बहेडे के फल के भीतर की गिरी, ३ हरड, ४ मनशील, ५ पीपल, ६ कालीमिरच, ७ कूठ और ८ वच ये आठ औषध समान भाग ले बकरी के दूध में बारीक पीस जौ के समान गोली बत्तरी के सदृश लंबी बनावे। इसको चन्द्रोदया वर्ती कहते हैं। पश्चात् एक गोली को रेणुका के बीज के समान जल में घिस के नेत्रों में अञ्जन करे तो तिमिर, मांसवृद्धि, कांचबिंदु, पटलगतरोग, अर्बुद, रतोंध तथा एक वर्ष का फूला ये सब रोग दूर हों।।७५–७७।।

फूल आदि पर बत्ती

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता ।
करंजबीजवर्तिस्तु शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ।।७८।।

अर्थ–करञ्ज के बीजों का चूर्ण करके पलाश के फूलों के रस की अनेक भावना अर्थात् पुट देकर बहुत बारीक खरल कर बत्ती के समान लंबी गोली बनावे। फिर उस गोली को जल में घिसके नेत्रों में आंजे तो शुक्र (फूला) आदि शब्द करके मांसवृद्धि इत्यादिक शस्त्र से काटने के समान दूर होवें।।७८।।

दूसरा प्रकार

समुद्रफेन–सिन्धूत्थ–शंखदक्षांडवल्कलैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ।।७९।।

अर्थ–१ समुद्रफेन, २ सैंधानमक, ३ शंख, ४ मुरगे के अण्डे के ऊपर का वक्कल, ५ सँहजने के बीज ये पांच औषध समान भाग ले जल से पीस बत्ती के समान गोली करके नेत्रों में अंजन करे तो फूला इत्यादिक रोग शस्त्र से काटने के समान दूर हों।।७९।।

लेखनीदन्तवर्ती

दन्तैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः ।
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ।।८०।।
दंतवर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा ।

अर्थ–हाथी सूअर ऊँट बैल घोड़ा बकरा और गधा इनके दांत तथा शंख मोती और समुद्रफेन इन सबका चूर्ण करके पानी में पीसके बत्ती के सदृश गोली बनावे। इस गोली को दन्तवर्ती कहते हैं इसको जल में घिसके नेत्रों में अञ्जन करे तो फूला दूर हो।।८०।।

तंद्रा दूर होने को लेखनीवर्ती

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ।।८१।।
एतत्कल्कैः कृता वर्तिरतितन्द्रां विनाशयेत् ।

अर्थ–नीला, कमल, सहँजने के बीज तथा नागकेशर ये तीन पदार्थ समान भाग ले जल में खरल करके लम्बी गोली बनावे। इसको जल में घिस के नेत्रों में आंजे तो तन्द्रा दूर होवे।।८१।।

रोपणीकुसुमिकावर्ती

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्याः कणाकणाः ॥८२॥ जातीसुमानि पंचाशन्मरिचानि च षोडश। सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ॥८३॥ तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिहृत्। एतस्याश्चांजने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥८४॥

अर्थ–तिल के फूल ८० पीपल के भीतर के दाने ६० चमेली के फूल ५० तथा कालीमिरच १६ इन सबको एकत्र कर जल से पीस के गोली बनावे। इसको कुसुमिका वर्ती कहते हैं। यह गोली हरेणु का डेढ १॥ बीज के बराबर जल में पीस के नेत्रों में अञ्जन करे तो तिमिर अर्जुन फूला और मांसवृद्धि ये रोग दूर होवें॥८२–८४॥

रतोंध दूर करने की बत्ती

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालतीनिंबपल्लवाः।
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी ॥८५॥

अर्थ–१ रसोत, २ हल्दी, ३ दारुहल्दी, ४ चमेली के पत्ते, ५ नीम के पत्ते इन पांच औषधों को समान भाग ले गौ के गोबर के रस में बारीक पीसके गोली बनावे। इसको जल से घिसके लगावे तो रतोंध दूर हो॥८५॥

नेत्र स्राव पर स्नेहनीवर्ती

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि ह्येकद्वित्रिगुणानि च। पिष्ट्वा वर्तिं जलैःकुर्यादंजनं द्विहरेणुकम् ॥८६॥ नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तः रुजं तथा।

अर्थ–आंवले के भीतर का बीज १ भाग बहेडे के फल का बीज २ भाग हरड के भीतर का बीज ३ भाग इन सब बीजों को एकत्र करके जल में बारीक पीस लम्बी गोली करे पश्चात् उस लम्बी गोली में से दो हरेणुका के बीज समान जल में घिसके नेत्रों में आंजे तो नेत्रों से जल का बहना तत्काल दूर हो तथा वातरक्त सम्बन्धी पीड़ा दूर हो॥८६॥

रसक्रिया

तुत्थमाक्षिकसिन्धूत्थं सिताशंखमनःशिला ॥८७॥ गैरिको-दधिफेनौ च मारचं चेति चूर्णयेत्। संयोज्य मधुना कुर्यादंजनार्थं रसक्रियाम् ॥८८॥ वर्त्मरोगार्मतिमिरकाच-शुक्रहरां पराम्।

अर्थ–१ नीलाथोथा, २ स्वर्णमाक्षिक, ३ सैंधानमक, ४ मिश्री, ५ शंख, ६ मनशिल, ७ गेरू, ८ समुद्रफेन और ९ कालीमिरच, ये नौ औषध समान भाग ले बारीक चूर्ण कर सहत में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करे तो पलकों के रोग चर्म रोग तिमिर काचबिन्दु और फूला ये रोग दूर हों॥८७॥८८॥

फूला दूर करने की रस क्रिया

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः।
क्षिप्रमञ्जनतो हंति कुसुमं च द्विमासिकम् ॥८९॥

अर्थ-बड़ के दूध में कपूर को घिस नेत्रों में अञ्जन करने से दो महीना का फूला शीघ्र दूर हो॥८९॥

अतिनिद्रानाशक लेखनी रसक्रिया

क्षौद्राश्वलालसंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत्।
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदये यथा ॥९०॥

अर्थ-शहद और घोड़े की लार इन दोनों में काली मिरच पीस के जिसको अत्यंत निद्रा आती हो, उसके नेत्रों में लगावे तो जैसे सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है, उसी प्रकार इस गोली के अञ्जन करने से निद्रा तत्काल दूर होवे॥९०॥

तन्द्रानाशक रसक्रिया

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुकी वचा।
सैन्धवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥९१॥

अर्थ-चमेली के फूल, चमेली के अंकुर वा काली मिरच कुट की वच और सैंधानमक ये औषधि समान भाग ले बकरे के मूत्र में सबको बारीक पीस नेत्रों में अञ्जन करे तो तन्द्रा दूर हो॥९१॥

सन्निपातपर रसक्रिया

शिरीषबीजं गोमूत्रे कृष्णा-मरिच-सैन्धवैः।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोन-शिला-वचैः ॥९२॥

अर्थ-१ सिरस के बीज, २ पीपल, ३ काली मिरच, ४ सैन्धानमक, ५ लहसन, ६ मनशिल और ७ वच, ये सात औषध समान ले गोमूत्र में पीस के जो मनुष्य सन्निपातमें बेहोश पड़ा हो उसके नेत्रों में अञ्जन करे तो उसको तत्काल होश हो जाये॥९२॥

दाहादिकों पर रसक्रिया

दार्वी पटोलं मधुकं सनिंबं पद्मकोत्पलम् ॥९३॥ सपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे। विपाच्य पादशेषं तु शृतं नीत्वा पुनः पचेत् ॥९४॥ शीते तस्मिन्मधुसितां दद्यात्पादांशकां नरः। रसक्रियैषा दाहाश्रुरक्तरोगरुजो हरेत् ॥९५॥

अर्थ-१ दारुहल्दी, २ पटोलपत्र, ३ मुलहठी, ४ नीम की छाल, ५ पद्माख, ६ कमल, ७ सफेद कमल, ये सात पदार्थ समान भाग लेकर जो कुटकर उसमें सब औषधों से चौगुना जल डाल के औटावे। जब चतुर्थांश शेष रहे तब उतार ले। फिर उसको छान के फिर औटावे, जब गाढ़ा होने पर आवे तो उस अवलेह से चौथाई सहत और मिश्री मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करे तो दाह स्राव रुधिर के विकार से नेत्रों का लाल रंग होना, ये सर्व रोग दूर होवें॥९३-९५॥

नेत्रों के पलकों को बाल आने की तथा खुजली
आदि पर रोपणीरसक्रिया

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥९६॥ एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि। अञ्जनं क्लेदकंडूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥९७॥

अर्थ–१ रसोंत, २ राल, ३ चमेली के फूल, ४ मनशिल, ५ समुद्रफेन, ६ सैन्धानमक, ७ गेरू और ८ काली मिरच। इन आठ औषधों का चूर्ण कर सहत में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करे तो पलकों के रोगों में उत्क्लिष्ट जो वर्त्म रोग है वह तथा नेत्रों का मैलयुक्त होना एवं खुजली ये रोग दूर होवें तथा पलकों में झड़े हुए बाल फिर पैदा हों॥९६॥९७॥

तिमिर पर रसक्रिया

गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम् । सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥९८॥ अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत् । कांच कण्डूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान् गदान् ॥९९॥

अर्थ–गिलोय का स्वरस एक कर्ष निकाल के उसमें सहत और सैंधानमक एक एक मासा मिलाय के अच्छी रीति से खरल करे, फिर नेत्रों में अञ्जन करे तो पिल्लार्म तिमिर, कांचबिंदु, खुजली, लिङ्गनाश तथा नेत्रों में सफेद भाग में और काले भाग में होनेवाले ये सब रोग दूर हों॥९८॥९९॥

अञ्जन में पुनर्नवा का योग

दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा । पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधताम् ॥१००॥ पुनर्नवा जयेदाशु भास्कर-स्तिमिरं यथा ।

अर्थ–पुनर्त्तवा (सांठी) को दूध में घिस के नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्रों की खुजली दूर हो। सहत में घिस के लगावे तो नेत्रों से जल का बहना दूर हो। घी में घिस के लगावे तो फूला दूर होवे। तेल में घिस के लगावे तो तिमिर रोग नष्ट हो। कांजी में घिस के लगावे तो रतोंधा दूर हो। इस विषय में दृष्टांत है कि जैसे सूर्यनारायण अन्धकार का तत्काल नाश करते हैं उसी प्रकार पुनर्नवा अनुपान के भेद करके सर्व रोगों को दूर करती है॥१००॥

नेत्रस्राव पर रोपणीरसक्रिया

बब्बूलदलनिष्क्वाथो लेहीभूतस्तदंजनात् ॥१०१॥
नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः ।

अर्थ–बबूल के पत्तों का काढ़े को गाढ़ा होने पर्यंत औटावे। फिर उसमें थोड़ा सा शहद डाल के नेत्रों में अंजन करे तो यह नेत्रों से जल के बहने को निश्चय दूर करे॥१०१॥

दूसरा प्रकार

हिज्जुलस्य फलं घृष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥१०२॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम् ।

अर्थ–हिज्जुल के फल को पानी में घिस के नित्य अंजन करे तो नेत्रों से जल गिरने को दूर करे॥१०२॥

नेत्र स्वच्छ होने को स्नेह की रसक्रिया

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ॥१०३॥
ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ।

अर्थ-नीर्मली के फल को सहत में घिस के उसमें थोड़ा सा कपूर मिलाके नेत्र प्रसन्न होने के वास्ते अंजन करे।।१०३।।

शिरोत्पातरोगपर अंजन

सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य शातने ।।१०४।।

अर्थ-घी और शहद दोनों को एकत्र कर नेत्रों में अंजन करे तो नेत्र रोग में जो शिरोत्पात रोग है वह दूर हो।।१०४।।

अन्धापन दूर होने की रसक्रिया

कृष्णसर्पवसा शंखः कंतकाफलमंजनम् ।
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ।।१०५।।

अर्थ-काले सर्प (काले सांप) की वसा कहिये, मांसस्नेह शंख और निर्मली के बीज इन तीनों को एकत्र खरल कर नेत्रों में अंजन करे तो मनुष्य को बहुत जल्दी दीखने लगे।।१०५।।

लेखनचूर्णाजन

दक्षाण्डत्वक्छिलाकाचैः शंखचन्दनगैरिकः ।
द्रव्यैरंजनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ।।१०६।।

अर्थ-१ मुर्गे के अण्डे के छिलके, २ मनशिल, ३ सफेद, कांच ४, शंख ५ लाल चन्दन और ६ सुवर्णगेरिक अर्थात् नम्र जात का गेरू ये छः पदार्थ समान भाग ले बारीक पीस के चूर्ण करे। फिर उसको नेत्रों में अजंन करे तो फूला और मांसामर्दिक रोग दूर हों।।१०६।।

रतोंध दूर होने को लेखनचूर्ण

कणाच्छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धंति नक्तांध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ।।१०७।।

अर्थ-बकरे के कलेजे के मांस में पीपल रख के अंगारों पर पाक करे। पश्चात् उस मांस के रस तथा पीपल इन दोनों की पीस अंजन करे तो रतोंधा दूर हो। शहद और कालीमिर्च का अंजन भी रतोंधे को दूर करता है।।१०७।।

खुजली आदि पर लेखन चूर्णाजन

शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः । शाणार्धं सैन्धवं शाणा नवसौवीरकांजनात् ।।१०८।। पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् । कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम् ।।१०९।।

अर्थ-कालीमिरच अर्ध शाण, पीपल और समुद्रफेन ये दोनों दो दो शाण ले। सैन्धानमक अर्ध शाण तथा सुरमा नौ शाण इन सब औषधों को जिस दिन चित्रा नक्षत्र हो उस दिन अत्यन्त बारीक पीस चूर्ण करे। फिर इस चूर्ण का नेत्रों में अंजन करे तो खुजली तथा काचबिंदु ये दूर हों। कफ करके पीड़ित नेत्रों के मलों का शोधन हो।।१०८।।१०९।।

सर्वनेत्ररोगों पर मृदुचूर्णाजन

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा । गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ।।११०।। शुष्कं च

तज्जलं सर्वं पर्पटी सन्निभं भवेत् । विचूर्ण्यभावयेत्सम्यक् त्रिवेलं त्रिफलारसैः ।।१११।। कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् । अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हितम् ।।११२।। सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च ।

अर्थ–खपरिया को पत्थर के खरल में उत्तम रीति से खरल करके काजल समान बारीक चूर्ण करे। पश्चात् उस चूर्ण को जल में डाल के मिला देवे, फिर उस जल को नितार के दूसरे पात्र में निकाल लेवे और उस पात्र में जो नीचे खपरिया के बड़े बड़े टुकड़े रह गये हों उनको दूर पटक देवे। फिर उस नितारे हुए पानी को दूसरे पात्र में करके सुखा ले। इस प्रकार करने से उस खपरिया के चूर्ण की पपड़ी जम जायेगी, उसको निकाल के चूर्ण करे। उस चूर्ण को त्रिफले के काढ़े की तीन भावना देवे। पश्चात् उस चूर्ण का दशवां भाग भीमसेनी कपूर मिलाके नेत्रों में अंजन करे तो सर्वरोग दूर होकर नेत्रों को सुख हो।।११०-११२।।

सर्वनेत्ररोगों पर सौवीरांजन

अग्नितप्तं च सौवीरं निषिञ्चेत्त्रिफलारसैः ।।११३।। सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तं विचूर्णितम् । अंजयेन्नयने तेन प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम् ।।११४।। सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः ।

अर्थ–सुरमे को अग्नि में तपाके उस पर त्रिफले के काढ़े को छिड़क देवे। जब शीतल हो जावे तब फिर अग्नि में तपावे और त्रिफले का काढ़ा छिड़क के शीतल करे। इस प्रकार सात बार करे तथा इसी प्रकार सात बार स्त्री का दूध छिडक के शीतल करे। फिर इसको बहुत बारीक पीस सलाई से अञ्जन करे तो यह अञ्जन नेत्रों को बहुत हितकारी होता है इसमें सन्देह नही है।।११३।।११४।।

शीशे की सलाई बनाने की विधि

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा ।।११५।।
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ।
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान् ।।११६।।

अर्थ–त्रिफले का काढ़ा, भांगरे का रस, सोंठ का रस, सोंठ का काढ़ा, घी, गोमूत्र, शहद और बकरी का दूध, इन एक एक में सात सात बार शीशे को बुझावे। फिर उस शीशे की सलाई बनावे। इस सलाई को नेत्रों में फेरा करे तो सम्पूर्ण नेत्र के रोग दूर होवें।।११५।।११६।।

प्रत्यंजन करने की विधि

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन् सम्यगंभसि ।
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः ।।११७।।

अर्थ–उस शीशे की सलाई को नेत्रों में फेरने से दूर हो, नेत्रों से पानी निकल जाने के पश्चात् रोगी क्षणमात्र शीतल जल को देखे, फिर उसके नेत्र जल से धोकर नेत्रों में प्रत्यंजन करे, वह प्रत्यंजन आगे इसी ग्रन्थ में लिखा है।।११७।।

सदोष नेत्र होने से निषेध

नवाऽनिर्गतदोषेऽक्षिण धांवनं संप्रयोजयेत् ।
प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः ।।११८।।

अर्थ-नेत्रों से जब तक दोष निःशेष निकले तब तक नेत्रों को जल से नही धोवें तथा तीक्ष्ण अञ्जन करके नेत्र सन्तप्त होने से उसमें प्रत्यंजन चूर्ण लगावे। वह आगे श्लोक में कहा है अथवा प्रसादन चूर्ण नेत्रों में लगावे॥११८॥

नयनामृताञ्जन प्रत्यंजनचूर्ण

शुद्धे नागे द्रुते तुल्यं शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत् । कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥११९॥ दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत् । एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदज्जि-न्नयनामृतम् ॥१२०॥

अर्थ-शीशे को शुद्ध[१२८] करके अग्नि पर पतला करे। उसके सम भाग शुद्ध किया हुआ पारा लेकर उस तपे हुए शीशेमें मिला देवे। पश्चात् इन दोनों का समान भाग सुरमा लेकर दोनों में मिला दे। फिर सबका चूर्ण करके उस चूर्ण का दशवां हिस्सा भीमसेनी कपूर उस चूर्ण में मिलावे। इसको प्रत्यंजन चूर्ण कहते हैं। इस करके संपूर्ण नेत्ररोग दूर होते हैं तथा यह चूर्ण नेत्रों को अमृत के समान गुण करता है॥११९॥१२०॥

सर्वविषपर अञ्जन

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंबुकद्रवैः ।
एकविंशतिवेलं तत्ततो वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥१२१॥
मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तयांजयेत् ।
सर्पदष्टविषं जित्वा सञ्जीवयति मानवम् ॥१२२॥

अर्थ-जमालगोटे के भीतर की मज्जा अर्थात् बीजों के भीतर का बीज उसको नींबू के रस की इक्कीस पुट देवे, बारीक पीस लम्बी गोली बनावे पश्चात् उसको मनुष्य की लार में घिस के नेत्रों में अञ्जन करे तो सर्प के काटने से जो विषबाधा हों वह दूर होकर मनुष्य सावधान हो जाता है॥१२१-१२२॥

हाथों की हथेली से नेत्र पोंछने के गुण

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगा विनश्यंति तिमिराणि तथैव च ॥१२३॥

अर्थ-भोजन[१२९] करने के पश्चात् हाथों को धोकर गीले हाथों की दोनों हथेली आपस में घिस के नेत्रों में लगावे तो उत्पन्न हुए रोग तथा तिमिर रोग दूर होवें॥१२३॥

शीतांबुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन । आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षिरोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥१२४॥

अर्थ-प्रतिदिनं दिन में तीन बार शीतल जल में मुख को भर के शीतल जल से नेत्रों को तीन बार छिड़के तो अति दुःख देनेवाली नेत्ररोगसम्बन्धी पीड़ा कभी नहीं मिलती॥१२४॥

ग्रन्थको समूलत्वसूचनापूर्वक स्वाभिमान परिहार

आयुर्वेदसमुद्रस्य गूढार्थमणिसंचयम् । ज्ञात्वा कैश्चिद्बुधैस्तैस्तु कृता विविधसंहिताः ॥१२५॥ किंचिदर्थं ततो नीत्वा कृतेयं

संहिता मया । कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यां कुर्वंतु साधवः ॥१२६॥

अर्थ–समुद्र के समान (दुरवगाह) अयुर्वेद सम्बन्धी जो मणि के समान गूढ़ार्थ उनके समुदायों को उत्तम प्रकार से जानकर अग्निवेश चरकादिक मुनीश्वरों ने अनेक प्रकार की जो संहिताएं की हैं उन सब संहिताओं के कुछ कुछ सारांश लेकर यह शार्ङ्गधरसंहिता की है। इस पर महात्माजन कृपा करके अवलोकन करें॥१२५॥१२६॥

ग्रन्थ पढ़ने का फल

विविधगदार्तिदरिद्रनाशनं या हरिरमणीव करोति योगरत्नैः ।
विलसतु शार्ङ्गधरसंहिता सा कविहृदयेषु सरोजनिर्मलेषु ॥१२७॥

अर्थ–योग कहिये काढ़े, चूर्ण, गुटिका, अवलेह इत्यादिक, ये ही हुए रत्न इनके करके अनेक प्रकार के ज्वरादिकों जो रोग तत्मसम्बन्धी पीड़ारूप जो दरिद्र उसको दूर करनेवाली ऐसी यह शार्ङ्गधरसहिता कमल के समान निर्मल कवि के हृदय में शोभित होवे। इस विषय में दृष्टांत है कि जैसे लक्ष्मी अनेक प्रकार के रत्नों करके अपने आश्रित (भक्तजनों) के दरिद्र को दूर करती है वैसे ही यह संहिता भी समझनी चाहिये॥१२७॥

सहेतुक इस ग्रन्थ की पढ़ने की आज्ञा

अल्पायुषामल्पधियामिदानीं कृतं समस्तश्रुतिपाठशक्ति ।
तदत्र युक्तं प्रतिबीजमात्रमभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥१२८॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां सहितायामुत्तरखंडे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

अर्थ–कलियुग में प्रायः मनुष्य अल्पायुषी तथा अल्पबुद्धिवाले हैं, इसी से (लोग सब आयुर्वेद पढ़ने में समर्थ नहीं है अतएव) इस युग में सम्पूर्ण पठन योग्य, आत्मा को हितकारी सारांशरूप ऐसा यह तन्त्र बनाया है, उसका बड़े प्रयत्न करके अभ्यास करें॥१२८॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितामुत्तरखण्डे श्रीवैद्यरत्न पं० रामप्रसादकृतभावप्रकाशिका हिन्दीटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

पाद टिप्पणीयां
प्रथम खण्ड

१ यदङ्गतेजः प्रसरे–इस पद के कहने से यह दिखाया कि श्रीशिव का विभूति विभूषित अंग होने पर भी अति शुभ्रता के कारण पर्वत की उपमा देना युक्त ही है और उस सुन्दर स्वरूप में खचित श्रीभगवतीजी को औषधिस्वरूप करके कहा यह शार्ङ्गधर आचार्य की बुद्धिमानी सराहने योग्य है। प्रायः वैद्यों को पर्वत और औषधि से ही कार्य रहता है अतएव इस शार्ङ्गधरसंहिता में शिव पार्वती की पर्वत और औषधिरूप उपमा देना अपना अभीष्ट दिखलाया। कोई कहते हैं कि, इस अर्द्धांगी स्वरूप के वर्णन में वात पित्त और कफ तीनों का आधिपत्य वर्णन किया है, जैसे पित्त उष्ण होता है उसी प्रकार श्रीशिव का तेज उष्ण सो पित्ताधिप हुआ और श्रीशिवजीकी चन्द्रिका शीतल है। सो श्लेष्माधिप हुई तथा सर्प भूषण से वाताधिपत्य सूचित किया। जैसे ये तीनों गुण सदैव शिव के स्थित रहते हैं उसी प्रकार इस शार्ङ्गधर ग्रन्थ में वात, पित्त, कफ की समता जाननी। और जैसे हिमालय में औषधि प्रकाशित है उसी प्रकार उस ग्रन्थ में भी औषधियों का वर्णन है। यद्यपि यह ग्रन्थ की भी उपमा कही परन्तु मुख्य उपमा पर्वत शिव की यथार्थ है। २ निर्मलचन्द्रिकायते' इति पाठान्तरम् । ३ सिद्धिः श्रोतृप्रवक्तृणां सम्बंधकथनाद्यतः । तस्मात् सर्वेषु शास्त्रेषु सम्बंधः पूर्वमुच्यते ।। ४ रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम् । ततः कर्मभिषक् पश्चाद्ज्ञानपूर्वकं समाचरेत् ।। ५ जिससे रोग हो उसका नाम हेतु है उसीको निदान कहते है, जैसे मृत्तिक्राभक्षण से पीलिया होता है। ६ रोग होने के प्रथम जभाई आना, अङ्गों का टूटना, अरुचि इत्यादिक लक्षण होते हैं उसका नाम आदिरूप है और उसको पूर्वरूप कहते हैं। ७ रोमों के तृषा, मूर्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं उस अवस्था का नाम आकृति है उसीको रूप कहते हैं। ८ औषध बिहार इनका रोगी के प्रकृत्यनुसार सुखकारी प्रयोग हो उसका नाम सात्म्य और उसी को उपशय कहते हैं। ९ जिन कारणों से वाताद्यन्यतमदोष दूषित हो ऊर्ध्वाधरतिर्यक् यथेष्ठ विचरने से जो रोगी की उत्पत्ति हो, उस कारण तथा उस दुष्टदोष तथा उसका विचरना इन सबके वास्तविक होने से जो आनुपूर्विक ज्ञान हो उसको जाति अथवा सम्प्राप्ति कहते हैं। १० शरीर में बढ़े हुए वातादि दोषों को औषधि करके घटाने को कर्षणचिकित्सा कहते हैं। ११ अतिक्षीण दोषोंके पुष्ट करनेके बृंहण चिकित्सा कहते हैं। १२ यस्तु दोषविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् । १३ दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेताथ रोगिणम् । रोगं निदानप्राग्रूपलक्षणोपशयादिभिः ।। १४ पञ्चभिः श्रोत्रादिभिः प्रश्नेन चेति तत्र श्रोत्रन्द्रियविज्ञेया रोगेषु प्रनष्टशल्य विज्ञानीयादिषु वक्ष्यन्ते । सफेनं रक्तमीरयन्ननिलः सशब्दो निर्गच्छतीत्येवमादयः । रसनेन्द्रिया विज्ञेयाः प्रमेहादिषु रसविशेषाः घ्राणेन्द्रियविज्ञेया अरिष्टलिङ्गदिषु व्रणानां च गन्धविशेषाः १५ मिथ्यादृष्ट्वा हि दुराख्यातास्तथैव च । तथा दुःपरिदृष्टाश्च मोहयेयुश्चिकित्सकम् ।। १६ चतुर्णो भिषगादीनां शस्तानां धातुवैद्यकृते । प्रवृत्तिधातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते।। १७ रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता। १८ सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्मणो वापि कस्यचित् । यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ।। १९ स्वभाव करके होनेवाले जो क्षुधा, तृषा, जरा, निद्रा आदि उनको स्वाभाविक व्याधि कहते हैं। २० जो अभिघात निमित्त करके रोग होते हैं (जैसे सर्प का काटना, शस्त्र आदिका लगना) उनको आगन्तुक कहते हैं। २१ शरीर में वातादिदोष विषमता करके उत्पन्न हुए ज्वर रक्तपित्त, कांसादिक रोग उनको कायिक कहते हैं।

२२ मनोविकार करके उत्पन्न हुए जो मद, मूर्च्छा, संन्यास, ग्रह, भूतोन्मादादिक रोग उनको आंतरिक (मानस) कहते हैं। २३ कर्मप्रकोपेन कदाचिदेके दोषप्रकोपैन भवन्ति चान्ये । तथा परे प्राणिषु कर्मदोषप्रकोपजाः कायमनोविकाराः ॥ २४ दुष्टामयाः परकलत्रधनर्णहारगुर्वङ्गनागमन-विप्रबधादिभिर्वा । दुष्कर्मभिस्तनुमृत । मिह कर्मजाते नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम् ॥ २५ दानैर्दयादि भिरपि द्विजदेवतागोससेवनप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः। इत्युक्तपुण्यनिचयैरपचीप-मानाः। प्राक्वमज्जा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति॥ २६ स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरवप्लुतैः स्वेषु मुहुश्चलद्भिः । भवन्तिं ये प्राणभूतां विकारास्ते दोषजा भेषजसिद्धिसाध्याः॥ २७ दानादिभिः कर्मभिरौषधैश्च कर्मक्षये दोषपरिक्षये च । सिद्धयन्ति ये यत्नवतां कथंचित् ते कर्मदोषप्रभवा विकाराः॥ २८ सिद्धं सिद्धैः प्रमाणैस्तु हितं चात्र परत्र च । आगमः शास्त्रमाप्तानामाप्ताः सत्यार्थवेदिनः॥ २९ जीवेद्वर्षसहस्राणि योगस्यास्य प्रभावतः ॥ वृद्धा च शतवर्षीया भवेत् षोडशवार्षिकी ॥ ३० मनोऽक्षिगतमातंन्भ्र वस्तु प्रत्यक्षमुच्यते । इन्द्रियाणामसंज्ञानं वस्तुतत्त्वं भ्रमः स्मृते ॥ ३१ घृत और तेल पीने के प्रयोग को स्नेहपान कहते हैं॥ ३२ देह में से पसीने निकालने की विधि को स्वेदविधि कहते हैं। ३३ गुदादिकों में तेल की पिचकारी मारने के प्रयोग को स्नेहवस्ति कहते हैं। ३४ काढ़े तथा दूध इत्यादि करके पिचकारी मारने के प्रयोग को निरूहण वस्ति कहते हैं। ३५ उत्तरवस्ति लिंगभगादि में पिचकारी मारने के प्रयोग को कहते हैं। ३६ नाक में औषधि डालने के प्रयोग को नस्यविधि कहते हैं। ३७ चिलम हुक्का अथवा बीडी में औषध करके जो धुआं पीते हैं उसको धूमपान कहते हैं। ३८ काढ़े में अथवा रसादिकों के कुल्ले करने के प्रयोग को गंडूषविधि कहते हैं। ३९ लेपादिक करने के प्रयोग को लेपविधि कहते हैं। ४० गुंजा, मासे, तोले, पौसेरी अधसेरी इत्यादिक जानना। ४१ तुलापलशतं तासां विंशतिर्भारि उच्यते । खारी भारद्वयेनैव स्मृता षड्भाजनाधिका ॥ ४२ रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्के द्रवाद्रयोस्तावत् तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् ॥ ४३ प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं हि द्रवाद्रयोः । कुडवेऽपि क्वचिद् दृष्टो यथा दंतीधृते मतम् । ४४ शुष्कद्रव्यस्य या मात्रा द्विगुणा हि सा । शुष्कस्य गुरुतीक्ष्णवात् तस्माद्र्ध्वं प्रयोजयेत् ॥ ४५ सर्वंच क्षीरविषवद्युक्तं भवति भेषजम् तेषासलाभे गृह्लीयादनक्रांतवत्सरम् ॥ ४६ घृतशब्दात् परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते । तैलपक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥ ४७ द्रवेऽप्यनुक्ते जलमेव देयं भागेऽप्यनुक्ते समताभिधेया । अंगेऽप्यनुक्ते विहितं तु मूलं कालेऽप्यनुक्ते दिवसस्य पूर्वम् ॥ ४८ घृते तैले च योगे तु यद्द्रव्यं पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्येण मानतो द्विगुणं भवेत् ॥ ४९ प्रायः शब्दो विशेषार्थे क्वचिन्न्यूनेऽपि दृश्यते । ५० घृतमब्दात् परं किंचिद्धीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥ तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् । एतेषु यवगोधूमतिलमाषा नवा हिताः । रूढाः पुराणा विरसा न तथा गुणकारिणः ॥ ५१ सर्वलक्षणसंपन्ना भूमिः साधारणा स्मृता ॥ ५२ ग्रीष्मे मंजरिकाग्रेषु वर्षासु दलचर्मणि । वसन्त मूलमाश्रित्य वृक्षाणां तुं रसस्थितिः ॥ ५३ एकदोषस्तु कुपितो दोषानन्यान् प्रकोपयेत् । ५४ स्वयंभूरेष भगवान् वायुरित्यभिशब्दितः । अचिन्त्यवीर्यो दोषाणां नेता रोगसमूहराट् ॥ ५५ पाको नास्ति विना वीर्याद् वीर्यं नास्ति विना रसात् । रसो नास्ति विना द्रव्याद् द्रव्यं श्रेष्ठमतःस्मृतम् ॥ ५६ मूलत्वङ्निर्यासनालस्वरसपल्लवदुग्धफलपुष्प-भस्मतैलकण्टकपत्रशुङ्गकंदप्ररोहउद्भिदादि तथा जङ्गमपार्थिवादीनि सर्वाणि द्रव्यशब्देनाभिधी-यन्ते ॥ ५७ पृथ्वी के पदार्थ सुवर्णादि ॥ ५८ मनुष्य पशु आदि। ५९ मीठा। ६० खारी। ६१ तीक्ष्ण मरिच आदि। ६२ कठुआ गिलोय आदि। ६३ कषैला हरड बेहडा आदि। ६४ अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः । आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणः ॥ इति

सुश्रुते । ६५ इह तु वर्षाशरद्धेमतवसंतग्रीष्मप्रावृष: षड़्तवो भवन्ति,दोषोपचयप्रकोपप्रशमनिमित्तम् ६६ लघु, रूक्ष, शीतादिपदार्थ वात गुणों के समान, विदाही, तीक्ष्ण, अम्ल इत्यादि, पदार्थ पित्तगुणों के समान, मधुर, स्निग्ध इत्यादि पदार्थ कफगुणों के समान हैं। ६७ तात्पर्य यह है कि वातादिकों के संचयकाल में समान गुण के विहारादिक पदार्थों के सेवन करने से उन वातादिकों का संचय होता है। एवं प्रकोपकाल में ऐसे पदार्थों का सेवन करने से प्रकोप होता है और उपशमकाल में सेवन करने से उन दोषों का शमन होता है। ६८ गुरु स्निग्ध उष्ण इत्यादि पदार्थ वातगुण के विपरीत है। कटु, उष्ण, रूक्ष इत्यादि पदार्थ कफगुण के विरुद्ध हैं। और अबिदाही मधुर शीतल इत्यादि पदार्थ पित्तगुण के विपरीत जानना। ६९ जो पदार्थ खाने से जल्दी पच जावे उनको लघु जानने, उदाहण मूंग, मोठ आदि। ७० चना आदि पदार्थ रूक्ष जानने। ७१ जितना अपना आहार है उससे कम खाने को मिताहार कहते हैं। ७२ स्त्रीविषय में इच्छा होने को काम कहते हैं। ७३ धातुक्ष्यात् श्रुते रक्ते मदमन्जायतेऽनल:। पवनश्च परं कोपं याति तस्मात् प्रयत्नत:। इत्यादि।७४ जिनके खाने से दाह होय उनको बिदा ही कहते हैं। जैसे बांस और करील ही कोंपल । ७५ राई मिरच आदि तीक्ष्ण पदार्थ जानने। ७६ गुड़, खांड, मिश्री आदि मधुर पदार्थ जानने, ७७ घी, तेल आदि स्निग्ध पदार्थ जानने। ७८ केले की फली, बरफ आदि शीत पदार्थ जानने, ७९ भैंस का दूध आदि भारी पदार्थ जानने। ८० उड़द आदि श्लक्ष्ण पदार्थ जानने। ८१ साक्षीभूत प्राणवायु की । ८२ नाड़ीपरीक्षा किस समय करनी किस समय नहीं करनी इसको जाननेवाला। ८३ प्रदर्शयेद्दोषनिजस्वरूपं व्यस्तं समस्तयुगलीकृतं च । मूकस्यमुग्धस्य विमोहितस्य दोष: पदार्थनिव जीवनाड़ी। सद्य: स्नातस्य भुक्तस्य तथा तैलावगाहिन: । क्षुत्तृषर्त्तिस्य सुप्तस्य सम्यक् नाडी न बुद्धयते ।। ८४ जोंक और सर्प इनका टेढ़ा-तिरछा गमन है। ८५ कुलिंग, कौवा और मेंढ़क इनका उछल उछल कर चलना होता है। कोई कुलिंग के जगह "कालापि" ऐसा पाठ कहते हैं, उनके मत में कलापि कहिये। मोर इनकी सी चाल के समान नाड़ी चलती है। ८६ हंस और कबूतर इनकी धीरी धीर चाल है। ८७ लवा और तीतर ये पक्षी चपलगतिवाले हैं। ८८ नाडीमध्यवहांगुष्ठमूले योऽत्यथमुच्छलेत् । शनैरूर्ध्वोगमनी कुटिला हन्ति मानवम् ।।२।। ८९ जठरानलदौर्बल्याविपक्वस्तु यो रस: । स आमसञ्ज्ञको देहे सर्वदोषप्रकोपक: ।।इति।। आमं विदग्धं विष्ठब्धकं चेति कोई "सामा गरीयसी" इस पद का अर्थ यह करते हैं कि आम के साथ जो रहे उसे साम कहते हैं वे दोष हैं, दूष्ट दूषितादिक जानने जैसे लिखा है-"आमेन तेन संपुक्ता दोषा दुष्याश्च दूषिता: । सामा इत्युपदिश्यन्ते ये च रोगास्तदुद्भवा: इति ।" तहां सामदोषसे सामदूष्यसे और सामदूष्यता से रसादिधातु दूष्य है, मल मूत्र आदि दूषित हैं। ९० पाखण्डाश्रमवर्णानां समक्षा: कर्मसिद्धये । त एव विपरीता: स्युर्दूता: कर्मविपत्तये ।। ९१ तैलकर्दमदिग्धांगा रक्तस्रगनुलेपना: । फलं पक्वमसारं वा गृहीत्वान्यच्च तद्विधम् । वैद्यं य उपसर्पति दूतास्ते चापि गर्हिता: ।। ९२ "छिन्दतस्तृणकाष्ठानि स्पृशतो नासिकास्तनम् । वस्त्रान्तानामिकाकेशनखरोमदृशास्पृश: । स्रोतोऽवरोधहृद्गण्डमूर्द्धोर: कुक्षि-पाणय: । कपालोपलभस्मास्थितुषांगारकराश्च ये । विलिखन्तो महीं किंचित्काषलोष्ठविभेदिन: । ९३ नपुंसका: स्त्रीबहवो नैककार्या असूयका: । पाशदण्डायुधधरा: प्रामावा स्यु: परम्परा: । आर्द्रा जीर्णपसव्यैकमलिनोद्धतवासस: । न्यूनाधिकाङ्गा उद्विग्ना विकृता रौद्ररूपिण: ।। वैद्यं य उपसर्पन्ति दूतास्ते चापि गर्हिता: । ९४ यस्यां प्राणमरुद्भाति सा नाडी जीवसंयुतेति । ९५ याम्यां दिशि प्रांजलयो विषमैकपदे स्थित: । वैद्यं य उपसर्पति दूतास्ते चापि गर्हिता:। ९६ वैद्यस्य पित्र्ये दैवे वा कार्ये चोत्पातदर्शने । मध्याह्ने चार्धरात्रे वा सन्धयो: कृत्तिकासु च । आर्द्राश्लेषामघामूलपूर्वासु

भरणीषु च । चतुर्थ्यां वा नवम्यां वा षष्ठ्यां संधिदिनेषुच । दक्षिणाभिमुखे देशे त्वशुचौ बा हुताशनम् । ज्वलयन्तं पचन्तं वा क्रूरकर्मणि चोद्यते । नग्नं भूमौ शयानं वा वेगोत्सर्गेषु वा शुचिम् । प्रकीर्णकेशमभ्येक्त स्विन्नं विक्लमेव च। वैद्य य उपसर्पंति दूतास्ते चापि गर्हिताः ।।इति।। ९७ सौम्यशकुन–भेरी, मृदंग, शंख, वीणा, वेदध्वनि, मंगलगीत, पुत्रान्वित स्त्री, बछरा सहित गौ, धुले हुए वस्त्र ये सन्मुख आवें तो उत्तम जानना। ९८ प्रदीप्तशकुन-कुलथी, तिल, कपास, तिनका, पाषाण, भस्म, अंगार, तेल काली सरसों, मुरदा, ढ़ाककी राख इत्यादि उत्तम नहीं जानने। ९९ सद्यो रणे कर्मणि वा प्रवेशं शुभग्रहे नष्टविलोकने च । व्याधौ च नद्युत्तरणे भयार्ते शस्तः प्रयाणाद् विपरीतभावः । १०० भृङ्गाराञ्जनवर्द्धमाननकुलाबद्धैकपश्वामिषशंखक्षीरनृयानपूर्णकलशच्छात्राणिसिद्धार्थकाः । वीणाकेतनमीनपंकजदधिक्षौद्राज्यगौरोचनाः कन्यारत्नसितेक्षुवस्त्रसुमनोविप्राश्च-रत्नानि च । १०१ गमनं दक्षिणे वामान्न शस्तं श्वशृगालयोः । वामं नकुलचाषाणां नो भयं शशसर्पयोः ।। भासकौशिकागृध्राणां न प्रशस्तं किलोभयम् । दर्शने च रुतं चापि न गोधाकृकलासयोः । कुलत्थतिलकार्पासितुषपाषाणभस्मनाम् । पात्रं नेष्टं तथांगारतैलकर्दमपूरितम् ।। प्रसन्नेतरनद्यानां पूर्णं वा रक्तर्षपैः । शवकाष्ठं पलाशानां शुष्काणां पथि संगमः । नेष्यन्ति पतितास्थीनि दीनान्धरिपवस्तथा ।। १०२ कोई आचार्य पांच तत्त्व करके पांच भौतिकी प्रकृति कहते हैं, जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्वों करके जाननी। कोई कोई सत्त्वगुणी रजोगुणी और तमोगुणी तीन प्रकार की प्रकृति कहते हैं। इस प्रकार प्रकृतियों को कहकर अब वर्ण को कहते हैं। प्रकृति सात प्रकार की है, पृथक् पृथक् दोषों के मिलाप से और सन्निपातसे, जैसे सुश्रत में लिखा है–''शुक्रशोणितसंयोगाद् यो भवेद् दोषउत्कटः । प्रकृतिर्जायते तेन तस्य मे लक्षणं शृणु ।।'' वही प्रकृति अन्य उपाधियों से भी होती है। जैसे चरक में लिखा है कि जातिप्रसक्ता, कुलप्रसक्ता, देशानुमातिनी, कालानुपातिनी, वयोऽनुपातिनी और प्रत्यात्मनियता प्रकृति। तहां जातिप्रसक्ता प्रकृति जाति जाति में पृथक् पृथक् होती है जैसे सुनार, लोहार, दरजी, नाई, कुम्हार आदि में बोलना चाल चलना आदि। कुलप्रसक्ता प्रकृति जैसे ब्राह्मणों के कुल में तपःप्रियता क्षत्रियकुल में शूरवीरता आदि धर्म होते हैं। देशानुपातिनी प्रकृति जैसे-कर्नाटक, पंजाब, उड़िया, आसाम, गुजरात के रहनेवाले के वायिक, वाचिक, मानसिक धर्म पृथक् पृथक् होते हैं। कालानुपातिनी प्रकृति जैसे-समय समय में देहादिकों में दुर्बलता स्थूलता आदि और दोषों का संचय, कोप, प्रशमादि पृथक् पृथक् होते हैं, वयोऽनुपातिनी प्रकृति जैसे–बाल्य अवस्था यौवन अवस्था और वृद्धावस्थादिक के धर्म पृथक् पृथक् होते हैं। और सातवीं प्रत्यात्मनियता प्रकृति है जैसे प्रत्येक मनुष्य के रहती है वे सब, प्रकृतियां कायिक, वाचिक और मानसिक स्वभाव विशेषकरके पृथक् पृथक् हैं। १०३ तहां वर्णशब्दकरके प्रभा जानना, उसी को छाया भी कहते हैं। परन्तु कोई आचार्य प्रभा और छाया में भेद मानते हैं, जैसे–''वर्णप्रभा मिश्रिता या छाया सा परिकीर्तिता । वर्णमाक्रामतिच्छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनी । आसन्ना लक्ष्यते छाया प्रभा दूगच्च लक्ष्ते ।।'' इस वर्ण में प्रभा छाया का केवल लक्षणभेद ही नहीं है किन संख्या में भी भेद है। जैसे गौर कृष्ण, श्याम और गौर श्याम ऐसे वर्ण चार प्रकार के हैं। प्रभा के सात भेद हैं, रक्त, पीत, असित, श्याय, हरित और पांडुर। छाया के पांच भेद है-स्निग्ध, विमल, रूक्ष, मलिन और संक्षिप्त। दुःख सहनशीलता को सत्त्व कहते हैं जैसे लिखा है ''सत्त्ववान् सहते सर्वं संस्तभ्यात्मानमात्मना । राजसः स्तम्भमानोऽन्थैः सहते नैव तामसः । तहां प्रवर और मध्यम के भेद से सत्व के तीन भेद हैं। इस सबके लक्षण यहां पर, ग्रन्थ बढ़ने के भय से नहीं लिखे सो ग्रन्थातर से जान लेना। १०४

आढ्यो रोगी भिषग्वश्यो ज्ञापकः स्वत्ववानपीति। १०५ लौहम् इति पाठांन्तरम् । १०६ जननीं प्रविशेन्नरः इति पाठान्तरम् । १०७ धान्यादिकों को पीस सिद्ध की हुई जो उसको स्वप्न में पीवे तो अशुभ है और इससे व्यतिरिक्त अर्थात् अन्यप्रकार की दारू पीवे तो शुभ है, जैसे लिखा है–"रुधिरं पिबति स्वप्ने मद्यं वापि कथंचन । ब्राह्मणो लभते विद्यामितरस्तु धनं लभेत् ।।" १०८ द्रव्यगुणावल्याम् "शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः" कदाचित् कोई प्रश्न करे कि जब सौंफ दीपनी है फिर आम को क्यों नहीं पचाती और बिना आम के पचे अग्नि कदाचित् दीप्त नही होती? तहां कहते हैं कि द्रव्यों के प्रभाव अचिंत्य हैं, यह सुश्रुत में लिखा है। इन हेतुओं से विचार में नहीं आते "नौषधिर्हेतुभिर्विद्वान् न परीक्षेत् कथंचन । सहस्राणां च हेतूनां नांवष्ठादिर्विरेचयेत् ।।" इत्यादि । १०९ "जठरानलदौर्बल्यादविपक्वस्तु यो रसः । स आमसंज्ञको ज्ञेयः सर्वदोषप्रकोपनः" । ११० नागकेशरके रूक्षमुष्णं लघ्वाम पांचनमिति । १११ चित्रकः कटुकः पाके वह्निकृत पाचनो लघुः । * न शोधयति यद् दोषान् समान् नोदीरत्यपि । समीकरोति क्रुद्धांश्च तत् संशमनमुच्यते ।।इति पाठान्तरम्।। ११२ रसायनी संशमनी दोषाणां ज्वरनाशिनी । गुडूची कटुका लघ्वी तिक्ताग्निदीपनीति च । ११३ आदि शब्दकरके मलमूत्रादिक जानने। ११४ पाचकस्थान के आश्रय करके कोई कोष्ठशब्द करके हृदयादिकों का भी ग्रहण करते हैं जैसे स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च । हृदुण्डूकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ।" ११५ शुष्क और गांठदार। ११६ मलशब्द से इस जगह दोषों का ग्रहण है, आदि शब्द से रूक्ष दूषितादिकों का भी ग्रहण है। ११७ आदिशब्द करके दूष्य और दूषितादिकों का ग्रहण है, ११८ मदनस्य फलं बलादिति पाठान्तरम् । ११९ मुख से रद्दके द्वारा और नाक में नास देने से वमन और नास के साथ वे दोष निकलते हैं। १२० शोधन बाह्य और आभ्यन्त के भेद से दो प्रकार का है। तहां बहिराश्रय जैसे शस्त्रक्षार अग्निप्रतेपादि । और आभ्यंतराश्रय चार प्रकार का है जैसे वमन विरेचन आस्त्यायन और शोणितावसेचन । कोई शोणिताबसेचनकी जगह शिरोविरेचन कहते हैं। परन्तु उसे वमन के अन्तर्गत जानना क्योंकि ऊर्ध्वशोधक है, १२१ कोई परस्पर गठे हुए ऐसा कहता है और कोई "श्लिष्ट" का अर्थ अत्यन्त कुपित ऐसा कहता है। और आदि शब्द करके वात पित्त रुधिर और क्रमि इनका भी दोष शब्द के ग्रहण है, जैसे सुश्रुत में लिखा है 'न तद्देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुताम् । शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते' और क्रमि को दोषत्व गुग्गुलकल्प में लिखा है यथा"पंचाददिदोषान् समये" इत्यादि।। यहां पंचदोष करके वात, पित्त, कफ, रुधिर और क्रमियों को ग्रहण है १२२ 'नीरं कोष्णं वचा यवाः' इति पाठान्तरम् । अयंपाठः कपोलकल्पनया केनापि लिखितः । १२३ प्रश्न वच संग्राही नहीं हो सकती क्योंकि अनिलगुणभूयिष्ठ है और अनिल है सो शोषण करता है' उत्तर-सग्राहि औषधि पक्व और आमग्रहण करने से दो प्रकार की है तहां जो संग्रहणी में आम को पचाय के अग्नि प्रज्वलित करे उसी ग्रहणी में स्थित द्रवता को मुखाय के स्तंभन करे उसे उष्णग्राहक जाननी। और जौ औषध अतिसारादिकों में पक्वमलादिकों को स्तंभन करे, उसका संग्रह करे उसे शीतग्राहक जाननी। ये दो अनिलगुण भूयिष्ठ हैं परन्तु फिर भी संग्राहित्व में दोषता नहीं आती। १२४ धीधैर्यात्मादिविज्ञानं मनोदौषौपधं परम् । १२५ स्त्रीस्मरणकीर्तनदर्शनसंभाषणस्पर्शनचुम्बनालिङ्गनादिभिः शुक्रस्य प्रवर्तनम् (इति भावप्रकाशे)। १२६ ततो भावाय कल्पते इति पाठान्तरम् । पुनर्भावं स विदन्ति इति वा पाठान्तरम् । १२७ 'विशोष्यौ' इति पाठान्तरम् । १२८ रसादीनां शुक्रान्तानां यत् परं तेजस्तत् वल्योजस्तदेव बलमुच्यते, यतः "देहः सावयस्तेन व्याप्तो भवति देहिनामिति-" तात्पर्यार्थ यह है कि कोई कहता

है कि संधि प्रभृतियों के शिथिल होने से श्रम उत्पन्न होता है और उस काम से ओज क्षीण होता है जैसे लिखा है-'अभिघातात् क्षयात् कोपाद् ध्यानाच्छोकाच्छ्रात्क्षुधः । ओजः संक्षीयते ह्येभ्यो घातुग्रहणमिश्रितम् ।।" १२९ धावात्शयांतरैस्तस्य यत् क्लेद । स्वधिति । देहोष्मणा विपक्वो यः सा कलेत्यभिधीयते । १३० आशयःस्थानानितानि कोष्ठमितिशब्देनोपलक्षितानि तथा वस्थानाव्यायामग्निमक्कन मूत्रस्य रुधिरस्य च हृदुंकः फुष्फुसश्च कोष्ठमित्यंभिधीयते । १३१ बडी बड़ी जड़ और बारीक बारीक अग्रभाग ऐसी शिरा जितने देह में रोम हैं उतनी हैं जैसे लिखा है-तावन्ति नाड्यो देहे च यावन्त्यो रोमकूटयः । स्थूलमूलाश्च सूक्ष्माग्राः पत्ररेखाप्रतानवत् । धमनी नाडी शिरा इनके कार्य पृथक् पृथक् हैं अतएव इनके नाम भी पृथक् हैं वास्तविक ये सब एक ही हैं। १३२ मांस के टुकड़े किसी आचार्यो के मत से चौकोन हैं जैसे लिखा है "चतुरस्रा भवेत् पेशी। १३३ बीस अधिक हैं उनके स्थान कहते हैं। दोनों स्तनों में पांच पांच है और योनि में चार, गर्भमार्ग में तीन तथा गर्भस्थान में तीन इस प्रकार का बीस जाननी। १३४ उन सोलहों के स्थान बताते है कि दोनों पैरों में चार, दोनों हाथों में चार, नाड़ी में चार, पीठ में चार, इस प्रकार सोलह जाननी। १३५ पांचवीं कला आंतड़ों के आधार से उदरस्थों के मल के विभाग करती है अतएव उसको 'पुरुषधरा' कहते हैं। १३६ छठी कला खाद्यपेयादिक ऐसे चार प्रकार के आमाशय से प्रत्युत हुए अन्न को पक्वाशय में ले जाकर धारण करती है अतः उसको 'पित्तंधरा' कहते हैं जैसे लिखा है–"असितं खादितं पीतं लीढं कोष्ठगतं नृणाम् । तज्जीर्यति यथाकालं शोषितं पित्ततेजसा । इति। ** यथा पयसि सर्पिश्च गुडश्चेक्षुरसे यथाशरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्भिषग्वरः । द्व्यङ्गुले दक्षिणे पार्श्वे वस्तिद्वारस्य चाप्यधः । मूत्रस्रोतः पथः शुक्रं पुरुषस्य प्रवर्तते । कृत्स्नदेहाश्रित शुक्रं प्रसन्नमनसस्तथा । स्त्रीषु व्यायामतश्चापि हर्षात्तत्संप्रर्तते । १३७ वामभागे व्यवस्थितः इत्यत्र मध्यभागे व्यवस्थित इति वा पाठः । १३८ नाभिस्तनान्तरे जन्तोरामाशय उदाहृतः ।" जिस स्थानमें आम अर्थात् कच्चा अन्न रहता है उस स्थान को आमाशय कहते हैं। १३९ अग्न्यधिष्ठानमन्नस्य ग्रहणाद् ग्रहणी मता । नाभेरुपरि सा ह्यग्निवलोपचयवाहिनी । १४० जीभ आदि का जो जल है सो कफ सम्बन्धी है अतएव कफ ही रस धातु का मल है। १४१ किट्टमन्नस्य विण्मूत्रं रसस्य तु कफोऽसृजः । पित्तं मांसस्य तु मलं स्वेपु स्वेदस्तु मेदसः । नखमस्थ्नस्तु लोमाद्या मज्ज्ञःस्नेहोऽस्थिविट्त्वचः । प्रसादकिट्टं धातूनां पाकादेव विवर्धते ।। शुक्रस्यातिप्रसन्नत्वान्मलाभा व इति स्मृतः ।।" १४२ "ओजः सर्वशरीरस्थ स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम् । सोमात्मक शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम् । १४३ "रसात् स्तन्यं ततो रक्तममृजः स्नायुकुण्डराः । मांसान् वसा त्वचः स्वेदो मेदसः स्नायुसंधयः । अस्थ्नो दंतास्तथा मज्ज्ञः केशा ओजश्च सप्तमात् । धातुभ्यश्चोपजायन्ते तस्मात्त उपधातवः । १४४ अवभासिनी व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि "अवभासयति पराजयति भ्राजकाग्निना सर्वान् वर्णानिति तथा पञ्चविधां छायां प्रकाशयतीति" अर्थात् जो भ्राजकाग्नि करके संपूर्ण वर्णो को करे तथा पांच प्रकार की छाया को प्रकाशित करे उसे अवभासिनी कहते हैं। १४५ सिध्मरोग कुष्ठ का भेद है। उसको विभूत वा वनरफ कहते हैं। १४६ तिलकालक जिसको तिल कहते है इसे क्षुद्ररोमों में लिखा है। १४७ चकार से अजगल्ली आदिकी की जन्मभूमि तीसरी त्वचा ही है। १४८ पित्ते पंगुः पंगुः पङ्गवो मलधातवः । वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ।। १४९ कोई प्रश्न करे कि देह के कहने से ही सर्व अङ्गों का बोध हो गया फिर सर्वांग पृथक् ग्रहण क्यों किया, तहां कहते हैं अंगग्रहण इस जगह प्रत्यंगादिकों के निरासार्थ अर्थात् प्रत्यंगो में बात का कोई स्थान नहीं। अतएव विशेष स्थानग्रहणार्थ इस जगह सर्वांग देह का ग्रहण किया है। कोई २ पवन के अन्य नाम

भी कहते हैं जैसे–"नागः कूर्मोऽथ कुकलोदेवदत्तो धनंजयः ।" इति। १५० "विदग्धाजीर्णसंसृष्ट पुनरम्लरसं भवेत् ।" १५१ स्थूलकायेषु सत्त्वेषु यत्रमात्रं प्रमाणतः । स्वमात्रेषु सत्त्वेषु तिलमात्र प्रमाणतः । कृमिकीटपतंगेषु वालमात्रं हि तिष्ठति ।" १५२ हृभक्ष्य–भोज्य लेह्य चोष्य । १५३ त्वचात्रावभासिनीनामधेया–बाह्यत्वगित्यभिप्रायः । १५४ मृद्यमानः सन्नंगुलिग्राही अर्थात् (चेपदार)। १५५ स्नायु ९०० नौ सौ प्रतान (फैलनेवाली) वृत्त (गोल) और भीतर से पोली है। इनमें से हाथ पैर आदि शाखाओं में कमलनाल तन्तु के समान फैलनेवाली और गोल महान् ६०० छः सौ स्नायु है और कोठे में २३० दो सौ तीस स्नायु मोटी और छिद्रवाली है। तथा ग्रीवा (नाड) में ७० स्नायु हैं। वे भी मोटी और पोली है। इस प्रकार सब मिलाकर ९०० हुई, ये देह के बन्धनरूप हैं। जैसे लिखा है–नौर्यथा फलकैस्तीर्णा बन्धनैर्बहुभिर्युता । भारक्षमा भवेदप्सु नृयुक्ता सुसमाहिता । एकमेव शरीरेऽस्मिन् यावन्तः सन्धयः स्मृताः । स्नायुभिर्बहुभिर्बद्धास्तेन भारसहा नराः ।।" इति। १५६ संधि दो प्रकार की है एक चल दूसरी अचल। तहां ठोडी कमर और हाथ पैरों की तथा नाड़ी की संधि चलायमान है बाकी की सब संधियां अचल है। सब संधिया २१० हैं इनमें जो कफ के सदृश पदार्थ भरा है उसका प्रयोजन यह है कि जैसे रथचक्रादि तैलादिक के योग से निर्विघ्नता से फिरते हैं उसी प्रकार संधि इस पदार्थ का योग से चलन वलन विषय में समर्थ होती है। १५७ मांस नेत्र निबद्धानि शिराभिः स्नायुभिस्तथा । अस्थीन्यालम्बनं कृत्वा न शीर्यन्ते पतंति च ।।४४।। अभ्यन्तरगतैः सारैर्नूनं तिष्ठन्ति भूरुहाः अस्थिसारैस्तथा देह ध्रियन्ते देहिनां ध्रुवम् ।। तस्माच्चिरविनष्टेषु त्वङ्मांसेषु शरीरिणाम् । अस्थीनि न विनश्यन्ति सराण्येतानि देहिनाम् ।। १५८ वे मर्म पांच प्रकार के है। जैसे मांसमर्म ११, शिरामर्म ४१, स्नायुमर्म २७, अस्थिमर्म ८ और संधिमर्म २०, इस प्रकार सब १०७ जानने। ये मर्म सद्यः प्राणहरणकर्त्ता-कालान्तर में प्राणहरणकर्त्ता, वैशल्यघ्न, वैकल्पकारी और पीडाकारी है। 'सोसमारुततेजांसि रजः सत्त्वतमांसि च । मर्माणि प्रायशः पुंसा भूतात्मा योऽवतिष्ठते । मर्मस्वभिहतो जीवो जीवति शरीरिणः ।" १५९ शिरा स्थूल सूक्ष्म भेद करके दो प्रकार की हैं उसका नाभिस्थान मूल है। उसी नाभिस्थान में ये शिरा ऊपर नीचे और तिरछी फैली हुई हैं, मूलशिरा ४० है उनमें दश वातवाहिनी हैं, दश पित्तवाहिनी है, दश कफवाहिनी और दश रुधिरवाहिनी है। इस प्रकार से सब चालीस जाननी। उनमें वातवाहिनी जो दश शिरा है उनमें से १७५ दूसरी शिरा निकली हैं। इस प्रकार पित्तवाहिनी, कफवाहिनी और रक्तवाहिनी शिरा इन प्रत्येक में से १७५ एक सौ पचहतर २ निकली है, इस प्रकार सब मिलने से ७०० शिरा होती है। १६० धमनी नाडियां चौबीस है। ये भी नाभिस्थान से प्रकट होकर दश नीचे गई है कि जो वात, मूत्र, मल, शुक्र, आर्तव आदि और अन्न, जल, रस इनको बहाती है। और दश ऊर्ध्वगामिनी धमनी हैं। ये शब्द, रूप, रस, गन्ध, श्वासोच्छ्रवास, जम्भाई, क्षुधा, बोलना, हंसना, रुदन करना इत्यादिकों को बहाकर देह को धारण करती हैं। तिरछी जाननेवाली ४ धमनी हैं। इन चारों में से असंख्यान धमनी उत्पन्न हुई इनसे यह देह जाल के सदृश परिव्याप्त है। इनके मुख रोमकूपों (रोआं) से बन्धे हुए हैं और ये रस को सर्वत्र पहुंचाती है। पसीने को बहाती है, तथा डबटना, स्नान और लेपादिक इनके वीर्य को भीतर ले जाती है, इस प्रकार के २४ धमनी है। १६१ शिरास्नाय्वस्थिपर्वाणि सन्धयस्तु शरीरिणाम्। पेशीभिः संभृतान्यत्र बलवन्ति भवन्त्युत ।। तासां तु स्थानविशेषान्नानास्वरूपत्वं दर्शितम् । तद्यथा–"बहलेपलवस्थूलाणुधुपृथुवृत्तह्रस्वदीर्घस्थिरंमृदुश्लक्ष्ण कर्वशा भावाः "। आसां लक्षणं तु अस्मद्विरवितबृहन्निघंटुरत्नाकरस्य शारीरभागेऽप्यवलोकनीयम्।अत्र-ग्रन्थविस्तरभयान्न लिखितम् । १६२ कंडरा जो १६ हैं उनके प्रोह के अर्थ जाननी। जैसे हाथ पैर की कंडराओं के नख (नाखून)

अग्रप्ररोह हैं इसी प्रकार और भी जानो। सोलह संख्या का जो ग्रहण है सो इस जगह शस्त्रकर्म निषेध है। यथा–"जालानि कंडराश्चांगे पृथक् षोडश निर्दिशेत् । षट्कूर्चाः सप्त जीविन्यो मेढ्रजिह्वाशिरोगताः । शस्त्रेण ताः परिहरेच्चतस्रो मांसरज्जवः ।।" १६३ प्लीहा रक्त से उत्पन्न है और उसको भाषा में फीहा कहते हैं फुप्फुस अर्थात् फेंफड़ा रुधिर के झाग से प्रगट होकर हृदयनाडिका से लगा हुआ है, इसी से श्वास का कार्य होता है कि जिसके द्वारा सर्व देह की चेष्टा होती है। (यह वाम भाग में उत्पन्न होकर दोनों तरफ फैला हुआ होता है) १६४ दो कुक्षिगोलक रक्त और मेद के सारांश से उत्पन्न होते हैं (इन्हें भाषा में गुरदे कहते हैं) १६५ वृषण मांस, कफ और मेद के सारांश से उत्पन्न होते हैं। १६६ लिंग के साथ वर्तमान हृदय के बन्धन करनेवाले ऐसे चार कंडरा (बड़े २ स्नायु) हैं उनके अग्रभाग से यह लिंग प्रगट होता है। १६७ हृदय रुधिर के सार से निर्मित है। १६८ प्राण अग्नि और सामादिक ये नाभि में रहते हैं अतएव यहां नाभिस्थः प्राणपवनः ऐसा कहा। १६९ इस श्लोक से प्रत्यक्ष मालूम होता है कि इस प्राणि के देह से पवन विष्णुपदामृत पीने को निकलता है और फिर देह के भीतर आ जाता है। परंतु मुख्य इसका तात्पर्य यही है कि भीतर की पवन देह में किंचिन्मात्र भी रहने से विषैले अर्थात् और विषरूप हो जाती है अतएव वह विषमिश्रित पवन बाहर निकलती है और विष्णुपदनाम आकाश का है उसमें प्राप्त हो स्वच्छ पवन से मिश्रित होकर अपने विषैले गुण को त्यागती है और आकाश की नवनी पवन को श्वास द्वारा भीतर ले जाकर रुधिर की शुद्धि करने से देह को और जीव को पालन करती है। इसीलिये एक छोटे से मकान में बहुत से मनुष्यों के बैठने से उस मकान की पवन विषैली हो जाती है, परंतु जिस मकान में चारों तरफ से पवन आने जाने का संचार अच्छी तरह होवे उसमें यह अवगुणकारी पवन नहीं ठहर सकती और इसी से बड़े २ मेलों में इंग्रेज जो बहुत दिन तक मेले की ठहरने नहीं देते उसका मुख्य यही कारण है। इससे जो जो सफाई करने के बंदोबस्त करते है उन सबका कारण हमारे शास्त्र में लिखा है परंतु अब मूर्खानन्द वैद्य और हकीम तथा डाक्टर इस सब बातों को अंग्रेजों की निर्मित बतलाते हैं। ठीक है, कुएँ की मेंढकी कुए को ही समुद्र मानती है। १७० भूतात्मा के शरीर निधन पर्यंत धर्म, अधर्म, नैमित्तिक, सांसारिक सुख दुःख के उपभोग साधन को आयु कहते हैं। १७१ काल भी स्वयंभू अनादि, मध्य, निधन का कारण है। प्राणियों के संहार करनेवाला काल कहलाता है, अथवा प्राणियों को सुख दुःखादि में नियोजन करता है इस वास्ते उसे काल कहते हैं, अथवा मृत्यु के समीप प्राप्त करता है इस वास्ते उसको काल कहा है। १७२ चकार से यह दिखाया कि व्याधि प्रथम ही याप्यत्व को नहीं प्राप्त होती, किंतु प्रथम कृच्छ्रसाध्य होती है फिर याप्यत्व की प्राप्त होती है। १७३ पूर्वजन्मकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते । अतो दानदिकं कुर्यात् संप्रतीक्ष्य विचक्षणः।। इति। १७४ अब ग्रन्थांतर से दोषादिकों का परिमाण लिखते हैं–यः प्रसादपरोऽन्नस्य परजीर्णस्य सर्वशः । सरसोऽञ्जलयस्तस्य नव देहे देहिनः । रक्तस्याञ्जलयस्त्वष्टौ शकृतः सप्त सर्वशः । पित्तस्याञ्जलयः पंच षट् कफस्य प्रचक्षते । मूत्रस्य विद्याच्चत्वारो वसायाश्चाञ्जलित्रयम् । द्वावञ्जली मेदसस्तु मज्जा एकाञ्जलिर्मता । शुक्रस्यैकाञ्जालिर्ज्ञेया मस्तिष्कस्योजसस्तथा । चत्वारोऽञ्जलयः स्त्रीणां रजसः प्रकृतिस्थितिः । द्वावञ्जली प्रसूताया स्तन्यस्यापि हि योषितः । प्रमाणमेतद्धातूनामदुष्टाना मुदाहृतम् ।। हीनाः स्वेन प्रमाणेन विविधाश्चापि धातवः । योजयन्ति विकारैस्तु दोषा वृद्धिं क्षयप्रदाः ।। इति।" अतएवाह वाग्भटः "रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता" । ग्रंथान्तरेऽपि–"विकृताविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्द्धयन्ति च ।" तथा च चरकेऽपि "विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते ।

स्वच्छं स्निग्धं योनिमुखोद्‌गतम् । स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद्‌गर्भाय चार्तबम् ।।" अब कहते हैं कि एक मास में रस का शुक्र होता है, उसका हिसाब इस प्रकार है कि आहार का रस एक ही दिन में होता है और रक्तादि धातु पांच २ दिन में होती है विशेष देखना हो तो हमारे बनाये "बृहन्निघण्टुरत्नाकर" में देख लें।। १९४ शुद्ध आर्तव के लक्षण–"शशासृक्प्रतिमं यच्च यद् वा लाक्षारसोपमम् । तदार्तवं प्रशंसन्ति यद् बासो न विरञ्जयेत् । त्र्यहं गत्वा प्रवृत्तिं च कुरुते शोणितं स्त्रियः । व्युपद्रवा स्रंसते या गर्भस्तस्या ध्रुवं भवेत् ।" १९५ शुद्धशुक्र के लक्षण "स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च । शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं तथा । वातादिदूषितं पूतिकुकुणग्रन्थि रूपिणम् । क्षीणमूत्रपुरीषाभ्यां गन्धशुक्रं तु निष्फलम्।" १९६ बालशब्द कन्या, पुरुष और नपुंसक तीनों का वाचक है।। १९७ "यथेच्छा" इस पद के कहने से ही यमल (जोडला) होने की सूचना की हैं अर्थात् ईश्वर की इच्छा से दो वा तीन इत्यादिक भी बालक होते हैं, जैसे लिखा है–"बीजेऽन्तर्वायुना भिन्ने द्वौ जीवौ कुक्षिमागतौ । यमावित्यभिधीयेते धर्मेतरपुरः सुरौ ।" १९८ बालक तीन प्रकार के होते हैं-एक तो दूध पीनेवाला दूसरा अन्न का आहार कर्ता और तीसरा केवल अन्न का भोजनकर्ता जानना। इनको क्रम से दूध शहद और खांड के साथ औषधि देनी चाहिये।१९९ प्रथम ग्रहण इस जगह बालक के जन्मदिन के कहा है। २०० घृत गौ का लेवे। २०१ औषधि इस जगह सुश्रुतोक्त लेनी चाहिये, जैसे लिखा है,–सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा । मत्स्याक्ष्याख्या शंखपुष्पी मधुसर्पिः सकांचनम् । अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रचूर्णितं कनकं वचा । हेमचूर्णानि कैडर्यः श्वेता दूर्वा घृतं मधु । चत्वारोऽभिहिताः प्राश्याः श्लोकार्द्धेषु चतुर्ष्वपि ।।" "कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिविवर्द्धनाः" इति। कोई आचार्य प्राचीन विश्वामित्रोक्त मात्रा बालक को कहते हैं, जैसे–विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् । अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धितम् । कोलास्थिमात्रं क्षीरादेर्दद्याद् भैषज्यकोविदः । क्षीरान्नादिः कोलमात्रमन्नाद्युदुम्बरोपमम् इति ।" २०२ मासामागधोक्तपरिभाषानुसार छः रत्ती का लेना चाहिये। २०३ इस जगह तीक्ष्ण जुलाब देना वर्जित है, परन्तु मृदु जुलाब निषेध नहीं है। जैसे लिखा है–"अग्निक्षारविरेकैस्तु बालवृद्धौ विवर्जयेत् । तत्साध्येषु विकारेषु मुद्वीं कुर्याल्लघुक्रियाम्।।" २०४ बीस वर्ष का ग्रहण पुरुष के प्रति है, स्त्रियों के प्रति नहीं है, क्योंकि स्त्रियों के १६ वर्ष की अवस्था में समानवीर्यत्व कहा है, यथा-"पंचविंशतिमेवर्षे पुमान् नारी तुषोडशे । समत्वागतवीयौ तौ जानीयात् भिषक् ।।" २०५ यह १२० वर्ष की मनुष्यों की परमायु जाननी, यथा-'समाः षष्ठिर्द्विघ्ना मनुजकरिणां पंच न निशा, हयानां द्वाविंशत् खरकरभयोः पंचकक्कृतिः ।। विरूपा सत्यायुर्वृषमहिषयोर्द्वादशशुनः स्मृतं छागादीनां दशकसहितं षट् च परमम्' । २०६ "क्रोधशोकक्षमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तं च केशान् पचति पलितं तेन जायते ।" २०७ रूपादिके अविज्ञान को मूर्च्छा कहते हैं, अर्थात् मोहसंज्ञक अचेतनरूप जाननी। यद्यपि वातादिक तीनों दोषों के दोषों से और रुधिर से मूर्च्छा होती है, तथापि पित्त प्रधान होने से ग्रहण किया है जैसे लिखा है"-वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विशेषतः । षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते।" २०८ "येनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । भ्रमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थमबाधकः" २०९ इन्द्रियार्थेष्वसंवितिगौरवं जृम्भणं क्लमः । निद्रार्तस्यैव यस्येहा तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ।।" दुःख तीन प्रकार का है–आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। २१० शरीर के परिश्रम करनै को (दण्ड कसरत को) परिश्रम कहते हैं–"शरीरायासजननं कर्म व्यायाम उच्यते।" २११ ग्लानि के लक्षण तन्त्रान्तर में इस प्रकार लिखे हैं–येनायासश्रमो देहे हृदयोद्वेष्टने क्लमः । नचान्नमभिकांक्षेत ग्लानिं तस्यं विनिर्दिशेत् ।" २१२

सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च" इति । १७५ "अस्ति ब्रह्म चिदानन्द स्वयं ज्योनिर्निरञ्जनम् । ईश्वरो लिङ्गमिस्युक्तमद्वितीयमजं विभुम् । निर्विकारं निराकारं सर्वेश्वरं मुनीश्वरम् । सर्वशक्तिं च सर्वज्ञं तदंशा जीवसंज्ञकाः अनाद्यविद्यापरिता यथाग्नौ विस्फुलिङ्गकाः ।।" १७६ आकाश–आकाश का शब्द मात्र गुण जानना। १७७ वायु–वायु का मुख्यगुण स्पर्श तथा आनुषंगिक शब्द गुण जानना। १७८ तेज–तेज का गुण रूप और ओनुषंगिक शब्द और स्पर्श ये गुण जानने। १७९ उदक–उदक का मुख्य गुण रस और आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप ये गुण जानने। १८० पृथ्वी–पृथ्वी का मुख्य गुण गन्ध तथा आनुषंगिक शब्द, स्पर्श, रूप और रस ये गुण जानने। १८१ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इनके अंश से प्रकट होता है। अतएव आहार की पांच भौतिक संज्ञा है जैसे लिखा है–"चतुर्धा षड्रसोपेतोऽनेकविध्यनुक्रमः । द्विविधोष्टविधो वीर्यैराहारः पांचभौतिकः ।" १८२ हृदि प्राणोऽनिलो मतः । १८३ नाभिस्तनांतरे जन्तोराहुरामाशयं बुधाः इति । १८४ आमाशय कफ का स्थान है और कफ का मिष्ट रस है अतएव इस स्थान् में छः प्रकार का भीं रस मिष्ट हो जाता है अतएव ग्रन्थान्तर में लिखा है "भुक्त्वाऽदौ कफस्य वृद्धिः" इसी मिष्ट अवस्था के आहार की आमाजीर्ण संज्ञा है जैसें लिखा है–"माधुर्यमन्नं सृजतामपूर्वम् ।" १८५ पाचक पित्त एक पीले रङ्ग का द्रव्य पदार्थ है। जब वह पूर्वोक्त मधुर आहार में मिलता है तब उसको खट्टा कर देता है। १८६ जैसे अमृत–जीव मधुरादिगुणयुक्त होता है उसी प्रकार उत्तम रस जीवन, धारण, तर्पणादि गुणयुक्त होता है क्योंकि सौम्यगुणवाला है जैसे सुश्रुत में लिखा है–"स खल्लु द्रवानुसारी स्नेहनजीवनतर्पणधारणादिभिविशेषैः सौस्योऽवगम्यते ।" १८७ दोषों के दूषित होने से रोगों को करता है किन्तु स्नेहदग्ध के आप नहीं करता अर्थात् घृत या तेल से जला हुआ मनुष्य घृत से जला और तैल से जला कहाता है परन्तु वास्तव में अग्नि ही से जला हुआ होता है। जैसे लिखा है "रसादिस्थेषु दोषेषु व्याधयः संभवंति ये । तज्जा इत्युपचारेण तान्वाहुघृतदग्धवत्"। १८८ गुदा के अययवभूत भीतर तीन २ वली एक से एक ऊपर है, इनका आकार शंख की नाभि के समान है। १८९ रस सकल शरीरगमनशील होने से ग्रहणीस्थान से हृदय में प्राप्त होता है। जैसे लिखा है–"सर्वदेहानुसारत्वेऽपि तस्य हृदयस्थानं स हृदयाच्चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवोयोर्ध्वगा दश दश चाधोगामिन्यश्चतस्त्रस्तिर्यग्गस्ता, कृत्स्नं शरीरमहरहस्तर्पयंति वर्धयन्ति यापयंति चादृष्टहेतुकेन कर्मणा तस्य सरसस्यानुमानाद्गतिरुपलक्षयितव्या।" १९० प्रथम कुछ २ रंगता हुआ क्रम से अत्यन्त लाल हो जाता है जैसे लिखा है–"रसः किलकाहेनैव संपद्यते द्वितीये कपोतवर्णाभः पित्तस्थानेषु तिष्ठति तृतीये चतुर्थे वा पद्मवर्णो भवेत्, पंचमेऽहनि षष्ठे वा किंशुकाभः सप्तमेऽहनि संप्राप्ते शुक्रगोपकाभ एवं सप्ताहाद् रसो रक्तं भवतीति ।' १९१ विस्रता द्रवता रागः स्पन्दनं लघुता तथा । भूम्यादीनां गुणा ह्येते दृश्यन्ते शोणिते यतः ।।" इति० १९२ देहस्थ रुधिरं मूल रुधिरेणैव धार्यते, तस्माद् रक्षेद् हि रुधिरं रुधिरं जीवमुच्यते । १९३ रस के ग्रहण के यह दिखाया कि रस ही शुक्रतत्त्व को प्राप्त होता है, इस वास्ते शुक्रत्व याति" ऐसा एक वचन कहा। आदि शब्द के ग्रहण से वही रस, रक्त, मांस, भेद, मज्जा और अस्थिभाव को प्राप्त होता है। कोई आचार्य कार्य कारण के अभेदोपचार से रसादि प्रत्येक धातु एक महीने में शुक्र होता है ऐसा कहते हैं। और स्त्रियों के रज होता है जैसे-"रसादेव रजः स्त्रीणा मासि मासित्र्यहं भवेत् । तद्वर्षात् द्वादशादूर्ध्व याति पंचाशतः क्षयम् ।।" उक्त श्लोक में तथा इस पद के ग्रहण से यह दिखाया कि स्त्रियों के भी शुक्र होता है, क्योंकि द्रावणादि प्रयोग में प्रत्यक्ष देखा जाता है। अन्यथा उनको मैथुनानन्द कैसे प्राप्त हो सकता है, तथा लिखा भी है "सौम्यत्वगाश्रयं

आलस्य के लक्षण सुखस्पर्शिप्रसंगित्वं दुःखद्वेषमलोलता । शक्तस्य चाप्यनुत्साहः कर्मण्यालस्यमुच्यते । २१३ जृम्भा के लक्षणान्तर–"पीत्वैकमनिलश्वासमुद्वमेद्विवृताननः । यन्मुञ्जति च नेत्राम्भः स जृम्भ इति कीर्तितः ॥" २१४ अन्यत्राप्युक्तस्-'प्राणोदानौ यदा स्यातां मूर्ध्नि श्रोत्रपथि स्थितौ । नस्तः प्रवर्तते शब्दः क्षुतं तदभिनिर्दिशेत् ॥" २१५ शरीर में कंप, ज्वर का विषमवेग (कभी अधिक कभी थोड़ा) कंठ, होठ, मुख इनका सूखना, निद्रा का नाश, छींक का नहीं आना, देह का रुखापन, मस्तक और अंगों में पीड़ा, मुख का विकार होना, मल का न उतरना, शूल अफरा और जंभाई ये वातज्वर के लक्षण हैं। २१६ ज्वर का तीक्ष्ण वेग, अतिसार, अल्पनिद्रा, वमन, कंठ, मुख, नाक, इनका पकना, पसीने का आना, बड़बड़ाना, मुख में कडुआहट, मूर्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास और विष्ठा, मूत्र नेत्र देह की त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वर में होते हैं। २१७ गीले वस्त्र से अंगों को ढकने के समान देह का होना, ज्वर का मन्दवेग, आलस्य, मुख मीठा, मलमूत्र सफेद हो, देह का जकड़ जाना, अन्न में अरुचि, देह भारी, शीत लगे, सूखी उलटियों का आना, रोमांचों का होना, अतिनिद्रा, नाडियों का रुकना, योंडा दस्त हो, सरेकमा, मुख में नोन का सा स्वाद, देह थोड़ा गमर, रद्द का होना, लारका गिरना, मुखपाक, तथा नाक और मुख से कफ का स्राव, खांसी, नेत्रों का सफेद रंग तथा देह में पीड़ा, शीत का लगना, गरमी प्यारी लगे और मंदाग्नि हो, ये कफज्वर के लक्षण हैं। २१८ प्यास, मूर्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तक पीड़ा, और कठ मुख का सूखना, वमन, रोमांच अरुचि, अंधकारदर्शन, जोड़ों में पीड़ा और जँभाई ये वातपित्तज्वर के लक्षण है। २१९ देह में आर्द्रता संधियों में पीड़ा, निद्रा आना, देह भारी, मस्तक भारी, नाक से पानी का गिरना, खांसी पसीने, दाह और ज्वर का मध्यम वेग हो, ये वातपित्तकफज्वर के लक्षण हैं। २२० कफ से ल्हिसा मुख तथा मुख में कडुआहट, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास, बारम्बार दाह और शीत लगे तथा पसीने आवें कफ पित्त का गिरना, ये पित्तकफज्वर के लक्षण हैं। २२१ एकाएक क्षण में दाह लगे, क्षण में शीत लगे, हड्डी जोड़ और मस्तक में दर्द, आंसू भरे, काले और लाल तथा फटे हुए से नेत्र हो, कानों में शब्द और दर्द, कंठ में काँटे पड़ जावें, तन्द्रा, बेहोशी, अनर्थभाषण, खांसी, प्यास, अरुचि, भ्रम, जली के माफिक काली और खरदरी तथा शिथिल जीभ होवे, रुधिर मिला थूके, शिर को इधर उधर पटके, अत्यन्त प्यास का लगना, निद्रा जाती रहे, छाती में पीड़ा, पसीना आवे, कमी २ बहुत देर में मल मूत्र थोड़े २ उतरे, कंठ में घर्रघर्र कफ का बोलना, काले लाल चकत्तों का होना, बहुत धीरे बोलना, कान, नाक, मुख, इत्यादि छिद्रों का पकना, पेट भारी हो, वातपित्त और कफ का देर में पाक, शीत लगना दिन में घोर निद्रा का आना, रात्रि में जागना अथवा बिलकुल निद्रा का नाश होना, कभी गावे कभी रोवे, कभी नीचे, कभी हँसे और देह की चेष्टा जाती रहे, ये सब लक्षण सन्निपात ज्वर के हैं बाकी और जो तेरह सन्निपात हैं उनके लक्षण माधवनिदान में देखो। २२२ सात दिन या दश दिन वा बारह दिन जो देह में एकसा ज्वर रहे उसको संतत ज्वर कहते हैं। २२३ दिनरात्रि में दो बार आवे उसको सततज्वर कहते हैं। २२४ दिनरात्रि में एकसा ज्वर आवे उसको अन्येद्यु (इकतरा) कहते हैं। जो एक दिन बीच में देकर आवे उस ज्वर को तृतीयक (तिजारी) कहते हैं। २२५ दो दिन बीच में देकर जो तीसरे दिन आवे उस ज्वर को चातुर्थिक (चौथिया) जानना। २२६ श्यनादिक शत्रुमारणार्थ शिकरा आदि के) होम करने से जो ज्वर उत्पन्न हो अथवा विमंत्र करके सरसो का हवन करने से जो ज्वर उत्पन्न होवे उसको अभिचार ज्वर जानना। २२७ ब्रह्मराक्षसादि संबन्ध से जो ज्वर होवे उसको ग्रहावेश ज्वर कहते हैं। २२८ ब्राह्मण गुरु, सिद्ध और

वृद्ध इनके शाप से जो ज्वर हो उसको शापज्वर जानना। २२९ कुल ललाई को लिये झाग मिला तथा रूखा थोड़ा थोड़ा बारम्बार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरते समय शब्द होवे तो वातातिसार जानना। २३० पित्त से पीला, काला धूसरे रंगकमल उतरे तथा तृष्णा, मूर्छा, दाह गुदा पक जाय ये लक्षण पित्तातिसार के हैं। २३१ कफातिसारवाले पुरुष का मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खड़े होयँ, ये लक्षण कफातिसार के जानने। २३२ सूकर की चरबी, सदृश अथवा मांस के धोये हुए पानी के सदृश और वातादि त्रिदोषों के जो लक्षण कहे हैं उन लक्षण संयुक्त उस त्रिदोषजनित अतिसार को कष्टसाध्य जानना। २३३ जिस पुरुष के पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश हो जावे वह उसी वस्तु का शोच करे। इसीसे क्षुधा मन्द होने से (धातुक्षय होय) उस प्राणी के बाप्प, नेत्र, नासा, गले आदि से जो शोकद्वारा जल गिरे सो और ऊष्मा कहिये शोकजन्य देह का तेज ये दोनो वाष्पोष्मा कोठे में प्राप्त हो अग्नि को मंद कर रुधिर को कुपित करें, तब वह रुधिर चिरमिटी के रगसदृश गुदा के मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गन्धयुक्त अथवा गन्धरहित दस्त उतरे, इसको शोकतिसार कहते हैं, इसी प्रकार भयातिसार भी जान लेना। २३४ अन्न के न पचने से दोष (वात, पित्त, कफ) स्वमार्ग का छोड़कर कोठे में प्राप्त हो कोठे को दूषित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मल को बारंबार गुदा के मार्ग से बाहर निकाले और इसका रंग अनेक प्रकार का हो, तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इसको छठा आमातिसार वैद्य कहते हैं। २३५ भय से होनेवाले अतिसार में जिस दोष का कोप हो उसी दोष के समान लक्षण होते हैं। २३६ वातग्रहणीवाले के अन्न दुःख से पचे, अन्न का पाक खट्टा हो अंग में कर्कशता (यह वायु से त्वचा के चिकनेपन को सोखने से होता है), कंठ और मुख का सूखना, भूख, प्यास न लगे, मन्द दीखे, कानों में शब्द हो, पसवाड़े, जांघ, पेड़ और कन्धों में पीड़ा होवे, विषूचिका हो (अर्थात् दोनों द्वार से कच्चे अन्न की प्रवृत्ति होवे), हृदय दुखे, देह दुबला हो जाय, जीभ का स्वाद जाता रहे, गुदा में कतरने की सी पीड़ा हो, मीठे से आदि ले सर्व रसों के खाने की इच्छा, मन में ग्लानि, अन्न पचे उपरांत पेट का फूलन, भोजन करने से स्वस्थता, पेट में गोला, हृद्रोग, तापतिल्ली की शंका, वात के योग से खांसी श्वास से पीडित बहुत देर में बड़े कष्ट से कभी पतला, कभी गाढ़ा, थोड़ा शब्द और झाग मिला बारंबार दस्त आवे। २३७ जिस पुरुष के कटु, अजीर्ण मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश करीलकी कोपल आदि) खट्टी, खारी, (ओंगा आदि का खार) नोन गरम पदार्थ सेवन इन कारणों से कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्नि को बुझा दे और कच्चा ही नीले पीले रंग के पतले मल को निकाले, तथा धूमयुक्त डकार आवे, हृदय और कंठ में दाह होवे अरुचि और प्यास करके पीडित होवे यह पित्त की संग्रहणी के लक्षण हैं। २३८ भारी, अत्यन्त चिकने, शीतल आदि पदार्थ के खाने से, अतिभोजन से तथा भोजन करके सोने से कुपित हुआ कफ जठराग्नि को शांत करे तब उसका खाया हुआ अन्न कष्ट से पचे हृदय में पीड़ा होय, वमन, अरुचि, मुख कफ से लीलासा तथा मुख का मीठा रहना, खांसी, कफ थूके, सरेकमा होय, हृदय पानी से भरे सदृश होय, पेट भारी और जड़ हो, दुष्ट और मीठी डकार आवे, अग्नि शांत हो, स्त्रीरमण में अरुचि, पतला, आम कफ मिला और भारी ऐसा मल निकले, बल बिना शरीर पुष्ट दीखे, आलस्य बहुत आवे यह कफ की संग्रहणी के लक्षण हैं। २३९ वातादि तीनों दोषों के जों लक्षण कहे हैं वे सब जिसमें मिलते हों उनको त्रिदोष हों उनको त्रिदोष की संग्रहणी जानिये। २४० आमवात से जो आम संग्रहणी उत्पन्न होती है उसके ये लक्षण हैं कि कभी आठ दिन में, कभी चौदह दिन अथवा नित्य आम गिरे उसको आमसंग्रहणी कहते हैं।

२४१ वात की प्रवाहिका में शूल होता है, वात की प्रवाहिका रूखे पदार्थ से होती है। २४२ पित्त की प्रवाहिका तीक्ष्ण पदार्थ से होती है उसमें दाह होता है। २४३ कफ की प्रवाहिका चिकने पदार्थ से होती है, उसमें कफ बहुत होता है। २४४ रुधिर की प्रवाहिका रक्तयुक्त होती है, वह खट्टे पदार्थ से होती है। २४५ शूल, अफरा अनेक वात की पीड़ा, मल और अधोवायु का रुक जाना, देह का जकड़ जाना, मोह और देह में पीड़ा होना ये विष्टब्ध-अजीर्ण के लक्षण हैं। २४६ विदिग्ध अजीर्ण से भ्रम, प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं और पित्त के अनेक रोग प्रकट होते है तथा धुएँ के साथ खट्टी डकार आवे, पसीना, आंव और दाह हो। २४७ कूख और पेट में अफरा हो, मोह हो पीड़ा से पुकारे, पवन चलने से रुककर, कूख में और कण्ठादि स्थानों में फिरे। मल मूत्र और गुदा की पवन रुके, प्यास बहुत लगे, डकार आवे ये लक्षण जिसमें हों उसको अलसक रोग कहते हैं। २४८ मूर्च्छा, अतिसार, वमन, प्यास, शूल; भ्रम, जांघों की पीड़ा, जंभाई, दाह, देह का विवर्ण, कम्प, हृदय में पीड़ा, तथा मस्तक में ये लक्षण हों तो उसको विषूचिका कहते हैं। इसी को महामारी अथवा हैजा कहते हैं। २४९ दंड के समान मनुष्यों के नवाय देवे उसको दंडकालसक कहते हैं। यह दंडकालसक विलंबिका के बहुत कुपित होने से होता है, वह वातादि तीन दोष करके व्याप्त रहता है, उनके होने से प्राण का नाश शीघ्र ही होता है। २५० जिस मनुष्य के भोजन किया हुआ अन्न कफवात करके दूषित होय, ऊपर नीचे नहीं आवे अर्थात् वमन विरेचन न होय उनको वैद्यविद्या के जाननेवाले (जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसा) विलंबिकारोग कहते हैं। २५१ वाताधिक्य से गुदा के अंकुर सूखे (स्रावरहित) चिमचिम पीड़ायुक्त, मुरझाये हुए काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न हों। बांके, तीखे, फटे मुख के कंदरी, बेर, खजूर, कपास के फलसदृश हों। कोई कदंब के फल समान हों, कोई सरसों के सदृश हों, शिर, पसवाड़े, कन्धा, कमर, जांघ, पेड़ इनमें अधिक पीड़ा हों, छींक, डकार, दस्त का न होना, हृदय पकड़ा सा मालूम हो, अरुचि, खांसी, श्वास, अग्नि का विषम होना अर्थात् कभी अन्न पचे, कभी नहीं पचे, कानों में शब्द होय, भ्रम उस बवासीर के पीड़ित मनुष्य के पत्थर के समान थोड़ा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिका के लक्षणसंयुक्त शूल, झाग, चिकना, लक्षणसंयुक्त हौले हौले दस्त होय, उस मनुष्य की त्वचा का रंग तथा नख, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, इनका मुख ये काले हों, गोला, तापतिल्ली (उदररोग), अष्टीला (वातकी गांठ), रोग के ये उपद्रव जिस बवासीर में होते हैं उसको वातार्श कहते हैं। २५२ मस्सों का मुख नीला, लाल, पीला, और सुफेदी लिये होवे, उन मस्सों से महीन धार से रुधिर चुवाये और रुधिर की बास आवे; महीन और कोमल शीतल हो और उनका आकर तोते की जीभ, कलेजा और जोंक के मुख के समान हो और देह में दाह हो, गुदा का पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये हों और हाथ के स्पर्श करने से गरम मालूम होवे और जिसके मल का द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय, जब के समान बीच में मोटे हों और जिसकी त्वचा, नख, नेत्रादिक ये पीले हरताल के समान और हलदी के समान हों ये लक्षण पित्ताधिक बवासीर के हैं। २५३ कफ की बवासीर के लक्षण ये हैं, जैसे कि गुदा के मस्ते, महामूल (दूर धातु के प्रति जाननेवाले) मंद पीड़ा के हरनेवाले करनेवाले, सफेद, लम्बे मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी स्थिर गाढ़े कफ से लिपटे, मणि के समान स्वच्छ, खुजली बहुत होय और प्यास लगे, करील कटहरन इनके कांटे के समान होय, गाय के थन के सदृश होय, पेडू में अफरा करनेवाले, गुदा, मूत्रस्थान और नाभि में इनमें पीड़ा करनेवाले, श्वास, खांसी, लारका टपकना अरुचि, पीनस, इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तक का भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकता,

अग्नि का मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणी आदि रोग के करनेवाले, वसा (चर्बी) और कफ मिला दस्त होवे, प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सों में से रुधिर न निकले, गाढ़ा मल होने से भी मस्से न फटे और शरीर का रंग पीला और चिकना हो, ये कफ की बवासीर के लक्षण हैं। २५४ जो पूर्व वातादिक तीनों दोषों की बवासीरों के लक्षण कहे हैं सो सब लक्षण मिलते हों उसको सन्निपात की बवासीर जानना और ये ही लक्षण सहज हैं। २५५ गुदा के मस्सों का रंग चिरमिटी के समान होवे अथवा वट के अंकुर से हो और पित्त ही बवासीर के लक्षण जिसमें मिलते हों, गाके सदृश हों और दस्त कठिन उतरने से मस्से दबें तो मस्सों में से दुष्ट और गरमागरम रुधिर पड़े और रुधिर के बहुत पड़ने से वर्षाऋतु में मेंढ़क के समान पीला रंग हो जाय, रुधिर के निकलने से जो प्रगट त्वचा को कठोरपना, नाड़ी का शिथिलपना और खट्टी वस्तु तथा शीत का दुःख उनके पीड़ित होय, हीनवर्ण, बल, उत्साह, पराक्रम का नाश होय, सम्पूर्ण इन्द्रियों का व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा, ऐसा मल होय, अपानवायु फुरे नहीं, यह लक्षण 'खूनी' बवासीर के जानने चाहिये। २५६ कुलपरंपरा के देह के साथ उत्पन्न होय उसको संसगर्शि जानना।। २५७ १ वात से सुई के चुभाने से जैसी पीड़ा होय। २५८ पित्त से कठोरता होय। २५९ कफ से काला और कुछ लाल तथा चिकनी गांठ के समान देह के वर्ण के समान वर्ण होवे। २६० देह में केश और मलीन वस्त्र के आश्रय से जो कृमि रहती है उनको यूका (जूं) कहते हैं। ये यू का तिल के सदृश होकर काली और सफेद होती हैं, इनके बहुत पांव होते हैं। २६१ जो बहुत ही बारीक होती हैं वे लीख कहलाती हैं, २६२ चमजूआं एक जूआं ही भेद है, इसके भी बहुत पैर होते है। २६३ देह में अठारह प्रकार के कृमि हैं, उनका कोप होने से ये सामान्य लक्षण होते हैं, ज्वर, शरीर में निस्तेजपन, शूल, हृदय में पीड़ा, वमन, भ्रम, अन्न का द्वेष और अतिसार। इस प्रकार सामान्य लक्षण जानने। २६४ कफ से आमाशय से प्रगट हुई कृमि जब बढ़ जाती है तब चारों तरफ डोलती हैं, कोई चामके सदृश, कोई गिडोड के आकार, कोई धान्य के अंकुर के समान होती है, कितनी ही छोटी बड़ी चौड़ी होती है। और किसी का वर्ण श्वेत, किसी का तांबें के समान होता है। उनके सात नाम हैं। इन कृमियों से वमन की सी इच्छा होय, मुख से पानी गिरे, अन्न का पाक न हो, अरुचि, मूर्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर, कृश रहे, सूजन और पीनस इतने विकार होते हैं। २६५ रुधिर की रहनेवाली नाड़ी में रुधिर से प्रगट कृमि–बारीक, पादरहित, गोल, तांबे के रंग की होती हैं, कोई बहुत बारीक होता है, वे देखने से भी नहीं दीखतीं, ये कुष्ठ को पैदा करते हैं। २६६ पक्वाशय में विष्टा से प्रगट कृमि गुदा के मार्ग से बाहर निकलती हैं, जब और ये बढ़ जाती हैं। तब अमाशय में प्राप्त होकर डकार और श्वास से विष्टा की सी बास आने लगती है। ये कृमि बड़ी छोटी, गोल, मोटी, रंग में काली, पीली, सफेद, नीली होती है। जब ये मार्ग को छोड़ अन्य मार्ग में जाती है तब इतने रोग प्रगट करती है, दस्त का पतला होना, शूल, अफरा, देह में कृशता तथा कठोरता, पाण्डुरोग, रोमांच मंदाग्नि और गुदा में खुजली होना। २६७ वातादि दोष कुपित होकर रुधिर को दूषित करके शरीर की त्वचा को पांडुरवर्ण (पीली) करते हैं, उसको पाण्डुरोग (पीलिया) कहते हैं। २६८ वात के पांडुरोग में त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापन और कालापन होता है, तथा कंप सुई छेदने का सा चुभन, अफरा, भ्रम, मेद और शूलादिक होते हैं। २६९ पितपांडुरोगी के व लक्षण होते हैं–मल, मूत्र और नेत्र पीले हों, दाह, प्यास, ज्वर इनसे पीड़ित हो, मल पतला हो और उस रोगी के देह की कांति अत्यन्त पीली होती है। २७० मुखते कफ का गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलसक, शरीर का भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र,

मुख इनका सफेद होना। इन लक्षणों से कफ का पांडुरोग जानना। २७१ ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त त्रिदोषजन्य पांडुरोग होता है। इस पाण्डुरोग से रोगी के इंद्रियों की अपना अपना विषय ग्रहण करने की शक्ति जाती रहती है। २७२ मिट्टी खाने का जिस मनुष्य को अभ्यास पड़ जाय उसके वातादिक दोष कुपित होते हैं। कषैली मिट्टी से बात, खारी माटी से पित्त और मीठी मिट्टी से कफ कुपित होता है। फिर वही मिट्टी पेट में जाकर रसादि धातुओं को रूखा करती है। जब रौक्ष्यगुण प्रगट हो जाय तब जो अन्न खाय सो रूखा हो जाता है फिर वही मिट्टी पेट में बिना पके रस को रस बहनेवाली नसों में प्राप्त कर उनके मार्ग को रोग देती है। रस के बहनेवाली नसों का मार्ग जब रुक जाता है। तब इन्द्रियों का बल अर्थात् अपने विषय ग्रहण करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। शरीर की कांति, तेज और ओज कहिये। सब धातुओं का सार (हृदय में रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग होता है। उसमें बल, वर्ण और अग्नि का नाश होता है, नेत्र, कपोल, भृकुटी, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो, कोठ में कृमि पड़ जायँ तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे। सब पांडुरोगों में जब पेट में कृमि पड़ जाते हैं तब ये (पूर्वोक्त) लक्षण होते हैं। २७३ वमन, रुचि, ओकारिकी आना, ज्वर, अनायास श्रम इनसे पीड़ित तथा श्वास खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुंभकामलावाला रोगी मर जाता है। २७४ पांडुरोगी का वर्ण, हरा, काला, पीला, हो जाय और बल व उत्साह इनका नाश, तंद्रा, मन्दाग्नि, महीन ज्वर, स्त्रीसंभोग की इच्छा का नाश, अंगो का टूटना, दाह, प्यास, अन्न में अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्त से प्रगटे हलीमक रोग के हैं। २७५ धूप में बहुत डोलने से, परिश्रम करने से, शोक से बहुत मार्ग चलने से, अतिमैथुन करने से, मिर्च आदि तीखी वस्तु खाने से, अग्नि के तापने से, जवाखार आदि खारे पदार्थ, नोन को आदि के लवण के पदार्थ, खट्टी, कड़वी ऐसी वस्तु के खाने के कोप से प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूर्ति इत्यादि गुणों से रुधिर को बिगाड़ता है; तब रुधिर ऊपर के अथवा नीचे के मार्ग अथवा दोनों मार्ग होकर प्रवृत्त हो। ऊपर के मार्ग-नाक-कान-नेत्र-मुख इनके द्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये, लिंग, गुदा, और योनि, इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यन्त कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचो से निकलता है उसको रक्तपित्त कहते हैं। २७६ नाक, मुख में धूर वा धुआं जाने से, दंडकसरत, रुक्षान्न इनके नित्य सेवन करने से, भोजन के कुपथ्य से, मल मूत्र के रोकने से, इसी प्रकार छिक्का अर्थात् आती हुई छींक को रोकने से प्राणवायु अत्यन्त दुष्ट होकर और उदान वायु से मिलकर कफपित्तयुक्त अकस्मात् मुख से बाहर निकले जिसका शब्द फूटे कांस्यपात्र समान हो तो उसको विद्वानलोग कास (खांसी) कहते हैं। २७७ हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुँह उतर जाय, बल स्वर, पराक्रम क्षीण पड़ जाय, बारम्बार खांसी का उठना, स्वरभेद और सूखी खांसी उठे यह वात की खांसी के लक्षण हैं। २७८ पित्त की खांसी से हृदय में दाह, ज्वर, मुख का सूखना इनसे पीडित हो, मुख कडुवा रहे, प्यास लगे, पीले रङ्ग की कड़वी पित्त के प्रभाव से वमन होय, रोमों का पीलावर्ण हो जाय और सब देह में दाह होता है। २७९ कफ की खांसी से मुख कफ से लिपटा रहे, मथवाव रहे और सब देह कफ से परिपूर्ण रहे, अन्न में अरुचि, शरीर भारी रहे, कंठ में खुजली और रोगी बारम्बार खांसे। कफ की गांठ थूकने से सुख मालूम होवे। २८० बहुत स्त्रीसंग करने से, भार के उठाने से, बहुत मार्ग चलने से, मल्लयुद्ध (कुस्ती) करने से, हाथी, घोड़ा दौड़ाने से, मल आदि रोकने से, रुक्ष पुरुष का हृदय फूटकर वायु कुपित होकर खांसी को प्रगट करता है, सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे पीछे रुधिर मिला थूके, कंठ अत्यंत दूखे, हृदय फूटे सदृश

मालूम हो और तीखी सुईकेसे चमक चले, उसको हृदय का स्पर्श नहीं सुहावे, दोनों पसवाड़ों में पीड़ा तथा दाह हो, गाठ में पीडा होय, ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीड़ित हो खांसी के वेग से रोगी कबूतर की तरह घूं घूं शब्द करे, ये लक्षण उरःक्षतकास के हैं। २८१ कुपथ्य और विषमाशन के करने से, अतिमैथुन से, मल मूत्र आदि का वेग धारने से, अतिदया करने से, अतिशोक करने से अग्नि मन्द हो, अर्थात् अहार थककर वायु कुपित हो अग्नि को नष्ट करे, तब तीनों दोष कोप को प्राप्त हो क्षयजन्य देह की नाशक खांसी को प्रगट करे, तब वह खांसी देह को क्षीण करे, शूल ज्वर, दाह और मोह ये हों तब यह प्राण का नाश करे, सूखी खांसी रुधिर मांस और शरीर को सुखावे, रुधिर और राध थूके ये सर्वलक्षणयुक्त और चिकित्सा करने में अतिकठिन ऐसी इस खांसी को वैद्य क्षयज कहते हैं। २८२ क्षयरोग का पूर्वरूप, श्वास, हाथ, पैर का गलना, कफ का थूकना, तालुए का सूखना, मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोक होनेवाले के होते हैं। उस मनुष्य के नेत्र सफेद होते हैं और मांस खाने तथा स्त्रीसंग करने की इच्छा होती है, वह सपने में कौआ, तोता, सेह नीलकंठ (मोर), गीध, बन्दर, करकेटा इन पर अपने को बैठा देखे और जलहीन नदी को देखे तथा पवन, धूरे और धुआं पीडित वृक्ष देखे, ये सब स्वप्न क्षयी रोग होने के दीखते हैं, कंधा और पसवाडे में पीड़ा, पैर में जलन और सर्व अङ्गों में ज्वर, ये तीन लक्षण क्षय के अवश्य होते हैं। २८३ वादी के प्रभाव के स्वरभेद, कंधा और पसवाड़े इनमें संकोच और पीड़ा होती है। २८४ पित्त से ज्वर, दाह, अतिसार और मुख से रुधिर का गिरना। २८५ कफ के कोप से मस्तक का भारीपन, अन्न से द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं। २८६ वात, पित्त, कफ इन तीनों के लक्षणों करके युक्त जो होता है उसको सांनिपतिकक्षय कहते हैं। २८७ बहुत तीरंदाजी करने से बहुत भारी वस्तु उठाने से, बलवान् पुरुष के साथ युद्ध करने से बहुत ऊँचे स्थान से गिरने से, बैल, घोड़ा, हाथी, ऊंट इत्यादि दौडते हुओं को थामने से, भारी शत्रु को मारनेवाला, शिला, लकड़े, पत्थर, निर्घात (अस्त्रविशेष) इनके फेंकने से, जोर से वेदादिक शास्त्र पढ़ने से अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर आने से, गङ्गा यमुनादिक महानदी को तैरनेवाला, अथव घोड़े के साथ दौड़नेवाला, अकस्मात् केला खानेवाला, जल्दी जल्दी बहुत नाचने से, इसी प्रकार दूसरे मल्लयुद्धादिक क्रूरकर्म करने से उर (छाती) फट जाती है। ऐसे पुरुष की छाती दुखने से बलवान् उरःक्षतरूप व्याधि उत्पन्न होती है और रूखा थोड़ा कुसमय तथा छाती में चोट लगने से, अत्यन्त स्त्रीरमण करने से और रूखा थोड़ा और अनुमान का भोजन करनेवाले पुरुष का हृदय फटे के सदृश मालूम हो अथवा हृदय के दो टूक कर डाले ऐसा मालूम हो और हृदय तथा पसवाडों में अत्यन्त पीड़ा हो अङ्ग सब सूखने और थरथर कांपने लगे। शक्ति, मांस, वर्ण, रुधिर, अग्नि ये सब क्रम से घटने लगे, ज्वर रहे, व्यथा होय, मन में सन्ताप हो और दीन होय, अग्नि मंद होने से दस्त होने लगे, और बारंबार खांसते २ दुष्ट, काला, अत्यन्त दुर्गंधयुक्त, पीना, गांठ के समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे इस प्रकार क्षतरोगी अत्यन्त क्षीण हो, सो केवल क्षत से क्षीण हो जाय ऐसा नहीं किन्तु स्त्रीसेवन करने से शुक्र और ओज (सब धातुओं का तेज) का क्षय होने से मनुष्य क्षीण होता है, ये उरःक्षतरोग के लक्षण हैं। २८८ रसादि स्राव धातु के शोषण (सूखने) से शरीर क्षीण होता है, इस रोग को शोष कहते हैं। २८९ रूखा पदार्थ खाने और श्रम करने से प्रगट हुआ जो श्वास सो पवन को ऊपर ले जाता है। यह क्षुद्रश्वास अत्यन्त दुःखदायक नहीं और अंगों को कुछ विकार नहीं करता, जैसे ऊर्ध्वश्वासादिक दुःखदायक हैं ऐसे यह नहीं है यह भोजनपानादिकों की उचित गति को नहीं करता, न इंद्रियों को पीड़ा करता और न

कोई प्रगट करता है, अतः यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा गया है। २९० जिस काल में शरीर की पवन उलटी गति से नाड़ियों के छिद्र में प्राप्त होकर मस्तक तथा कण का आश्रयकर कफसंयुक्त होता है तब कफ से रुककर अतिवेगपूर्वक कण्ठ में घुरघुर शब्द करता है और मस्तक में पीनस रोग करता है वह अत्यन्त तीव्र वेग से हृदय को पीडित करनेवाला श्वास को उत्पन्न करता है तो उस श्वास के वेग से रोगी मूर्छित होता है। त्रास को प्राप्त होता है, चेष्टा रहित हो जाता है और खांसी के उठने से बड़े मोह को बारंबार प्राप्त होता है, जब कफ छूटे तब दुःख होय और कफ छूटने के बाद दो घड़ीपर्यन्त सुख पावे, कंठ में खुजली चले, बड़े कष्ट से बोले, श्वास की पीड़ा से नींद न आवे, सोवे तो वायु से पसवाडों में पीडा हो, बैठे ही चैन पड़े और गरमी के पदार्थ से सुख हो, नेत्रों में सूजन हो, ललाट में पसीना आवे, अत्यन्त पीड़ा हो, मुख सूखे, बारंबार श्वास और बारंबार हाथी पर बैठने के सदृश सर्व देह चलायमान होवे, यह श्वास मेघ के वर्ष ने, शीत से पूर्व की पवन से और कफ कारक पदार्थों के सेवन करने से बढ़ता है। यह तमक श्वास याप्य है। यदि नया प्रगट हुआ हो तो साध्य होता है। २९१ बहुत देर पर्यन्त ऊंचा श्वास ले, नीचे आवे नहीं, कफ से मुख भर जावे और सब नाड़ियों के मार्ग कफ से बंद हो जायं; कुपित वायु से पीडित हो, ऊपर को नेत्र कर चञ्चल दृष्टि से चारो ओर देखे, मूर्च्छा और पीडा से अत्यन्त पीडित होय, मुख सूखे तथा बेहोश हो। ये ऊर्ध्वश्वास के लक्षण हैं। २९२ जिसका वायु ऊपर को जाय के प्राप्त हो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुख से शब्दयुक्त श्वास को ऊँचे स्वर से निकाले अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे इस प्रकार रात्रि दिन श्वास से पीडित हो, उसका ज्ञान विज्ञान जाता रहे, नेत्र चञ्चल हों और श्वास लेने में जिसके नेत्र और मुख फट जायँ, मलमूत्र बन्द हो जाय, बोला नहीं जाय अथवा बोले तो मन्द बोले, मन खिन्न हो और जिसका श्वास दूर से सुनाई दे। यह महाश्वास जिस पुरुष को होता है वह तत्काल मरण को प्राप्त होता है। २९३ जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ति हो उतनी शक्ति से श्वास का त्याग करे, अथवा क्लेश को प्राप्त हो, श्वास को नहीं छोड़े और मर्म कहिये हृदय, वस्ति (मूत्रस्थान) और नाड़ियों को मानों कोई छेदन करे ऐसी पीड़ा हो, पेट का फुलना, पसीना और मूर्च्छा इनसे पीडित हो, वस्ति (मूत्रस्थान) में जलन हो, नेत्र चलायमान हो, अथवा नेत्र आंसुओं से भरे हो, श्वास लेते लेते थक जाय तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल हो जाय, उद्विग्नचित हो, मुख सूखे देह का वर्ण पलट जाय बकवाद करे, संधि के सब बन्धन शिशिल हो जायें इस छिन्नश्वास से मनुष्य शीघ्र प्राण का त्याग करता है। २९४ जो हिचकी बहुत देर में कंठ हृदय की संधि से मन्द मन्द चले उसको क्षुद्रानाम हिचकी कहते हैं। २९५ अन्न और पानी के बहुत सेवन करने से वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्वगामी होकर मनुष्य के अन्नजा हिचकी प्रगट करता है। २९६ हिचकी नाभि के पास से उठ गम्भीर शब्द करे और जिसमें प्यास, ज्वरादि अनेक उपद्रव हों उसको गम्भीरा हिचकी कहते हैं। २९७ ठहर ठहर के दो दो हिचकी चलें, शिर कंधा को कपावे उसको यमला हिचकी जाननी। २९८ जो हिचकी मर्मस्थान में पीड़ा करती हुई और सर्व गात्र को कँपाती हुई सर्वकाल प्रवृत्त हो उसको महती हिक्का कहते हैं। २९९ कभी कभी अन्न का पचन होता है और कभी कभी नहीं होता, उसको विषमाग्नि जानना। यह वात की प्रकृति से होती है। ७ भोजन के ऊपर भोजन करने से सुखपूर्वक अन्नपाक हो जाय तो तीक्ष्णाग्नि जानना। यह पित्त की प्रकृति से होता है। ३०० थोड़ा भोजन करने से भी अन्न का पाक नहीं होता उसको मन्दाग्नि जानना, यह कफ की प्रकृति से होता है। ३०१ भूख अत्यन्त प्रबल लगती है इस कारण बारम्बार भोजन करता है तो भी वह अन्न पच जाता है परन्तु

उस अन्न के रस से शरीर में पुष्टता नहीं आती और शरीर कृश होता है, उसको भस्मकाग्नि जानना। अन्य ग्रन्थों में भस्मकाग्नि का तीक्ष्णकाग्नि में अन्तर्भाव माना है। ३०२ वात की अरुचि दांत खट्टे हों और मुख कषैला होता है। ३०३ पित्त की अरुचि से कड़ुआ, खट्टा, गरम, विरस दुर्गन्धयुक्त मुख हो जाता है। ३०४ कफ की अरुचि से खारा, मीठा, पिच्छिल, भारी, शीतल होता है और मुखबँधा सरीखा अर्थात् खाया नहीं जाय और आंत कफ से लिप्त हो जायँ। ३०५ सन्निपात की अरुचि से अन्न में अरुचि तथा मुख में अनेक रस मालूम हों। ३०६ शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मन को बुरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र वास इनसे प्रगट हुई अरुचि में मुख स्वाभाविक रहे, अर्थात् वातजादिकों के सदृश कषैला खट्टा आदि नहीं हों। ३०७ हृदय और पसवाडों में पीड़ा और मुखशोष होवे, मस्तक और नाभि के शूल होय, खांसी, स्वरभेद और सुई चुभने की सी पीड़ा होय, डकार का शब्द प्रबल हो, वमन में झाग आवे, ठहर ठहरकर वमन हो तथा थोड़ी हो, वमन का रङ्ग काला हो, पतली और कषैली हो, वमन का वेग बहुत हो पर वमन थोड़ा हो और वेग के प्रभाव से दुःख बहुत हो ये लक्षण वायु की छर्दिके हैं। ३०८ मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मरतक, तालुआ, नेत्र इनमें संताप अर्थात् ये तपायतान रहें, अंधेरा आवे, चक्कर आवे, रोगी पीला, हरा; गरम, कड़ुआ, धुओं के रङ्ग का और दाहयुक्त पित्त को वमन करे, यह पित्त की छर्दि के लक्षण है। ३०९ तन्द्रा, मुख में मिठास, कफ का पड़ना, सन्तोष (अन्न में अरुचि) निद्रा, अरुजि, भारीपना इनसे पीडित हो, चिकना, गाढा, मीठा, सफेद कफ की वमन करे और जब रद्द करे तब पीड़ा थोड़ी हो, रोमांच हो, ये कफ की छर्दि के लक्षण है। ३१० कामिकी छर्दि में शूल, खांसी रद्द ये विशेष होती हैं। बहुधा क्रमि और हृदय रोग के लक्षण सदृश इसके लक्षण जानने। ३११ शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणों से प्रबल हुई जो वमन सो सन्निपात से होती है। रद्द करनेवाले की वमन खारी, खट्टी, नीली, सङ्कट्ट, (जिसको देशवाले मनुष्य जाड़ी कहते हैं) गरम, लाल ऐसी होती है। ३१२ अमेध्य मांस मछली आदि पदार्थों के दुर्गन्ध से मन को तिरस्कार आके जो वमन होता है, उसमें जिस दोष का कोप हो उस दोष की रद्द जाननी। स्त्रियों के गर्भ रहने पश्चात् जो वमन होती है उसकी भी लक्षण जानने। ३१३ बहुत जोर से बोलने से, विष के खाने से, ऊँचे स्वर से पाठ करने से (अर्थात् वेदादिपाठ करने से) कण्ठ में लकड़ी (काष्ठ) आदि के चोट लगने से कोप को प्राप्त हुए जो वात,पित्त, कफ सो कण्ठ में बहनेवाली चार नसें हैं उनमें वृद्धि को प्राप्त कर स्वर का नाश करें उसको स्वरभेद रोग कहते हैं। ३१४ वात से स्वरभेद हो तो रोग के नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये काले हों। वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले, अथवा गधे के स्वरप्रमाण कर्कश बोले। ३ पित्तस्वरभेदवाले मनुष्य के नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये पीले होते हैं और बोलते समय गले में शोष होता है। ३१५ कफ के स्वरभेद से कंठ कफ से रुका रहे, मन्द मन्द तथा थोड़ा बोले और दिन में बहुत बोले। ३१६ मेद के सम्बन्ध से कफ अथवा मेद से गला लिप्त हो अथवा मेद से स्वर के मार्ग रुक जाने से प्यास बहुत लगे, गले के भीतर और मन्द बोले। ३१७ सन्निपात के स्वरभेद में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं और यह स्वरभेद असाध्य है ऐसा ऋषि कहते हैं। ३१८ क्षय का स्वर भेदवाले पुरुष के बोलते समय मुख से धुआंसा निकले और बाणी क्षय हो जाय अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले इस स्वरभेद से जिस समय वाणी हत हो जाय, अर्थात् ओज का क्षय होने से बोलने का सामर्थ्य नहीं रहै, तब यह असाध्य होता है ओज का क्षय (नाश) नहीं होय तो साध्य है। ३१९ वात की तृषा (प्यास) में मुख उतर जाय, अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकानों के नोच के समान पीड़ा होय

और जल बहनेवाली नाड़ियों का मार्ग रुक जाय, मुख का स्वाद जाता रहे और शीतल जल के पीने से प्यास बढ़े। ३२० पित्त की तृषा में मूर्च्छा, अन्न में अरुचि, बडबड, दाह, नेत्रों में लाली, अत्यन्त शोष, शीतपदार्थ की इच्छा, मुख में कडुआहट और संताप ये लक्षण होते हैं। ३२१ अपने कारण के कुपित कफ करके जठराग्नि आच्छादित होती है तब अग्नि की गरमी अधोगत जल के बहनेवाली नाडियों को सुखाकर कफ की तृष्णा को प्रगट करती है। केवल कफ से तृषा का प्रगट होना असंभव है, केवल कफ बढ़े हुए का द्रवीभूतधर्म होने से प्यासकर्तृत्व असम्भव है। और वातपित्त की ही तृषा होती है न कि कफ की भी यह ग्रंथांतर में लिखा है। इसी सें चरकाचार्य ने कफ की तृष्णा नहीं कही सुश्रुत ने चिकित्सा में भेद होने से कही है। हारीत ने भी सपित्तकफ की तृषा मानी है, केवल कफ की नहीं मानी। इस तृषा में निद्रा, भारीपन, मुख में मिठास ये लक्षण होते हैं। इस तृषा से पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जाता है। ३२२ वात, दित्त, कफ इन तीनों को तृष्णा के समान जिस तृष्णा में लक्षण हो उसको त्रिदोषज तृष्णा कहते हैं। ३२३ हीनस्वर मोह मन में ग्लानि हो, मुख दीन हो जाय, हृदय गला और तालु सूख जाय ये तृष्णा के उपद्रव हैं, कि जो मनुष्य को सुखाय डालते हैं और व्याधि के कारण शरीर कृश होने से यह कष्टसाध्य हो जाता है। वे उपद्रव ये हैं- ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास, अंतिसारादिक। ये रोग जिसके हों उसकी तृष्णा कष्टसाध्य जाननी। ३२४ रसक्षय से जो तृष्णा हो उसमें जो लक्षण होते हैं वही सब क्षयजल तृष्णा में होते हैं, इससे पीडित पुरुष रातदिन बारम्बार पानी पीवे, परन्तु संतोष नहीं होता। ३२५ जो मनुष्य नीले अथवा लाल रङ्ग के आकाश को देखे, पीछे मूर्च्छा को प्राप्त हो और जल्दी बेहोश हो जाय, देह में कम्प, अंगों का फूटना, हृदय में पीड़ा हो, शरीर कृश हो जाय, शरीर का रङ्ग काला लाल पड़ जाय, उसको वात की मूर्च्छा जानना। ३२६ जिसको आकाश लाल, हरा, पीला दीखे, मूर्च्छा आवे और सावधान होते समय पसीना आवे, प्यास हो, सन्ताप हो, नेत्र लाल पीले हों, मल पतला हो, देह का वर्ण पीला हो, ये लक्षण पित्त की मूर्च्छा के हैं। ३२७ कफ की मूर्च्छा में आकाश को मेघ के समान अथवा अन्धकार के समान अथवा बादल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत हो, देर में सावधान हो, देह पर भारी बोझासा भार मालूम हो अथवा गीला चमड़ा धारण किया हुआ मालूम हो, मुख से पानी गिरे, रद्द ऐसा मालूम हो। ३२८ सन्निपात की मूर्च्छा में सब दोषों के लक्षण होते हैं, इस रोग को दूसरा अपस्मार (मृगी) जानना चाहिये, परन्तु अपस्मारों में दांत का चबाना, मुख से झाग गिरना, नेत्रों का हाल और ही प्रकार हो जाना इत्यादिक लक्षण नहीं होते इतना ही भेद है। ३२९ संन्यास रोग का उपाय जलदी होवे तो मनुष्य बचता है नहीं तो मर जाता है। उसका उपाय यही है कि हाथ पैरों की उँगलियों को सुई से छेदन करे, अथवा फस्त खोलकर रुधिर निकाले। ३३० हिचकी, श्वास, मस्तक का कंप होना, पसवाडों में पीड़ा, निद्रा का नाश और अत्यन्त बकवाद ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय रोग जानना। ३३१ प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान रहे) देह का वर्ण हरा हो इन लक्षणों से पित्तप्रधान मदात्यय जानना। ३३२ वमन (रद्द) अन्न में अरुचि खाली रद्द (ओकारी), तन्द्रा, देह गीली, भारी और शीत लगे इन लक्षणों से कफप्रधान मदात्यय जानना। ३३३ जिसमें त्रिदोषमदात्यय के लक्षण मिलते हों उसको सन्निपात प्रधान मदात्यय जानना। ३३४ जिसमें कुछ लक्षण रक के मिलते हो और कुछ पित्त के हों उसको रक्तपित्त दाह कहते हैं। ३३५ सर्वदेह का रुधिर कुपित होकर अत्यन्त दाह करे और वह रोगी अग्नि के समीप रहने से जैसा तपता है ऐसा तपे, प्यासयुक हो, ताम्र के रंग सदृश देह का रंग हो और नेत्र भी लाल हों तथा मुख से और देह से

तप्त लोहे पर जल डालने की सी गंध आवे और अंग में मानो किसीके अग्नि लगा दी हो ऐसी वेदना हो तो उसे रुधिर के कोप से उपजी दाह कहते हैं। ३३६ प्यास के रोकने से जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्त की गरमी को बढावे, तब वह गरमी देह के बाहर और भीतर दाह करे। इस दाह से रोगी बेसुध होय और गला, तालु, होठ यह अत्यन्त सूखे और जीभ के बाहर काढ़ दे और काँपे। ३३७ पित्त से जो दाह हो उसमें पित्तज्वर के से लक्षण होते हैं। उस पर पित्तज्वर की चिकित्सा करनी चाहिये। पित्त ज्वर में और पित्त के दाह में अन्तर है कि पित्तज्वर में अग्नि और आमाशय का दुष्टपना होता है और पित्त के दाह में नहीं होता और सब लक्षण एक ही हैं। ३३८ धातुक्षय से जो दाह होय उससे रोगी मूर्च्छा, प्यास इनसे युक्त स्वरभंग तथा चेष्टाहीन होता है, इस दाह में पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तो वह रोगी मरण को प्राप्त होता है। ३३९ मर्मस्थान (हृदय-शिर-वस्ति) में चोट लगने से जो दाह होय तो असाध्य है। ३४० शस्त्र कहिये तलवार आदि के लगने से प्रकट रुधिर से कोष्ठ कहिये हृदय भर जावे तब अत्यन्त दुःसह दाह प्रगट होता है। एवं क्षतजदाह से कोष्ठ शब्द से यहां पर हृदय आमाशय आदि स्थान जानना। उससे आहार थोड़ा रह जावे, अनेक प्रकार के शोककर दाह होय और इस दाह करके अभ्यन्तर दाह होय तथा प्यास मूर्च्छा और प्रलाप (बकवाद) ये लक्षण होय। ३४१ रूखा थोड़ा और शीतल अन्न, धातुक्षय और उपवास इन कारणों से अत्यन्त बड़ी जो वायु सो चिन्ता शोकादि करके युक्त होकर हृदय (मन) को अत्यन्त दुष्टकर बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करती है हंसने के कारण बिना हंसे, मन्द मुसकान करे, नाचे, बिना प्रसंग के गीत गावे और बोले, हाथों को सर्वत्र चलावे, रोवे और शरीर रूखा तथा कृश और लाल हो जाय और आहार का परिपाक भये पर जियादह जोर होय, ये वातोन्माद के लक्षण है। ३४२ अधकच्ची, कड़वी, खट्टी दाह करनेवाली और गरम वस्तु का भोजन करने से संचित भया जो पित्त सो तीव्ररोग होकर अजितेन्द्रिय पुरुष के हृदय में प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करता है। इस उन्माद से असहनशील, हाथ पैरों का पटकना, नग्न हो जाय, डरपे, भागने लगे, देह गरम हो जाय, क्रोध करे, छाया में रहे, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख हो जाय, यह लक्षण पित्तज उन्माद के हैं। ३४३ मन्द भूख में पेटकर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे ऐसे पुरुष के पित्तयुक्त कफ हृदय में अत्यन्त बढकर बुद्धि, स्मरण और चित्त इनकी शक्ति का नाश करता है और मोहित कर उन्मादरूप विकार को उत्पन्न करता है। उस विकार से वाणी का व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द हो, अरुचि हो, स्त्री प्यारी लगे, एकान्त वास करे, निद्रा अत्यन्त आवे, वमन हो, मुख से लार बहे, भोजन करने के पीछे रोग का जोर हो, नख, त्वचा, मूत्र, नेत्रादि सफेद हों, यह लक्षण कफोन्माद है। ३४४ जो उन्माद वातादिक तीनों दोषों के कारण करके होता है वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयङ्कर होता है, उसमें सब दोषों के लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधि विधि वर्जित है, यह उन्माद वैद्यों करके त्याज्य हैं। कारण कि यह असाध्य है। ३४५ विष से प्रगट उन्माद में नेत्र लाल हों, बल इन्द्रिय और शरीर की कांति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उसके मुख पर कालोंच आ जाय और संज्ञा जाती रहे। ३४६ चोरों ने राजा के मनुष्यों ने, अथवा शत्रुओं के, उसी प्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि किसी ने त्रास दिया हो अथवा धन या बन्धु के नाश होने से इस पुरुष का अन्तःकरण अत्यन्त दूखे अथवा प्यारी स्त्री से संभोग करने की इच्छावाले पुरुष के मन में भयंकर विकार उत्पन्न हो, पुरुष गुप्तवात को भी कहने लगे और अनेक प्रकार का बोले, विपरीत ज्ञान हो, गावे, हंसे और रोवे तथा मूर्ख हो जाय। ये लक्षण शोक उन्माद के हैं। ३४७ देवग्रह जो गन्धर्वादिक पीडित मनुष्य सदा सन्तोष युक्त रहे। देह में दिव्यपुष्प के समान

सुगन्ध, नेत्रों के पलक लगे नहीं, सत्य संस्कृत का बोलनेवाला हो, तेजस्वी स्थिरदृष्टि वर का देनेवाला, तेरा कल्याण हो ऐसा वर देय और ब्राह्मण से प्रीति रखे। ३४८ पसीनायुक्त देह, ब्राह्मण, गुरु और देव इनमें दोषारोपण करनेवाला, टेढ़ी दृष्टि से देखनेवाला, निर्भयवद विरुद्ध मार्ग का चलनेवाला, और बहुत अन्न जल से भी जिसको संतोष हो और दुष्टबुद्धि, ऐसे मनुष्य को दैत्यग्रह से पीडित जानना। ३४९ गन्धर्व ग्रह से पीडित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन और बाग बगीचा रहनेवाला, अनिन्दित आचार का करनेवाला, गाना, सुगन्ध और पुष्प ये जिसको प्यारे लगे ऐसा होता है। वही पुरुष नाचे, हंसे, सुन्दर बोले, थोड़ा बोले। ३५० किन्नर ग्रह से पीडित मनुष्यों के लक्षण गन्धर्वग्रह के सदृश ही होते हैं। ३५१ यक्षपीडित मनुष्यों के नेत्र लाल होते हैं और वह सुन्दर बारीक ऐसे रक्त रस्न का धारण करनेवाला, गम्भीर, बुद्धिमान् जल्दी चलनेवाला, प्रमाण का बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देऊँ ऐसे बोलनेवाला होता है। ३५२ कुशों के ऊपर प्रेतों के (पित्तरों को) पिंड दे, चित्त में भ्रांति रहे और उत्तरीय वस्त्र अपसव्य करके तर्पण भी करे, मांस खाने की इच्छा हो तथा तिल, गुड, क्षीर इन पर मनवाले(इसके कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस पदार्थ पर इच्छा हो उसको उसी पदार्थ की बलि देने से उस ग्रह की शांति होती है ऐसे ही सर्वत्र जानना। यह डल्लन का मत है) और वह मनुष्य पितरों की भक्ति करे। ये लक्षण पितृग्रह पीडित मनुष्य के हैं। ३५३ गुरु कहिये माता पिता आदि बड़ों के अपराध करने से जो शाप होता है उससे मनुष्यों को उन्माद उत्पन्न होता है। उसके लक्षण-प्रेत, गुह्यक, वृद्ध, सिद्ध और भूत इनके लक्षणों के सदृश ही होते हैं। ३५४ पिशाचजुष्ट के लक्षण ये हैं-कि जो अपने हाथ ऊपर को करे, नंगा हो जाय, तेजरहित बहुत देर पर्यन्त बकनेवाला जिसके देह में अपवित्र दुर्गन्ध आवे तथा अतिचञ्चल यानी सब अन्न पान में इच्छा करनेवाला, खाने को मिले तो बहुत भोजन करे, एकान्त वनान्तरों में रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रोदनकर्त्ता, डोलनेवाला, ऐसा मनुष्य हो जाता है। ३५५ जलादि देवता कहिये जलदेवता,अप्सरा आदिक और स्थलदेवता इनके लक्षण अनुमान करके समझ लेना। ३५६ जो मनुष्य सर्प के समान पृथ्वी में लोटा करे, अर्थात् छाती के बल चले तथा सर्प के समान अपने ओष्ठप्रान्त (होठों) को चाटा करे, क्रोधी रहे, शहद, गुड़, दूध और खीर की इच्छा रहे तो उसे सर्पग्रहग्रस्त जानना। ३५७ देव, ब्राह्मण, गुरु से द्वेषकर्ता, वेद और वेद के अङ्ग (शिक्षा, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द, कल्प, निरुक्त) का पढ़ा भया, शीघ्र पीड़ा का कर्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षसेवी मनुष्य के हैं। ३५८ राक्षसों से पीड़ित जो उन्मादरोगी वह मांस, रुधिर, नाना प्रकार के मद्य इनमें प्रीति रखनेवाला और निर्लज्ज होता है अर्थात् नङ्गा रहने से लाज नहीं धरता, निर्दय होता है, शूरता दिखाता है, क्रोधी, बलिष्ठ, रात्रि में भटकनेवाला और अच्छे कर्मों से द्वेष करनेवाला होता है। इसी के सदृश कूष्मांड, राक्षस, कृत्या और वेताल इन करके पीड़ित मनुष्यों के लक्षण, अनुमान से जान लेना। ३५९ चिंता, शोक, क्रोध, लोभ, मोहादि से कुपित हो दोष वात, पित्त, कफ सो हृदय में स्थित जो मन को बहनेवाली नाड़ी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान) का नाश कर अपस्मार रोग को प्रगट करते हैं। ३६० वात के अपस्मार में रोगी कांसे, दांतों को चबाये, मुख से लार गेरे और श्वास भरे, तथा कर्कश अरुणवर्ग मनुष्यों को देखे अर्थात् कोई नीलवर्ण का मनुष्य मेरे पास दौड़ा आता है ऐसा देखे। ३६१ पित्त की मिरगीवाले के झाग, देह, नेत्र और मुख ये पीले होते हैं और वह पीछे रुधिर के रंगी की सी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमी के साथ अग्नि के व्याप्त भया, ऐसा जगत को देखे और मेरे पास पीले वर्ण का पुरुष दौड़ा आता है, ऐसा देखे। ३६२ कफ की मृगीवाले के झाग, अंग, मुख और नेत्र सफेद होयँ, देह

शीतल होय, देह तथा देह के रोमांच खड़े रहें, भारी हो और सब पदार्थ सफेद दीखे और सफेद रंग का पुरुष मेरे सामने दौड़ा आता है, ऐसा देखे। यह अपस्मार (मिरगी) रोग देर में छोड़े अर्थात् वातपित्त की मृगी जल्दी रोगी को छोड़ देती है। ३६३ जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों उसको त्रिदोषज अपस्मार जानना। यह असाध्य है और जो क्षीण पुरुष के होय वह भी असाध्य है तथा जो पुराना पड़ गया हो वह भी अपस्मार (मिरगी) रोग असाध्य है। ३६४ अंगो का टूटना, अरुचि, प्यास, आलसक, भारीपना, ज्वर, अन्न का न पचना और देह में शून्यता हो जाय इसी रोग को आमवात कहते हैं। ३६५ वात के आमवात में शूल होता है। ३६६ पित्त से जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होता है। ३६७ कफसंबधी आमवात में देह में आर्द्रता (गीला और भारीपन तथा खुजली चलती है) ३६८ त्रिदोष से प्रगट आमवात में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं, यह कष्टसाध्य है। ३६९ दंड, कसरत, बहुत चलाना, अतिमैथुन, अत्यन्त जागना, बहुत शीतल जल पीना, कांगनी, मूंग, अरहर, कोदों और अत्यन्त रूखे पदार्थ से सेवन से अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन), लकड़ी आदि के लगने से कषैला, कड़ुआ मीजा, अन्न (जिसमें अंकुर निकस आये हों,) विरुद्ध क्षीर मछली आहि, सूखामांस, सूखाशक (कचरिया आदि) इनके सेवन से, मल, मूत्र, शुक और अधोवायु इनके वेग को रोकने से, शोक से, उपघात के करने से, अत्यंत हंसने से, बहुत बोलने से कोप को प्राप्त भई जो वात से बढ़कर हृदय, पसवाड़े वा पीठ, त्रिकस्तान, मूत्रस्थान में शूल को करे और भोजन पचने के पीछे प्रदोषकाल में, वर्षाकाल में, शीतकाल में, इन दिनों में शूल अत्यन्त कोप करे, बारंबार कोप होय, मल, मूत्र का अवरोध पीड़ा और चिकने गरम अन्न से वह शूल शांत होता है। ३७० यवक्षार आदि खार, मिरच आदि तीक्ष्ण और गरम, विदाहकारक, बाँस और करील आदि, तेल सिंवी, खल, कुलथी का यूष, कड़ुआ, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष), सुराविकार (कांजी इत्यादिक), क्रोध से, अधिक समीप रहने से परिश्रम से सूर्य की तीव्र धूप में डोलने से, अति मैथुन करने से, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणों से पित्त कुपित होकर नाभि स्थान में शूल, तृषा, मोह, दाह, पीड़ा, पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहर के समय, मध्यरात्रि में, अन्न के विदाहकाल में, शरदकाल में शूल अधिक होय। शीतल काल में शीतल पदार्थ और अत्यन्त मधुर (मीठा) शीतल अन्न से यह शूल शांत होय। ३७१ जल के समीप रहनेवाले पक्षियों का मांस, मछली आदि का मांस, दही, घृत, मक्खन आदि दूध से विकार मांस, ईख का रस, पिसा अन्न, खिचड़ी, तिल, पुरी कचौड़ी आदि और कफकारक पदार्थ खाने से कफ कुपित होकर आमाशय में शूलरोग को प्रगट करे, उससे सूखी रदृ खांसी ग्लानि, अरुचि, मुख से लाल गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ये लक्षण होंय, भोजन करते समय पीड़ा होय, सूर्योदय के समय शिशिर ऋतु में और वसन्तकाल में शूल बहुत होय। ३७२ दाहज्वर करनेवाला, ऐसा भयङ्कर शूल होय सो वातपित्त का जानना। ३७३ कूख, हृदय, नाभि और पसवाड़े में इनमें पित्तकफ का शूल होता है। ३७४ वस्ति (मूत्रस्थान) हृदय, कण्ठ, पसवाड़े इन ठिकाने शूल होय उसे कफवात का शूल जाननना। ३७५ पेट में गुड़गुड़ाहट होय, उबकियों का आना, देह भारी, मन्दता, अफरा, मुख से कफ का स्राव, इन लक्षणों से तथा कफशूल लक्षणों के समान ऐसे शूल को आमशूल कहते हैं। ३७६ जिसमें तीन (वात, पित्त, कफ) के लक्षण मिलते हों, उसको संनिपात का शूल कहते हैं। मांस, बल और अग्नि जिसके क्षीण हो गये हों, ऐसा शूलरोग असाध्य जानना। ३७७ अन्न पच गया होय अथवा पच रहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा जो शूल होय वह पथ्यापथ्य के योग से अथवा भोजन करने से नियम में शांत नहीं होय उसको अन्नद्रवशूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोष विकृति के

एक प्रकार का है, परन्तु असाध्य नहीं है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है। ३७८ अम्लपित्त से जो शूल होता है उसको जरत्पित्त शूल कहते हैं। ३७९ क्षुधा (भूख) रोकने से तंद्रा, अंगो का टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टि का मन्द होना, ये रोग प्रगट होय। ३८० प्यास के रोकने से कंठ और मुख का सूखना, कानों से मंद सुनना और हृदय में पीड़ा, ये लक्षण होय। ३८१ आती हुई निद्रा को रोकने से जंभाई अंगों का टूटना, नेत्र और मस्तक की अत्यन्त जड़ता होना और तंद्रा होय। ३८२ जो मनुष्य हार गया हो और वह श्वास को रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायगोला इतने रोग होंय। ३८३ जो मनुष्य आती हुई वमन के वेग को रोके, उसके अंगो में खुजली चले, देह में चकत्ते हो, जांघ, अरुचि, खपर, झांई सी पड़े, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, खालीरद्द, विसर्प ये रोग होंय। ३८४ आती हुई छीक के रोकने से मन्या (कहिये नाड़ के पिछाड़ी की नस) का स्तम्भ कहिये जकड़ जाना, शिर में शूल का चलना, अधोमुख टेढ़ा हो जाय, अर्धागवार्त और इन्द्रियें दुर्बल हो जायँ, इतने रोग होते हैं। ३८५ आती हुई जँभाई को रोकने से मन्या कहिये, नाड़ के पीछे की नस, और गला इनका स्तम्भ और वातजन्य विकार मस्तक में होता है। उसी प्रकार नेत्ररोग, नासारोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होते हैं। ३८६ आती हुई डकार के वेग को रोकने से वातजन्य इतने रोग होते हैं, कंठ और मुख भारी सा मालूम हो, अत्यन्त नोचने की पीड़ा हो, अव्यक्त भाषण (अर्थात् जो समझने में न आवे।) हो। ३८७ आनन्द से अथवा शोक से प्रगट अश्रुपातों को जो मनुष्य नहीं त्याग करे उसके इतने रोग प्रगट होते हैं, मस्तक भारी रहें, नेत्ररोग और पीनस ये प्रबल हों। ३८८ मैथुन करते समय वीर्य निकलते जो मनुष्य रोके, अथवा और प्रकार के शुक्र के वेग को रोके, उसके मूत्राशय में सूजन होय तथा गुदा में और अंडकोशों में पीड़ा होय, मूत्र बड़े कष्ट से उतरे, शुक्राश्मरी होय, शुक्र का स्राव होय, ऐसे अनेक प्रकार के रोग होंय। ३८९ मूत्र का वेग रोकने से वस्ति (मूत्राशय) और शिश्न इंद्रिय में पीड़ा होय, मूत्र कष्ट से उतरे, मस्तक में पीड़ा, पीड़ा से शरीर सीधा होय नहीं, पेट में अफरा होय। ३९० मल का वेग रोकने से गुड़गुड़ाहट होय, शूल होय, गुदा में कतरने की सी पीड़ा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवें अथवा मल मुख के द्वारा निकले, ३९१ अधोवायु के रोकने से अधोवायु, मल, मूत्र, ये बन्द होय, पेट फूल जाय, अनायास श्रम और पेट में बादी से पीड़ा होय तथा अन्य वातकृत (तोद शूलादिक) पीड़ा होय। ३९२ आम अथवा पुरीष क्रम से वंचित होकर, विगुणवायु से बारंबार विबद्ध होकर अपने मार्ग से अच्छी तरह प्रवृत्त होय नहीं, इस विकार को आनाह कहते हैं। ३९३ पक्वाशय में आनाहरोग होने से आघ्मान, वातरोधादि आलसरोगोक्त लक्षण होते हैं। ३९४ आम से प्रगट आनाहरोग में प्यास, पीनस, मस्तक में दाह, आमाशय में शूल, देह में भारीपना, हृदय का जकड़ जाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई रद्द और श्वास ये लक्षण होते हैं। ३९५ उरोग्रह यह हृद्रोग का एक भेद है। इसका विशेष लक्षण यह है कि रक्त, मांस, प्लीहा और यकृत् इनकी उरोग्रह होते समय ही वृद्धि होती है ऐसा जानना और वातादिदोष कुपित होकर रसधातु दूषित करके हृदय में जाकर हृदय को पीड़ा करे। ३९६ वातज हृदय रोग में हृदय ऐंकने सरीखा, सुई से टोंचने सरीखा, फोड़ने सरीखा, दो टुकड़ा करने के समान, मथने के समान, कुल्हाड़ी से फाटने के समान पीड़ा होती है। ३९७ पित्त के हृदयरोग में प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदय से धुंआ निकलता सा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुख का सूखना ये लक्षण होते हैं। ३९८ कफ के हृद्रोग में भारीपना, कफ का गिरना, अरुचि, हृदय, कड़ू जाय, मंदाग्नि, मुख में मिठास [illegible] ३९९ जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों

उस त्रिदोष का हृद्रोग जानना। इसमें कुछ भी अपथ्य होने से गांठ उत्पन्न होती है, उस गांठ से क्रमि पैदा होते हैं, ऐसा चरक में लिखा है। ४०० तीव्र पीड़ा करके तथा नोंचने की सी पीड़ा करके तथा खुजली करके युक्त ऐसा हृद्रोग क्रमिजन्य जानना, उत्क्लेद (ओकारी आने के समान मालूम हो), थूकना, तोंद (सुई चुभाने की सी पीड़ा), शूलहल्लास, अन्धेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पड़ जायँ और मुखशोष यह लक्षण क्रमिजहृदय रोग में होते हैं। ४०१ अफरा, चलने की शक्ति का नाश, दुर्बलता, मन्दाग्नि, सूजन, अंगग्लानि, वायु का तथा मल का रुकना, दाह, तन्द्रा ये लक्षण सब उदररोग में होते हैं, वात आदि भेद से उदररोग में आठ प्रकार के लक्षण, जैसे (१) वातोदर में हाथ, पैर, नाभि औककूख इनमें सूजन होय, संधियों का टूटंना तथा कूख, पसवाड़े, पेट, कमर, इनमें पीड़ा, सूखी खांसी, अंगो का टूटना, कमर से नीचे के भाग में भारीपना, मल का संग्रह होना, त्वचा, नख नेत्रादि का काला, लाल होना, पेट अकस्मात् (निमित्त के बिना) बड़ा हो जाय, छोटी सुई चुभाने की सी तथा नोचने की सी पीड़ा होय, पेट में चारों तरफ बारीक काली शिरा (नाड़ियों) से व्याप्त होय, चुटकी मारने से फुलीपखाल के समान शब्द होय, उदर में वायु चारों तरफ डोलकर शूल करता तथा गूंजता है। (२) पित्त के उदररोग में ज्वर, मूर्च्छा, दाह, प्यास, मुख में कडुआ सा, श्रम, अतिसार, त्वचा, मुख, नेत्र, इनमें पीलापन, पेट हरा होंय, पीली तांबे के रङ्ग की नाड़ियों से उदर व्याप्त हो, पसीना आवे, गरमी से सब देह में दाह होय, आंतों से धुआं सा निकलता दीखे, हाथ के स्पर्श करने से नरम मालूम हो, शीघ्र पाक होय, अर्थात् जलोदरत्व को प्राप्त होय और उसमें घोर पीड़ा होय। (३) कफ के उदररोग में हाथ, पैर आदि अङ्गों में शून्यता हो और जकड़ जाय, सूजन होय, अङ्ग भारी हो जाय, वमन हो गयी, ऐसा मालूम हो, अरुचि होय, खांसी होय, त्वचा, नख नेत्रादिक सफेद हों, पेट निश्चल, चिकना, सफेद, नाड़ियों से व्याप्त हो, इसकी वृद्धि बहुत काल में होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय, तथा भारी और स्थिर होय, (४) खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुष को नख, केश (बाल) मल, मूत्र और आर्तव (रजोदर्शन का रुधिर) मिला अन्न पान देय, अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांयु (जहर मिलाई मछली तिनका पित्त आदि औटा हुआ ऐसा जल) और दूषी विष मन्दविष इनके सेवन करने से रुधिर और घातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर अत्यन्त भयङ्कर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करते हैं। वे शीतकाल में अथवा पवन चलते समय, अथवा जिस दिन वर्षा की झड़ लग जाये उस दिन विशेष कोप को प्राप्त होते हैं और दाह होय वह रोगी निरन्तर विष के संयोग से मूर्च्छित होय, देह का पीलावर्ण तथा कृश होय और परिश्रम करने से शोष होय, इसी सन्निपातोदर को दूष्योदर भी कहते हैं। (५) जिसने स्नेह घृत तैलादि पान किया हो, अथवा अनुवासन वस्ति की हो, वमन किया हो, अथवा दस्त किये हों तथा निरुद्ध वस्ति की हो ऐसा पुरुष शीतल जल पीवे तब उसकी जल बहनेवाली नसों के मार्ग तत्काल दुष्ट होते हैं। वे उदक बहनेवाले स्रोत (मार्ग) स्नेह से उपलिप्त (चिकने) होने से उदररोग को उत्पन्न करते हैं, वह जलोदर होता है, उसमें चिकनापन दीखे, ऊंचा होय, नाभि के पास बहुत ऊँचा होय, चारों ओर तना सा मालूम होय, पानी की पोटली भरी सी होय, जैसे पानी से भरी पखाल में जल हिलता है, उसी प्रकार हिले गुडगुड शब्द करे, कांपे, इसको जलोदर अर्थात् जलन्धर रोग कहते हैं। (६) विदा ही (वंश करीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदि (दध्यादि) अर्थात् स्रोत रोकनेवाले ऐसे अन्न निरन्तर सेवन करनेवाले मनुष्य के अत्यंत दुष्ट भया जो रुधिर और कफ (छिद्र) बढ़कर प्लीहा (तापतिल्ली) को बढ़ाते हैं, इस उदर को प्लीहोत्थ उदर कहते हैं वह बाईं तरफ बढ़ता है। इस

अवस्था में रोगी बहुत दुःख पाता है, देह में मन्द ज्वर होय, मंदाग्नि होय तथा कफपित्तोदर से लक्षण इसमें मिलते हों, बल क्षीण होय और अत्यंत पीला वर्ण हो जाय। (७) कांटा-धूल आदि अन्न के साथ मिलकर पेट में चला जाय अर्थात् पक्वाशय में विलोम (टेढ़ा तिरछा) चला जाय तब आंतो को काटे और सीधा जाय; तो नहीं काटे अथवा जम्भाई अति अशन करने से अर्थात् रोकने से आंत फट जाय। उन फटे आंतो से गलित पानी के समान स्राव गुदा के मार्ग होकर झरे, नाभि के नीचे का भाग बढे नोंचने की सी तथा भेद (चीरने) की सी पीडा से अत्यत व्यथित हो, इस क्षतोदर को ग्रन्थांतर में परिस्राव उदर कहते हैं और कही छिद्रोदर कहते हैं, ऐसा यह क्षतोदर है। (८) जिस पुरुष की आंत उपलेपी अर्थात् गाढ़े अन्न (शाकादिक) करके अथवा बाल तथा बारीक पत्थर के टुकड़े करके वद्ध हो जाय उस पुरुष का दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतड़ी की नली में होकर जैसें बुहारी से झारा तृण धूर आदि क्रम से बैठता है। उसी प्रकार यही बढ़ता है। और वह मल बड़े कष्ट से गुदा द्वारा थोड़ा थोड़ा निकलता है। जब मल का निकसना बन्द हो जाय तब मल दोषों करके गुदा से ऊपर आता है, इससे उदर बढ़ता है, अर्थात् हृदय और नाभि के मध्य अन्नपाक स्थान की वृद्धि हो इससे इस उदर को वृद्धगुदोदर कहते हैं, अथवा गुदा के ऊपर आंतो को बद्ध होने से बद्धगुद कहते हैं। ४०२ जो गुल्म कभी नाभि, कभी वस्ति, कभी पसवाड़े में चला जाय, तथा लंबा, कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय तथा उसमें कभी थोड़ी कभी बहुत पीड़ा होय, तोद मेद (सुई चुभाने की सी पीड़ा) होय, अथवा अनेक प्रकार की पीड़ा होय, मल की और अधोवायु की होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाड़े, कन्धा और मस्तक इनमें पीड़ा होय। गुल्मरोग के आठ भेद, जैसे–(१) जो गोली जीर्ण होने पर अधिक कोप करे और भोजन करने के पिछाड़ी नरम हो जाय, वह गोला वादी से प्रगट होता है। उसमें रूखा, कषैला, कडुआ, तीखा पदार्थ खाने से सुख नहीं होता। (२) ज्वर, प्यास और अङ्गों में ललाई, अन्न पचने के समय अत्यन्त शूल होय, पसीना आवे, जलन होय, फोड़ा के समान स्पर्श न सहा जाय, ये पित्तगुल्म के लक्षण हैं। (३) देह का गीलापना, शीतज्वर, शरीर की ग्लानि, सूखी रद्द (उवाकी) खांसी, अरुचि, शीत का लगना, थोड़ी पीड़ा होय, गुल्म (गोल) कठिन होय ऊँचा होय, ये सब कफात्मक गुल्म के लक्षण हैं। (४) जिस गुल्म में वात और पित्त इन दोनों दोषों के लक्षण मिलते हों उसको वातपित्त कां गुल्म जानना। (५) जिस गुल्म में पित्त और कफ इन दोनों दोषों के लक्षण मिलते हों उसको कफ पित्त का गुल्म जानना (७) भारी पीड़ा करनेवाला, दाह करके व्याप्त, पत्थर के समान कठिन तथा ऊँचा और शीघ्र दाह करके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला ऐसे त्रिदोषज (सन्निपात) गुल्म को असाध्य जानना (८) नई प्रसूता हुई स्त्री के अपथ्य सेवन करने से अथवा अपक्व गर्भपात होने से, अथवा ऋतुकाल के समय अपथ्य भोजन करने से वायु कुपित होकर उस स्त्री के रुधिर (जो ऋतु समय निकले) को लेकर गुल्म करता है वह गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होता है। यह गुल्म बहुत देर में गोल हिले, अथवा कहिये हाथ पैर के साथ नहीं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भ के समान सब लक्षण मिलें (अर्थात् मुख से पानी छूटे, मुख पीला पड़ जाय, स्तन का अग्रभाग काला हो जाय और दोहदादिलक्षण सब मिलें ये लक्षण व्याधि के प्रभाव से होते हैं।) यह रक्तजगुल्म स्त्रियों के होता है, दश महीना व्यतीत हो जाय तब इस रक्तगुल्म की चिकित्सा करनी चाहिये। ४०३ मूत्र के वेग रोकने से कुपित भये दोषों से वातकुण्डलिकादिक तेरह प्रकार के मूत्राघात रोग होते हैं। जैसे–(१) रूखे पदार्थ खाने से अथवा मल मूत्रादि वेगों के धारण करने से कुपित हुई जो वायु सो वस्ति (मूत्राशय) में प्राप्त हो पीड़ा करे और मूत्र से मिलकर मूत्र के वेग को विगुण (उलटा)

करके वहां आप कुण्डल के आकार (गोलाकार) मूत्राशय में बिचरे तब मनुष्य उस वात के पीडित हो मूत्र को बारम्बार थोड़ा थोड़ा पीडा के साथ त्यागता है। इस दारुण व्याधि को वातकुण्डलिका कहते हैं। (२) वस्ति और गुदा इनमें वह वायु अफरा करे तथा गुदा की वायु को रोककर चंचल और उन्नत (ऊंची) ऐसी अष्ठीला (पत्थर की पिण्डी के सदृश) को प्रकट करे, यह मूत्र के मार्ग को रोकनेवाली और भयंकर पीड़ा करनेवाली है। इसको वाताष्ठीला कहते हैं। (३) जो मनुष्य अड (जिद्द) से मूत्रबाधा को रोकता है उसके वस्ति (मूत्राशय) के मुख को वायु बन्द कर देता है तब उसका मूत्र बन्द हो जाय और वह वायु वस्ति में और कूख में पीड़ा करे। इस व्याधि को वातवस्ति कहते हैं, यह बड़े कष्ट से साध्य होंती है। (४) मूत्र को बहुत देर रोकने से पीछे वह जल्दी नहीं उतरे और मूतते समय धीरे धीरे उतरे, इस रोग को मूत्रातीत कहते हैं। (५) मूत्र के वेग को रोकने से मूत्रवेगधारणजनित और उदावत का कारणभूत ऐसा अपानवायु कुपित होने से पेट बहुत फूल जाय और नाभि के नीचे तीव्र वेदना संयुक्त अफरा करे, अधोवस्ति का रोध करनेवाला ऐसे इस रोग को मूत्रजठर कहते हैं। (६) रूखा अथवा श्रांत (थक गया) देह जिसका ऐसे पुरुष के वस्ति मूत्राशय में रहे जो पित्त और वायु सो मूत्र का क्षय करे, पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय कहते हैं। (७) प्रवृत्त भया मूत्र वस्ती में अथवा शिश्न (लिङ्ग) में अथवा शिश्न के अग्रभाग में अटक जाय और बल से मूत्र को करे भी तो वादी से वस्ति को फाड़कर जो मूत्र निकले वह मन्द मन्द थोड़ी पीड़ा के साथ अथवा पीडा रहित रुधिर सहित निकले ऐसी विगुण वायु से उत्पन्न हुई इस व्याधि को मूत्रोत्सर्ग कहते हैं। (८) वस्ति के मुख में गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरी के समान पीड़ा होय इस रोग को मूत्रग्रंथि कहते हैं। (९) मूत्रबाधा को रोक के जो पुरुष स्त्रीसङ्ग करे उसका वायु शुक्र को उड़ाय स्थान में भ्रष्ट करे, तब मूतने के पहिले अथवा मूतने के पीछे शुक्र गिरे और उसका वर्ण राख मिले पानी के समान होय, उसको मूत्रशुक्र कहते हैं। (१०) रूक्ष और दुर्बल पुरुष के शकृत् (मल) जब वायु करके उदावर्त को प्राप्त हो तब वह मल मूत्र के मार्ग में आवे, उस समय मनुष्य मूतने लगे तो बड़े कष्ट से मूते और उसके मूत्र में विष्ठाकीसी दुर्गंध आवे, उसको विड्घात कहते हैं। (११) पित्त अथवा कफ वा दोनों वायु करके बिगड़े हुए होंय तब मनुष्य पीला, लाल, सफेद, गाढ़ा ऐसा कष्ट से मूते और मूतने के समय दाह होय, जब वह मूत्र पृथ्वी में सूख जाय तब गोरोचन, शंख का चूर्ण ऐसा वर्ण होय, अथवा सर्व्व वर्ण का होय इस रोग को मूत्रसाद कहते हैं। (१२) व्यायाम, दंड, कसरत, अतिमार्ग का चलना और धूप में डोलना इन कारणों से कुपित भया जो पित्त सो बस्ति में प्राप्त होय वायु से मिल वस्ति में अंडकोश और गुदा इनमें दाह करे और हल्दी के समान अथवा कुछ रक्त से युक्त वा लाल ऐसा मूत्र बारम्बार कष्ट से होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं। (१३) जल्दी जल्दी चलने से, लंघन करने से, परिश्रम से, लकड़ी आदि की चोट लगने से, पीडा से, वस्ति अपने स्थान को छोड़ ऊपर जाय, मोटी होकर गर्भ के समान कठिन रहे, उससे शूल, कम्प और दाह ये होय, मूत की एक एक बून्द गिरे, यदि वस्ति जोर से पीडित होय तो बड़ी धार पड़े, वस्ति में सूजन होय, पेट में पीड़ा होय, इस रोग को वस्तिकुंडलिका कहते हैं। ४०४ वात के मूत्रकृच्छ्र वंक्षण (जांध और ऊरु इनकी संधि) मूत्राशय और इन्द्रिय में पीड़ा होय और मूत्र बारंबार थोड़ा २ उतरे। ४०५ पत्तिक मूत्रकृच्छ्र में पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त अग्नि के समान, बारंबार कष्ट से उतरे। ४०६ कफ के मूत्रकृच्छ्र से लिंग और मूत्राशय मार्ग में पीड़ा तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय। ४०७ सन्निपात के मूत्रकृच्छ्र में सर्व लक्षण होते हैं यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है। ४०८

दोषों के योग में शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्ग में गमन करे, तब उस मनुष्य के मूत्राशय और लिंग इनमें शूल होय और मूतते समय मूत्र के सङ्ग वीर्य पतन होय। ४०९ मल (विष्ठा) के अवरोध होने से वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्रनाश करे तब मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय। ४१० मूत्र बहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि से) बिंध जाय अथवा पीडित होय तो उस घात से भयंकर मूत्रकृच्छ्र होता है, इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्र के समान कहते हैं। ४११ पथरी के निदान से जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरी का मूत्रकृच्छ्र कहते हैं। ४१२ वायु की पथरी से रोगी अत्यन्त पीडा करके व्याप्त होय, दांतों को चबावे, कांपे, लिंग को हाथ से रगडे, नाभि को रगड़े और रात दिन दुःख से रोवे और मूत्र आने के समय पीड़ा होने के कारण अघोवायु का परित्याग करे, मूत्र बारंबार टपक टपक के गिरे, उसकी पथरी का रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होंय। ४१३ पित्त की पथरी से रोगी के वस्ति के दाह होय और खारसे जैसा दाह होय ऐसी वेदना होय, वस्ति के ऊपर हाथ धरने से गरम मालूम होय और भिलावें की मींगी के समान होय, लाल, पीली, काली होय। ४१४ कफ की पथरी से वस्ति में नोचने की सी पीड़ा होय, शीतलपन होय और पथरी बड़ी मुर्गी के अण्डे के समान, स्वच्छ और मद्य (दारू) के रंग की सी अर्थात् कुछ पीलीसी होय। यह कफ की पथरी बहुधा बालकों के होती है। ४१५ शुक्राश्मरी (शुक्र) वीर्य के रोकने से होती है। यह पथरी बड़े मनुष्यों के ही होती है। मैथुन करने के समय अपने स्थान से वीर्य चलायमान हो गया हो उस समय मैथुन न करे तब शुक्र (वीर्य) बाहर नहीं निकले भीतर ही रहे, तब वायु उस शुक्र को उठाकर सुखा देता है उसी को शुक्रजा अश्मरी कहते हैं। इस करके अंडकोषों में सूजन, बली में पीड़ा और मूत्रकृच्छ्रता होती है। इस शुक्राश्मरीकी आदि में लिंग और अंडकोष, पेडू इनमें पीड़ा होती है, वीर्य के नाश होने के कारण पथरी की नाई शर्करा उत्पन्न होती है। ४१६ इक्षुप्रमेह ईख के रस के समान अत्यन्त मीठा मूत्र होय। ४१७ सुराप्रमेह से दारू के समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढ़ा मूते। ४१८ पिष्टप्रमेह से पिसे चावलों के पानी के समान सफेद और बहुतसा मूते तथा मूतते समय रोमांच हों। ४१९ सांद्रप्रमेह से रात्रि में पात्र में धरने से जैसा मूत्र होवे ऐसा मूत्र होय। ४२० शुक्रप्रमेह से शुक्र (वीर्य) के समान अथवा शुक्र मिला होय। ४२१ उदक प्रमेह करके स्वच्छ, बहुत सफेद, शीतल, बन्धरहित, पानी के समान कुछ गाढ़ा और चिकना मूत्र होता है। ४२२ लालाप्रमेह के लार के समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होता है। ४२३ शीतल प्रमेह से मधुर तथा अत्यन्त प्रमेह तथा अत्यन्त शीतल ऐसा बारंबार बहुत मूते। ४२४ सिकताप्रमेह से मूत्र के कण और बालू रेत के समान मल के रवा गिरें। ४२५ शनैर्मेह से धीरे धीरे और मन्द मन्द मूते। ४२६ मञ्जिष्ठप्रमेह से आम दुर्गंध और मँजीठ के समान मूते। ४२७ हारिद्रप्रमेह से तीक्ष्ण, हल्दी के समान और दाहयुक्त मूते। ४२८ नीलप्रमेह से नीले रंग का अर्थात् पपैया पक्षी के पंख से सदृश मूते। ४२९ रक्तप्रमेह से दुर्गन्धयुक्त गरम खारी और रुधिर के समान लाल मूत्र करै। ४३० कृष्ण (काले) प्रमेह से स्याही के समान काला मूते। ४३१ क्षारप्रमेह से खारी जल के समान गन्ध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है। ४३२ हस्तिप्रमेह से मस्तहाथी के समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहर के मूते। ४३३ वसाप्रमेह से वसा (चर्वी) युक्त अथवा वसा के समान मूते। ४३४ मज्जा प्रमेह से मज्जा के समान अथवा मज्जा मिला बारंबार मूते। ४३५ मधुप्रमेह से कषैला, मीठा और चिकना ऐसा मूते। ४३६ शराविका पिटिका ऊपर के भाग में ऊँची और मध्य में बैठीसी होय, जैसे कि मिट्टी का शराब होता है। ४३७ कच्छपिका पिटिका कछुआ की पीठ के समान कुछ दाहयुक्त होय है। ४३८ पुत्रिणी पिटिका

यह बीच में बड़ी फुन्सी होय उसके चारो और छोटी छोटी फुन्सियां और होयँ उसको पुत्रिणी कहते हैं। ४३९ विनता फुन्सी पीठ में अथवा पेट में होती है। इसकी पीड़ा बहुत होय, ठंडी होय तथा बड़ी और नीले रंग की होती है। ४४० अलजी पिटिका लाल, काली, बारीक फोड़ों करके व्याप्त और भयंकर होती है। ४४१ मसूरिका पिटिका मसूर कीदाल के समान बड़ी होती है। ४४२ सर्षपिका पिटिका सरसों के समान बड़ी होती है। ४४३ जालिनी पिटिका तीव्र दाहकरके संयुक्त और मांस के जाल से व्याप्त होती है। ४४४ विदारिका पिटिका विदारीकन्द के समान गोल और करड़ी होती है। ४४५ विद्रधिका पिटिका विद्रधि के लक्षण करके युक्त होती है। ४४६ वादी से सूजन चंचल, त्वंचा पतली हो जाय। कठोर हो, लाल काली तथा त्वचा शून्य पड़ जाय। भिन्न भिन्न वेदना होय, अथवा रोमांच और पीड़ा हो। कदाचित् निमित्त के बिना शान्त हो जाय, उस सूजन के दाबने से तत्क्षण ऊपर को उठ आवे, दिन में जोर बहुत करे। ४४७ पित्त की सूजन नरम नरम कुछ दुर्गन्ध युक्त काली पीली और लाल होय। ४४८ कफ की सूजन भारी स्थिर और पीली होती है। इसके योग से अन्नद्वेष, लार का गिरना, निद्रा, वमन, मंदाग्नि ये लक्षण होंय, तथा इस सूजन की उत्पत्ति और नाश बहुत काल में होय। इसको दबाने से ऊपर को नहीं उठे, रात्रि में इसकी प्रबलता होती है। ४४९ वात, पित्त, इन दोनों के लक्षण जब सूजन हों उसको वातपित्त की सूजन जानना। ४५० पित्त और कफ इनके लक्षंण जिस सूजन में मिलते हों उसको पित्तकफ की सूजन जानना। ४५१ कफ और वात इन दोनों के लक्षण जिस सूजन में मिलें उसको कफ और वात की सूजन जानना। ४५२ सन्निपात के सूजन में वात पित्त और कफ इन तीनों के भी लक्षण होते हैं। ४५३ अभिघातसूजन, काष्ठादिक की चोट लगने से शस्त्रादि के छेदन होने से पत्थर आदि से टूटने से, अथवा घाव के होने से, लकड़ी आदि के प्रहार से, शीतल पवन लगने से, समुद्र की पवन लगने से, भिलावे का तेल लग जाने से और कौंच की फूली का स्पर्श होने से जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय। उसमें अत्यंत दाह होय, उसका रंग लाल होय और विशेष करके इसमें पित्त के लक्षण होते हैं। ४५४ विषवाले प्राणियों के अंग पर चलने से अथवा मूतने से, अथवा निर्विष (विषरहितमनुष्यादिक) प्राणी के दाढ़, दांत, नख लगने से, अथवा सविष प्राणियों के विष्ठा, मूत्र, शुक्र इनसे भरा, अथवा मलीन वस्त्र अंग में लगने से, अथवा विषवृक्ष की हवा के लगने से, अथवा संयोगविष अग में लगने से जो सूजन उत्पन्न होय, सो विषज कहलाती है। वह सूजन नरम, चञ्चल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जल्दी प्रगट होनेवाली दाह और पीड़ा करनेवाली होती है। ४५५ वात से भरी मसक जैसी हाथ के लगने से मालूम होय रूक्ष और बिना कारण दुखने लगे उसे वात की अंडवृद्धि जानना। ४५६ जिसमें पित्त के लक्षण मिलते हों उस अंडवृद्धि को पित्त की अंडवृद्धि जानना। इससे अंड पके गूलर के समान होता है। तथा दाह, गरमी और पाक होता है। ४५७-४५८ कफ की अंडवृद्धि में अंड शीतल, भारी, चिकना, तथा (खुजलीयुक्त) कठिन और थोड़ी पीड़ा युक्त होता है। काले फोडों से व्याप्त तथा जिसमें पित्तवृद्धि के लक्षण मिलते हों। उस अंडवृद्धि को रक्तज अंडवृद्धि कहते हैं। ४५९ मेद से जो अंडवृद्दि होती है वह कफ की वृद्धि के समान मृदु, नरम तथा तालकल के सगान अर्थात् पीले रंग की होय। ४६० मूत्र को रोकने का जिसको अभ्यास होय उसको मूत्रवृद्धि रोग होय है, वह पुरुष जब चले तो पानी से भरे पखाल के समान डबकडबक हिले तथा बजे और उसमें पीड़ा थोड़ी हो। हाथ के छूने से नरम होय, उसमें मूत्रकृच्छ्र की सी पीडा होय. फल और कोश दोनों इधर उधर चलायमान होय। ४६१ वातकोपकारक आहार के सेवन से, शीतल जल में प्रवेश करने स्नान करने से उपस्थित मूत्रादिक के वेगों के धारण करने से अप्राप्तवेग

(अर्थात् करने की इच्छा न होय उसको बलपूर्वक करने से) भारी बोझ के उठाने से, अतिमार्ग के चलने से, अंगों की विषम चेष्टा (अर्थात् टेढ़ा तिरछा अंग करके गमनादि करना) बलवान् से वैर करना, कठिन धनुष का ऐंचना इत्यादि ऐसे ही और कारणों से कुपित भई जो वायु सो छोटी आंतो कें अवयवों के एक देश को बिगाड़कर अर्थात् उनका संकोच कर अपने रहने के स्थान से उसको नीचे ले जाय तब वक्षण संधि में स्थित होकर उस स्थान में गांठ के समान सूजन को प्रगट करे उसकी उपेक्षा करने से (अर्थात् औषध न करने से) तथा अंडकोशों के दाबने से जो वायु (कों को) शब्द करे, तथा हाथ के दाबने से वायु ऊपर को चढ़ जाय और छोड़ने से फिर नीचे उतरकर अंडों को फुलाय दे यह रोग अंत्रवृद्धि कहलाता है। ४६२ मेद और कफ से प्रगट भया कूख, कंधा, नाड़ के पिछाड़ी मन्या नाड़ी में, गले में वंक्षण (जानुमेढसंधि) इन ठिकानों में छोटे बेर के बराबर, बड़े बेर के समान, आमले के समान, ऐसी अनेक प्रकार की गंड होती है, वे बहुत दिनों में हौले हौले पकें, उनको गंडमाला कहते हैं। ४६३ मन्या नाड़ी, ठोडी इन ठिकाने पर अंड के बराबर ग्रन्थिरूप सूजन लंबायमान होती है और वह सूजन बड़ी छोटी भी रहती है। उसको गंड अथवा गलगंड कहते हैं, वह गलगंड रोग गले में जो होता है सो वायु और इनके दुष्ट होने से होता है और मन्यानाड़ी में जो होता है वह मेद के दुष्ट होने से होता है। ४६४ गंडमाला की गाठ पके नहीं, अथवा पाक ४६५ वादी की गांठ तने के समान करडी मालूम हो, छोलने के समान मालूम हो, सुई चुभने की सी पीड़ा होय, मानो गिरा चाहती है, मथने की सी पीड़ा होय, फोरने की सी पीड़ा होय, काला वर्ण हो, वस्ति के समान चौड़ी होय और फुटने से स्वच्छ रुधिर निकले, ४६६ पित्त की गांठ आग से भरे के समान अत्यन्त दाह करे, आतों से धुंआ निकलता सा मालूम हो, मानों सिंगी लगाय के कोई चूसै है, खार लगाने से सदृश पका मालूम हो, अग्नि के समान जलती सी मालूम हो, उस गांठ का रंग लाल अथवा पीला होय और फूटन से उसमें से दुष्ट रुधिर बहुत निकले। ४६७ कफ की ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण (किंचित् विवर्ण) थोड़ी पीड़ा हो, अत्यंत खुजली चला, पत्थर के समान कठिन, बड़ी होय और चिरकाल में बढ़नेवाली होय, फटने से सफेद गाढ़ी राध निकले, ४६८ रक्त दुष्ट होकर उससे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको रक्तग्रंथि कहते हैं इसके लक्षण पित्तग्रंथि के सदृश जानना। ४६९ निर्बल पुरुष शरीर का परिश्रमकारक कर्म करे तब वायु कुपित होकर शिर के जाल को संकुचित कर एकत्र कर और सुखायकर ऊँची गांठ शीघ्र प्रगट करती है। ४७० मद की ग्रंथि शरीर को बढ़ने से बढ़े और शरीर के क्षीण होने से क्षीण हो जाय, चिकनी बड़ी खुजलीयुक्त पीड़ारहित होय और जब वह फूट जाय तब उसमें से तिलकल्क के समान अथवा घृत के समान मेदा निकले। ४७१ श्वेतादिकों करके व्रण होकर उसमें जो ग्रंत्रथ उत्पन्न होती है उसको व्रणग्रन्थि कहते हैं। ४७२ वातादिक दोष कुपित होकर हड्डियों को दूषित करें तिनसे जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अस्थिग्रंथि कहते हैं। ४७३ मांस के दुष्ट होने पर उसमें जो ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको मांसग्रंथि कहते हैं और व्रणग्रंथि तथा अस्थिग्रंथियों से जिस दोष का कोप हो उसी से लक्षण से जान लेना। ४७४ शरीर के किसी भाग में दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिर को दुष्ट कर गोल, स्थिर, मंदपीड़ायुक्त पूर्वोक्त ग्रंथियों से बड़ी बड़ी जिसकी जड़ होय, बहुतकाल में बढ़नेवाली तथा पकनेवाली, ऐसी मांस की गांठ उठे तो उसको वैद्य अर्बुद कहते हैं। ४७५ इन वातादि तीन दोषों के अर्बुदों के लक्षण सर्वदा ग्रंथि के समान होते हैं। ४७६ दुष्ट भये जो दोष सो नसों में रहा जो रुधिर उसको संकोच कर तथा पीड़ित कर मांस के गोले को प्रकट करे। वह यत्किञ्चित् पकनेवाला तथा कुछ स्रावयुक्त हो और मांसाकुर से व्याप्त और शीघ्र बढ़नेवाला ऐसा

होता है, उसमें से रुधिर बहा करे, यह रक्तार्बुद असाध्य है। वह रक्तार्बुदपीड़ित रोगी रक्तक्षय के उपद्रवों करके पीड़िता होता है। इससे उसका वर्ण पीला हो जाता है। ये रक्तार्बुद के लक्षण हैं। ४७७ मुक्का आदि के लगने से अंग में पीड़ा होय, उस पीड़ां से दुष्ट भया जो मांस सो सूजन उत्पन्न करे, उस सूजन में पीड़ा नहीं होय और वह चिकनी देह के वर्ण होय, पके नहीं, पत्थर के समान कठिन हिले नहीं, ऐसी होती है, जिस मनुष्य का मांस बिगड़ जाय अथवा जो नित्य मांस को खाया करे, उसके यह अर्बुद रोग होता है। यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है। कोई मांसार्बुद का भेद सोरली कहते हैं। ४७८ जो सूजन प्रथम वंक्षण (जांघ की संधि) में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरों में आवे और उसके साथ ज्वर भी होय तो इस रोग को श्लीपद कहते हैं। यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न,.होठ, इनमें भी होती है, ऐसा किसी का मत है, ४७९ वात की श्लीपद काली, रूखी, फटी और जिसमें पीड़ा होय, बिना कारण के दूखे और उसमें ज्वर बहुत होय। ४८० पित्त की श्लीपद पीले रंग की दाह और ज्वरयुक्त होय तथा नरम होय, ४८१ कफ की श्लीपद का वर्ण चिकना, सफेद, पीला, भारी और कठिन होता है। ४८२ अत्यंत बढ़े तथा अस्थि (हड्डी) का आश्रय करके रहनेवाले वातादिदोष त्वचा, रुधिर, मांस और मेद इनको दुष्ट कर धीरे में भयंकर शोथ उत्पन्न करे, उसकी जड़ हड्डी पर्यतं पहुँच जाय। उत्पत्तिकाल में अत्यंत पीड़ाकारक तथा गोल अथवा लम्बा जो शोथ (सूजन) होय उसको विद्रधि कहते हैं। ४८३ जो विद्रधि काली, लाल, विषम कहिये-कदाचित् छोटी-मोटी- हो, अत्यन्त वेदना युकत और उसका प्रगट होना तथा कदाचित् पाक नाना प्रकार का होय उसको वातविद्रधि कहते हैं। ४८४ पित्त की विद्रधि पके गूलर के समान होय अथवा काला वर्ण होय, ज्वर दाह करनेवाली होय उसका प्रगट और पाक शीघ्र होय, ४८५ कफ की विद्रधि मिट्टी के शरावसदृश बड़ी होय, पीला वर्ण, शीतल, चिकनी, अल्प पीड़ा होय उसकी उत्पत्ति और पाक देह में होता है। ४८६ काले फोड़ों से व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीड़ा और ज्वर ये उसमें तीव्र होंय तथा पित्त की विद्रधि के लक्षणकरके युक्त होय, उसको रक्तविद्रधि जानना। ४८७ लकड़ी, पत्थर, ढेला, अभिघात (चोट लगना पिच जाना इत्यादि) होने से, अथवा तलवार, तीर, बरछी इत्यादि के लगने से, घाव हो जाने से, अपथ्य करनेवाले, पुरुष के कुपित वायु करके विस्तृत (फैली) क्षतोष्मा (घाव की गरमी) और रुधिरसहित पित्त को कोप कर उस पुरुष के ज्वर, प्यास और दाह होय और उसमें पित्त की विद्रधि के लक्षण मिलते हों तो इसको क्षतजविद्रधि जानना। इसको ही आगन्तुज विद्रधि कहते हैं। ४८८ सन्निपातज विद्रधि में अनेक प्रकार की पीड़ा जैसे तोद, दाह, खुजली आदि (तथा अनेक प्रकार का स्राव) जैसे पतला, पीला, सफेद स्राव होय, घंटाल कहिये, नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचा होय, घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय और ऊपर पतरी हो अर्थात् अग्रभाग अति ऊँचा होय, छोटी, बड़ी कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके, ऐसी होय। ४८९ अनेक प्रकार की धारवाले तथा मुखवाले शस्त्रों के अनेक ठिकाने पर लगने से अनेक प्रकार की आकृतिवाले व्रण होते हैं उनको आगन्तुक व्रण कहते हैं। ४९० वात, पित्त, कफ, ये दोष दुष्ट होकर उनसे व्रण होते हैं उनको देहज व्रण कहते हैं। ४९१ जो व्रण जीभ के नीचे भाग के समान अत्यन्त नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोड़ी, पीड़ायुक्त भले प्रकार का होय, दोष रक्तादि स्रावरहित होय उसको शुद्धव्रण जानना, ४९२ जिसमें से दुर्गन्धयुक्त राध और सड़ा भया रुधिर बहे, जो ऊपर ऊँचा तथा भीतर से पोला हो, बहुत दिन रहनेवाला होय उसको दुष्टव्रण कहते हैं। वह शुद्धलिंग के विपरीत होता है। ४९३ वादी से प्रगट व्रण में जकड़ना, तथा हाथ के छूने से कठिन मालूम होय, उनमें से थोड़ा स्राव होय तथा पीड़ा

बहुत होय, सुई के चुभाने की सी पीड़ा होय और उसका रंग काला होय। ४९४ प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सड़ना, चिरासा होय, बास आवे, स्राव हो ये पित्तव्रण के लक्षण हैं। ४९५ कफ का स्राव अत्यंत गाढ़ा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्दपीड़ा, स्रवने और बहुत काल में पके। ४९६ जो रक्त के कोप से होय वह रक्तव्रण। उमसें से रुधिर स्रवे। ४९७ वात और पित्त इसके लक्षण जिस व्रण में होय उसे वातपित्तव्रण जानना। ४९८ वायु और कफ के लक्षण जिस व्रण में हो उसे वातकफजव्रण जानना। इसी प्रकार से पित्तकफव्रण संनिपातव्रण और वातरक्तव्रण जानने। ४९९ अनेक प्रकार की धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकाने पर लगने से अनेक प्रकार की आकृतिवाले व्रण होते हैं, उनको आगन्तुक व्रण कहते हैं। वे आठ प्रकार के होते हैं, जैसे (१) जिस व्रण के भीतर कतरनी के सदृश पीड़ा होय, उसको अवक्लृप्त व्रण कहते हैं। (२) जिस व्रण का मांस लटकता है उसको विलंबित कहते हैं। (३) जो व्रण तिरछा, सरल (सीधा) अथवा लम्बा होय, उसको छिन्नव्रण कहते हैं (४) बर्छी, भाल, बाण, तलवार के अग्रभाग, विषाण (दांत सींग) इनके आशय (कोष्ठ) को वेधकर थोड़ा सा रुधिर स्रवे (निकले) उसको भिन्नव्रण कहते हैं। (५) जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदि की चोट अथवा दबना किंवार आदि इनके योग से पिच जाय तथा मज्जा, रुधिर करके युक्त होय (घाव न हो) उनको प्रचलित व्रण कहते हैं। इसको कोई पिच्चित व्रण भी कहते हैं। (६) कठिन वस्त्र आदि के घर्षण (घिसने) से, चोट के लगने से जिस अंग के ऊपर की त्वचा जाती रहे तथा आग के समान गरम रुधिर चुवाये उसको घृष्टव्रण कहते हैं। (७) बारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्र से आशय बिना जो अंग है उनमें वेध होने से तुण्डित (कहिये उनमें से वह शस्त्र न निकला होय) निर्गत (कहिये शस्त्र निकल गया) हो उसको विद्धव्रण कहते हैं (८) जिसमें अंग अतिछिन्न तथा अतिभिन्न न भया हो और छिन्नभिन्न इन दोनों के लक्षण जिसमें मिलते हों, तथा व्रण तिरछा बांका होय, उसको निपातितव्रण कहते हैं, इसको क्षतव्रण भी कहते हैं। ५०० शस्त्रादिकों करके पेट की आंत टूट गई हो और शस्त्र और आंत ये दोनों भी पेट के भीतर हों उसको छिन्नान्त्रक कहते हैं, ५०१ शस्त्रादिकों करके पेट की आंत टूट के बाहर निकल आई हो, उसको निःसृतान्त्रक कहते हैं। ५०२ संधियों के दोनों तरफ हड्डियों के परस्पर घिसने से सूजन होती है और रात्रि में पीड़ा बहुत होय उसको भग्नपृष्ठ कहते हैं। कोई उसको उत्पिष्ट भी कहते हैं। ५०३ विश्लिष्ट संधियों के दोनों तरफ की हड्डियां टूटके उनमें बहुत पीड़ा होय, उसको विवारित कहते हैं। ५०४ विवर्तित सन्धियों में दोनों तरफ से हाड संधि से पलट जाय, तब अत्यंत पीड़ा होय, इस संधि में हाड़ दोनों तरफ फिरा करे। ५०५ विश्लिष्ट संधि में सूजन और रात्रि में पीड़ा होकर सर्वकाल में अत्यंत पीड़ा होय। संधि शिथिलमात्र होय, इसमें हाड के हटने से बीच में गढ़ेला हो ज़ाय। ५०६ हड्डी के तिरछे हटने से पीड़ा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोड़कर टेढ़ी हो जाय। ५०७ संधि की हड्डी एक नीचे को हटने से जो पीड़ा होय और संधि की विरुद्ध चेष्टा होय इसमें संधि के हाड परस्पर दूर होंय नीचे को गमन करें। ५०८ संधि के ऊपर का हाड रुधिर से बाहर हो जाय, उसमें पीड़ा होय, उसको ऊर्ध्वग कहते हैं। ५०९ संधि की हड्डी चूर्ण हो जावे, अथवा टूट के दो टुकड़े हों, उसको संधिभंग कहते हैं। ५१० अग्नि करके अंग दग्ध होने से जो अंग का वर्ण पलट जाय उसको प्लुष्ट कहते हैं। ५११ अग्नि से दग्ध होकर रक्त, मांस, शिरा, स्नायु, संधि और हड्डी दीखने लगें और ज्वर, दाह, प्यास, मूर्च्छा इन करके व्याप्त हो उसको अतिदग्ध कहते हैं। ५१२ अग्नि से दग्ध होने से बहुत पीड़ा होय, अंग में फोड़े हों और वे फोड़े जल्दी अच्छे न हों उसको दुर्दग्ध कहते हैं। ५१३ अग्नि से जो अंग दग्ध होय और ताड़

वृक्ष के समान अंग काला हो, उसको सम्यग्दग्ध कहते हैं। ५१४ जो मनुष्य पके हुए फोड़े को कच्चा समझकर उपेक्षा करे किंवा बहुत राध पड़े फोड़ों की उपेक्षा कर दे तब वह बढ़ी हुई राध पूर्वोक्त त्वङ्मांसादिक स्थान में जाकर उनको भेदकर बहुत भीतर पहुँच जाय, तब एक मार्गकर उसमें वह राध नाड़ी के समान बहे, इसी से इसको नाड़ीव्रण (नासूर) कहते हैं। ५१५ बादी से नाड़ीव्रण का मुख रूखा तथा छोटा होय और शूल होय, इसमें से फेनयुक्त स्राव होय, रात्रि में अधिक स्राव होय, ५१६ पित्त के नाड़ीव्रण में प्यास, ज्वर और दाह होय। उसमें से पीले रंग का और बहुत गरम राध स्रवे और दिन में स्राव अधिक होय। ५१७ कफज नाड़ीव्रण में सफेद, गाढ़ी, चिकनी, राध निकले, खुजली चले, रात में स्राव बहुत होय। ५१८ जिस नाड़ीव्र में दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुख का सूखना और तीनों दोषों के लक्षण होय उसको त्रिदोषकोपजन्य नाड़ीव्रण जानना। इसे भयंकर प्राणनाश करनेवाली कालरात्रि के समान जानना। ५१९ किसी प्रकार के शल्य (कंटकादिक) रक्त मांस राध आदिक स्थान में पहुँचकर टूट जाय तो नाड़ीव्रण को उत्पन्न करे। उस नाड़ीव्रण में झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथे के समान गरम नित्य राध बहे तथा पीड़ा होय। ५२० गुदा के समीप दो अंगुल ऊंची पिछाड़ी एक पिटिका (फुन्सी) होय उसमें बहुत पीड़ा होय और वह पिटिका फूट जाय उसको भगन्दर रोग कहते हैं। यदाह–भोजः–"भंग परिसमन्ताच्च गुदवस्ति तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्माज्ज्ञेयो भगन्दरः" इति । ५२१ कषैले और रूखे पदार्थ खाने से वायु अत्यन्त कुपित होकर गुदास्थान जो पिटिका (फुन्सी) करे, उनकी उपेक्षा करने से वे फुन्सी पकें और फूट जायँ तब पीड़ा होय उनमें से लाल झाग मिली राध बहे तथा अनेक छिद्र हो जायँ। उन छिद्रों में होकर मूत्र मल और शुक्र (रेत) बहे चालनी के से अनेक छिद्र होंय, इसी कारण रोगों का शतपोनक कहते हैं, शतपोनक नाम संस्कृत में चालनी का है। ५२२ पित्तकारक पदार्थ खाने से कुपित भया जो पित्त से गुदा में लाल रङ्ग की पिटिका उत्पन्न करे वह शीघ्र पक जाय और उनमें से गरम राध बहे। पिटिका (फुन्सीयां) ऊंट की नाड़ के समान होंय इसी से इनको उष्ट्रग्रीव कहते हैं। ५२३ कफ से प्रगट भये भगन्दर में खुजली चले, तथा उनमें से गाढ़ी राध बहे वह पिटिका कठिन होय उसमें पीड़ा थोड़ी होय और उसका वर्ण सफेद होय, उसको परिस्रावी भगन्दर कहते हैं। ५२४ जो भगन्दर वात और कफ के लक्षणों करके युक्त होय और सीधा बहता हो उसको ऋजुभगन्दर कहते हैं। ५२५ जो भगन्दर वात और पित्त के लक्षणों करके युक्त हो उसको परिक्षेपी भगन्दर कहते हैं। ५२६ जो कफ पित्त के लक्षणों करके युक्त हो उसको अर्शोज भगन्दर कहते हैं। ५२७ गुदा में कांटे आदि के लगने से क्षत (घाव) हो और उस घाव की उपेक्षा करने से उसमें कृमि पड़ जायँ वे कृमि उस क्षत को विदारण करें ऐसे जो घाव बढ़कर गुदापर्यत पहुँचे तथा कृमि उसमें अनेक मुख कर लेवें उसको उन्मार्गी भगन्दर कहते हैं। ५२८ जिसमें गौ के थकने समान अनेक पिटिका होंय, उनका रङ्ग पीला और स्राव अनेक प्रकार के होंय और व्रण शंक के आटे के समान गोल होंय, उसको शंखावर्त, अथवा शम्बुकावर्त भी कहते हैं। ५२९ लिङ्गेंद्रिय ऊपर काले फोड़े उठें, उनमें तोड़ने की सी पीड़ा होय और स्फुरण हों, ये लक्षण वातोपदंश के जानने। ५३० पित्त के उपदंश करके पीले रङ्ग के फोड़े होते हैं। उनमें से पानी बहुत बहे दाह होय। ५३१ कफ के उपदंश करके सफेद मोटा फोड़ा होय उसमें खुजली चलें, सूजन होय और गाढ़ी राध बहे। ५३२ जिस उपदंश में अनेक प्रकार का स्राव और पीड़ा होय यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है। ५३३ रुधिर के उपदंश से मांस के समान लाल रंग के फोड़े होंय। ५३४ जो मन्द बुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्त क्रम के बिना लिङ्ग को मोटा किया चाहे तो विषकृमि का लिङ्ग के ऊपर लेपादिक करे,

अथवा जलयोग वात्सायन ऋषि के कहे उनका साधन करे, उसमे लिङ्ग पर शूकरोग होता है। शूक नाम जल के मल से उत्पन्न जलजन्तु का है, उसके सदृश यह रोग होने से इसका भी नाम शूक कहा है। ५३५ लिंगार्श शूक रोग में अर्श के लक्षण जानना। ५३६ निरन्तर शूक लेप करने से लिंगेन्द्रिय के ऊपर गांठ पैदा होय उसको ग्रंथित कहते हैं। ५३७ निवृत्त रोग में कफ का सम्बन्ध ज्यादा रहता है। ५३८ कफ रक्त से लिंगेन्द्रिय के बाह्य प्रदेश में लंबी लंबी पिटिका होती है और वह पिटिका फूट फूट भीतर फैलती हैं उसको अवमन्थ रोग कहते हैं। ५३९ वायु के कोप से लिंग में फुन्सी होय, उससे लिंग को पीड़ा होय, लिंग जोर से ठाढ़ा हो आवे, इसको मृदित कहते हैं। ५४० जिस पुरुष के लिंग में बारीक छिद्र हो जायँ वह व्याधि वातशोणित से प्रगट होती है, इसको शतपोनक कहते हैं। ५४१ शूकों से लेप से वायु कुपित होकर करडी निहाई के समान पीड़िका होय और कोई छोटी कोई बड़ी टेढ़े ऐसे मांसांकुरों से व्याप्त होय इनको अष्ठीलिका कहते हैं। ५४२ दुष्ट जलजन्तु का दुष्टरीति से लेप करने से कफवात कुपित होकर सफेद सरसों के समान जो फुन्सी होय इसको सर्षपिका कहते हैं। ५४३ वातपित्त से लिंग की त्वचा पक जाय उसको त्वक्पाक कहते हैं। इसमें ज्वर और दाह होता है। ५४४ अवपीड़िका शूकरोग में लिंग फटा सा मालूम होय। ५४५ जिसकी इन्द्रिय का मांस गल जाय और अनेक प्रकार की पीड़ा हो इस व्याधि को मांसपाक कहते हैं। यह व्याधि त्रिदोषज है। ५४६ शूक का लेप करने से रुधिर दूषित होकर त्वचा के स्पर्शज्ञान को नष्ट करे। ५४७ निरुद्धमणि शूकरोग में लिंग की मणि के चेतना जाती रहती है। ५४८ मांस दुष्ट होने से मांसार्बुद प्रगट होता है। ५४९ पित्त रक्त से उत्पन्न भई पिटिका उसके चारों तरफ अनेक छोटी छोटी फुन्सियां होयँ और कमल की भीतर की केसर के समान सब फुन्सी होयँ उसको पुष्करी का कहते हैं। ५५० लेप करने से अनंतर जब लिंग में खुजली चले तब उसको दोनों हाथों से खूब खुजाने से एक मूढ़ (बिना मुख की) पिटिका होय, उसको संमूढ़पिटिका कहते हैं। ५५१ यह पिटिका प्रमेहपिटिका में जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उसके समान लाल काले फोड़ों से व्याप्त होय, तथा उसके लक्षण उस अलजी के समान होते हैं। ५५२ जिस पुरुष के लिङ्गेंद्रिय के ऊपर काले, लाल फोड़े उत्पन्न हों, उसको रक्तार्बुद कहते हैं। ५५३ विद्रधि के लक्षण में जो सन्निपातविद्रधि के लक्षण कहे हैं। वे ही यहां विद्रधि शूक के लक्षण जानने। ५५४ रक्तपित्त से जामुन की गुठली के समान काले रंग की पिटिका होय, उसको कुंभिका कहते हैं। ५५५ काले अथवा चित्र विचित्र रंग के विष शूकों के लेप करने से तत्काल सर्वलिंग पक जाय तथा सब मांस तिल के समान काला होकर गल जाय। इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधि को तिलककालक कहते हैं। ५५६ निरुद्ध प्रकाशं और परिवर्तित इनके लक्षण ग्रंथांतर में निदानस्थान में क्षुद्ररोगों में लिखे हैं। उनके समान शिश्न में रोग होते हैं, ऐसा जानना। ५५७ विरोध कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपान के सेवन करने से, रद्द के वेग को रोकने से और मलमूत्रादिवेगों के रोकने से, भोजन करके अत्यन्त व्यायाम (दंड कसरत) अथवा अतिसंताप करने से, सूर्य का ताप सहने से, शश्वत गरमी, लंघन और आहार इनके सेवनोक्त क्रम छोड़के सेवन करने से, पसीना, श्रम और भय इनसे पीड़ित हो और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारण से अजीर्णपर अन्न भक्षण करने से. तथा भोजन के ऊपर भोजन करने से, वमन, विरेचन, निरूहण, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्म के करते समय अपथ्य करने से, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा, पदार्थ के सेवन करने से, उड़द, पूरी, मिष्टान्न (लड्डू, खजला, फेनी आदि) तिल, दूध, गुड़ इनके खाने से, अन्न के पचे विना स्त्रीसंग करने से, तथा दिन में सोने से, ब्राह्मण, गुरु इनका तिरस्कार करने से पापकर्म का आचरण करने से, पुरुषों के वातादि तीनों दोष

त्वचा, रुधिर, मांस और जल इनको दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करते हैं। कुष्ठ होने के वातादिदोष, और त्वचादि दूष्य ये सात (वात, पित्त, कफ, त्वचा, रक्त, मांस, जल) पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं। इनसे अठारह प्रकार के कुष्ठ होते हैं इनमें सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्रकुष्ठ हैं। ५५८ जो चढे काले तथा लाल खोपडा के सदृश, रूखे, कठोर, पतले ऐसे त्वचावाले तथा नोचनेकी सी पीड़ायुक्त होयँ, वे दुश्चिकित्स्य हैं, इसको कापालिक कुष्ठ कहते हैं। ५५९ औदुंबरकुष्ठ–यह शूल, दाह, लाल और खुजली इनसे व्याप्त होय, इनमें बाल कपिल वर्ण के होयँ तथा ये गूलरफल के समान होते हैं। ५६० मंडलकुष्ठ सफेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना जिसका आकार मंडलडके सदृश होय तथा, एक दूसरे से मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ असाध्य है। ५६१ खुजलीयुक्त काले रंग की जो फुन्सी (माता के समान) होय तथा उनमें से स्राव बहुत होय उसको चर्चिका अथवा विचर्चिका कहते हैं। ५६२ ऋक्षजिह्व कुष्ठ कठोर अंतविषे लाल होय, बीच में काला होय, पीडा करे, तथा रींछ की जीभ के समान होता है इसको ऋक्षजिह्व कहते हैं। ५६३ विपादिकाकुष्ठ जिसमें हाथ की हथेली और पैर के तरवा फट जायँ और पीड़ा बहुत होय। ५६४ सिध्मकुष्ठ सफेद, लाल, पतला हो खुजाने से भूसीसी उड़े यह विशेष करके छाती में होता है और घीया के फूल के आकार का होता है। ५६५ किटिभकुष्ठ नीलवर्ण का हो, व्रण के चटके समान कठोर स्पर्श मालूम होय और रूक्ष हो। ५६६ अलसकुष्ठ–इस कुष्ठ में पीड़ा बहुत होय और जिसमें पिडिका पित्ती के समान बहुत और लाल होय, इसमें बहुत से मूर्ख वैद्य पित्त की शंका करते हैं। ५६७ दद्रुकुष्ठ में खुजली होय, लाल होय, और फोड़ा होय, छोटी हो और ऊँचे उठ आवें, मंडल के आकार गोल उत्पन्न होय इसीसे इसको दद्रुमंडल भी कहते हैं। ५६८ पामाकुष्ठ–जो पिडिक बहुत होंय, और उनमें से स्राव होय तथा खुजली चले और दाह होयं तो इस कुष्ठ को पामा (खाज) कहते हैं। ५६९ विस्फोटककुष्ठ–जो फोड़े काले वा लाल रंग के होंय और जिनकी त्वचा पतली होय उनको विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं। ५७० जो घर्म (पसीना) से रहित होता है और जिस करके सब अंग मकियों के अङ्ग के सदृश होता है और रसादि धातुओं को व्याप्त करता है इसको महाकुष्ठ कहते हैं। कहीं इसको चर्मकुष्ठ भी कहते हैं। ५७१ चर्मदलकुष्ठ–यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोड़ों से व्याप्त होकर फूट जाय, इसमें हाथ लगाने से सहा न जाय, इसमें त्वचा फट जाती है। ५७२ पुण्डरीक कुष्ठ–जो कुष्ठ पुण्डरी (कमल) पत्र के समान सफेद होय और उसका अन्तभाग लाल होय यत्किंचित् ऊंचा निकल आवे और मध्य में थोड़ा लाल होता है। ५७३ शतारुक कुष्ठ–जो लाल होय, श्याम होय, जिसमें जलन होय, शूल हो तथा अनेक फोड़े हों उसको शतारुक कुष्ठ कहते हैं। ५७४ काकण कुष्ठ–जो चिरमिठी के समान लाल अर्थात् बीच में काला होय और आसपास लाल अथवा बीच में लाल और आस पास काल होय, किञ्चित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसमें तीनों दोषों के लक्षण मिलते हों यह कुष्ठ अच्छा नहीं होता। ५७५ श्वित्रकुष्ठ–पूर्वोक्त कुष्ठों के समान है, निदान और चिकित्सा जिसकी ऐसी होती है और उसमें स्राव होता है, और वह श्वित्रकुष्ठ रक्त, मांस और मज्जा इन तीनों धातुओं से उत्पन्न होता है। यह कुष्ठ वात, पित्त, कफ इनके भेदों से तीन प्रकार का होता है। वायु से रूक्ष और लाल होवे, पित्त से लाल कमलपत्र के समान होय, उसमें दाह होय, उसके ऊपर के बाल गिर पड़े, कफ के योग से वह कोढ सफेद गाढा और भारी होता है, उसमें खुजली चलती है, ऐसे तीन भेद का श्वित्रकुष्ठ जानना। ५७६ कफ, मेद और वायु ये मांस, शिरा और स्नायु इनमें प्राप्त हो गांठ करते हैं। जब वह फूटे तब उसमें से शहद, घृत और चर्बी के समान स्राव हो तिस करके वायुः पुनः बढ़कर मांस को सुखाय उसकी बारीक

खिचीसी गांठ करे, उसको शर्करा कहते है। शर्करा होने के अनन्तर नाडियों से दुर्गन्धयुक्त क्लेदयुक्त अनेक प्रकार के वर्ण का (घृत मे और वसा इनके वर्ण का) रुधिर स्रवे, उसको शर्करार्बुद कहते हैं। ५७७ कमलकर्णिका के समान बीच में एक पिडिका होय उसके चारों ओर छोटी २ फुन्सियां हों उसको इन्द्रवृद्धा कहते हैं यह वात पित्त से उत्पन्न होती है। ५७८ कान के भीतर वात पित्त कफ से जो फुन्सी उग्रवेदनासहित प्रगट होय और वह स्थित होय उसको पनसिका कहते हैं। ५७९ पित्त के योग से फटे मुख की अत्यन्त दाहयुक्त, पके गूलर के समान चारों ओर बल पड़ी हुई जो पिडिका होय उसको विवृत्ता कहते हैं। ५८० कफवात से प्रगट कठिन, जिसमें मुख न हो तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय तथा जिसके चारों ओर मण्डलाकार हो और जिसमें राध थोड़ी होय उसको अन्धालजी कहते हैं। ५८१ शरीर में गांठ के समान कठिन सूजन उत्पन्न होय, उसका आकार सुअर की ठोढी के सदृश होय, उसमें दाह, खुजली पीडा होय और उसके ऊपर की त्वचा पक जाय उसको वराहदंष्ट्र, सूकरदंष्ट्र, वराहडाढ भी कहते हैं। ५८२ कंठ, कंधा, कूख, पैर, हाथ, संधि, गला इन ठिकानों पर तीनों दोषों से सर्प की बांबी के समान गांठ होय उसका उपाय न करै तब वह धीरे धीरे बढ़ै, उसमें अनेक मुख हो जायँ, उनमें से स्राव होय, नोचनेकीसी पीड़ा होय तथा वह मुख के ऊपर कुछ ऊँची होकर विसर्प के समान फैल जाय। इस रोग को वैद्य बल्मीक कहते हैं, इसके ऊपर औषधि उपचार नहीं चले और पुरानी होने से विशेष असाध्य जानना। ५८३ कफवायु से प्रगट गांठ बन्धी पांच अथवा छः कठिन कछुवा की पीठ के समान ऊंची जो पिड़िका होय उसको कच्छपिका कहते हैं। ५८४ वात, पित्त, कफ के कोप से काले तिल के समान पीड़ा रहित त्वचा से मिले ऐसे अंग में दाग होयं, उनको तिलकालक (तिल) कहते हैं। ५८५ वात पित्त से प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोड़ों से व्याप्त ऐसा मंडल होय वह बहुत दुखे, उसको गर्दभी अथवा गर्दभिका ऐसे कहते हैं। ५८६ शरीर में जो पिटिका (फुन्सी) स्रावरहित होकर खुजलीयुक्त हो उनको रकसा कहते हैं। ५८७ कफवात से प्रगट जौ के समान कठिन, गांठ के सदृश मांसरहित जो पिडिका होय उसको यवप्रख्या कहते हैं, तथा इसको अंत्रालजी भी कहते हैं। ५८८ विदारीकन्द के समान गोल कांख में अथवा वंक्षणस्थान में जो गांठ तांबे के रंगकीसी हो, उसको विदारकी का कहते हैं; यह संनिपात से होती है अर्थात् इसमें तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। ५८९ पैरों में कंकर छिदने से, अथवा कांटे लगने से बेर के समान ऊँची गाँठ प्रगट होय उसको कदर अथवा ठेक कहते हैं, यह कदररोग हाथों में भी होता है, ऐसा भोजन का मत है। ५९० बादी से शरीर के ऊपर उड़द के समान काली, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊँची गांठसी प्रगट होय, उसको मसक, माषमस्सा ऐसे कहते हैं। ५९१ व्यंग के लक्षण सदृश जो काला मंडल अंग में होय, अथवा मुख पर होय उसको नीलिका कहतें हैं। ५९२ पित्त से विसर्प के समान इधर उधर को फैलनेवाली, पतली तथा कुछ पकनेवाली ऐसी सूजन होय, उसमें दाह और ज्वर होय तो उसको जालगर्दभ कहते हैं। ५९३ त्रिदोष से प्रगट मस्तक में गोल, अत्यन्त पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोष के लक्षण संयुक्त ऐसी पिडिका होय उसको ईरिवेल्लि कहते हैं। ५९४ कफरक्त से जन्म से ही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊँचा जिसमें पीड़ा होय नहीं, ऐसा गोलमंडल के समाम देह में चिह्न होय उसको लक्ष्म लक्ष्य तथा कोई जतुमणि ऐसे कहते हैं; यह स्त्री पुरुषों को अंग भेद करके शुभाशुभ फलदायक है। ५९५ जिस पुरुष कीदेह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुष के प्रवाहन (कुथन) तथा अतिसार हेतु करके गुदा बाहर निकल आवे, अर्थात् कांच बाहर निकल आवे, उस रोग को गुदभ्रंश रोग कहते हैं, उस रोग में धातु क्षय होने से वात कुपित होय है। ५९६ कांख के आसपास

मांस के विदारण करनेवाले जो फोड़ा होते हैं, तिनकरके अंतर्दाह होय तथा ज्वर होय, वह फोडा प्रदीप्त अग्नि के समान लाल होय, इन फोड़ों में वायु अधिक होने से सात दिन, पित्ताधिक्य से बारह दिन और कफाधिक्य से ५ पांच दिन में रोगी मरे यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है और कठिन है। ५९७ मल मूत्रादिकों के वेग रोकने से गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर महास्रोत (गुदा) का अवरोध करे और वह द्वार को छोटा करे पीछे मार्ग छोटा होने से उस पुरुष का मल बड़े कष्ट से बाहर निकले, इस भयंकर रोग को संनिरुद्धगुद कहते हैं। ५९८ कफ, रक्त, पित्त इनके कोप से देह में मोहार की मक्खी के दंश से जैसे सूजन आती है, ऐसी किंचित् लाल रंग की सूजन आवे, उनमें खुजली बहुत चले, क्षण में उत्पन्न होती है और क्षण में चली जाती है उसको कोठ ऐसे कहते हैं। ५९९ किसी कठोर पदार्थ के अभिघात करके नख (नाखून) दुष्ट होकर रूक्ष काले वर्ण के और खरदरे हों उसको कुनख कहते हैं। ६०० पैरों में, त्वचा के समान वर्ण, यत्किञ्चित् सूजनयुक्त, भीतर से पकी जो पिडिका होय उसको अनुशयी कहते हैं। ६०१ देह में सफेद रंग का गोल ऐसा मंडल उत्पन्न होता है, उसके ऊपर कांटे के सदृश मांस के अंकुर आते हैं उनको खुजली बहुत चले उस रोग को पद्मिनीकंटक कहते हैं। ६०२ वायु और पित्त नखों के मांस में स्थिर होकर दाह और पाक को करे, उस रोग को चिप्य ऐसे कहते हैं। यह अन्य दोषों से होय तो इसको कुनख कहते हैं। ६०३ दुष्ट कीच (वर्षा आदि के पानी और सडी कीच) में डोलने से पैरों की उंगली गीली रहने से उँगलियों के बीच में सफेद सफेद चकत्ता होंय, उनमें खुजली दाह और गीलापन तथा पीड़ा होय उसको अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं यह कफ रक्त के दोष से होता है। ६०४ कफ वायु के कोप से सेमर के कांटे के तरुण (जवान) पुरुष के मुख के ऊपर जो फुन्सी हों उनको मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं इनके होने से मुख बुरा हो जाता है। ६०५ बाहु (भुजा) की जड़ कंधा और पसवाड़े इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोड़ों से व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पीडिका होय उसको कक्षा वा कँखलाई कहते हैं। ६०६ जो मनुष्य स्नान करते समय लगे हुए मल को नहीं धोवे, उस पुरुष का मल अंडकोश से संचित होय। पीछे वह पसीना आने से गीला होय तब अंडकोश में घोर पीडा होय और खुजाने से तत्काल फोड़े होंय। पीछे वे फोड़े स्रवकर आपस में मिल जाते हैं। कफरक्त से होनेवाली इस व्याधि को वृषणकच्छु कहते हैं। ६०७ पित के कोप से त्वचा के भीतर जो एक पिडिका फोडा के समान बडी होय उसको गंधनाम्नि पिटिका कहते हैं। ६०८ वातकफ से ठोडी की संधि में कठिन मंदपीडा करनेवाली चिकनी ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ कहते हैं। ६०९ कफवायु करके देह में सरसों के सदृश फुन्सी होती हैं उनको राजिका कहते हैं कोई उपद्रव भी कहते हैं। ६१० क्रोध और श्रम इनसे कुपित भया वायु सो पित्तसंयुक्त होकर मुख में प्राप्त होकर एक मंडल उत्पन्न करे वह दूखे नहीं पतला तथा श्यामवर्ण का होय, उसको व्यंग (झाँई) ऐसे कहते हैं। ६११ कड़ुआ, खट्टा, तीखा (मरिचादि), गरम, दाह-कारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजन के ऊपर भोजन और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्ण का अतियोग अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतु का पलटना) इन कारणो से वातादिदोष कुपित हो त्वचा का आश्रय कर रुधिर, मांस और हड्डी इनको दूषित कर भयंकर विस्फोटक (फोड़ा) उत्पन्न करे। उसके प्रगट होने के पूर्व घोर ज्वर होता है। इसके आठ तरह के लक्षण हैं, जैसे–(१) मस्तक में पीड़ा, शूल, देह में पीड़ा, ज्वर, प्यास, संधि में पीड़ा, फोड़ों का वर्ण काला होय ये वातविस्फोटक के लक्षण हैं। (२) ज्वर, दाह, पीड़ा, स्राव, फोड़ों का पकना, प्यास, देह पीला अथवा लाल होय ये पित्तविस्फोटक के लक्षण हैं। (३) वमन, अरुचि–जडता तथा फोड़ा खुजलीयुक्त हो कठिन पीले

और उनमें पीडा होयं नहीं और वो बहुत काल में पके। यह विस्फोटक कफ का जानना (४) वात पित्त से विस्फोटक में तीव्र पीडा होती है। (५) खुजली, दाह, ज्वर और वमन इन लक्षणों से कफपित्तजन्य विस्फोटक जानना। (६) खुजली, गीलापन, भारीपन इन लक्षणों से वात कफ का विस्फोटक जाननां। (७) रक्त से प्रगट भया विस्फोटक तांबें के रंग का गुन्जा (चिरमिटी) के समान लाल। वहं रुधिर के दुष्ट होने से अथवा पित्त के दुष्ट होने से होता है, यह सैकडों अनुभवकारी औषध करने से भी साध्य नहीं होता। (८) जो फोड़ा बीच में नीचा होय और आसपास से ऊंचा होय, कठिन और कुछ पका होय तथा जिसके योग से दाह, अंग में लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीड़ा, ज्वर, प्रलाप, कम्प, तन्द्रा ये लक्षण होते हैं उसे संनिपातका विस्फोटक ६१२ कडुआ, खट्टा, नोंन का खारी, विरुद्धभोजन, अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन) दुष्ट अन्न निष्पाव (शिंबीबीज उडद मूंग) आदि शाक, विषैले फूल आदि से मिला पवन तथा जल, शनैश्चरादि क्रूरग्रहों का देखना इन सब कारणों करके शरीर में वातादि दोष कुपित होकर दुष्ट रुधिर मिलकर मसूर के समान देह में अनेक मरोरी करें उनको मसूरिका (माता) ऐसे कहते हैं तिस माता (शीतला) के पूर्व ज्वर होय, खुजली चले, देह में फुटनी होवे, अन्न में अरुचि भ्रम होय, अंग के ऊपर की त्वचा में सूजन होय, तथा वर्ण पलट जाय, नेत्र लाल होयँ ये शीतला के पूर्वरूप होते हैं। ६१३ वातमसूरिका के फोड़े काले लाल और रूक्ष होते हैं, उनमें तीव्र पीडा होय, कठिन होय, शीघ्र पके नहीं इसके योग से संधि, हाड और पर्वो में फोड़नेकीसी पीडा होय, खांसी, कम्प, पित्त स्थिर न हो विना परिश्रम के श्रम होय, तालुवा, होठ और जीभ ये सूखने लगे प्यास अरुचि हो ये लक्षण होते हैं। ६१४ पित्त की मसूरिका का मुख लाल, पीला, सफेद होता है उसमें दाह तथा पीड़ा बहुत होय और यह शीतला शीघ्र पके। इसके योग से मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक और नेत्रपाक होय, ज्वर तीव्र हो ये लक्षण होय हैं। ६१५ कफ की मसूरिका में मुख के द्वारा कफ का स्राव होय, अंग में आर्द्रता तथा भारीपन, मस्तक में शूल वमन आनेकी सी इच्छा होकर अरुचि, निद्रा, तन्द्रा आलस्य ये होय और फोड़े सफेद चिकने अत्यन्त मोटे होंय, इनमें खुजली बहुत चले, पीडा मन्द होय और वे बहुत दिन में पकें। ६१६ कफ पित्त से केशों (बालों) के छिद्र समान बारीक और लाल, ऐसी मसूरिका होती हैं इनके होने से खाँसी, अरुचि होय तथा इनके होने से ज्वर होय। इनको रोमान्तिक (कसम्भीमाता) ऐसे कहते हैं। ६१७ जिन मसूरिकाओं में वातपित्त के लक्षण मिलते हों उन्हें वातपित्त की मसूरिका जाननी। ६१८ जिनमें वातकफ के लक्षण मिलते हों उनको वातकफ की मसूरिका जाननी। ६१९ त्रिदोषकी मसूरिका के फोड़े नीले, चिपटे, लम्बे, बीच में नीचे ऐसे होयँ उनमें पीड़ा अत्यन्त होय तथा वे बहुत दिन में पक और उनमें से दुर्गन्धयुक्त स्राव सर्व दोषों के फोड़े वे बहुत होते हैं। ६२० रसगत मसूरिका का पानी के बबूले के सदृा हो उनके फूटने से पानी बहे। यह त्वग्गतमसूरिका है कारण इसका यह है कि दोष स्वल्प है। ६२१ रुधिरगतमसूरिका तांबे के रंग की और जलदी पकनेवाली होती है उसके ऊपर की त्वचा पतली होती है यह अत्यन्त दुष्ट होने से साध्य नहीं हो और इसके फूटने से इसमें रुधिर निकले। ६२२ मांसस्थमसूरिका कठिन और चिकनी होती है यह बहुत दिन में पके तथा इसकी त्वचा पतली होय, अंगों में शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा, दाह और प्यास ये लक्षण होते हैं। ६२३ मेदोगतमसूरिका मण्डल के आकार अर्थात् गोल होय, नरम, कुछ ऊंची, मोटी तथा काली होती है, इसके होने से भयंकर ज्वर, पीडा, इंद्रिय, मन को मोह, चित्त का अस्थिर होना, सन्ताप ये लक्षण होते हैं। इस मसूरिका से कोई आदि मनुष्य बचता होगा कारण कि यह अत्यन्त

कृच्छ्रसाध्य हैं। ६२४ अस्थिगत मसूरिका बहुत छोटी, देह के समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होती है उसे अस्थिगत मसूरिका जाननी। ६२५ जिस मसूरिका में अत्यन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ये होते हैं, वह मर्मस्थानों को भेद करके शीघ्र प्राण हरण करे। इसके होने से सर्व हड्डिन में भौंरा के काटने के समान पीड़ा होती है। उसे मज्जागत मसूरिका जानना। ६२६ शुक्रधातुगत मसूरिका पके के समान चिकनी और अलग अलग होती है। इनमें अत्यन्त पीडा होय, इनके होने से गीलापन, अस्वस्थता होय, दाह, उन्माद के लक्षण होते हैं रोगी बचे ऐसे इनमें से कोई लक्षण नहीं दीखे, इसीसे इनको असाध्य जानना। ६२७ खारी, खट्टा, कड़ुवा, गरम आदि पदार्थ सेवन करने से वातादिदोषों का कोप होकर विसर्परोग होता है वह सर्वत्र फैल जाय, इसीसे इसको विसर्प कहते हैं। इसके ९ प्रकार के लक्षण हैं, जैसे (१) वादी से जो विसर्प होय उसके लक्षण वातज्वर के समान होते हैं तथा उसमें सूजन, फरकना, नोंचने, तोडने की सी पीड़ा, दर्द और रोमांच खड़े हों तथा वह विसर्प लंबा हो (२) पित्त के विसर्प की गति शीघ्र होय अर्थात् वह जल्दी फैल जाय तथा पित्तज्वर के लक्षण इसमें मिलते हों तथा अत्यन्त लाल होयँ। (३) कफ विसर्प में खुजली बहुत होय तथा चिकनी हो और उसमें कालज्वर की पीड़ा होय। (४) वातपित्त से प्रगट विसर्प ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास और हड़फुटन, मंदाग्नि, अन्धकारदर्शन, अन्नद्वेष इन लक्षण करके संयुक्त होवे, इनके संयोग से सर्व शरीर अंगारों से भरासा मालूम होय, जिस जिस ठिकाने वह विसर्प फैले उसी २ ठिकाने पर अग्निरहित अंगार के समान काला, लाल होकर शीघ्र सूजे, आग से जले के समान ऊपर फफोला होय और उस विसर्प की शीघ्रगति होने से जलदी हृदय में जाकर मर्मानुसारी विसर्प होय। अथवा वह अत्यन्त बलवान् होय अर्थात् अंगों को व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इनका नाश करे, श्वास बढ़ावे तथा हिचकी उत्पन्न करे। ऐसी मनुष्य की अवस्था अस्वस्थ होने के कारण, धरती, तेज, आसन इत्यादिकोंमें सुख होवे नहीं, हिलने चलने से क्लेश होय, मन तथा देह को क्लेश होने से उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा) को प्राप्त होय इस रोग को अग्निविसर्प कहते हैं। (५) स्वहेतु से कुपित भया जो कफ सो पवन की गति को रोक कफ को भेदकर अथवा बढ़े भये रुधिर को भेदकर त्वचा, नस (नाड़ी) और मांस इनमें प्राप्त हो और इनको दुष्टकर लम्बी, छोटी, गीली, मोटी, खरदरी, लाल गांठों की माला प्रगट करे। उन गांठों में पीड़ा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खांसी, अतिसार, मुख में पपड़ी परे, हिचकी, वमन, भ्रम, मोह, वर्ण का पलटना, मूर्च्छा, अंगों का टूटना, मंदाग्नि ये लक्षण होते हैं, इस रोग को ग्रंथि विसर्प कहते हैं। यह कफवात के कुपित होने से उत्पन्न होता है, इसको सुश्रुत में अपची कहते हैं। (६) कफ पित्त के विसर्प में ज्वर-अंगों का जखड़ना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथ पैरों का पटकना, बकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मंदाग्नि, हड़फूटन, प्यास, इन्द्रियों का जकड़ना, आम का गिरना, मुखादिस्रोतों (छिद्रों) में कफ का लेप इत्यादि लक्षण होते हैं तथा वह विसर्प आमाशय में उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फैले, उसमें पीड़ा थोड़ी होय, सर्वत्र पीली तांबे के रङ्ग की सफेद रङ्ग की पिंड़िकाएं हों, तथा वह विसर्प चिकनी स्याही के समान काली, मलीन, सूजनयुक्त, भारी, गम्भीरपाक (भीतर से पकी) हों, उनमें घोर दाह हो और वह दबाने से तत्क्षण गीली हो जायँ तथा फट जायँ। वह कीच के समान हो और उसका मांस गल जाय, उसमें शिरा, नाड़ी (नस) ये दीखने लगें, उसमें मुर्दाकीसी बास आवे, इस विसर्प को कर्दमविसर्प कहते हैं। (७) सन्निपातजन्य विसर्प में जो वातदिकों के लक्षण कहे हैं सो सब होयँ। (८) जठराग्नि के बहुत सन्तप्त होने से रक्तदूषित होकर जो विसर्प होता है उसको वह्निदाहज विसर्प कहते हैं। इसके लक्षण पित्तविसर्प के समान जानना। (९) बाह्य कारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वह

रुधिरसहित पित्त को व्रण में प्राप्त कर विसर्परोग उत्पन्न करे। उसमें कुल्थी के समान श्यामवर्ण के फोड़े होते हैं, सूजन, ज्वर और दाह होय; उसका रुधिर काला निकले। ये अभिघातज (क्षतज) विसर्प के लक्षण जानने। ६२८ वरटी (ततया) के काटने के समान त्वचा के ऊपर चकत्ते हो जायँ, उनमें खुजली चले और सुई चुभानेकीसी पीड़ा होय, उसके संयोग से वमन, सन्ताप और दाह होय, इसको उदर्द कहते हैं। ६२९ शीतल पवन के लगने से कफ, वायु दुष्ट होकर पित्त से मिल भीतर रक्तादिकों में और बाहर त्वचा में विचरे, प्यास, अरुचि, मुख में पानी गिरना, अंग गलना और भारी होना, नेत्र में लाली ये शीतपित्त होने के पूर्व होते हैं। शीतपित्त को लौकिक में पित्ती कहते हैं। इसमें खुजली होती है सो कफ से जानना। चोंटनी बादी से होती है। ओकारी, सन्ताप और दाह पित्त से होते हैं ऐसे जानना। ६३० विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढ़ानेवाला ऐसे अन्नपान के सेवन करने से, वर्षादि ऋतु में जलौषधिगत विदाहादि स्वकारण से संचित भया पित्त दुष्ट होय, उसको अम्लपित्त कहते हैं, अन्न का न पचना, परिश्रम करे परिश्रम सा मालूम हो, वमन, कड़ुवी तथा खट्टी डकार आवे, देह भारी रहे, हृदय और कंठ में दाह होय, अरुचि होय ये लक्षण होने से अम्लपित्त जानना। यह वातादि भेद से तीन तरह का है, जैसे (१) वातयुक्त अम्लपित्त में कंप, प्रलाप, मूर्च्छा चिमचिमा (चैंटी काटने से प्रगट खुजली के समान) देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रों के आगे अन्धकार दीखे, भ्रांति होना, इन्द्रिय मन के मोह, रोमांच खड़े हों ये लक्षण होते हैं। (२) कफयुक्त अम्लपित्त में कफ के ढेला गिरें, शरीर का अत्यन्त जकड़ना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख, कफ से ल्हिसा रहे, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली और निद्रा ये लक्षण होते हैं। (३) वातकफयुक्त अम्लपित्त में ऊपर कहे हुए दोनों के लक्षण होते हैं। ६३१ नोन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजन से, सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवों के और जल के समीप रहनेवाले जीवों के मांस से, पिण्याक (खर) मूली, कुलथी, उड़द, निष्पाव (सेम) शाक (तरकारी), पलल (तिलकी चटनी,) ईख, दही, कांजी, सौवीरमद्य, सुक्त (सिरका आदि) छाछ, दारु, आसव (मद्यविशेष), विरुद्ध (जैसे दूध मछली) अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन), क्रोध, दिन में निंद्रा, रात में जागना इन कारणों से विशेष करके सुकुमार पुरुषों के और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पुरुषों के और जो मोटा होय, तथा सूखा होय ऐसे मनुष्य के वातरक्त रोग होता है। हाथी, घोड़ा, ऊंट इन पर बैठकर जाने से (यह वायु के बढने का और विशेष करके रुधिर के उतरने का कारण है) विदाहकारी अन्न का खानेवाले पुरुष के (इसीसे दग्धरुधिर की बृद्धि होती है) गरमागरम अन्न के खानेवाले पुरुष के सब शरीर का रुधिर दुष्ट होकर परों में इकट्ठा होय और वह दुष्ट वायु से दूषित होकर मिले इस रोग में वायु प्रबल है, इसीसे इस रोग को वातरक्त कहते हैं। ६३२ वाताधिक वातरक्त में शूल, अंगों का फरकना, चाटनेकीसी पीड़ा ये अधिक होते हैं, सूजन, रूखापन, नीलापन अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्त के लक्षणों की वृद्धि होय और क्षणभर में ह्रास (कम) हो, धमनी और अंगुलिनकी सन्धि में संकोच, शरीर जकड़बन्ध होय, अत्यन्त पीड़ा होय, सर्दी बुरी लगे और शीत के सेवन करने से दुःख होय, स्तंभ होय, कंप और शून्यता होय, ये लक्षण होते हैं। ६३३ पित्ताधिक वातरक्त में अत्यन्त दाह, इन्द्रिय मन को मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम होय, पीड़ा, लाल रंग, सूजन, छोटे २ पीरे फोड़ा अत्यन्त गरमी ये लक्षण होते हैं। ६३४ कफाधिक वातरक्त में स्तैमित्य (गीले कपडों से आच्छादित के समान) भारीपना, शून्यता, चिकनापन, शीतलता, खुजली और मन्दपीडा ये लक्षण होते हैं। ६३५ तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) के वातरक्त में

तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। ६३६ रक्ताधिक वातरक्त में सूजन, अत्यन्त पीडा हो और उसमें से ताँबे के रंग का क्लेद बहे। उस सूजन में चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थ से शान्त न होय, उस सूजन में खुजली होय और पानी निकले। ६३७ दोषों के वातरक्त में दो दोषों के लक्षण होते हैं, वातपित्त, वातकफ, कफपित्त इन दो दो दोषों के लक्षण जिसमें हों उसे द्विदोषज जानना। ६३८ जिस काल में वायु कुपित होकर सब धमनी नाडी में जाकर प्राप्त होय, तब उस जगह वह बारम्बार सञ्चार करके देह को आक्षिप्त करती है अर्थात् हाथी पर बैठनेवाले पुरुष के समान सब देह को चलायमान करती है, उस बारम्बार चलने को आक्षेपरोग कहते हैं। ६३९ जिह्वा के अतिघर्षण करने से, चना आदि सूखी वस्तु को खाने से, अथवा किसी प्रकारकी चोटी के लगने से, हनुमूल (कपोल) के अर्थात् डाढ़ के जड़ में रहा जो वायु सो कुपित होकर हनुमूल को नीचे कर मुख को खुला ही रख दे, अथवा मुख को बंद करे, उसको हनुस्तंभ अथवा हनुग्रह कहते हैं। ६४० वायु कफ और मेद इनसे मिलकर जांघों में जाके जांघों को जड़ करके जकड़ता है, उस करके जांघें अचेतन होती हैं, हिलने का सामर्थ्य नहीं रहता उसको 'उरुस्तंभ' कहते हैं। ६४१ वायु रुधिर का आश्रय कर मस्तक के धारण करनेवाली नाड़ियों को रूखी, पीड़ायुक्त और काली कर दे। यह शिरोग्रह रोग असाध्य है। इसको शिरोग्रह भी कहते हैं। ६४२ बाहर की नसों में जो वात रहती है वह बाह्ययाम अर्थात् पीठ को बांकी कर दे, उरःस्थल जांघों और कमर को मोड़ दे, ऐसे इस रोग को पंडित असाध्य बाह्यायाम कहते हैं। ६४३ पैर की उंगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानों में रहनेवाला वायु वेगवान् होकर वहां के नसों के जाल उसको सुखाकर बाहर निकाल दें, उस मनुष्य के नेत्र स्थिर हो जांय, मेंज रहि जाय, पसवाड़ों में पीड़ा होय, मुख से कफ गिरे और जिस समय मनुष्य धनुष के सदृश नीचे को नम जाय तब वह बली वायु अन्तरायाम रोग को करे, इसको धनुर्वात भी कहते हैं। ६४४ कोष्ठाशय में वायु कुपित होकर पसवाड़ों में शूल करे उसको पार्श्वशूल कहते हैं। ६४५ जो वायु कमर को स्तम्भन करे उसको कटिग्रह कहते हैं। ६४६ वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनी नाड़ियों में प्राप्त होकर सब देह को दंड लकडी के समान तिरछा कर दे। यह दंडापतानक रोग कष्टसाध्य है। ६४७ जो वायु पैर, जंघा, उरू और हाथ के मूल में कंपन करे उसको खल्ली (मलानाय) रोग कहते हैं। ६४८ वायु वाणी की बहनेवाली नाड़ियों में प्राप्त होकर जिह्वा का स्तम्भन कर दे, उसको जिह्वास्तंभ रोग कहते हैं। यह अन्नपान तथा बोलने के सामर्थ्य का नाश करे. ६४९ ऊंचे स्वर से वेदादिक का पाठ करने से अथवा कठिन पदार्थ सुपारी आदि के खाने से, बहुत हँसने और बहुत जँभाई के लेन से, ऊँच नीच स्थान में सोने से, विषमाशन (विरुद्ध भोजन) के करने से कोप को प्राप्त हुई जो वायु वह मस्तक, नाक, होंठ, ठोढ़ी, ललाट और नेत्र इनकी संधियों में प्राप्त हो मुख में पीड़ा करे अर्थात् अर्दित रोग को उत्पन्न करे। उस पुरुष का मुख आधा टेढ़ा हो जाय, उसकी नाड़ मुड़े नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छी तरह बोला नहीं जाय, नेत्र भ्रकुटी, गाल आदि की विकृति (पीड़ा, फरकना, टेढ़ा) हो जाय और जिस तरफ अर्दित रोग होय उस तरफ की नाड़, ठोढ़ी और दांत इनमें पीड़ा हो। इस व्याधि को अर्दित रोग कहते हैं। ६५० वायु आधे शरीर को पकड़ सब शरीर की नसों को सुखाकर दहने अंग को अर्ध नारीश्वर के समान कार्य करने को असामर्थ्य कर दे और संधि के बंधनों को शिथिल कर दे, पीछे उस रोगी के सब वा आधे अंग हिले चले नहीं और उसको देखने स्पर्श करने आदि का थोड़ा भी ज्ञान नहीं रहे। उसको एकांगरोग अथवा पक्षवध किंवा पक्षाघात कहते हैं। ६५१ वातरक्त से जानु, घोंटू इन दोनों की संधि में अत्यंत

पीड़ाकारक सूजन हो और स्यार के मस्तक के समान मोटी हो, उसको क्रोष्टुशीर्ष कहते हैं। ६५२ दिन में सोने से, अन्न, स्नान, नीचे ऊँचे स्थान में सोने से, ऊंची वस्तु को विकृतिपूर्वक देखने से इन कारणों से कोप को प्राप्त भई जो वात सो कफयुक्त होकर मन्यानाड़ी को स्तंभन कर दे। इस रोग को मन्यास्तम्भ कहते हैं (अर्थात् गर्दन रह जावे)। ६५३ दोनों जांघों की नसों को पकड़ दोनों पैरों को स्तंभित कर दे, उसको पांगुला कहते हैं। ६५४ जो पुरुष चलते समय थरथर काँपे और खञ्ज अर्थात् एक पैर से हीन मालूम होय। इस रोग में संधि के बन्धन शिथिल होते हैं, इस रोग को कलायखंज कहते हैं। ६५५ पक्वाशय और मूत्राशय में उठी जो पीड़ा सो नीचे जायकर प्राप्त हो और गुदा तथा उपस्थ कहिये। स्त्रीपुरुषों के गुह्यस्थान इनमें भेद करे अर्थात् पीड़ा करे, उसको तूनी रोग कहते हैं। ६५६ गुदा और उपस्था इनसे उठी जो पीड़ा, सो उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोर से पक्वाशय में प्राप्त हो और तूनी के समान पीड़ा करे। उसको प्रतितूनी अथवा प्रतूनी भी कहते हैं। ६५७ कमर में रहा हुआ वात जंघा की नसों को ग्रहण कर एक पग को स्तंभित कर दे, उसको खञ्ज (खोड़ा) रोग कहते हैं। ६५८ जिसके पैर हर्षयुक्त (पीड़ायुक्त झनझनाहट) हों उसको पादहर्ष कहते हैं। यह रोग कफवात के कोप से होता है। ६५९ प्रथम करके नीचे का भाग जिसको कूला कहते हैं उसको स्तंभित करे दे, पीछे क्रम से कमर, पीठ, उरू, जानु, जंघा और पग इनको स्तंभित कर दे, अर्थात् ये रहि जायँ, वेदना और तोद कहिये, चोटने की सी पीड़ा होय और बारंबार कंप होय, यह गृध्रसीरोग वादी से होता है, वातकफ से होय तो उसमें तंद्रा और भारीपना और अरुचि ये विशेष होते हैं। ६६० बाहुक पिछाड़ी से लेकर हाथ के ऊपर भागपर्यंत प्रत्येक उंगलियों के नीचे जो मोटी नसे हैं उनको दुष्ट कर हाथ से लेना, देना, पसरना, मुट्ठी मारना इत्यादि कार्यों का नाशकर्ता जो रोग होय उसको विश्वाची रोग कहते हैं। ६६१ कंधा में रहे जो वायु सो नसों को संकोच करता है उसको अवबाहुक अथवा अपबाहुक रोग कहते हैं। ६६२ दृष्टि का स्तंभन हो जाय, संज्ञा जाती रहे, गले में घुर घुर शब्द होय, वायु जब हृदय को छोड़े तब रोगी को होश होय और वायु हृदय को व्याप्त करे तब फिर मोह हो जाय। इस भयंकर रोग को अपतानक कहते हैं। गर्भपात के होने से, अथवा अति रक्तस्राव होने से अथवा अभिघात कहिये, दण्डादिकों की चोट लगने से जो प्रगट अपतन्त्रक रोग सो असाध्य है। ६६३ जो वायु अभिघात करके व्रण उत्पन्न होने से उसमें पीड़ा करता है, उसको व्रणनाम कहते हैं। ६६४ ऊँची नीची जगह में पैर पड़ने से, अथवा श्रम के होने से वायु कुपित होकर टकनी में प्राप्त होकी पीड़ा करे इस रोग को वातकंटक कहते हैं। ६६५ रूक्षादि स्वकारणों से कोप को प्राप्त हुई जो वायु सो अपने स्थान को छोड़ ऊपर जायकर प्राप्त हो और हृदय में जायकर पीड़ा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीड़ा करे और देह को धनुष के समान नवाय देवे और चले तो मूर्च्छित कर दे वह रोगी बड़े कष्ट से श्वास लेय, नेत्र मिच जावें, अथवा टेढ़े हो जायँ, कबूतर के समान गुंजे तथा बेहोश हो, इस रोग को अपतानक कहते हैं। ६६६ जो वायु सब अंगो का भेद करता है अर्थात् अंग में टूटना उपजाता है उसको अंगभेद कहते हैं। ६६७ जो वायु सब अंगो को सुखाय देता है उस रोग को अंगशोष कहते हैं। ६६८ कफयुक्त वायु शब्द के बहनेवाली नाड़ी में प्राप्त होकर मनुष्यों के वचन को क्रियारहित मिम्मिण ऐसा कर दे। मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाक से बोलना। ६६९ जिस वायु करके कण्ठ में स्पष्ट शब्द नहीं निकले हैं उसको कल्लरोग कहते हैं। ६७० जो वाताष्ठीला अत्यंत पीड़ायुक्त हो वात, मूत्र, मल को रोधन करनेवाली और तिरछी प्रगट भई हो उसको प्रत्यष्ठलीला कहते हैं। ६७१ नाभि के नीचे उत्पन्न हो और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला गोल, पाषाण के समान कठिन और ऊपर का भाग कुछ लम्बा होय और आडी ऊँची होय और बहिर्मार्ग

कहिये अधोवायु, मल, मूत्र इनका अवरोध कहियें, रुकना हो, ऐसी गांठ को अष्ठीला अथवा वाताष्ठीला कहते हैं। ६७२ दुष्ट हुआ वायु गर्भाशय में जाकर गर्भ को विकार करता है, उस करके मनुष्य बौना होता है, इस रोग को वामन रोग कहते हैं। ६७३ शिरागत वायु दुष्ट होकर पीठ अथवा छाती को कुबड़ा कर दे उसको कुब्जरोग कहते हैं। ६७४ जिस वायु करके सब अंगों को पीड़ा होती है उस रोग को अंगपीड़ा कहते हैं। ६७५ जिस वायु करके सब अंगों में शूल (चमका) चले उसको अङ्गशूल कहते हैं। ६७६ जिस वायु करके सब अंगों का संकोच (सूकड़ना) होय उसको संकोच कहते हैं। ६७७ जिस वायु करके सब अंगों का स्तम्भ होवे (सब अङ्ग स्तब्ध होवें) उसको स्तम्भ कहते हैं। ६७८ जो वायु शरीर को तेजहीन करती है, उसको रूक्ष कहते हैं। ६७९ जिस वायु करके अंगों में पीड़ा होती है उसको अंगभंग कहते हैं। ६८० जिस वायु करके शरीर का कोई एक अवयव काष्ठ (लकड़ी) के समान चेतना रहित हो उसको अंगविभ्रंश कहते हैं। ६८१ जिस वायु के मल का अवरोध हो अर्थात् मल साफ नहीं निकले उसको विड्ग्रह कहते हैं। ६८२ जिस वायु करके मल पक्वाशय में संघट्ट (गाढ़ा) हो उसको बद्धविट्क कहते हैं। ६८३ कफयुक्त वायु शब्द के बहनेवाली नाड़ियों में प्राप्त होकर मनुष्यों को वचन क्रियारहित कर दे, उसको मूक रोग कहते हैं। ६८४ वायु दुष्ट होकर जम्भाई बहुत लावे उसको अतिजृम्भ कहते हैं। ६८५ आमाशय में वायु दुष्ट होने से बहुत डकार आती हैं उसको अत्युद्गार कहते हैं। ६८६ जो वायु पक्वाशय में रहकर आंतों में जाकर शब्द करता है उसको अन्त्रकूजन कहते हैं। ६८७ जो वायु गुदा के द्वार बाहर निकले उसको वातप्रवृत्ति कहते हैं। ६८८ जिस वायुकर के अङ्ग फुरफुराता है उसको स्फुरण कहते हैं। ६८९ वायु शिरा (नाड़ी) गत होने से शूल, नाड़ी का संकोच और स्थूलत्व करे और बाह्यायाम आभ्यन्तरायाम खल्ली और कुबड़ापन इन रोगों को उत्पन्न करे। इसको शिरापूरण कहते हैं। ६९० सब अङ्गों को और मस्तक को कँपावे उस वायु क वेपथु (कम्प) वायु कहते हैं। ६९१ जो वायु सब अङ्गों को कृश कर दे उसको कार्श्य कहते हैं। ६९२ जिस वायु करके सब शरीर काले वर्ण का हो जावे उसको श्याव कहते हैं। ६९३ अपने हेतु से कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणी बोले अर्थात् बकवाद करे, अथवा बड़बड़ शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं। ६९४ जिस वायुकरके बारंबार मूते उसको क्षिप्रमूत्ररोग कहते हैं। ६९५ जिस वायुकरके निद्रा न आवे उसको निद्रानाश कहते हैं। ६९६ जिस वायु के शरीर को स्वेद (पसीना) नहीं आवे उसको स्वेदनाश कहते हैं। ६९७ जिस वायु करके पुरुष का बल हीन होवे उसको दुर्बलता (दुबलेपना) कहते हैं। ६९८ जिस वायु करके शरीर के बल का क्षय होवे उसको बलक्षय कहते हैं। ६९९ शुक्रस्थान की वायु को कोप होने से वह वायु बहुत शुक्र (वीर्य) को जल्दी पतन करे उसको शुक्रातिपात कहते हैं। ७०० जो वायु शुक्र (वीर्य) धातु को क्षीण कर दे उसको शुक्रकार्श्य कहते हैं। ७०१ जिस वायु करके शुक्र (वीर्य) का नाश होवे उसको शुक्रनाश कहते हैं। ७०२ जिस वायु करके मन इन्द्रिय को स्वस्थता नहीं रहती है उसको अनवस्थितचित्तत्व कहते हैं। ७०३ जिस वायु करके शरीर कठिन रहता है उसको काठिन्य कहते हैं। १७ जिस वायु करके मुख में स्वाद नहीं रहे उसको विरसास्य कहते हैं। ७०५ जिस वायु करके मुख कषैला होवे उसको कषायवक्त्र कहते हैं। ७०६ गुडगुड शब्दयुक्त, अत्यन्तपीड़ा युक्त ऐसा उदर (पक्वाशय) अत्यन्त फूले अर्थात् वादी से भरकर चमड़े की थैली के समान हो जाय इस भयंकर रोग को आध्मान कहते को आध्मान कहते हैं, यह वात के रुकन से होती है। ७०७ वही पूर्वोक्त आध्मान रोग आमाशय में उत्पन्न होय तो उसको प्रत्याध्मान कहते हैं। इसमें पखवाड़े और हृदय इनमें पीड़ा नहीं होय और

वायु करके व्याकुल होता है। ७०८ जिस वायु करके देह शीतल होय उसको शैत्यरोग कहते हैं। ७०९ वायु त्वचागत होने से सब शरीर रोमांच खड़े हों तो उसको रोमहर्ष कहते हैं। ७१० जिस करके भय उत्पन्न होता है उसको भीरुरोग कहते हैं। ७११ जिस वायु करके शरीर में सुई चुभाने की सी पीड़ा हो उसको तोंद कहते हैं। ७१२ जिस वायु करके शरीर में खुजली जले उसको कण्ड्र कहते हैं। ७१३ जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभ को मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादि रसों का ज्ञान न हो उस रोग को रसाज्ञान कहते हैं। ७१४ कान इन्द्रिय में वायु कुपित होने से शब्द का ज्ञान जाता रहे अर्थात् कोई शब्द करे तो सुनने में नहीं आवे उसको शब्दाज्ञान कहते हैं। ७१५ जिस वायु करके त्वचा में स्पर्श करने से मृदु कठिन, शीत, उष्ण पदार्थ का ज्ञान नहीं होवे, उसको प्रसुप्ति कहते हैं। ७१६ जिस वायु करके घ्राणेन्द्रिय का ज्ञान जाता रहे अर्थात् सुगन्ध वा दुर्गन्ध कुछ भी समझ में नहीं वो उसको गन्धाज्ञान कहते हैं। ७१७ जिस वायु करके दृष्टि का नाश होता है अर्थात् कुछ पदार्थ नहीं दीखता उसको दृशःक्षय (दृष्टि का नाश) कहते हैं। ७१८ डकार आते समय मुख में धुआं सा निकले वह धूमोद्गार रोग पित्त के कुपित होने से होता है। ७१९ जिस पित्त के शरीर में बहुत दाह हो उसको विदाह कहते हैं। ७२० जिस पित्त से सब अङ्ग उष्ण हों उसको उष्णाग कहते हैं। ७२१ जिस पित्तकरके बुद्धि की चेष्टा ठिकाने पर न रहे तो उसको मतिभ्रम कहते हैं। ७२२ जिस पित्त करके शरीर के तेज का नाश होता है उसको कांतिहानि कहते हैं। ७२३ जिस पित्तकरके कण्ठ का शोष सूखना होता है उसको कंठशोष कहते हैं। ७२४ जिस पित्तकरके मुख सूख जाता है उसको मुखशोष कहते हैं। ७२५ जिस करके शुक्र (वीर्य) थोड़ा उत्पन्न होवे उसको ७२६ जिस पित्त के मुख से कुड़वा होता है उसको तिक्तास्य कहते हैं। ७२७ जिस पित्त करके मुख खट्टा सा रहे उसको अम्लवक्त्र कहते हैं। ७२८ जिस पित्त से देह में पसीना बहुत आवे उसको स्वेदस्राव कहते हैं। ७२९ जिस पित्त से अङ्ग पक जाय उसको अङ्गपाक कहते हैं, ७३० जिस पित्त के योग से शरीर में ग्लानि उत्पन्न होय उसको क्लम कहते हैं। ७३१ जिस पित्त करके देह का वर्ण हरा नीला हो जावे उसको हरितवर्ण कहते हैं। ७३२ जिस पित्त के योग से कितना भी अच्छा भोजन पान किया हो तो भी भोजनपान की इच्छा निवृत्ति नहीं होती है उसको अतृप्ति कहते हैं। ७३३ जिसमें सब शरीर का वर्ण पीला दिखे उसको पीतकाय कहते हैं। ७३४ जिस बित्त से स्रोतों (छिद्रों) में से अर्थात् मुख, नाक, आदि से रुधिर का स्राव होवे उसको रक्तस्राव कहते हैं। ७३५ जिस पित्त के अङ्ग फूट जाय उसको अङ्गहरण कहते हैं। ७३६ जिस पित्त के मुख में से अग्नि में तपाए हुए लोह के गन्ध से सदृश गन्ध आवे उसको लोहगंधास्य कहते हैं। ७३७ जिस पित्त के सब अङ्गों से बुरा गंध आवे उसको दौर्गन्ध कहते हैं। ७३८ जिस पित्त करके मूत्र का वर्ण पीला होवे उसको पीतमूत्रत्व कहते हैं। ७३९ जिस पित्त करके मन की कभी पदार्थ में प्रीति नहीं रहती है उसको अरति कहते हैं। ७४० जिस पित्त करके मल (विष्ठा) का वर्ण पीला होवे उसको पीतविट्क कहते हैं। ७४१ जिस पित्त करके पुरुष सब पदार्थों को पीला वर्ण देखे उसको पीतावलोकन कहते हैं। ७४२ जिस पित्त करके नेत्र पीले वर्ण के रहें उसको पीतनेत्र कहते हैं। ७४३ जिस पित्त के दांत पीले वर्ण के होवें उसको पीतदंत कहते हैं। ७४४ जिस पित्त से पुरुष के शीतलजलादि की इच्छा रहे उसको शीतेच्छा कहते हैं। ७४५ जिस पित्त से पुरुष के नख पीले हों उसको पीतनख कहते हैं। ७४६ जिस पित्त से पुरुष से सूर्यादिकों का तेज नहीं देखा जाय उसको तेजोद्वेष कहते हैं। ७४७ जिस पित्त से पुरुष को निद्रा थोड़ी आवे उसको अल्पनिद्रा कहते हैं। ७४८ जिस पित्त करके पुरुष को हर किसी भी पदार्थ पर सदा क्रोध आवे उसको कोप कहते हैं। ७४९

जिस पित्त से शरीर के संधिभाग दूखें उसको गात्रसाद कहते हैं। ७५० जिस पित्त से पुरुष का मल (विष्ठा) पतला होवे उसको भिन्नविट्क कहते हैं। ७५१ जिस पित्त से दृष्टि से कुछ देखने में नहीं वो उसको अन्ध कहते हैं। ७५२ जिस नासिका के द्वारा गरम गरम पवन निकले इसको उष्णोच्छ्वास कहते हैं। ७५३ जिस पित्त से पुरुष का मूत्र गरम उतरे उसको उष्णमूत्र कहते हैं। ७५४ जिस पित्त से मल (विष्ठा) गरम उतरे उसको उष्णमल कहते हैं। ७५५ जिससे नेत्र के सामने अन्धेरा सा दीखे उसको तमोदर्शन कहते हैं। ७५६ जिस पित्त से देह के ऊपर पीले वर्ण के चकत्ते देखने में आवें उसको पीतमंडलदर्शन कहते हैं। ७५७ जो पित्त मुख नासिका के द्वारा गिरे उसको निःसर कहते हैं। ७५८ जिस कफ से नेत्र भारी होते हैं उसको तन्द्रा कहते हैं। ७५९ जिस कफ से बहुत निद्रा आवे उसको अतिनिद्रा कहते हैं। ७६० जिस कफ से शरीर में जड़ता हो उसको गौरव कहते हैं। ७६१ जिस कफ से मुख में निरन्तर मीठा सा स्वाद आता रहे उसको मुखमाधुर्य कहते हैं। ७६२ जिस कफ से मुख कफ करके लिपटा रहे उसको मुखलेप कहते है। ७६३ जिस कफ से मुख में लार गिरा करे उसको प्रसेक कहते हैं। ७६४ जिस कफ से सब पदार्थ सफेद दीखें उसको श्वेतावलोकन कहते हैं। ७६५ जिस कफ से मल (विष्ठा) सफेद उतरे उसको श्वेतविट्क कहते हैं। ७६६ जिस कफ करके मूत्र सफेद उतरे उसको श्वेतमूत्र कहते हैं। ७६७ जिस कफ से सब अङ्गों का वर्ण सफेद हो जाय उसको श्वेताङ्गवर्ण कहते हैं। ७६८ जिस कफ से सर्दी बहुत होवे उसको शैत्य कहते हैं। ७६९ जिस कफ करके उष्ण सूर्य अग्नि आदि के तापने की इच्छा होवे उसको उष्णेच्छा कहते हैं। ७७० जिस कफ करके तिक्त पदार्थ (मिरच) आदि के खाने की इच्छा चले उसको तिक्तकामिता कहते हैं। ७७१ जिस कफ के योग में मल (विष्ठा) बहुत उतरे उसको मलाधिक्य कहते हैं। ७७२ जिस कफ करके शुक्र (वीर्य) बहुत होवे तथा उतरे उसको शुक्रबाहुल्य कहते हैं। ७७३ जिस कफ करके मूत्र बहुत उतरे उसको बहुमूत्र कहते हैं। ७७४ जिस कफ से मनुष्य भारी रहे, कोई काम करने में उत्सुकता नहीं रहे उसको आलस्य कहते हैं। ७७५ जिस करके बुद्धि मन्द होवे उसको मन्दबुद्धि कहते हैं। ७७६ जिस करके खाने पीने में इच्छा न चले उसको तृप्ति कहते हैं। ७७७ जिस कफ से बोलते समय कण्ठ से घरड़ घरड़ आवाज निकले उसको घर्घरवाक्य कहते हैं। ७७८ जिस कफ से मनुष्य चैतन्य में मन्द होय उसको अचैतन्य कहते हैं। ७७९ जिस रक्त से अंग जड़ होता है उसको रक्तगौरव कहते हैं। ७८० जिस रक्त से शरीर के ऊपर लालवर्ण के चकत्ते उठे हों उसको रक्तमण्डल कहते हैं। ७८१ जिस रक्त से नेत्र लालवर्ण के हों उसको रक्तनेत्र कहते हैं। ७८२ जिस रक्त से लालवर्ण का मूत्र मूते उसको रक्तमूत्र कहते हैं। ७८३ जिस रक्त से लालवर्ण का थूके उसको रक्तष्ठीवन कहते हैं। ७८४ जिस रक्त से लालवर्ण के फोड़े (फुन्सी) अंग पर दीखें उसको रक्तपिटिकादर्शन कहते हैं। ७८५ जिस रक्त से शरीर में गरमी मालूम हो उसको उष्णत्व कहते हैं। ७८६ जिस रक्त से शरीर में से दुर्गन्ध आवे उसको पूतिगन्ध कहते हैं। ७८७ शरीर में रक्त करके जो पीड़ा होती है उसको रक्तपीड़ा कहते हैं। ७८८ शरीर में जो रुधिर पकता है उसको रक्तपाक कहते हैं। ७८९ वादी के कोप से होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले होते हैं उनमें तीव्र पीड़ा हो और दो टुकड़ों के समान हो जाते हैं तथा होठ की त्वचा किंचित् फट जाती है। ७९० पित्त से होठ चारों ओर फुन्सियों से व्याप्त हों, उनमें पीड़ा होय तथा पक जावें और पीले से दीखें। ७९१ कफ से होठ त्वचा के समान वर्णवाले फुन्सियों से व्याप्त होय, कुछ दूखें तथा मलाई के समान चिकने और शीतल तथा भारी हों। ७८२ सन्निपात से होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सफेद तथां अनेक प्रकार की फुन्सियों से व्याप्त हों। ७९३ रक्त से होठों में खजूर फल के वर्ण की फुन्सियां हो, उनमें से रुधिर गिरे, तथा होठ रुधिर के समान लाल होय। ७९४

अभिघात से (चोट लगने से) होठ सर्वत्र चिर जाय, पीड़ा होय, उनमें गाँठ हो जाय तथा खुजली चलते समय पीव बहे। ७९५ मांस दुष्ट होने से जड़ (भारी) मोटे होते हैं, मांसपिंड के समान ऊंचे होंय। इस रोगवाले मनुष्य के दोनों में अथवा होठों में प्रांतभाग में कीड़े पड़ जाते हैं। ७९६ होठों के एक भाग में चीरा जावे और उनमें से स्राव होय तो उसको खंडौष्ठ कहते हैं। ७९७ मांस के भाग बढ़के होठ ऊँचे और मोटे होकर उनमें से पानी स्रवे उसको जलार्बुद कहते हैं। ७९८ मेद से होठ घृत के झागसमान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होंय तथा उनसे स्फटिक के समान निर्मल स्राव बहुत होय, इसमें भया हुआ व्रण नहीं भरता है तथा उसमें मृदुता नहीं रहती है। ७९९ वातादिक दोष कुपित होने से होठों में ग्रंथि उत्पन्न होती है, उसको अर्बुद कहते हैं। ८०० जिसके दाँतो में फोड़ने की सी पीड़ा होय, उसको दालनरोग कहते हैं, यह रोग वादी से होता है। ८०१ वादी के योग से दाँतों में काले छिद्र पड जायँ तथा हिलने लगें उनसे स्राव होय, शोथयुक्त पीड़ा होनेवाले और कारण बिना दूखनेवाले ऐसे दांत होंय, उसको कृमिदंतरोग कहते हैं। यहां दांतो में काले छिद्र पड़ने का यह कारण है कि दुष्ट रुधिर से कृमि (कीड़ा) पैदा होकर दांतो में छिद्र करते हैं। ८०२ शीतल, रूक्ष, खटाई इत्यादि पदार्थ और पवन इनके लगने से जो दांत नहीं सह सके उसको दंतहर्ष कहते हैं। यह रोग पित्तवायु के कोप से होता है, यह रोग वातज होने पर भी उष्ण (गरमी) को नहीं सह सके, यह व्याधि का स्वभाव है। ८०३ वादी धीरे धीरे मसूढ़ें का आश्रय लेकर दांतो को टेढ़े तिरछे करे उसको करालरोग कहते हैं। यह साध्य नहीं होता। ८०४ वादी के योग्य से तिस तिस अभिवातादिक करके हनुसंधि (टोढ़ी) में चोट लगने से दांत चलायमान हो जायँ, उसको दंतचाल अथवा हनुमोक्ष कहते हैं। ८०५ दांतो का मल पित्तवायु के प्रभाव से सूखकर रेत के समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोग को दंतर्शकरा कहते हैं। ८०६ वादी के योग से दांत के ऊपर दूसरा दांत उगे उस समय पीड़ा होय, जह वह दांत उग आवे तब पीड़ा शांत होय, उसको अधिदंत अथवा खल्लीवर्द्धन कहते हैं। ८०७ जो दांत रुधिर से मिले पित्त से जले के समान सब काले हो जाँय उसको श्यावदँत कहते हैं। ८०८ जिस व्याधि करके मुख टेढ़ा होकर दांत टूटने लगें उसको दतभेद कहते हैं। यह व्याधि कफ करके होती है, इस दंतभंगकारी दोष के प्रभाव से मुख भी टेढ़ा होता है। ८०९ कपाल कहिये मट्टी के घड़ा आदि के जैसे टूक होते हैं ऐसे दांत मलकरके सहित हो जायँ उसको कपालिका ऐसे कहते हैं। यह रोग दांतों का सदा नाश करता है। ८१० जिसके मसूढ़े में से अकस्मात् रुधिर बहे और दांतों का मांस दुर्गंधयुक्त, काला, पीवसहित तथा नरम होकर गिरे और दांत का मसूढ़ा पकने से दूसरे मसूढ़े को पकावे, इस कफरुधिर से प्रगंट व्याधि को शीताद नाम् कहते हैं। ८११ जिसके मसूढ़ें में दाह होकर पाक हो और दांत हिलने लगें, मसूढ़ों में घिसने से रुदिर मंद पीड़ा के साथ निकले, रुधिर निकलने की पिछाड़ी फिर मसूढ़े फूल आवें और मुख से वास आवे। इस पित्तरक्तकृत विकार को उपकुश कहते हैं। ८१२ वातादिक दोष और रक्त कुपित होकर दांतों के मसूढौं के भीतर और बाहर सूजन करे और रुधिर से मिली राध गिरावे, पीड़ा और वाह होय इसको दंतविद्रधि कहते हैं। ८१३ जिसके दो अथवा तीन दांतों की जड़ में महान् सूजन होय, उसको दंतपुप्पुट रोग कहते हैं। यह व्याधि कफरक्त से होती है। ८१४ जिसके पीछे की डाढ़ के नीचे अर्थात् मसूढें में बहुत सूजन होय और घोर पीड़ा होय तथा लार बहुत बहे, उसको अधिमांसक कहते हैं। यह कफ के कोप से होता है। ८१५ मसूढे रगड़ने से सूजन बहुत होय और दात हिलने लगें उसको विदर्भ कहते हैं। यह रोग चोट के लगने से होता है। ८१६ जिस त्रिदोष व्याधि से मसूढ़े के समीप से दांत हिलें और तालुओं में छिद्र पड़ जाँय, दांत और होठ भी फट

जायँ, उसको महासौषिर रोग कहते हैं। यह रोग मनुष्य को सात दिन में मार डालता है। ८१७ कफरुधिर से दांतो की जड़ में सूजन होय, उसमें पीड़ा और स्राव होय उसको सौषिररोग कहते हैं। ८१८ दन्तमूल में व्रण होने से उसके बीच नली हो जाती है। उस नली में दुर्गन्धियुक्त राध बहने लगे उसको नाड़ी कहते हैं। जिसमें वात दुष्ट होने से शूलादिक होते हैं उसको वातनाड़ी कहते हैं। ८१९ उस पूर्वोक्त नाड़ी की नली में दाहादिक पित्त के लक्षण होने से पित्तनाड़ी जानना। ८२० जिस नाड़ी में से गाढ़ी और सफेद राध बहे उसमें खुजली और जड़पना इत्यादि कफ के लक्षण हों उसको कफनाड़ी कहते हैं। ८२१ जो नाड़ी तीन दोषों के लक्षणों से युक्त होती है उसको सन्निपातनाड़ी कहते हैं। ८२२ जिस नाड़ी में से लाल वर्ण की और दाहयुक्त राध बहे और उसमें पित्त के दाहादिक लक्षण हों उसको रक्तनाड़ी कहते हैं। ८२३ वादी से जीभ फटी सी, प्रसुप्त (अर्थात् रस का ज्ञान जाता रहे) और पर्वतीय वृक्ष के पत्र समान काँटेयुक्त खरदरी हो। ८२४ पित्त से जीभ पीली हो, उसमें दाह होय तथा लम्बे लम्बे ताँबे के समान काँटे होय, इस रोग को लौकिक में जाली अथवा जोड़ी कहते हैं। ८२५ कफ से जीभ मोटी भारी होती है और उसमें सेमर के से काँटे समान मांस के अंकुर होते हैं। ८२६ जीभ के नीचे कफ रुधिर से प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अल्लस कहते हैं। उसके बढ़ने से स्तम्भ होय तथा जीभ के मूल में सूजन होय, यह रोग असाध्य है। ८२७ कफरक्त के विकार से जीभ के ऊपर जीभ के अग्रभाग के समान अंकुर आवें उसको अधिजिह्व कहते हैं। ८२८ कफरुधिर से जिह्वाग्र के समान जैसा जीभ का आगे का भाग होता है ऐसी सूजन जीभ को नीची दबायकर उत्पन्न होय उसके योग से लार बहुत बहे और उसमें खुजली तथा दाह होय, इस रोग को वैद्य उपजिह्व कहते हैं। ८२९ रुधिर से तालुए में कमल की कर्णिका के समान सूजन होय और उसमें पीड़ा थोड़ी होय उसको अर्बुद कहते हैं। ८३० रुधिर से तालुए में लाल स्तब्ध (लटर ऐसी सूजन होय) उसमें पीड़ा और ज्वर होय उसको तालुपिटिका अथवा अध्रुव कहते हैं। ८३१ कफ से तालुए में कछुआ की पीठ के समान ऊंची सूजन होय उसमें पीड़ा थोड़ी होय वह शीघ्र बढ़े नहीं, उसको कच्छपी कहते हैं। ८३२ कफ करके तालुए में दुष्ट मांस हो करके जो सूजन होय और वह दूखे नहीं उसको मांससंहति कहते हैं। ८३३ कफरुधिर से तालुए मे मूल में फूली वस्ती के समान सूजन होय इसके प्रभाव से प्यास, खांसी, श्वास ये होते हैं। इस रोग को गलशुण्डी कहते हैं। ८३४ वादी से तालु अत्यन्त सूखकर फट जाय तथा भयंकर श्वास होय, उसको तालशोष कहते हैं। ८३५ पित्त कुपित होकर तालुए में अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुन्सी) उत्पन्न करे उसको तालुपाक कहते हैं। ८३६ मेदयुक्त कफ करके तालुए में पीड़ारहित और स्थिर तथा बेर के समान सूजन होय उसको पुप्पुट वा तालुपुप्पुट कहते हैं। ८३७ जीभ के चारों ओर अत्यंत वेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय उनसे कंठ का अवरोध होय है तथा कंपविनाम (कंठ नवे), स्तभ आदि वात के विकार होते हैं इसको वातरोहिणी कहते हैं। ८३८ पित्त से प्रगट हुई रोहिणी शीघ्र ही बढ़े तथा पके, उसके योग से तीव्र ज्वर होय। ८३९ जो रोहिणी कण्ठ के मार्ग को रोध (रोक) करे तथा हौले हौले पके तथा जिसके अंकुर कठिन होंय, उसे कफजन्यरोहिणी जाननी। ८४० त्रिदोष से उत्पन्न हुई रोहिणी गंभीरपाकिनी होती है। तिस करके गला रुक जाता है, ज्वरयुक्त हो उसमें राध बहुत हो जिसमें औषधि का प्रभाव नहीं चले और तीन दोषों के लक्षणों से युक्त हो वह तत्काल प्राणों को हरण करे। ८४१ मेद दुष्ट होने से गले में फुन्सी उत्पन्न होती हैं उसको मेदारोहिणी कहते हैं। ८४२ गले में ऊंची गोल तीव्रदाह तथा सूजन होय उसको वृन्द कहते हैं, यह वृन्द रक्तपित्त के कोप से होता है। इसमें वायु का सम्बन्ध होने से चोटने की सी पीड़ा होय।

८४३ रक्तयुक्त कफ से गले में भारी सूजन होय, उसके योग से कण्ठ में अन्न जल का अवरोध (रुकावट) होय तथा वायु का संचार होय नहीं, इसको गलौघ कहते हैं। ८४४ जो सूजन सब गले मे व्याप्त होवे तथा जिसमें सर्वप्रकार की पीड़ा हो उसको मलविद्रधि कहते हैं। ८४५ वायु का मार्ग कफ से लिप्त होने से बारंबार नेत्रों के आगे अन्धकार आकर जो पुरुष श्वास को छोड़े अथवा मूर्च्छा आकर श्वास निकले, जिसका स्वर भिन्न होय, कण्ठ सूखे और विमुक्त कहिये कण्ठ स्वाधीन नहीं अर्थात् थोड़ा भी अन्न खाया हो तथापि कण्ठ के नीचे न उतरे, इस वातजरोग को स्वरहा (स्वरघ्न) कहते हैं। ८४६ वादी के योग से मुख में सब छाले हो जायँ और चिनमिनावें, मुख, जिह्वा, गला, होंठ, मसूढ़े, दांत और तालु इन सबमें व्याप्त होता है। इस रोग को मुखपाक (मुखआना) अथवा सर्वसर कहते हैं। ८४७ पित्त से मुख में लाल तथा पीले छाले होंय और दाह होवे। ८४८ कफ से मुख में मन्द पीड़ा और त्वचा के समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय, ८४९ रक्त के कोप से मुख में लाल फोड़े होते हैं। उनके लक्षण पित्त के सदृश होंय उनको रक्तज मुखपाक कहते हैं। ८५० मुख में जो फोड़े होते हैं उनमें वात, पित्त और कफ इन तीनों के लक्षण मिलने से उन्हें संनिपातज मुखपाक कहते हैं। ८५१ मुख में फोड़े की सी दुर्गन्ध आवे उसको पूत्यास्य अर्थात् दुर्गन्धमुख कहते हैं। ८५२ मुख में जो फोड़े होते हैं। उसके फूटने से उनका आकार गुदा के सदृश होवे उसको उर्ध्वगुद कहते हैं। ८५३ सन्निपात के योग से मुख में गोल आकारवाली ग्रंथि उत्पन्न होती है उसको अर्बुद कहते हैं। ८५४ कर्ण रोग के १८ तरह के लक्षण हैं जैसे (१) वादी से कान में शब्द होय, पीड़ा होय, कानं का मैल, सूख जाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे अर्थात् बहरा हो जाय (२) पित्त से कान में सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा हो जाय, तथा किञ्चित् पीला दुर्गन्धयुक्त स्राव होय। (३) कफ के प्रभाव से विरुद्ध सुनना, खुजली चले, कठिन सूजन होय। सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय। (४) पित्त के लक्षणों में रक्तज कर्ण रोग जानना। (५) संनिपात से सब लक्षण होंय, स्राव होय वा जौनसा दोष अधिक होय वैसे ही दोषानुसार कर्ण का स्राव होय। (६) कान में खुजाने से व्रण हो जाय अथवा चोट लगने से कान में व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादि दोषों करके दूसरे प्रकार की विद्रधि होय जब वह फूटे तब उससे लाल पीला रुधिर बहे, नोचे की सी पीड़ा होय, धुआँसा निकलता मालूम होवे, चूसने की सी पीड़ा होवे। (७) सुकुमार स्त्री अथवा बालक कान की लौर को एक साथ बहुत बढ़ावे तो कान की लौर में सूजन होकर फूल जावे और पूर्ण हो उसको कर्णशोध कहते हैं। (८) त्रिदोष के कोप से कान में गोलाकार मांस की फुन्सी उत्पन्न होवे उसको कर्णार्बुद कहते हैं। (९) कान में से राध निकले दुर्गंध आवे उसको कर्णपूति कहते हैं। (१०) वातादिक दोष कुपित होने से कान में मांस के अंकुर उत्पन्न होते हैं, उनमें शूल, कण्डू, दाह ये उपद्रव होते हैं, उसको कर्णार्शि कहते हैं। (११) पतंग, कनखजूरा, निजाई आदि के कान में घुसने से बैचेनी होय, जीव व्याकुल होय और कान में पीड़ा होय तथा कान में नोचने की सी पीड़ा होय, वह कीड़ा कान में फड़के और फिरे, उस समय कान में घोर पीड़ा होय और जब वह बन्द होय तब पीड़ा बन्द होय इसको कर्णहल्लिका कहते हैं। (१२) जिस समय केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु शब्द बहनेवाली नाडियों में स्थित हो जाय तब उस पुरुष को शब्द सुनाई नहीं देता अर्थात् बहरा हो जाता है। उसको बाधिर्य कहते हैं। (१३) पित्तादि दोषों करके युक्त वायु से कानों में वेणु (वंशी) का शब्द सुनाई देता है, उसको तन्त्रिका अथवा कर्णक्ष्वेड कहते हैं। (१४) कफ से मिला हुआ वायु कान में खुजली उत्पन्न करता है उसको कर्णकण्डू कहते हैं। (१५) मस्तक में पाषाण, लकड़ी आदि का

अभिघात होने से अथवा पानी में गोता मारने से अथवा कान में विद्रधि पकने से वायु कुपित होकर कान में से राध बहे, उसको कर्णशष्कुलिं अथवा कर्णस्राव कहते हैं। (१६) जिस समय कान में कृमि पड़ जायँ, अथवा मक्खी अण्डा धरे, तब कृमि के लक्षण होते है। उसको कृमिकर्ण कहते हैं। (१७) वायु कान के छिद्र में स्थित होने से अनेक प्रकार के स्वर, तथा भेरी, मृदंग और शंख इनके सदृश शब्द सुनाई देवे, इस रोग को कर्णनाद कहते हैं। (१८) जिस समय कान का मैल पतला होकर मुख में और नाक में उतरता है उसको प्रतिनाह रोग कहते हैं, इसमें आधा मस्तक दूखता है। ८५५ कान में भारी आभरण (गहना) पहनने से, चोट के लगने से अथवा कान को खींचने से रक्तपित्त कुपित होकर कान की पालिमें हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय, उसमें दाह होवे, पीड़ा होवे और रक्त बहे, इस रोग को उत्पात कहते हैं। ८५६ वायु के कोप से कान की पीला सुख जाय उसको पालिशोष कहते हैं। ८५७ कान की लौर फटकर उसमें खुजली चले उसको विदारी कहते हैं। ८५८ दुष्टरीति करके कान को छेदने तथा बढ़ाने से खुजली, दाह, पीड़ायुक्त सूजन होय, वह पक जाय, इसको दुःखवर्धन कहते हैं। ८५९ सुकुमार स्त्री अथवा बालकों के कानों में अलंकार (गहने) पहनाने के लिये प्रथम छिद्र करके कई दिन उनमें गहने नहीं पहने, फिर किसी काल में गहने पहनने का समय आवे तब ये छिद्र मोटे होने के वास्ते कान में सीक आदि डालकर बढ़ाने को चाह, तब उससे काले वर्ण की वा लाल वर्ण की सूजन उत्पन्न होवे, उसमें पीड़ा होवे, वह वादी से होती है, उसको परिपोट कहते हैं। ८६० कफ, रक्त, कृमि से उत्पन्न भई तथा सर्वत्र विचरनेवाली जो सूजन कान की पाली में होय वह कान की पाली को खा जाय अर्थात् उसका मांस झरने लगे, उसको परिलेही ऐसे कहते हैं। ८६१ कान को बलपूर्वक पाली (लौर) में वायु कुपित होकर कफ को संग लेकर कठिन तथा मन्द पीड़ा युक्त सूजन को प्रगट करे, उसमें खुजली चले, इस कफवातजन्य विकार को पिप्पली अथवा उन्मन्थक कहते हैं। ८६२ कान के नीचे मूल की जगह पर गांठ के आकर सूजन उत्पन्न हो, उसमें जिस दोष का कोप हुआ हो उसके लक्षण होते हैं, जैसे वायु का कोप होने से पीड़ा होती है, पित्त का कोप होने से दाह होता है, कफ का कोप होने से खुजली होती है, सन्निपात से तीनों लक्षण होते हैं और रक्त से दाह होता है, इस प्रकार से पांच कर्णमूल रोग जानने। ८६३ जिसके नाक का मार्ग रुक जाय, आच्छादित होय और उसमें से पतला पानी निकले, गला, तालु, होंठ ये सूख जायँ और कनपटी दूखे, गला बैठ जाय, ये वात के प्रतिश्याय (पीनस) के लक्षण जानने। ८६४ जिसकी नाक से दाह और पीला स्राव निकले, वह मनुष्य पीला और कृश हो जाय, उसका देह गरम रहे, नाक से अग्नि के समान धुंआ निकले, ये पित्त के पीनस के लक्षण हैं। ८६५ नाक से सफेद पीला बहुत कफ गिरे, उसकी देह सफेद हो जाय, नेत्रों कें ऊपर सूजन होय और मस्तक भारी रहे तथा गला, तालु तथा होंठ और शिर में खुजली विशेष चले, ये कफ के लक्षण हैं। ८६६ रुधिर की पीनस में नाक से रुधिर गिरे, नेत्र लाल होंय, उरःक्षत की पीड़ा के सदृश पीड़ा होय, श्वास अथवा मुख में वास आवे, दुर्गंधि का ज्ञान नहीं होय, ये रक्त के पीनस के लक्षण है। ८६७ जिसके नाक में वात, पित्त, कफ के पीनस के लक्षण होंय, तथा वह पीनस बारंबार पककर अथवा बिना पके नष्ट हो जाय, उसको सन्निपात का पीनस कहते हैं। यह विदेह आचार्य के मत से साध्य है। ८६८ जिसके नाक रुक जाय, वात शोणित कफ से नाक भीतर में सूखा सा रहे, गीला रहे, धूआं सा निकले, जिसके नाक में सुगन्ध, दुर्गंध मालूम न हो उसके पीनस प्रगट भई जाननी। इस वातजन्य विकार को आपीसन कहते हैं। ८६९ गले और तालुए में दुष्ट भया रक्तादिदोष करके वायुमिश्रित होकर नाक और मुख के मार्ग से दुर्गंधि निकले, इस रोग को

पूतिनास वा पूतिनस्य कहते हैं। ८७० वात, पित्त, कफ ये दूषित होकर त्वचा, मांस और मेद इनको दूषित करते हैं, उसके नाक में मांस के अंकुर उत्पन्न होते हैं उसको नासार्श कहते हैं। ८७१ सूर्य की गरमी करके मस्तक तप्त होने से पूर्व सञ्चित हुआ विदग्ध, गाढ़ा, खारी ऐसा कफ नाक से गिरे,उस व्यादिको भृंशथुरोग कहते हैं।८७२ नासिकाश्रित मर्म (शृंगाटक मर्म) के विषे वायु दुष्ट होकर कफसहित भारी शब्दको नासिकाके बाहर निकाले, इसको क्षव (छींक) कहते हैं। ८७३-७४ वायुसहित. कफ श्वास के मार्ग को बन्द करे, तब नाक का स्वर अच्छी रीति से नहीं चले। ८७५ जो दुष्ट होने से अथवा कपाल में चोट लगने से नाक में से राध और रुधिर बहे, इसको पूतिरक्त अथवा पूयरक्त कहते हैं। ८७६ वातादि दोष कुपित होने से नाक में ऊंची गांठ उत्पन्न होती है। उसको नासार्बुद कहते हैं। ८७७ बारंबार जिसकी नाक झड़ा करे और सूख जाय, नाक से अच्छी तरह श्वास नहीं आवे, नाक रुक जाय और फिर खुल जाय। श्वास लेने में वास आवे तथा उस रोगी को सुगन्ध दुर्गन्ध का ज्ञान न रहे। ऐसे लक्षण होने से इसको दुष्टप्रतिश्याय वा दुष्ट पीनस कहते हैं। यह कष्टसाध्य है। ८७८ वायु से नासिका का द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूख जाय तब मनुष्य बड़े कष्ट से ऊपर नीचे को श्वास लेय, उस रोग को नासाशोषं कहते हैं। ८७९ जिसकी नाक में पित्त दूषित होकर फुन्सी प्रगट करे और नाक भीतर से पक जाय उसको व्रणपाक कहते हैं। ८८० नाक से गाढ़ा, पीला अथवा सफेद, पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको पुटस्राव कहते हैं। ८८१ नाक अत्यन्त दाहयुक्त होने से उसमें वायु धुआं से सदृश विचरे और नाक प्रदीप्त अर्थात् गर्म होवे उसको दीप्तक कहते हैं। ८८२ रूख अन्न से, अत्यन्त भोजन, अध्यशन (भोजन के ऊपर भोजन) पूर्वदिशा की पवन सेवन करने से, बर्फ से, मैथुन से, मलमूत्रादिक का वेग धारण करने से, परिश्रम और दण्ड कसरत करने से इन कारणों से कुपित भई जो केवल वात अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तक को ग्रहण कर मन्यानाड़ी, भृकुटी, कनपटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओर से दूखें, कुल्हाड़ी से घाव करने की सी, अथवा अरणि के (आंच लगाने के काष्ठ के) मथने की सी पीड़ा होय उसको अर्धावभेदक अर्थात् आधाशीशी कहते हैं, यह रोग जब बहुत बढ़ जाता है तब एक ओर से कान से बहरापन हो जाता है अथवा एक ओर की आंख मारी जाती है। जिस ओर की पीड़ा होय उधर ये उपद्रव होते हैं। ८८३ जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे और रात्रि में विशेष दूखे, बांधने से अथवा सेकने से शांति होय, उसको वातजशिरस्ताप कहते हैं। जिसका मस्तक अङ्गार से तपाये के समान गरम होवे और नाक में दाह होय, शीतल पदार्थ से किंवा रात्रि में शांत हो उस मस्तकशूल को पित्त का जानना। ८८४ जिसका मस्तक भीतर से कफ करके लिप्त (लिहासासा) होवे, भारी बँधा सा और शीतल होवे तथा नेत्र सुजाकर मुख को सुजा देवे; इसे मस्तक रोग को कफ के कोप का जानना। ८८५ रक्तजन्य मस्तकरोग में पित्तकृत मस्तकरोग के सब लक्षण होते हैं तथा मस्तक का स्पर्श सहा नहीं जाता यह विशेष होता है। ८८६ त्रिदोष से उत्पन्न मस्तकरोग में वात, पित्त, कफ, इन तीनों के लक्षण होते हैं। ८८७ सूर्य के उदय होने से धीरे धीरे मस्तक, दूखने का आरम्भ होय और जैसे जैसे सूर्य बढ़े वैसे वैसे वह शूल नेत्र और भ्रुकुटी (भौंह) में दो प्रहर दिन बढ़े तक बढ़ता जाय और सूर्य के साथ बढ़कर फिर जैसे सूर्य अस्त होय वैसे वैसे पीड़ा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करने से मनुष्य को सुख होय, इस सन्निपातिक विकार को सूर्यावर्त कहते हैं। ८८८ मस्तक के रुधिर, वसा, कफ और वायु इनके क्षय होने से अत्यंत भयंकर मस्तकशूल होता है, छींक बहुत आवें, मस्तक गरम होवे तथा इसमें स्वेदन, वमन, धूम्रपान, नस्य और रुधिर निकालना, ये कर्म करने से यह मस्तकशूल बढ़ता है। इसको शिरःपाक अथवा

क्षयजशिरोरोग कहते हैं। ८८९ जिसके मस्तक में टांकी के तोड़ने की सी पीड़ा होवे, तथा क्रमि भीतर से मस्तक खाकर पोला कर देवें तथा भीतर से मस्तक फड़के तथा नाक में रुधिर, राध और कीड़े पड़ें। यह क्रमिज शिरोरोग बड़ा भयङ्कर है। ८९० दुष्ट हुए जो पित्त, रक्त और वायु सो बढ़कर नेत्रों में भयङ्कर सूजन उत्पन्न करे, इससे घोर पीड़ा और घोर दाह होय तथा नेत्र लाल बहुत हों। यह विष के वेग के समान बढ़कर गले में जाकर गले को रोक दे। इस शङ्ख के रोग से रोगी के तीन दिनों में प्राणों का नाश होवे, इन तीन दिन में कुशल वैद्य की औषध पहुँचने से रोगी बचे परन्तु प्रथम निश्चय कर चिकित्सा करनी चाहिये। ८९१ कपालरोगी के लक्षण नव तरह के हैं, जैसे (१) वातादिक दोष कुपित होने से मस्तक के समीप माथे के ऊपर के भाग पर सूजन उत्पन्न होती है, उसको उपशीर्षक कहते हैं। (२) रुधिर, कफ और क्रमि के कोप से माथे में बहुत फुन्सी हो जायँ उनमें से चेप विशेष निकले और क्लेदयुक्त होय, इन फुन्सियों को अथवा व्रणों को अरूंषिका कहते हैं। (३) वातादिक दोषों से माथे में गांठ होकर पके और फूटे, उसमें शूल उसमें दाह ये होंय उसको विद्रधि कहते हैं। (४) कफ वायु के कोप के केशों की जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होय तथा बारीक फुन्सी होकर पके उसको दारुण कहते हैं। कफवात के कोप से यह रोग होता है। इसका कारण यह है कि बिना पित्त से पाक नहीं होय। (५) त्रिदोष के कोप से मस्तक में गोल फुन्सी होती है उससे शूल दाह आदि पीड़ा हवे उसको पिटिका कहते हैं। (६) माथे में वातादि दोष कुपित होकर रुधिर और मांस को दूषित कर मोटी और गोल ऐसी गाँठ उत्पन्न करे, उसमें पीड़ा थोड़ी होवे उसकी जड़ नीचे रहती है। यह गांठ बहुत देर में बढ़ती और बहुत देर में पकती है उसको अर्बुद ऐसे कहते हैं। (७) पित्त वादी से साथ कुपित होकर रोमकूपों में अर्थात् बालों के छिद्रो में प्राप्त हो, तब मस्तक अथवा अन्य स्थान के बाल झड़ने लगे, पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये बालों के प्रगट होने के स्थान को रोक दे इससे फिर बाल नहीं उगे, इस रोग को इन्द्रलुप्त अर्थात् चाई रोग कहते हैं। यह रोग स्त्रियों के नहीं होता कारण यह है कि उनका रुधिर महीने के महीने शुद्ध होता है और निकलता रहता है इसी से वह रोमकूपों को नहीं रोकता। (८) इन्द्रलुप्त सदृश ही खालित्यरोग के लक्षण हैं। तहां इन्द्रलुप्त रोग मूंछ डाढ़ी में होता है और खालित्य रोग शिर में होता है। (९) क्रोध, शोक और श्रम के करने से शरीर में उत्पन्न भई जो उष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तक में जायकर बालों को पकाय दे अर्थात् सफेद कर दें वह पलित रोग होता है। ८९२ वातादि दोष जब कोए के मार्ग से संकुचित करें तब मनुष्य नेत्र को उघाड़कर नहीं देख सके। उस रोग को कुञ्चन अथवा कृच्छ्रोन्मील कहते हैं। ८९३ पलकों की जड़ में रहनेवाला पित्त कुपित होकर नेत्रों के बल जिनकी बरूनी अथवा वांफणी कहते हैं उनका नाश करे, नेत्रों में खुजली चले और दाह होय, उसको पक्ष्मशात कहते हैं। ८९४ कोए में अल्पपीड़ा तथा बाहेर से सूजा हुआ अत्यंत कीचड़ से व्याप्त हो उसको कफोत्क्लिष्ट वा प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं। ८९५ रुधिर के संबन्ध से नेत्र के कोए के भीतर के भाग में लाल तथा नरम अंकूर बढ़े उसको शोणितार्श वा लोहित कहते हैं। इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे बढ़ता है, इस रक्तज व्याधि को विदेहाचार्य असाध्य मानते हैं। ८९६ वर्त्माश्रित (कोए में आस्थित) जो वायु सो निमेष (कहिये पलक के उघाड़ने मूँदनेवाली) नस में प्रविष्य बारंबार पलकों को चलायमान करे उसको अरुङ्निमेष (नेत्र का मिचकाना) कहते हैं, यह रोग संनिपातज है। ८९७ नेत्र के कोए में लम्बे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे मांसांकुर होते हैं उसको शुष्कार्श अथवा रक्तोत्लिष्ट कहते हैं। ८९८ दूध के विकार से छोटे बालकों के नेत्र में खुजली, दाह और बांरबार स्राव होता है। उसको

कुकुणक कहते हैं। ८९९ ककड़ी के बीज के बराबर, मन्दपीड़ायुक्त, पृथक् ऐसी फुन्सी कोए में उठे उसको पक्ष्मार्श कहते हैं वह सन्निपातात्मक है ऐसा निमि और विदेह आचार्य का मत है। ९०० जिसके नेत्र के कोयों में सूजन से नेत्र के बराबर सूजन आय जावे उससे उस मनुष्य को कुछ नहीं दीखे। इस रोग को पक्ष्मरोध वा वर्त्मबन्ध कहते हैं। ९०१ वादी से चलायमान कोए के बाल नेत्र में प्रवेश करें और वे बारंबार नेत्र से रगड़े जायँ इसी से नेत्र के काले वा सफेद भाग में सूजन होय, वह केश (बाल) जड़ से टूट जावे, अतएव इस व्याधि को पक्ष्मकोप, उपपक्ष्म अथवा पित्तोत्क्लिष्ट भी कहते हैं। ९०२ कोयों में लाल सरसों के समान रुधिरस्रावयुक्त, खुजलीयुक्त भारी तथा पीसंयुक्त ऐसी फुन्सी होय उसको पोथकी कहते हैं। ९०३ नेत्र के वर्त्म धोने से अथवा नहीं धोने से बारंबार चिपक जावे, कोएं पककर राध से नहीं चिकटें तो इस रोग को श्लिष्टवर्त्म कहते हैं। ९०४ नेत्र का कोया त्वचा के समान वर्ण तथा कठिन फुन्सी से प्राप्त होय, उस रोग को बहलवर्त्मरोग कहते हैं। ९०५ नेत्र के ढ़कनेवाली वाफणी अर्थात् कोए में फुन्सी होय और उसका मुख भीतर होय; वह लाल बड़ी तथा खुजली संयुक्त होय, उसको पक्ष्मोत्संग पिटिका कहते हैं, यह त्रिदोषजन्य है, ९०६ नेत्र के कोए में भीतर गोल, मन्द, वेदनायुक्त, कुछ लाल, जलदी बढ़नेवाली ऐसी जो गाँठ होय उसको अर्बुद कहते हैं; यह संनिपातज है। ९०७ पलकों के समीप कुम्भिका के बीज के समान फुन्सी होय वह पककर फूट जाय और फूटकर बहे उसको कुंभिका कहते हैं, कोई आचार्य कहते हैं कि कच्छदेश में (दाड़िम अनार) के बीच के आकार कुम्भिका होती है। ९०८ कोए में जो पिडिका कठिन और बड़ी होकर सर्वत्र छोटी फुन्सियों से व्याप्त होय उसको वर्त्मशर्कर अथवा सिकतावर्त्म कहते हैं। ९०९ नेत्र के कोए में बेर के समान बड़ी कठिन खुजली संयुक्त चिकनी गाँठ हो उसको अलगण कहते हैं यह रोग कफजन्य है, इसमें पीड़ा और पकना नहीं होता। ९१० दाह तोद (चोंटनी संयुक्त) लाल, नरम, छोटी मंद पीड़ा करनेवाली ऐसी फुन्सी नेत्र के कोए में होय उसको अंजना कहते हैं, यह सन्निपातज हैं। ९११ क्लिष्टवर्त्मरोग (जो पूर्व कहा) फिर पित्तयुक्त रुधिर को दहन करे तब वह दही दूध माखन के समान गीला हो जाय अतएव उस व्याधि को वर्त्मकर्दम कहते हैं। ९१२ जिसके नेत्र के कोए के बाहर अथवा भीतर काली सूजन तथा पीड़ा होय उसको श्यावर्त्म कहते हैं। यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है। ९१३ तीनों दोष कुपित होकर नेत्र के कोयों को सुजाय देवें, तथा उसमें छिद्र हो जाय उन कोयों में से कमलतंतु के समान भीतर से पानी झरे, इस रोग को विसवर्त्म कहते हैं, ९१४ नेत्र की सफेद काली संधियों में तांबे के समान बड़ी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं। ९१५ जिसके नेत्र के पलक पृथक् पृथक् होय तथा जिसके पलक नीचे और खुले नहीं ऐसे नेत्र के कोए मिले नहीं, उसको उत्क्ष्टवर्त्स कहते हैं। इसको शालाक्यसिद्धांतवाला वातहतवर्त्म कहता है। ९१६ जिसकी सन्धि में पित्त से पीला गरम जल बहे उसको जलस्राव कहते हैं। ९१७ जिसमें सफेद, गाढ़ी और चिकनी राध बहे उसको कफस्राव कहते हैं। ९१८ जिस विकार में से विशेष गरम रुधिर बहे उसको रक्तस्राव कहते हैं। ९१९ नेत्र की सफेद काली संधियों में तांबे के समान छोटी गोल जो फुन्सी होवे और वह फुन्सी दाह होकर पके उसको पर्वणी कहते हैं। ९२० नेत्र की संधि में सूजन होकर पके तथा उसमें राध बहे,उसको पूयस्राव कहते हैं, यह रोग संनिपातात्मक है, ९२१ जिसके नेत्र के, शुक्लभाग की संधि में और पलकों की संधि में उत्पन्न हुई अनेक प्रकार की कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे और नेत्र की पलक और सफेदी भाग के संधि में प्राप्त होकर नेत्र के भीतर के भाग को दूषित करे, भीतर फिरे, उसको कृमिग्रंथी कहते हैं। ९२२ नेत्र की संधि में बड़ी गांठ होवे, वह थोड़ी पके, उसमें खुजली बहुत नहीं हो, उसको

उपनाह कहते हैं। ९२३ नेत्र की सफेद काली संधियों में तांबे के समान बड़ी फुन्सी उठे उसको अलजी कहते हैं। ९२४ नेत्र की संधि में सूजन होवे और पककर फूट जाय, उसमें से दुर्गंधि आवे और राध बहे तथा तोद (सुई छेदने की सी पीड़ा) होय, उसको पूयालस कहते हैं। ९२५ जिसके नेत्र की नस पीड़ारहित अथवा पीड़ारहित तांबे के समान लाल रंग की हो जाय और वह बराबर अधिकाधिक (जियादह जियादह) लाल हो जाय, इस रोग को शिरोत्पात (सबलवायु) कहते हैं। यह रोग रक्तजन्य है। ९२६ अज्ञान करके शिरोत्पात (सबलवायु) सबकी उपेक्षा करनें शिराहर्षरोग होता है अर्थात् इलाज न करने से शिराहर्ष रोग होता है, उसमें नेत्रों से लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरे और उस रोगी को नेत्र से कुछ दिखलाई न देवे। ९२७ नेत्र के सफेद भाग में शिरा (नस) का समूह जाली के समान होय और वह कठिन तथा रुधिर के समान लाल होवे, इसको शिराजाल कहते हैं, ९२८ नेत्र के सफेद भाग में श्याम वर्ण मांसतुल्य सीपी के समान जो बिन्दु होय उसको शुक्तिक कहते हैं। ९२९ नेत्र के शुक्ल भाग में सफेद मृदु मांस बहुत दिन में बढ़े, उसको शुक्लार्म कहते हैं, ९३० नेत्र में जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजा के समान (कुछ लाल काला) दीखें उसको अधिमांसार्म कहते हैं। ९३१ नेत्रों के सफेद भाग में पतला, विस्तीर्ण तथा लाल, ऐसा मांस बढ़े, उसको प्रस्तार्यर्मरोग कहते हैं। ९३२ कफ वायु के कोप से शुक्र भाग में पिष्ट (पिसा) सो जो मांस बढ़े उसको पिष्टक कहते हैं। वह मल से मिले अर्श (बवासीर) के समान होता है। ९३३ नेत्र के शुक्लभाग में शिरा (नसों) से व्याप्त सफेद फुन्सी होय, उसको शिराजपिटिका कहते हैं। वह कृष्णदुभाग के समीप होती है। ९३४ नेत्र के सफेद भाग में कांसे के समान कठिन अथवा पानी के बिन्दु के समान ऊंची जो गांठ होय उसको कफग्रंथि तक अथवा वलस कहते हैं। ९३५ शुक्लभाग में खरगोश के रुधिर के समान जो बिन्दु (बूंद) नेत्र में उत्पन्न होय उसको अर्जुन कहते हैं। ९३६ नेत्र में जो कठिन तथा फलनेवाला स्राव रहित मांस बढ़े उसको स्नाय्वर्म कहते हैं। ९३७ नेत्र के सफेद भाग में लाल कमल के सदृश लाल वर्ण का और मृदु ऐसा मांस बढ़ता है उसको अधिमांस अथवा रक्तार्म कहते हैं। ९३८ नेत्र के काले भाग में अभिष्यन्दसे सीग तुमड़ी की पीड़ायुक्त, शङ्ख, चन्द्र, कुन्दपुष्प, इनके समान सफेद, आकाश के समान पतला जो व्रणरहित शुक्र कहिये, फूला होय उसको शुद्धशुक्र कहते हैं, यह सुखसाध्य है। ९३९ जिस शुक्र के बीज का मांस गिर जाय, इसी से शुक्र के स्थान में गढ़ेला हो जाय अथवा उसके विपरीत पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चञ्चल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिराओं करके व्याप्त हो, बारीक हो गया हो, दृष्टि का नाश करनेवाला हो, पटल कहिये परदों के भीतर भया हो, चारों ओर से लाल हो और बीच में सफेद और बहुत दिन का शुक्र (फूला) हो इसको शिराशुक्र कहते हैं। यह असाध्य है। ९४० नेत्र के काले भाग में शुक्र कहिये फूला सा हो जाय और भीतर से गढ़ा सा होय उसमें सुई के छेद के समान छिद्र पड़ा हुआ देखने में आवे, तथा नेत्रों में से अतिगरम और बहुत सा स्राव होवे। इस रोग को क्षतशुक्र कहते हैं। इसमें पीड़ा बहुत होती है। ९४१ काले भाग में बकरी की शुष्क विष्ठा के समान दूखनेवाला लाल हो और गाढ़ा, कुछ काले से आंसू बहे उसको अजक कहते हैं। ९४२ नेत्र के कृष्ण भाग में वातादि दोषों के योग से चारों ओर सफेद शुक्र (फूला) फैला जावे उसे सन्निपातजन्य शिरासंग अथवा अक्षिपाकात्यय रोग जानना। ९४३ दृष्टि के सर्व पटलों के भीतर कालिकास्थि के समीन पहले पड़दे में तथा दूसरे पड़दे में तथा वातादि दोष प्राप्त होकर मनुष्य नेत्र के आगे अनेक प्रकार के स्वरूप देखे उनको तिमिर कहते हैं। फिर वहां तिमिर कुछ दिन रोग दशा को प्राप्त होता है। उसको (मोतियाबिन्द) कहते हैं, इसके

आठ प्रकार के लक्षण है जैसे (१) वादी के काच (मोतियाबिंदु) में रोगी को मलीन, कुछ लाल तिरछी और भ्रमती ऐसी वस्तु दीखे इसे वातजकाचबिंदु जानना। (२) जिस मोतियाबिंद से रोगी को सूर्य खद्योत (पटबीजना), इन्द्रधनुष, बिजली और नाचनेवाले मोर तथा सर्व वस्तु नीली दीकें, वह पित्तजकाचबिंदु कहाता है। (३) चिकनी और सफेद तथा पानी में कर निकालने के समान और भारी ऐसा रूप कफज काचरोग से दीखे। (४) अनेक प्रकार के विपरीत (अर्थात् एक के अनेक दो अथवा अनेक प्रकार के रूप) दीखें। हीन अङ्ग के अथवा अधिक अङ्ग के रूप दीखें और ज्योतिःस्वरूप से सब पदार्थ दीखें, इस काचबिंदु को संनिपातज जानना। (५) रक्तज काचबिंदुरोग में लाल और अनेक प्रकार का तथा अन्धकार किश्चित् सफेद काली और पीली ऐसी वस्तु दीखें। (६) रक्त के तेज से मिश्रित हुए पित्त से संसर्गजकाचबिन्दु होता है। इसके योग से रोगी को दिशा आकाश और सूर्य ये पीले दीखें, सर्वत्र सूर्य ऊगे से दीखे तथा वृक्ष भी तेजस्वरूप दीखें, इसको परिल्यामी रोग भी कहते हैं। परिम्लायी पित्त को नील कहते हैं, इस रोग को कोई आचार्य रक्तपित्त से होता है, ऐसा कहते हैं। ९४४ वात के लिङ्गनाश में दृष्टि के ऊपर मोटा कांच के समान लाल मण्डल होता है, वह चञ्चल और खरदरा होता है। ९४५ पित्त से दृष्टिमण्डल किश्चित नीला तथा कांच के समानी पीला होवे, ९४६ कफ़ से भारी, चिकना, कुन्दमूल के समान और चन्द्रमा के समान सफेद होय, उसके नेत्र में हलनेवाले कमलपत्र के ऊपर घानी के बूदों के समान टेढ़ी तिरछी सफेद बूंद फली सी दिखलाई दे। ९४७ त्रिदोषजन्य लिङ्गनाश में तेरह तरह के मंडल होंय तथा सर्व दोषों के लक्षण न्यारे न्यारे दीखें। ९४८ उपसर्गजन्य अर्थात् अभिघातज लिङ्गनाश दो प्रकार का है, एक निमित्तजन्य और दूसरा अनिमित्तजन्य। तिन में शिरोऽभिताप करके (विषवृक्ष के फूल को मिले पवन का मस्तक में स्पर्श होने से) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं। इसमें रक्ताभिषन्यन्द के लक्षण होते हैं। देव, ऋषि, गन्धर्व, महासर्प और सूर्य इनके सन्मुख दृष्टि को लगाकर (टकटकी लगाकर) देखने से जिस मनुष्य की दृष्टि नष्ट होय उसको अनिमित्त लिङ्गनाश कहते हैं। इस रोग में नेत्र स्वच्छ दीखते हैं और दृष्टि वैडूर्यमणि के समान स्वच्छ कहिये, श्यामवर्ण होय। ९४९ संसर्गज लिङ्गनाश में पित्त दुष्ट हुए रुधिर से दूषित होने से दृष्टि का मण्डल लाल और पीला हो जाता है। ९५० रुधिर के दृष्टिमण्डल मूंगा के समान अथवा लाल कमल के समान लाल होवे। ९५१ दृष्टि-कोण रोग के आठ प्रकार के लक्षण हैं जैसे-(१) पित्त दुष्ट होकर बढ़ने से जिस मनुष्य की मनुष्य की दृष्टि पीली होय तथा उसके योग से उस मनुष्य को सर्व पदार्थ पीले रंग की दीखें, उस दृष्टि को पित्तविदग्ध कहते हैं। (२) अम्लपित्त करके मनुष्य को रद्द करने के समय दृष्टि के अभिघात होने से सर्व पदार्थ सफेद रंग के दीखने लग जाते हैं। उस दृष्टिरोग को अम्लपित्तविदग्ध कहते हैं। (३) तीसरे पटल में दोष (पित्त) जानने से दिन में रोगी को नहीं दीखे, रात्रि में शीतलता के कारण पित्त कम होने से दीख, उसको उष्णविदग्ध अथवा दिवांध रोग कहते हैं। (४) जिस पुरुष की दृष्टि दोषों से व्याप्त होकर नौले की दृष्टि के समान चमके वह पुरुष दिन में अनेक प्रकार के रूप देखे, इस विकार को नकुलांध्य कहते हैं। (५) शोक, ज्वर, परिश्रम और मस्तकताप इन कारणों से पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टि में विकार होय, उससे उस मनुष्य को सर्व पदार्थ धूओं के रंग से दीखें। इस रोग को धूसरांध्य, धूमदर्शी अथवा शोकविदग्ध दृष्टि कहते हैं। (६) जो दोष (कफ) तीनों पटलों में रहे वह नक्तांध्य (रतौंधी) को उत्पन्न करे वह पुरुष दिन में सूर्य के तेज से कफ होने से देखे, रात्रि को नहीं देखे, उसको रात्र्यांध्य वा नक्तांध्य कहते हैं। (७) दृष्टि के मध्यगत पित्त दुष्ट होने से मनुष्य

को दिन में बड़े पदार्थ छोटे दीखे और रात्रि में अच्छे दीखें उसको ह्रस्वदृष्टि कहते हैं। (८) जो दृष्टि वायु से विकृत होकर भीतर से संकुचित होवे तथा उसमें पीड़ा होवे उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं। ९५२ रक्ताभिष्यंदन में नेत्रों से लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय, और नेत्रों के ओर पास रेखा सी लाल दीखें और जो पित्ताभिष्यन्द के लक्षण कहे हैं। वे सब लक्षण इसमें होंय। ९५३ वादी से नेत्र दूखने आये हों। उनमें सुई चुभोने की सी पीड़ा होय, नेत्रों का स्तम्भन (ठहर जाना), रोमांच, नेत्रों में रेत गिरने समान खटके तथा रूक्ष होय, मस्तक में पीड़ा हो, नेत्रों में पानी गिरे, परन्तु नेत्र सूखते रहें और नेत्रों से जो पानी गिरे वह शीतल होय। ९५४ पित्त से नेत्र दूखने आने से उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पक जायँ, उनमें शीतल पदार्थ लगाने की इच्छा हो। नेत्रों में धुआं निकलने अथवा नेत्रों में धुआं जाने की सी पीड़ा होय तथा नेत्रों में अश्रु (आँसू) बहुत पड़ें और गरम पानी निकले, आंख पीली सी मालूम पड़े। ९५५ कफ से नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रों में लगाने से आराम मालूम (अर्थात् नेत्रों में सेक अच्छा मालूम) हो तथा नेत्र भारी होंय, सूजन होय, खुजली चले। कीचड़ से नेत्र दूषित हों और शीलत हो, उनमें से स्राव होय सो गाढ़ा और बहुत होय। ९५६ वायु क्रम से भी भ्रकुटी में प्राप्त हो और कभी कभी नेत्रों में प्राप्त होकर अनेक प्रकार की तीव्र पीड़ा करे उसको वातविपर्यय कहते हैं, ९५७ नेत्रों में सूजन आकर पक जाय, उनमें आंसू बहें और पके गूलर के समान लाल होय, ये अल्पशोथ के लक्षण हैं। यह अल्पशोथ त्रिदोषज है। ९५८ घाटी (घार), कान, मस्तक, ठोढ़ी, मन्यानाड़ी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भ्रकुटी (भौंह) वा नेत्रो में तोद भेदादि पीड़ा करे, इस रोग को अन्यतोवात कहते हैं, अर्थात् अन्य स्थानों में स्थित होकर अन्य स्थानों में पीड़ा करे, इसी से इसको अन्यतोवात कहते हैं। ९५९ वातादि दोषों करके नेत्र के काले भागर पर छर होके सब नेत्र सफेद हो जावें और तीव्र वेदना होय उसको पाकात्यय कहते हैं। ९६० नेत्र खुले नहीं अर्थात् संकुचित हो जायँ, जिनकी बाफणी कठिन और रूक्ष होय, जिसके नेत्रों में दाह विशेष होय, यथार्थ दीके नहीं, खोलने में बहुत दुःख होय उसको शुष्काक्षि पाकरोग कहते हैं। यह रोग रक्तसहित वादी से होता है। ९६१ नेत्रों में सूजन आकर पक जायँ, उनमें आँसू बहे और पके गूलर के समान लाल होंय, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोग के हैं, यह व्याधि त्रिदोषजन्य है, ९६२ मध्य में कुछ नीलवर्ण और आसपास लाल भरा हो ऐसे सर्वनेत्र पक जायँ और उनमें पीले रङ्ग की फुन्सी होंय, उनमें दाह होकर सूज्न होय तथा नेत्रों से पानी झरे। यह अम्ल (खटाई) के खाने से होता है। इसको आध्युषित कहत हैं। ९६३ वातज अधिमन्थ की उपेक्षा करने से वह नेत्रों को सुखाय देवे, उस मनुष्यों के नेत्रों में तोद (सूई चुभाने की सी पीड़ा) दाहादि भारी पीड़ा होय, यह हताधिमन्थनामक नेत्ररोग असाध्य है। इसको दृष्टचुत्क्षेपण, दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोष ऐसे कहते हैं इस रोग से नेत्र सूखे कमल से हो जाते हैं। ९६४ जो मनुष्य दूसरे को मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यक नपुंसक कहते हैं, इसका दूसरा पर्यायवाचन नाम दृग्योनि है। ९६५ माता पिता के अति अल्परजवीर्य से जो गर्भ रहे वह आसेक्यनामक नपुंसक होता है। वह अन्य पुरुष से अपने मुख में मैथुन कराकर उसके वीर्य को खा जाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिङ्ग सतर) होवे तब स्त्री से मैथुन करे, इसका दूसरा नाम मुखयोनि है। ९६६ जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंज़न करावे जब उसको चैतन्यता प्राप्त हो तब स्त्री के विषे पुरुष के समान प्रवृत्त होय उसको कुम्भिक नपुंसक कहते हैं, इसका गुदायोनि यह पर्याय शब्द है। इस कुम्भिक नपुंसक की उत्पत्ति ऐसे होती है कि ऋतुकाल में अल्परजस्क स्त्री से श्लेष्मरेतवाले पुरुष के संभोग करने से उस स्त्री का कामदेव शांत न हो इस कारण उस स्त्री का

मन अन्य पुरुष से सम्भोग करने की इच्छा करे तब उसके कुम्भिनामक नपुंसक होता है। कोई आचार्य कुम्भिक नपुंसक का लक्षण ऐसा कहते हैं कि जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं, वे पहले स्त्री के पीछे बैठकर पशु के समान शिथिल लिङ्ग से ही उसकी गुदा भञ्जन करें। इस प्रकार करने से जब चैतन्यता प्राप्त हो तब मैथुन करें। उसको कुम्भिक नामक नपुंसक कहते हैं। ९६७ जो पुरुष दुष्ट योनि में उत्पन्न होय उसको योनि तथा लिंग के सूंघने से चैतन्यता प्राप्त होय उसको सुगंधि वा सौगंधिक तथा नासायोनि कहते हैं। ९६८ जो पुरुष ऋतुकाल में मोह से स्त्री के सदृश प्रवृत्त होवे अर्थात् आप नीचे से सीधा होकर ऊपर स्त्री को चढ़ायकर मैथुन करे उससे जो गर्भ रहे वह पुरुष की स्त्री की सी चेष्टा करे और स्त्री के आकार होय स्त्री की चेष्टा करै। अर्थात् (स्त्री के समान नीचे सोकर अन्य पुरुष के अपने लिङ्ग के ऊपर वीर्य पतन करावे)। ९६९ वादी से शुक्र झागवाला, सूखा, कुछ गाढ़ा और थोड़ा तथा क्षीण हो यह गर्भ के अर्थ का नहीं हैं। ९७० पित्त से दूषित शुक्र नीला पीला अत्यन्त गरम होता है, उससे बुरी बांस आवे और जब निकले तब लिङ्ग में दाह होय। ९७१ कफ से शुक्र-(वीर्य) शुक्रवहा नाड़ियों के मार्ग रुकने से अत्यन्त गाढ़ा हो जाता है। ९७२ कुणप शुक्र दोष में शुक्र की गन्ध मुर्दा के सदृश आवे। ९७३ पित्त कफ से दूषिक शुक्र में राधकीसी वास आवे। ९७४ पित्तवादी से शुक्र क्षीण हो जाता है। ९७५ कफवादी से शुक्र गांठदार होता है। ९७६ संनिपात से दूषित हुए शुक्र में सब दोषों के लक्षण होते हैं और पीड़ा होय तथा उसमें मूत्र और विष्ठाकीसी वास आवे। ९७७ आर्तव अर्थात् स्त्रियों के यौवन में महीने के महीने जो योनि के द्वारा रज निकलता है सो आठ प्रकार के दोष वात, पित्त, कफ, रक्त, द्वंद्व और संन्निपात इन करके दुष्ट होने से गर्भधारण के अयोग्य होता है। उन उन दोषों के अनुसार शुक्र दोषों के लक्षण जान लेना। ९७८ विरुद्ध मद्यसेवन, अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अत्यन्त भोजन, अत्यन्त बोझे का उठाना तथा दिन में सोना इत्यादिक सर्व कारणों करके स्त्रियों का रज दुष्ट होकर जो प्रवाह बहे उसको प्रदर कहते हैं। उसके पूर्वरूप ये हैं—अंगों का टूटना, पीड़ा, दुर्बलता, ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, दाह, प्रलाप, देह में पिलास, नेत्रों में तन्द्रा और वातजन्य रोग इत्यादि उपद्रव होते हैं। ९७९ वात से प्रदर रूक्ष, लाल, झागसंयुक्त मांस और सफेद पानी के समान थोड़ा बहे, उसमें वादी की आक्षेपकादि पीडा होती है। ९८० पित्त से किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर बहै उसमें दाह चिमचिमादि पीला होय तथा उसका वेग अत्यन्त होय। ९८१ कफ से आमरस (कच्चा रस) संयुक्त, चिकना, किंचित् पीला, मांस के धुले जल के समान स्राव होय, इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं। ९८२ जो प्रदर शहद, घृत, हरिताल और मज्जा इनके रंग के समान तथा मुर्दाकीसी दुर्गंधियुक्त होय इसको त्रिदोषज प्रदर जानना, यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करे। ९८३ योनिरोग के लक्षण जैसे—(१) जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं। (२) जो योनि दाह, पाक, ज्वर आदि पित्त के लक्षणों से युक्त होय और उसमें से नीला, पीला, काला आर्तव (रज) निकले उसको पित्तला कहते हैं। (३) जो योनि बहुत शीतल और सेमर के गोंद के समान चिकनी होय तथा उसमें खुजली चले उसको श्लेष्मला कहते है। (४) जिस योनि में वात, पित्त, कफ इन तीनों के लक्षण मिलें उसको सन्निपातजा कहते हैं। (५) जो योनि स्थानभ्रष्ट होय, वह बड़े कष्ट से बालक को प्रसूत करे उसको रक्तजा वा प्रस्रंसिनी कहते हैं, जिस योनि का अंग बाहर निकल आवे और इसे विमर्दित करने से प्रसव योग नहीं होता है। (६) जिस योनि में दाहयुक्त रुधिर बहे उसको लोहितक्षया कहते हैं। (७) जिस योनि का आंर्तव नष्ट हो उसको शुष्का अथवा वंध्या कहते हैं। (८) जिसमें से रजोयुक्त शुक्रवायु

बराबर बहे उसको वामिनी कहते हैं। (९) जो योनि आर्तव से रहित होती है उस स्त्री के स्तन नहीं होते। और मैथुन के समय जिस योनि का खरदरा स्पर्श मालूम होय उसको षण्ढी कहते हैं। (१०) बड़े लिंगवाले पुरुष को तरुण स्त्री के साथ मैथुन करने से उस स्त्री के योनि के बाहर दोनों तरफ अण्डकोश के समान मांस की दो गाँठ उत्पन्न हों उस योनि को अन्तर्मुखी कहते हैं। (११) जिस योनि का छिद्र सुई के अग्रभाग के समान सूक्ष्म होता है। उसको सूचीमुखी कहते हैं (१२) जिस योनि में निरन्तर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं। (१३) जिस योनि में रुधिरक्षय होने से गर्भञ्न रहे उसको जातघ्नी वा पुत्रघ्नी कहते हैं। (१४) जिसके मैथुन करने में अत्यन्त पीड़ा होय उसको परिप्लुता कहते हैं। (१५) जिस योनि से झाग से मिला आर्तव (रज) ऊपर के भाग में बड़े कष्ट से उत्तरे उसको उपप्लुता कहते हैं। (१६) जो योनि थोड़े मैथुन से लिङ्ग से पहले स्रवे उसको प्राक्चरणा कहते हैं। उसमें गर्भ धारण नहीं होता है। (१७) जिस योनि का मुख निरन्तर फटा रहे उसको महायोनि वा विवृता कहते हैं। (१८) जिसमें कफ रुधिर करके कर्णिका (कमल के भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) हो उसको कर्णिका कहते हैं। (१९) जो योनि अतिमैथुन से भी सन्तोष को प्राप्त नहीं होवे उसको नन्दा कहते हैं। (२०) जो योनि बहुबार मैथुन करने से पुरुष के पीछे द्रवे (छुटे) उसको अतिचरणा योनि कहते हैं। यह कफजनित रोग है। ९८४ दिन से सोने से, अतिक्रोध, अतिशय परिश्रम, अत्यन्त मैथुन करने से और योनि में नखआदि से क्षत पड़ने से, वातादिक दोष कुपित होने से योनि में सतरा के आकार का राध से मिला ऐसा मांस का गोला होता है उसको योनिकन्द कहते हैं। ९८५ वादी से योनि का कन्द रूक्ष, विवर्ण और तना हुआ ऐसा होता है। ९८६ पित्त से योनिकन्द लाल, दाह और ज्वर इन करके युक्त होता है। ९८७ कफ से योनिकन्द नीला और कण्डूयुक्त होता है। ९८८ संनिपातज योनिकन्द वात, पित्त, कफ इनके लक्षणों से युक्त होता है। ९८९ गर्भरोग में आठ प्रकार के लक्षण, जैसे–(१) स्त्री का गर्भ रहने से पश्चात् विदाही और तीक्ष्ण पदार्थ खाने में देह में गरमी बढती है, उससे योनि के द्वारा रक्तस्राव होता है। रक्तस्राव होने से गर्भ बढ़ता नहीं और पेट में किञ्चित् हले उसको उपविष्टकगर्भ कहते हैं। (२) शुक्र धातु और आर्तव इनका संयोग होते समय वायु उस गर्भ का आकार सर्प के सदृश करे उसको नागोदर कहते हैं। यह गर्भ निर्बल होकर पड़ता है अथवा पेट में ही नष्ट हो जाता है। (३) माता के मानसिक तथा आगन्तुक दुःख के प्रसूत होने के प्रथम वायु कुपित होकर कूख में शूल उत्पन्न करके गर्भ को मार दे इसको गर्भमक्कल्ल कहते हैं। और प्रसूति के अनन्तर वायु कुपित होकर योनि से रुधिर जाल आदि जो गिरते हैं उनको रोककर ऊपर जाके हृदय, वस्ति, मस्तक और कूख में शूल उत्पन्न करे इसको प्रसूतिमक्कल्ल कहते हैं। यह योनि के संकोच और घोर ऊर्ध्व श्वास को उत्पन्न करके प्रसूंत भई स्त्री को मार देता है। (४) मूढ (कुंठित गति) वायु गर्भ को मूढ (टेढ़ा) कर देता है और योनि तथा पेट में शूल उत्पन्न करे, मूत्रोत्सर्ग (धीरे धीरे पीडासहित शूल निकला) करे। इसको मूढगर्भ कहते हैं। इस मूढगर्भ की आठ प्रकार की गति होती है। विगुण वायु से गर्भ विपरीत (टेढ़ा) होकर अनेक प्रकार करके योनि के द्वार में आयकर अड जाता है। जैसे–कोई गर्भ मस्तक से योनि के द्वार को बन्द कर देता है, कोई पेट से योनि के मार्ग को रोक देय; कोई शरीर के विपरीतपन से योनि के मार्ग को रोक देय, कोई एक हाथ से योनि के मार्ग को रोक दे, कोई दोनों हाथों को बाहर निकालकर योनि के द्वार को रोक दे, कोई गर्भ तिर्छा होकर योनि के मार्ग को रोक दे, कोई गर्भ मन्यानाड़ी के मुड़ने से नीचे को मुख होय वह योनि के द्वार को रोक दे और कोई गर्भ–पार्श्वभंग (पसवाड़े भंग) होने से द्वार को देय इस प्रकार से मूढगर्भ की

आठ गति जाननी। (५) जो स्त्री गर्भिणी होने से पश्चात् अकाल में भोजन करे और रूक्षादि पदार्थ खावे उसके गर्भ को वायु कुपित होकर सुखाय देय है, उस करके उस स्त्री की कूख बड़ी नहीं दीखती, वह वायु से पीडित होकर उतने का उतना ही रहे, बढ़े नहीं इसको विष्टंभगर्भ कहते हैं। (६) गर्भ रहकर बढे नही और कुछ काल से पेट में ही जीर्ण हो जाय उसको गूढगर्भ कहते हैं। (७) गर्भशय्या में गर्भ के वेष्टन के अर्थ जरायु (झिल्ली) रहती है, उसके दोष से गर्भ को विकार होता है उसको जरायुदोष कहते हैं। (८) अभिघात (चोट) विषमाशन (विषमभोजन) पीडनादिक इन कारणों से जैसे पका हुआ फल वृक्ष से चोट लगने से क्षणभर में गिर जाता है, उसी प्रकार गर्भ अभिघातादि कारणों से गिरता है, चौथे मासपर्यंत गर्भ पतली अवस्था में होने से जो स्रावे उसे स्राव कहते हैं और पांचवें छठे महीने पर्यत शरीर बनने ऊपर जो गर्भ निकले उसे गर्भपात कहते हैं। ९९० वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्री के सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनों में प्राप्त हो मांसरक्त को दुष्ट करके स्तनरोग उत्पन्न करे। ९९१ वादी से होनेवाले स्तनरोग में शूल, तोद आदि पीडा होती है। ९९२ पित्त से ज्वर, दाह आदिक होते हैं। ९९३ कफ से थोड़ी पीड़ा और खुजली होती है। ९९४ संनिपातज स्तनरोग में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं। ९९५ अभिघात (चोट) आदि के लगने से स्तन में सूजन होती है। उसमें व्रण पड जावे सब वातादिकों के लक्षण होते हैं, उसको क्षतज स्तनरोग कहते हैं। ९९६ जो पुरुष स्त्री के कामदेव की शांति करने में समर्थ नहीं हो और मूर्ख होय तथा व्यवहार को न जाने ऐसा पति होने से जो सन्ताप होता है उस करके जो रोग होय उसको अदक्षपुरुषोत्पन्न स्त्रीरोग कहते हैं। ९९७ जिस स्त्री के सपत्नी (सौत) होवे उसको अपने पति की प्रीति दूसरी स्त्री के ऊपर होने के दुःख से जो रोग होता है उसको सपत्नीविहित स्त्रीरोग कहते हैं। ९९८ अपने पति का मरण होने से उसके साथ सती होने की इच्छा जो करे, उसकी इच्छा निष्फल होने से शोकादिक करके जो रोग होता है उसको दैविक स्त्रीरोग कहते हैं। ९९९ जिस स्त्री के बालक प्रगट हो चुका हो ऐसी स्त्री के मिथ्या उपचार करने से दोषजनक अन्न पान के सेवन करने से, कोप करने से अथवा अजीर्णपर भोजनादिक करने से प्रसूतिरोग होता है। उसमें ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा और बलक्षय तथा कफवातजन्य रोग में उत्पन्न होनेवाले तन्द्रा, अन्नदोष और मुख से पानी का गिरना आदि विकार, अशक्तता, मन्दाग्नि ये होते हैं। इन सब ज्वरादिकों को प्रसूतिरोग कहते हैं, इन सबमें एक रोग प्रधान होता है और बाकी के उपद्रव कहलाते हैं। १००० जो बालक वातदूषित दूध को पीता है उसको वात के रोग होते हैं उसका शब्द क्षीण हो जाय, शरीर कृश होय और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे। १००१ जो बालक पित्तदूषित दूध को पीवे उसके पसीना आवे, मल पतला हो जाय, कामला रोग होय, तथा पित्त के और भी रोग होयँ (प्यास का लगना, सर्वांग में दाह आदि अनेक रोग होयं)। १००२ जो बालक कफदूषित दूध को पीवे उसके मुख से लार बहुत गिरे तथा कफ से रोग होयँ, (निद्रा आवे अंग भारी हो, सूजन होय, वमन होय, खुजली चले)। १००३ बालकों के प्रथम दाँत उत्पन्न होते समय ज्वर, अतिसार, खाँसी, मस्तक में पीड़ा, वमन, अशक्तता इत्यादि उपद्रव होते हैं। उस रोग को दंतोद्भेद कहते हैं। १००४ सातवें वा आठवें वर्ष में बालक के दाँत गिरते हैं, उस समय जो ज्वरादि उपद्रव होते हैं उस रोग को दंतघात कहते हैं। १००५ निद्रा में जो बालक दाँत से दाँत घिसके बजाता है उसको दन्तशब्द कहते हैं। १००६ जिस बालक के दाँत जिस काल में गिरते हैं उसके प्रथम ही गिरें उसको अकालदन्त कहते हैं। १००७ बालक के मलमूत्र करने के बाद गुदा के न धोने से अथवा पसीना आने से तथा धोने के अनन्तर रुधिर कफ से खुजली उत्पन्न होय

तदनंतर खुजाने से शीघ्र फोड़ा उत्पन्न होय और उससे स्राव होय, पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधि को प्रगट करें इसको अहिपूतन कहते हैं। यह रोग ग्रंथान्तर में क्षुद्ररोगों में कहा गया है परन्तु यह रोग बालकों के होता है अतएव इसको बालरोगों में कहा है। यह रोग माता के दुष्ट दुध के पीने से बालक के होता है। १००८ बालक का मुख पक जावे उसको मुखपाक कहते हैं। १००९ बालक के मुख में से लार बहे उसको मुखस्राव कहते हैं। १०१० बालक का गुदा पके उसको गुदपाक कहते हैं। १०११ बालक के कपाल में व्रण होवे, उससे ज्वर आदि होता है, उसको उपशीर्षक कहते हैं। १०१२ बालक के भीतर त्रिदोष से महापद्म विसर्परोग होता है, वह दो प्रकार का है–१ शीर्षज, २ वस्तिज। जो शङ्खभाग से हृदय तक बड़े वेग से दुःख देता है उसको शीर्षज कहते हैं, उसमें मुख तालुए बाह्यप्रदेश में लालकमल के सदृश लाल होते हैं और हृदय से गुदा तक वेग से दुःख देता है इसको वस्तिज कहते हैं उसमें वस्ति और गुदा लाल कमल के समान लाल होय इसी को पार्श्वारुण कहते हैं। १०१३ बाकल के तालुए में जो मांस होता है, उससे कफ कुपित होने से तालु कांटे के समान खरदरा होवे उसको तालुकंटक कहते हैं। १०१४ बालक के तालुए में घाव पड़ने से उसको स्तनपान करने में कष्ट होवे, पतला मल निकले, प्यास बहुत लगे, नेत्र और कंठ इनमें विकार होवे, मन्यानाडी धरे नहीं दूध को रद्द कर दे, उसको विच्छिन्नरोग कहते हैं। १०१५ बालक के गर्भिणी माता का दूध पीने से खांसी, मंदाग्नि, वमन, तंद्रा, अरुचि, कृशता और भ्रम ये होयँ और उसकी पेट की वृद्धि होय, इस रोग को पारिगर्भिक अथवा परिभव ऐसे कहते हैं, इस रोग में अग्निदीपनकर्ता औषध बालक को देना चाहिये। १०१६ जिस दोष करके देह दुर्बल (बलरहित) होवे उसको दौर्बल्य कहते हैं। १०१७ दोष से बालक के अङ्ग सूख जाते हैं उसको गात्रशोष्न कहते हैं। १०१८ बालक वातादिक दोषों से शय्या में ही मूत दे उसे ज्ञान नहीं रहे उसको शय्यामूत्र कहते हैं। १०१९ कुकूणक यह रोग बालकों के दूध के दोष से होता है। इस रोग से बालक के नेत्र खुजावें और पानी बहें। नेत्रों में कीचड़ आने से वह ललाट, नेत्र और नाक को रगड़े, धूप के सामने न देखा जाय और इसके नेत्र खुले नहीं। इसको लौकिक में कोथस्राव कहते हैं, यह रोग बालकों के ही होता है। १०२० बालक थोड़ा वा बहुत रोने लगे तब युक्ति करके रोग के अनुसार से बड़ा अथवा छोटा रोग जानना इसको रोदन कहते हैं। १०२१ बालक के कफवात से चिकनी त्वचा के वर्णवाली, गांठसी बँधी, पीडारहित, तथा मूँगा सदृश जो पिडिका होय उसको अजगल्लिका कहते हैं। १०२२ स्कन्दादिक बारह ग्रहों से गृहीत बालक के ये सामान्य लक्षण होते हैं। जैसे कभी क्षणभर में बालक विह्वल हो जाय, कभी क्षणभर में डरे, रोवे, नख और दांतों से अपने शरीर और माता को खसोटे, ऊपर को देखे, दांतों के चबावे, किलकारी मारे, जंभाई लेय, भौंह को तिर्छी धरे, दांतों से होठों को खाय और बांरबार मुख से झाग डाले। वह अत्यन्त क्षीण होय, रात्रि में सोवे नहीं, देह में सूजन होय, मल पतला होय और स्वर बैठ जाय। उसके देह में से रुधिर मांस की बास आवे, जितना पहिले खाता हो उतना नहीं खाय, ये सामान्य ग्रहव्याप्त बालक के लक्षण हैं। १०२३ बालक के एक नेत्र से पानी गिरे और अंग में स्राव (पसीना) बहे, एक ओर का अंग फड़के तथा थरथर काँपे, वह बालक आधी दृष्टि से देखे, मुख टेढा हो जाय, रुधिर की सी दुर्गंध आवे, यह बालक दाँतों को चबावे, अंग शिथिल हो जाय, स्तन को नहीं पीवे और थोड़ा रोवे। ये स्कन्दग्रह लगे बालक के लक्षण हैं। १०२४ विशाखग्रह करके पीडित बालक के ज्वर, ऊर्ध्वदृष्टि आदिक लक्षण होते हैं। १०२५ बालक बेसुधि होय, मुख से झाग डाले, जब होश हो तब रोवे, उसके देह में राध से मिले रुधिर की दुर्गंधि आवे, इन लक्षणों करके स्वग्रहगृहीत बालक जानना। इस स्वग्रह को स्कन्दापस्मार भी कहते हैं। १०२६ पितृग्रह से पीडित बालक के ज्वर,

पसीना, दाह आदि उपद्रव होते हैं। १०२७ वमन, कंप, कंठ, मुख का सूखना, मूर्च्छा, दुर्गन्धि, ऊपर को देखे, दांतों को चबावे इन लक्षणों से नैगमेय ग्रह की बाधा जाननी। १०२८ शकुनिग्रह से पीडित बालक के अंग शिथिल होयं, भय से चकित हो, उसके अङ्गों में पक्षी के अङ्ग के समान वास आवे, घाव हों उनमें से लस बहे, सब अङ्गों में फोड़ा उत्पन्न होय और वह पके तथा दाह होय। १०२९ शीतपूतनाग्रह की पीडा से बालक के मुख की कांति क्षीण हो जाय, उसके नेत्ररोग होय, देह में दुर्गंधि आवे, वमन होय और दस्त होयं। १०३० मुखमंडनिकाग्रह की पीडासे बालक के मुख की कांति सुन्दर होय और देह की कांति सुन्दर होय, शिरा से बंधा देह हो जाय, उसके देह में मूत्रकीसी दुर्गन्धी आवे, यह बालक बहुत भक्षण करे। १०३१ पूतनाग्रह की पीडासे बालक को दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढ़ी दृष्टि से देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल हो जाय ये लक्षण होते हैं। १०३२ अन्धपूतनाग्रह की पीडा से बालक के वमन होय, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गन्ध, बहुत रोना, दूध पीवे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते हैं। १०३३ रेवतीग्रह से पीडित बालक के अंग में घाव और फोड़े होंय उनमें से रुधिर बहे, उनमें से कीचकीसी वास आवे, दस्त होय, अंग में दाह होय। १०३४ शुष्करेवतीग्रह से पीडित बालक के ज्वर, शूल, अजीर्ण, मस्तक में पीडा, मुख और हृदय इनका शोष ये लक्षण होते हैं। १०३५ औषधादिकों करके रद्द कराने के प्रयोग को वमन कहते हैं। १०३६ औषधादिकों करके दस्त कराने के प्रयोग को विरेचन कहते हैं। १०३७ स्नेहादि औषध से गुदा में पिचकारी मारने के प्रयोग को निरूहणवस्ति कहते हैं। १०३८ अनुवासनवस्ति भी निरूहण वस्ति के सदृश ही होती है। १०३९ नाक में औषध डालने के प्रयोग को नस्य कहते हैं। १०४० कहे हुए प्रमाण का उपयोग करने को हीनयोग कहते हैं। १०४१ प्रमाण से रहित उपयोग करने को मिथ्यायोग कहते हैं। १०४२ अधिक प्रमाण से उपयोग करने को अतियोग कहते हैं। १०४३ स्नेहपान तेल घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पीने के प्रयोग को स्नेहपान कहते हैं। १०४४ अङ्ग को पसीना लाने के प्रयोग को स्वेदविधि कहते हैं। १०४५ गुडगुडी हुक्का आदि में डाल के पीने के प्रयोग को धूम्रपान कहते हैं। १०४६ कषाय और रसादिको से कुरले करने के प्रयोग को गंडूषविधि कहते हैं। १०४७ नेत्र में औषध डालने के प्रयोग को अंजनविधि कहते हैं। १०४८ औषधादि करके धातुओं की वृद्धि करने के विषयक जो प्रयोग करते हैं उसको तर्पण कहते हैं अथवा नेत्र की तृप्ति करने के प्रयोग को तर्पण कहते हैं।

पाद टिप्पणीयां
द्वितीय खण्ड

१ वनस्पति आदि के अवयव के रस को अंगरस अथवा स्वरस कहते हैं। २ तोले के विषय में मागध परिभाषा के मतानुसार व्यावहारिक १६ तोले कहते हैं। ३ दो तोले भक्षण में कलिंगपरिभाषा का मान है। उस मान से तोले के व्यावहारिक मासे आठ होते हैं। यह मान रोगी का बलाबल देखके देना चाहिये यह तात्पर्य है। ४ अडूसे का स्वरस अर्धपल और शहद दो टंकप्रमाण मिलाय के सेवन करे तो रक्त पित्त का नाश होवे। ५ द्रोणपुष्पी एक जाति की रूखडी है इसका वृक्ष हाथ डेढ़ हाथे ऊँचा नहीं होता और इसकी डण्डी में फूल के गुच्छे २ से होते हैं। मध्यदेश में (दिल्ली, आगरा, मथुरा के प्रान्तों में) इसको गूमा कहते हैं। ६ पेट में बाँई तरफ रोग

होता है उसको कोई फीहा और कोई प्लीहा तिल्ली कहते हैं। ७ भक्षणविषय में कलिंगपरिभाषा के मानानुसार दो पल के व्यावहारिक छः तोले और आठ मासे होते हैं। ८ सूर्यावर्त कहिये जैसे २ सूर्य चढे तैसे २ मस्तक में दर्द बढ़े और जैसे जैसे अस्त होय तैसे २ पीडा शांति हो उसको सूर्यावर्त्तरोग कहते हैं। ९ ब्राह्मी रुखण्डी गंगा यमुना के किनारे बहुत होती है, इसकी दो जाति हैं। एक ब्राह्मी और दूसरी मंडूकपर्णी। यह प्रसर जाति की रुखण्डी है। १० शंखाहुली को शंखपुष्पी भी कहते हैं। इसमें सफेद रंग के परम सुन्दर पुष्प होते हैं। यह प्रसर जाति की रुखण्डी है। ११ गांगेरुकी को भाषा में गंगेर कहते हैं, यह क्षुपजाति की औषधि है गुण दोष बलाचक्षु में लिखे हैं। १२ पापरी यह एक जाति का बड़ा भारी वृक्ष होता है। इसके छोटे २ पत्ते होते हैं उनको दाद पर घिसने से दाद को दूर करते हैं। १३ जलवेतस जल में होनेवाले वेत को कहते हैं। १४ उस तीतर के पेटकी आँतड़ी आदि निकालकर साफ कर ले फिर उसमें कल्क को भरे। १५ मनुष्य के दम चढने को अर्थात् दमे के रोग को श्वास रोग कहते हैं। १६ गीली अथवा सूखी खांसी को कास कहते हैं। १७ अण्ड के कहने से सूरती अण्ड लेना, उसके अभाव में दूसरा लेना। १८ शोष, शैत्य इस ठिकाने 'शाखाशैत्य' ऐसा पाठ है, तहां हाथ पैर में सरदी होना ऐसा अर्थ जानना चाहिये। १९ रोहिषतृण के प्रतिनिधि में चिरायता डालने का सम्प्रदाय है। २० यहां दुःस्पर्शा और धन्वयासक दोनों शब्दों का अर्थ धमासा ही होता है अतएव परिभाषा में कहे प्रमाण धमासा दूना लेना अथवा दुःस्पर्शा शब्द करके कौंच के बीज लेने चाहिये। २१ किसी २ आचार्य ने कटुपटोल के फल कहे हैं परन्तु "पटोलपत्रं पित्तघ्नं नाडी तस्य कफापहा" इस प्रमाण से इस जगह परवल के पत्ते ही लेने चाहिये। २२ मागधपरिभाषा के मानसे दो पल के व्यावहारिक आठ तोले होते हैं। २३ गुन्द्रा को हिन्दी में पटेरे और मराठी में गोंदणी गवत कहते हैं। २४ ब्राह्मी रुखडी गंगा यमुनादि के खादर में बहुत होती है। इसका पृथ्वी में फैला हुआ छत्ता होता है। पत्ते गोल कुछ सुकुड़े हुए होते हैं। इसके दो भेद होते हैं–एक ब्राह्मी, दूसरी मण्डूकपर्णी। २५ रेणुका बीज प्रसिद्ध है, इसके काले २ दाने होते हैं। २६ रक्तरोहिडा प्रसिद्ध वृक्ष है। २७ यकृत् और प्लीहा ये दोनों मांस के पिंड हैं (जिनको इनके विशेष लक्षण जाननें हों वे प्रथम खण्ड में शारीरक में देख लेवें) सूजन आयकर जिसमें रुधिर नष्ट हो जावें तथा राध वगैरह होय उस रोग को क्रम से प्लीहोदर और यकृद्दाल्युदर कहते हैं। २८ इस जगह बकपुष्प करके कमल लेना अथवा फूलप्रियंगु लेना चाहिये। २९ मेषशृङ्गी प्रसिद्ध है इसकी बेल होती है, इसको लौकिक में मेढासिंगी कहते हैं। ३० असन शब्द के दो अर्थ हैं एक विजयसार दूसरा वनकुलथी, परन्तु इस जगह विजयसार ही लेना चाहिये। ३१ कुडे की जड लेना ऐसा भी किसी आचार्य का मत है। यदि इसमें कचनार की छाल बबूल की छाल सालसा की लकड़ी और सरफों का ये मिलायकर काढा करे अथवा इसका भभके में अर्क निकाल लेवे तो यह खून की सब बीमारियों को दूर करे। यदि इसमें शहद अथवा उन्नाव का शरबत मिलाय लिया जावे तो परमोत्तम है यह हमारा अनुभव किया हुआ है। ३२ यदि वेत न मिले तो जलवेतस लेना चाहिये। ३३ मागध परिभाषा के मानसे पलके व्यावहारिक चार तोले जानने। ३४ औषधों का काढा करे जब आधा रहे तब उसको छान के उसमें चावल डालके यवागू करे। दूसरे प्रकार की यवागू जो कहेंगे उसमें चावल और दूसरे धान्य जो कहेंगे इनमें पानी छः गुना डाल के यवागू बनावे इतना ही भेद है। ३५ "कफवातज्वरे देयं जलमुष्ण पिपासवे । पित्तमद्यविशेषोत्थे तिक्तकैः शृतशीतलम् ॥१॥" अर्थ–तिक्त कहिये १ नागरमोथा, २ पित्तपापडा, ३ नेत्रवाला, ४ चन्दन, ४ खस और ५ सोंठ इन छः औषधियों को कूटके औटते हुए पानी में डाल के उतार ले, फिर शीतल करके इसे

पित्त और मद्य से प्रगट हुए ज्वर, प्यास, कफज्वर और कफवातज्वर इनमें देवे, ऐसा ही ग्रन्थान्तर में पाठ है। ३६ औषध इस जगह अनुक्त है इस वास्ते १ सोंठ, २ भूय आंवला और ३ अरंड के बीज इन औषधियों का आठ गुना जल लेना चाहिये। ३७ विलेपी घनसिक्था स्यात्' इति पाठान्तरम्। ३८ 'लघुपाठः इति पाठान्तरम्। ३९ (१) क्षुधानाशक, २ मूत्रवस्तिशोधक, ३ बलवर्धक, ४ रक्तवर्द्धक, ५ ज्वरनाशक, ६ कफनाशक, ७ पित्तनाशक तथा ८ वायुनाशक ऐसे इसमें आठ गुण जानने। ४० कुडव के व्यावहारिक तोले सोलह होते हैं। ४१ फाल से मेवा में प्रसिद्ध हैं। ४२ "जातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा।' इति पाठान्तरम्। ४३ दूध अथवा पानी में पीपल पीस के कल्क करे फिर उसमें दूध अथवा पानी डालके का हो तो वह दो तीन चार तोले मिलावे, फिर कल्क से चौगुना मिलावे परंतु वैद्यों का सम्प्रदाय दूध मिलाने का है। इस मथुरा आगरे के वैद्य पीपलों को क्रम से बढ़ाय आधा दूध और आधा पानी डाल के औटाते हैं, जब जलमात्र जल जावे तब उस दूध में ही उन पीपलों को पीसके देते हैं, कोई पीपलों को निकालके फेंक देते हैं, परन्तु फेंकने से कुछ गुण नहीं होता। यह विधि प्रायः विषमज्वर और मन्दाग्निपर कहते हैं। ४४ चावल के धोवन में पीसे अथवा कल्क का चौगुना चावल का धोवन लेवे। ४५ कल्क की अपेक्षा धोवन चौगुना लेवे, इस प्रकार का पानी दूध इत्यादि सर्वत्र चौगुने लेवै। ४६ कबीला लालवर्ण का मिट्टीकासा चूर्ण होता है। ४७ कल्क एक भाग लेके दुगुने लोनी में मिलायके सेवन करे। ४८ तात्पर्य यह है कि उत्तम मोटी हरडे दो कर्ष की होती है, बहेड़ा एक कर्ष का होता है और आमला आधे कर्ष का तोल में होता है। इसीसे एक हरडे दो बहेड़े चार आमले लेने से समभाग हो जाता है यह मत बहुवैद्यसंमत है। कोई एक भाग हरड़े, दो भाग बहेड और चार भाग आंवले होते हैं। ४९ जो देह की वृद्धावस्था और रोगों का नाश करे उसको रसायन कहते है। ५० घी और शहद समान भाग लेने से विष हो जाता है, वह देह में अनेक विकार उत्पन्न करता है, अतएव विषमभाग करके लेना चाहिये। ५१ प्रसारणी का कल्क करके नमक के साथ अग्नि के संयोग करके जो होवे है वह कृत्रिम विड नमक कहलाता है। ५२ दक्षिणसमुद्र के समीप उत्पन्न होनेवाले को समुद्रनमक कहते हैं। ५३ जीवक ऋषभक ये दोनों नहीं मिलते, अतएव इनके प्रतिनिधि में विदारीकन्द लेवे। ५४ काकोली के अभाव में मुलहटी डालनी चाहिये। ५५ इस योग को कोई २ वैद्य हरड के बिना भी बनाते है। ५६ 'तक्रशुण्ठीभ्याम्" ऐसा भी पाठान्तर है। ५७ "खण्डा दश पलानि च" इति पाठान्तरम्। ५८ मागध परिभाषा के मानानुसार एक कर्ष का व्यावहारिक १ तोला होता है। पल के चार तोले होते हैं। ५९ कपूर के तीन भेद हैं-ईशावास, हिम और पोताश्रित। परंतु राजनिघटुने बरास, चीनिया और कपूर ये भेद माने हैं। शुद्ध भीमसेनी कपूर को 'बरास' भी कहते हैं। ६० अमलवेत सर्वत्र प्रसिद्ध है। यदि कहीं न मिले तो उसके अभाव में चूका अथवा चना की खटाई डालनी चाहिये। ६१ मनुष्य को आरग्वधादि पंचक के काढे से पाचन देकर तथा उत्तरखण्ड में जो घृतपान की विधि कही है उसी प्रकार घी पीने को देकर कोठे को चिकना कर पीछे चूर्ण को देवे। ६२ त्रायमाण इसी नाम से प्रसिद्ध है, इसके पत्ते जामुन के से होते हैं। ६३ नीली के वृक्ष छोटे छोटे होते हैं वह नीलवृक्ष के नाम से प्रसिद्ध है, इसमें से नीला रंग उत्पन्न होता है। ६४ यह पंचसमचूर्ण प्रायः शूलरोगपर बहुत चलता है और गुण भी शीघ्र दिखलाता है। ६५ इन्द्रायण को हमारे इस मथुराप्रान्त के मनुष्य फरफैंदू कहते हैं। इसकी बेल होती है और पीले रंग का बड़ा बेल की बराबर फल लगता है, यह अत्यंत कडुआ होता है, यदि इसका फल न मिले तो इसकी जड़ लेनी चाहिये। ६६ 'शोफाध्मानहरं' कहीं ऐसा पाठ है, तहां शोफ कहिये सूजन ऐसा अर्थ जानना। ६७ शहद और घी परस्पर विषम भाग होना चाहिये। ६८ इसको गोरखमुण्डी कहते हैं। ६९ चावलों में चौदहगुना

जल डाल के औटावे। जब चावल गल जावें तब उसके मांडको निकाल लेवे, इसको माण्ड कहते हैं। ७० वैद्य को उचित है कि जब तेल घृत आदि कोईसी वस्तु बनानी होय तो इस स्नेह साधन के अनुसार कल्क (काढा) दूध और गोमूत्र आदिक डाले तो ठीक बनेगा अन्यथा बिगड़ जावेगा। ७१ जिस वात में पैर पिंडरी जांघ और पहुँचा मुड़ जावे उसको खल्लीवात कहते हैं। ७२ कागदी नींबू का रस २ प्रस्थ तथा एक कुडव शहद उसमें डाले एवं पीपल का चूर्ण एक पल डाल किसी मिट्टी के पाव में भरके उसका मुख बन्द कर मिट्टी से लेप देवे। फिर एक महीने पर्यंत धान की राशि में धरा रहने दे, इसको 'मधुसूक्त' कहते हैं। ७३ जस्त के स्थान में कोई पीतल होता है परन्तु पीतल मिश्रित धातु है इस वास्ते हमको यह मत मन्तव्य नहीं है। ७४ वृद्धत्व, कृशत्व और रोगों को निवारणकर ये देह को धारण करती है इसीसे सुवर्णादि धातु कहे जाते हैं। ७५ काँजी बनाने की क्रिया–मिट्टी की मथानी को सरसों के तेल से पोतकर उसमें निर्मल पानी भरे तथा १ राई, २ जीरा, ३ सैंधानमक, ४ हींग, ५ सोंठ और ६ हल्दी इन छः औषधों का चूर्ण कर चावलों का भातयुक्त मांड तथा कुलथी का काढा थोड़े बाँसे के पत्ते ये सब पात्र में डाल दे तथा पानी के अनुमान माफिक दश पांच उडद के बड़े बनाकर उसका मुख बन्द करके तीन दिन धरा रहने दे, जब खट्टी वास अने लगे तब जान कि काँजी बन गई। यह काँजी बनाने की विधि है। ७६ शीशा अथवा राँगे को अग्नि से पिघलाकर तैल काँजी आदि में बुझाना चाहे तो प्रथम उस तेल काँजी के पात्र को छिद्रदार शराव से ढक देवे फिर उस छिद्रद्वारा शीशे आदि को गेरे अन्यथा वह पिंघला हुआ शीशा आदि उछलकर वैद्य के देह पर पड़ने का भय रहता है। ७७ "कोकिलैः" ऐसा भी पाठान्तर है, तहां कोकिल कहिये कौले। ७८ मीनाक्षी को मत्स्याक्षी कहते हैं अर्थात् कुटकी जाननी ऐसा किसीका मत है। ७९ अस्मत्सम्प्रदाये द्वंचगुलं लेपं युक्तम् । ८० सवा हाथ गहरा, सवा हाथ चौड़ा और इतने लम्बे गड्ढे में आरने उपलों को भर के बीच में औषधि के संपुट को रख के अग्नि देने को गजपुट कहते हैं। परन्तु यह प्रमाण ठीक नहीं है। रसराजसुन्दर के मध्यभाग में यन्त्राध्याय में लिखा है सो देखो। ८१ "अर्कक्षीरवदाज्यं स्यात्क्षीरं निर्गुडिका तथा ।" इति पाठान्तरम् । ८२ पुटद्वयं सम्प्रदायानुगतम्। ८३ पुटषट्कमित्यनेन प्रोक्तं पुटत्रयं बोध्यम् । ८४ कुठारच्छिन्ना कुटजभेद इत्यन्ये तदभावे जम्बुत्वक् इत्यपरे अस्मत्सम्प्रदाये तु तिपानीशब्देन द्रुमविशेषो गृह्यते।। ८५ कहीं "वाजमूत्रेण" ऐसा पाठ है, वहां 'बकरे का मूत्र' यह अर्थ जानना। ८६ तीव्रयमार्भावे आतपे शोधयेदित्यपि सम्प्रदायः । ८७ मृदुपुटं कुक्कुटपुटप्रभृतिकम् । ८८ एके चात्र योगत्रयं मन्यन्ते तन्मते तु मुस्तप्रभृति चित्रकान्तैरेको योगः केवलं त्रिफलया द्वितीयः बलाप्रभृतिसूरणान्तैस्तृतीयः। ८९ धान्याभ्रक की यह विधि है कि, कतरी हुई अभ्रक को लेकर चतुर्थांश चावलों के धान को मिलाके उसको कम्बल में पोटली बाँध के परांत में रखे। फिर उस पर जल डालता जाय और हाथों में उस पोटली को मीडता जावे। इस प्रकार करने से उस कम्बल में जितना अभ्रक होगा वह बह बहकर उस परांत के पानी में आ जावेगा जब जाने कि सब अभ्रक परांत में आ गया तब उस परांत के पानी को नितार के पटक देवे और उस अभ्रक के चूरे को लेकर धूप में सुखाय ले। इसे धान्याभ्रक कहते हैं। ९० काढ़े आदि पतली वस्तु को किसी गगरे आदि में भरके जो औषध शोधनी होवे उसकी पोटली बांधके लटकाय देवे इस प्रकार स्वेदनविधि करने को दोलायन्त्र कहते हैं। ९१ सम्पूर्ण औषधों की अपेक्षा सुहागा सत्त्व निकालनेवाली धातु का चतुर्थांश लेवे, ऐसा किसी आचार्य का मत है। ९२ 'एवं त्रिसप्तधा कृत्वा मृतं वज्रं श्रेष्ठं भवति' इति दीपिकाकारमतम् । ९३ तद्भवे क्वाथे हिंगु सैन्धवकल्केन वज्रे लिप्त्वाऽग्नौ संताप्य कुलत्थक्वाथेनैव सेचयेदिति सम्प्रदायः।

९४ एवं सप्तधा कुर्यादिति सम्प्रदायः । ९५ उत्पन्न होते समय विक्रतता को प्राप्त होने से उसी हीरा को 'वैक्रान्त' कहते हैं। ९६ बहुवचनोक्त्या बहुबारं कुर्यादित्याशयः । ९७ श्रेष्ठताऽस्यांजनसादृश्यात् भवति । ९८ ओंगा, इमली, केला, अलाश, थूहर, चीता, कटेरी और मोखवृक्ष इत्यादि क्षारवृक्ष जानने। ९९ 'नेता' इति पाठान्तरम्। १०० 'सुदिने' इति पाठोऽन्यत्र पुस्तके। १०१ 'बुधैस्तस्येति नामानि' इति पाठांतरम् । १०२ आरशब्देन पीतलोहं पित्तलाभिधं बहुसम्मतम् । १०३ सूर्याचन्द्रमसौ भौमः शशिजो जीवभार्गवौ । सूर्यसूनुः सैहिकेयः केतुश्चेति नवग्रहाः।।" १०४ केचिल्लोहकुण्डं साधु मन्यन्ते। १०५ मिश्रितमित्यनेन काकोदुम्बरिकादुग्धमर्दित मिति ज्ञेयम् । १०६ दिनरात्रि में एक बार आवे। १०७ दिनरात्रि में दो बार आवे। १०८ तीसरे दिन आवे जिसको तिजारी कहते हैं। १०९ जो चतुर्थ दिन आवें उसको चौथय्या कहते हैं। ११० पारा और गंधक इनको प्रथम खरलकर अर्थात् उसमें चूर्ण मिलाय गोली बनाय ले। १११ गन्धादिकों का जारण करके सुवर्णादि धातु ग्रसने के विषय में योग्य हुआ जो पारा उसको बुभुक्षित पारा कहते हैं। ११२ मंडल चालीस दिवस का होता है। ११३ हेमक्षीरीस्थाने केचित्त्रिकटुकं लिपन्ति। ११४ सूचीमुखं ग्रहणार्थं शलाका कथ्यते, सा तु मसूरदलसंस्थामुखी भवति । ११५ अन्यत्र पुस्तके जलबन्धुनामा ख्यातः । ११६ एतेन शीतलजलपानं तथा हृदयनेत्रादिसंचनं चेति सम्प्रदायः । ११७ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। पञ्चकोलमिति। ११८ उत्कटसन्निपाते रक्तिकाद्वयमितं भक्षणे देयमित्यस्मत्सम्प्रदायेऽनुभूतम् । ११९ साधयेदिति पाठान्तरम् । १२० एतच्चूर्णं पयसा सम्मिश्र्य क्षीरनाशाद्धि वह्नौ पाचयेत् । क्षीरपरिमाणं च द्रव्यसम्भाराच्चतुर्गुणं ज्ञेयमिति सम्प्रदायः । १२१ 'मृतताम्रस्य' इति पाठान्तरम् । १२२ यदि यह चूर्ण एक बार में न खाया जाय तो दो तीन बार मिलायके खाय। १२३ मृतलोहचूर्णं चेति केचित् । १२४ संप्रदाये तु त्रिदिनान्तं धारणम् । १२५ तद्गोलं संधयेद्दिनमिति पाठोऽपि । तालमित्यस्य स्थाने तारमित्यपि दृश्यते दीपिकादौ । १२६ सदाशब्दोऽत्र रससंसेव्यविषये सूचयति, तेन सेव्योऽयं रसः इति तात्पर्यार्थः । १२७ भूधरयन्त्र का स्वरूप प्रथम हेमगर्भपोटली में कह आये हैं। १२८ एक विलस्त लम्बा चौड़ा गड्ढा खोद उसमें आरने उपले भरके हलकी अग्नि देवे, इसको 'कुक्कुटपुट' कहते हैं। १२९ मूर्च्छितं सूतं रससिन्दूरम् । १३० एके मुण्डमिति किट्टविशेषं मन्यन्ते तन्न सर्वमतम् । केचित् मुण्डस्थाने उर्गभस्मेति पठन्ति, तत्र उरगभस्म नागभस्मेति कस्यचिन्मतम् ।। १३१ अग्नितुण्डीति नाम बहुमतम् । १३२ विषमुष्टिस्थाने केऽपि महानिम्बफलं तथाऽन्ये समुद्रफलं प्रयुञ्जन्ति, परमस्मदनुभवे तु विषतिन्दुकमेव वरम् । १३३ एरण्डनालेन वमनं च श्रेयस्करम् । १३४ कनकमात्रवर्णमिति दीपिकाकारादयः । १३५ आक के दूध की तीन पुट देना जो कहा है सो घीगुवार का पुट देकर पश्चात् देना, फिर उस औषध को शीशी में भरके सिद्ध करे। जब सिद्ध हो जावे तब पश्चात् पुट देने से कदाचित् वमन हो जावे। इस वास्ते टीकाकार ने पहले पुट देना कहा है। १३६ असगन्ध दो बार आई है इस वास्ते इसकी पुट दूनी देवे।। १३७ गुदजामिति पाठोऽपि । १३८ सवस्त्र खरल करने का यह प्रयोजन है, कि वह कपड़ा उस जमालगोटे की चिकनाई को सोख लेता है।

पाद टिप्पणीयां
तृतीय खण्ड

१ मांस की अपेक्षा अष्टगुण घी है, इस वास्तें प्रथम घृत कहा है तथा घृत में यह गुण अधिक है कि जिसके साथ इसका संयोग करो उसके गुणों को करे और अपने गुणों को भी नहीं त्यागे, इस वास्ते प्रथम घृत को लिखा है। २ दोषास्त्रिविधाश्चतुर्विधा वा । ३ कालः शीतोष्णवर्षालक्षणस्त्रिविधः । ४ अग्निरपि समविषममृदुतीक्ष्णभेदैश्चतुर्विधः । ५ वयोऽपि बालमध्योत्तरभेदेन त्रिविधम् । ६ अकाल में थोड़ा अथवा बहुत भोजन करना तथा अपनी प्रकृति को जो पदार्थ अच्छा न लगे उसको भक्षण करना तथा देशविरुद्ध अथवा कालविरुद्ध पदार्थ तथा संयोगविरुद्ध पदार्थों का भक्षण करना मिथ्याहार कहाता है। ७ जिस कर्म को करने का सामर्थ्य न होने पर भी बलात्कार से जो करना है उसको मिथ्याविहार जानना चाहिये। ८ 'प्रकुर्याल्लंघनं तत्र स्वेदं ज्ञात्वा विरेचनम्' इति केचित्पठन्ति ।। ९ जिस मनुष्य की अग्नि प्रदीप्त है, वायु शरीर में जैसा वर्तना चाहिये वैसा वर्तता हो, अग्नि के साथ हो अन्न का पचन करता है, इसी से अग्नि और वायु ये शक्ति के देनेवाले हैं, यदि ये अनुकूल होवें तो मांस का स्नेह पचे अन्यथा नहीं पचे, १० आम अग्नि पक्व मूत्र इनके आशय यकृत और प्लीहा छः स्थान तथा हृदय उन्दुक और फुप्फुस इन नौ स्थानों को कोष्ठ कहते हैं। ११ यूष का बनाना मध्यखण्ड में लिख आये हैं, सो देख लेना। १२ भात के माण्ड को मण्ड कहते हैं। इसकी विधि द्वितीय खण्ड में काढ़े के प्रकरण में लिखी है। १३ सद्यः इति तस्मिन्नेव दिवसे त्वराया स्नेहनं करोति। सद्योग्रहणं स्तुतिपरमित्यन्ते स्नेहनं स्नेहयतीत्यर्थः । १४ गूढार्थदीपिकानुमतोऽयमर्थः । परमाढ़मल्लेन तु स्नहैः सद्यः स्नेहकारिभिस्तैलघृतादिभिः स्नेनहं कायम् । रूक्षणं च श्यामाकादि सक्त्वन्तैरिति व्याख्यातम् । १५ वालुकादिकों की पोटली से शरीर को तपाकर पसीने निकालने को ताप कहते हैं। १६ काढ़े आदि का भफारा देकर पसीने निकालने को ऊष्मा कहते हैं। १७ रोग के स्थान पर औषधादिकों की पिण्डी बांध के पसीने निकालने को उपनाह कहते हैं। १८ पतले द्रव्य के योग करके पसीने निकालने को द्रव कहते हैं। १९ घृतादिक स्निग्ध और वालुकादिक रूक्ष इन दोनों की एकत्र पोटली बनाके देह को सके ये संपूर्ण उपाय तापसंज्ञक पसीने के जानने। २० नाक में औषध डालने के प्रयोग को नस्य कर्म कहते हैं। २१ गुदा में पिचकारी मारने के कर्म को वस्ति कहते हैं। २२ प्लीहा (तिल्ली) भगंदर और बवासीर और पथरीरोगवालों को पहले और पीछे पसीना देना चाहिये, यह अर्थ दीपिकाकार के अनुसार लिखा है। २३ नाभि के नीचे चार अंगुल तेल आवे इतना तेल उस पात्र में भर के बैठे। २४ ये छः प्रकार कहे हैं। इनकी क्रिया इस प्रकार है कि खैरके अथवा कणखर लकड़ी के धुआँ, रहित तथा दहकते हुए अंगारों करके उन पर वालू को तपावे, फिर उस वालू का अरंड के पत्ती पर रख के उसकी पुड़िया बांध के मनुष्य की देह को सेंके तो अंगों से पसीने निकलें। यह पसीने निकालने का एक प्रकार है। २५ छाछ कांजी इत्यादिक खट्टे पदार्थ। २६ उस गागर के मुख पर डाट देके उसको दहकते हुए कोलों पर धरे तो उस नली के रास्ते भाफ उत्तम प्रकार से बाहर निकले। २७ ताम्र लोह इत्यादि धातुओं की नली बनावे। २८ अंड के पत्ते, आक के पत्ते निर्गुंडी इत्यादिकों के पत्तों को वातहर जानना। अथवा अंगारों पर अपने हाथ गरम गरम करके रोगी के अंगों को सेंके तथा कपड़ों की गेंद करके अंगारों पर गरम कर उस गेंद से रोगी के अंगों को सेंके। अथवा केवल कपड़े ही अंगारों से गरम कर उस

कपड़े से अंगों को सेंके। अंगारों को खिपड़े में भर उस खिपड़े से युक्ति के साथ रोगी के अंग में सेंक लगे इस प्रकार रखे। इतने उपायों से पसीना निकलता है। २९ अयमपि शाल्वणसंज्ञः । ३० एतैर्द्वव्यैर्व्यस्तैस्समस्तैर्वा योगा बोद्धव्या भिन्नतृतीयान्तपदत्वात् । ३१ मुरगा, बकरा, भेड़ इत्यादिकों के मांस को ग्राम्यमांस कहते हैं। ३२ जलमुरगावी, बत्तक, चकवा और मछली आदि जलचरों के मांस को आनूपमांस कहते हैं। ३३ जीवनीयगण की औषधें दूसरे खंड में लिखी हैं। ३४ कच्चे अथवा पके जीवों को कूट तुष निकाल पानी डाल के तीन दिन धरा रहने दे उसको 'सौवीर' कहते हैं। इसी प्रकार गेहूं का भी जानना। ३५ ये भी वीरतर्वादिकाढ़े में देखो ३६ ये कोष्ठान्तर्गत पाठ प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। अतएव टीकाकार ने इसका अर्थ भी नहीं लिखा। ३७ कन्या, तुला, संक्रांति से शरत्काल होता है। ३८ मीन मेष की संक्रांति का वसन्तकाल होता है। ३९ वर्षाकाल के प्रारंभ को प्रावृट्काल कहते हैं। सो कर्क सिंह संक्रांति में जानना। ४० दोषदेशसात्म्यप्रकृतिवयोवह्निधातुमलविशेषज्ञाने च कुशलः । ४१ ये सम्पूर्ण रोग प्रथमखण्ड के सातवें अध्याय में कहे हैं वहां से जान लेना। ४२ रक्तपित्त के कोप करके जिनके ऊर्ध्व (मुख नासिका आदि) होकर रुधिर गिरे उसको ऊर्ध्वरक्तपित्ती जानना। ४३ कृश, बालक और वृद्ध इनको वमन न करावे ऐसा प्रथम ही लिख आये हैं परन्तु निश्चयार्थ फिर भी लिखा है, ऐसे जानना चाहिये। ४४ चावलों को कूट के उसमें छः गुना जल मिलाय के औटावे, जल एकजीव हो जावे तब उतार लेवे, इसको 'यवागू' कहते हैं। ४५ वमन करानेवाली औषधों में घी मिलाय के वमन देने को वीभत्स वमन कहते हैं। ४६ अयं परिमाणोऽप्यैकदैव पानाशक्तत्वाद्विभज्य देयः । ४७ चार पलों को कुडव जानना, उस कुडव के व्यावहारिक तोले १६ होते हैं ४८ चार प्रस्थ का एक आढ़क जानना, उस आढ़क के तोले २५६ होते हैं। ४९ भेडोक्तमेतत्परिमाणं पश्चाज्जलपानस्येति वृद्धाः । अन्यथा पूर्वापरयोव्यवस्था स्यात् । अथवा पूर्वपरिमाणं तु यवाग्वादीनां पाचनार्थं पश्चात्क्वाथपानस्येत्यर्थः । तत्र यवाग्वाद्युपकल्पयेदिति पाठान्तरत्वात् । वृद्धोक्तमात्रया व्यवहारः इति चक्रः । चरके तु मदनफलकषायमात्राणां प्रमाणं तु खलु सर्वशोधनमात्राप्रमाणानि प्रीतपुरुषमेवेहितव्यानि भवंति । यावद्धि यस्य संशोधनं पीतं वैकारिकदोषहरणायोपपद्यते नचातियोगाय तावदस्य मात्रापरिमाणं वेदितव्यम् । वाग्भटेन कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्राकल्पनमुक्तं दृढबलेन शरावमात्रा चोक्ता तत्कल्पनार्थं चलाढकावशिष्टं प्रशस्तं च । द्वित्रिवारं पानमित्येके। ५० वमन विषय में जो काढ़ा लेना कहा हैं तहां १३।। पल का एक प्रस्थ जानना। इस हिसाब से नौ प्रस्थ काढ़ा लेवे। ५१ सूखी औषध में जल डाल के चटनी के समान पीसे उसको कल्क कहते हैं। ५२ सोंठ मिरच पीपल राई आदि तीक्ष्ण औषध कहलाती है। ५३ अनार का मुनक्का दाख मिनी आदि मधुर औषधि जाननी। ५४ मोहार की मक्खी के काटने से जैसे चकत्ते देह में हो जाते हैं। उसी प्रकार के चकत्ते उठ क्षणमात्र में नष्ट हो जावें और उनमें खुजली होकर लालवर्ण हो जावें उसे कोढ़ कहते हैं। ५५ दारुहल्दी का काढ़ा करके उसके समान बकरी का दूध उसमें मिलाय के औटावे, जब खोवा हो जावे तब सुखाय के चूर्ण कर लेवे। इसको रसोत वा रसांजन कहते हैं। ५६ आंवले आदि छः औषधों को एक पल ले जवकूट करके ४ पल जल हाँड़ी में डाल औषध मिलाय के मथ डाले फिर नितार के पानी में छाल लेवें। इसको मन्थ कहते हैं। ५७ जो धान साठ दिन में पक आते हैं उन चावलों को सांठी चावल कहते हैं। ५८ मूँग और सांठी चावल १ पल ले जल १ प्रस्थ डाल कर औटावे जब औटके पेवा के समान हो जावे तो उसको यूष कहते हैं। इसी प्रकार हरिणादिकों के मांस में जल डाल के यूष बनावे, इसको मांसरस कहते हैं। ५९ वमन के पश्चात् दस्त कैसे देवे ऐसी शंका होने से

भेड़ चरक सुश्रुत और वाग्भट इत्यादि ग्रन्थों का अभिप्राय है कि वमन देकर छः दिन व्यतीत होने पर पश्चात् तीन दिन स्निग्ध करे फिर तीन दिन देह से पसीने निकाले। फिर तीन दिन हलका भोजन (खिचड़ी आदि) देकर सोलहवें दिन जुलाबकारक औषध देवे। यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है इसलिये श्लोक में सम्यक्पद धरा है। ६० मिट्टी का गोला ईंट आदि। ६१ चकारात् वर्षास्वपि विरेको विधेयः। ६२ शरद् ऋतु क्वार कार्तिक के दिन। ६३ वसन्त ऋतु चैत्र वैशाख के दिन। ६४ उदररोगी को दस्त करावे यह प्रथम कह आये हैं। परन्तु विशेष करके देना, इस वास्ते फिर उदररोग को कहा है। ६५ काँच अथवा नाखून अथवा बाल काँटा इत्यादिक शरीर में रहने से पीड़ित जो मनुष्य हो उसको शल्यार्दित जानना। ६६ हरिण शशा आदि के मांस को पानी में औटावे। जब सीज के पेया के समान हो जावे तब उतार ले, इसको 'मांसरस' कहते हैं। ६७ उदीच्येति पाठे तु नेत्रवालाख्या ग्राह्या। ६८ सौवीर करने की विधि मध्यखण्ड में सन्धान और आसव बनाने के प्रकरण में कह आये हैं, परन्तु टीकाकर्त्ताओं ने दस्त बन्द करने को सौवीर करके काँजी लेना, ऐसा कहा है। ६९ अरण्ड की जड़, सोंठ और धनियां इन तीन औषधों का काढ़ा करके पाचनार्थ देवे। ७० चावल मूँग इत्यादि धान्य में जो अपनी प्रकृति को हित हो उसको छः गुने जल में औटा के पतली लेई सी करे, उसको 'यवागू' कहते हैं। ७१ हरिणादि जंगली जीवों के मांस की पानी में सिजा के पेया के समान पतली रखे, उसको 'मांसरस' कहते हैं। ७२ यस्माद्वस्तिभिश्चर्मपुटकैर्दीयते तस्माद्वस्तिः। ७३ चावल की पतली पेया। ७४ घी लगाके। ७५ उपद्रवोऽव उषः चोषादिः। उषः प्रादेशिको दाहः चोषो वेदनाविशेषः पिपासेत्यपरे।। ७६ एक वर्ष के पुराने चावल अथवा साठी चावलों का भात पथ्य में देवे। ७७ पल और द्रोण आदि का मान प्रथमखण्ड के परिभाषा प्रकरण में है। ७८ जलोदर के सिवाय दूसरे उदररोग में निरूहवस्ती देवे। ७९ हरड आमले इत्यादिक कषाय पदार्थ जानने। ८० सोंठ मिरच आदि कटु पदार्थ जानने। ८१ कुलथी जौ आदि रूक्ष पदार्थ इनका काढ़ा करके वस्ती देवे। ८२ वमनाध्याय में वमन करने के पश्चात् पथ्य कहा है, उस जगह टिप्पणी में यूष कल्क, बनाने की विधि लिखी है सो जाननी। ८३ विरेचनाध्याय में पथ्य कहा है, उसी स्थान पर टिप्पणी में मांसरस की विधि कही है। ८४ ऊषकादि सैंधव शीलाजतु काशीसद्वयहिंगूनित्रिकटुश्चति। ८५ मेदोरोगादिकृशीकरणात्। ८६ आढमल्लेन तु ऐरावती नागबलेति व्याख्यातम्। ८७ केचित मेहशब्देन मधुमेहमित्याहुः। ८८ वाग्भटेन त्रैविध्यमुक्तम्। रविगुप्तादौ पंचभेदाः। काश्मीरास्तु षट्प्रकारं पठन्ति तेऽप्यत्रैवातर्भावनीयाः। ८९ सोंठ मिरच वच इत्यादिक तीक्ष्ण औषधों को जल में पीसे। ९० धातु के बढ़ाने के विषय में। ९१ धात्वादिको तृप्ति करनेवाली मात्रा को तर्पणी कहते हैं। ९२ अनुवासन वस्ति के अध्याय में मात्रा का प्रमाण लिखा है उससे जान लेना। ९३ उक्तं च वाग्भटे-उष्णोदकोपचारी स्याद् ब्रह्मचारिक्षपाशयः। नः वेगरोधी व्यायामक्रोधशोकहिमातपान्। प्रवातपानयानाध्वभाष्यात्मासनसंस्थितिः। नीचात्युच्चोपधानाहैः स्वप्पधूमरजांसि च ।। ९४ चरके वाग्भटे च त्रैविध्यमुक्तम्। ९५ वमन होने के वास्ते जो धूम हो उसको वामनीय धूम कहते हैं ९६ वाग्भट ग्रन्थ में एकादिक गण है उसकी औषधि ये हैं १ इलायची, २ बड़ी इलायची, ३ शिलारस, ४ कूठ, ५ गन्धप्रियंगु, ६ जटामांसी, ७ नेत्रवाला, ८ रोहिषतृण, ९ कपूरी, (शाकविशेष). १० किरमानी, अजवायन ११, मोटी दालचीनी १२, तमालपत्र १३, तगर १४, ग्रंथिवर्णिकाभेद दूर्वा १५, जाई का रस १६, नखद्रव्य १७, व्याघ्रनख १८, देवदारु १९, अमर २०, विशेष धूम २१, केशर २२, कौंच की जड़ २३, गूगल २४, राल २५, कुन्दरू और २६ नागचम्पा।

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०- २६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखांना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

खेश्री

खेमराज श्रीकृष्णदास

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई - ४.